शिक्षा : एक यशस्वी दशक

सम्पादक मडल

भूपराज जैन

डॉ० गोपालजी दूबे, ओल्गा घोष

रिधकरण बोथरा, पदमचन्द नाहटा, ललित काकरिया

राधेश्याम मिश्र, लक्ष्मीशकर मिश्र

सयोजन

भूपराज जैन

श्री जैन विद्यालय, हावड़ा

(श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा द्वारा सचालित)

२५/१, वन बिहारी वोस रोड, हावडा-७११ १०१

प्रकाशक

श्री जैन विद्यालय
२५/१, बन बिहारी बोस रोड, हावडा-७११ १०१
फोन ६६०-१३१९, ६५०-२२१०, ६६०-४४१४

आवरण चित्र

गगानगर (राज०) जिले के पल्लूग्राम की खुदाई से प्राप्त
श्री जैन सरस्वती की प्रतिमा का छायाकन
श्री ललित नाहटा (दिल्ली) के सौजन्य से दिल्ली म्युजियम से

मूल्य

रु० ५००/-

आवृति

३३००
मई २००२

मुद्रक

ओसवाल प्रिन्टर्स
४, जगमोहन मल्लिक लेन, कोलकाता-७०० ००७
फोन २३८-४७५५

अनुक्रमणिका

विद्वत खण्ड

विद्वत खण्ड

का वर्षा जब कृषि सुखाने

'कि कि न साधयति कल्पलतैव विद्या', 'सा विद्याया विमुक्तये', 'विद्या ददाति विनय' ऐसी अनेक पौराणिक उक्तियॉ है जिनका गाहे-बगाहे हम प्रयोग करते आ रहे है। विद्या कल्पलता, कल्पवृक्ष के समान है जिससे सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है, साधा जा सकता है। विद्या मुक्ति प्रदाता है, स्वावलम्बन और आत्म-निर्भरता की जननी है और विद्या प्राप्त कर व्यक्ति विनयी बन जाता है, गर्व एव अहकार उसको छू भी नही पाते लेकिन आज तो सब कुछ इसके विपरीत दृष्टिगत हो रहा है।

जिन अर्थो मे विद्या अथवा इस प्रकार की उक्तियो का प्रयोग किया जा रहा है, वह सत्य से नितान्त परे है। विद्या को शिक्षा का पर्याय मानने की भूल विगत काफी अर्से से की जा रही है। वस्तुत विद्या एव शिक्षा मे काफी भिन्नता है। विद्या प्राप्त व्यक्ति कुशल, निष्णात एव प्रातिभ होता है। प्राचीन समय मे गुरू के सान्निध्य मे रहकर जो बालक विद्या प्राप्त कर आश्रम से बिदा होता था, वह जीवन के किसी भी क्षेत्र मे निर्द्वन्द्व विचरण करता हुआ निरन्तर आगे बढता रहता था। इसके प्रतिकूल एक शिक्षित व्यक्ति दर-दर भटकने के लिए मजबूर है। वह परमुखापेक्षी बनकर व्यक्तिगत स्वार्थ लिप्सा मे सर्वथा स्वारथरत दिखाई देता है। जो विद्या विनय का आधार थी, वह अहकार एव अहम्मन्यता का कारण बन गई है। बात-बात मे गर्वोक्ति एव दर्पोक्ति के विष बुझे बाणो से किसी को आहत कर सतोष की अनुभूति करना आम बात प्रतीत होती है। शिक्षा के क्षेत्र मे फैलती मूल्यहीनता सुरक्षा की भॉति अराजकता की सतत वृद्धि का कारण है। शिक्षा आज एक व्यवसाय हो गई है, शुद्ध व्यवसाय। व्यवसाय मे तो पूजी निवेश आवश्यक है लेकिन शिक्षा मे तो बहुत कम पूजी से भी काम चलाया जा सकता है और कई गुना लाभ प्राप्त कर सकते है। शिक्षा के नाम पर चलाये जानेवाले ऐसे स्कूल बद्नुमादाग है। दूसरी तरफ पॉच सितारा होटलो की तरह ऐसे तकनीकी स्कूल कॉलेज है जहॉ लाखो रुपये का 'डोनेशन' लेकर प्रवेश दिया जाता है। इस डोनेशन के बारे मे क्या कहा जाय, सूर्य के प्रकाश की तरह शिक्षा के क्षेत्र मे फैली यह अराजकता सर्वविदित है। शिक्षा प्रेमी के नाम पर शिक्षाविद् एव शिक्षाशास्त्री कहलानेवाले व्यक्ति जिस तरह अबोध बालको एव शिक्षार्थियो के जीवन से खिलवाड कर रहे है वे भी इस अराजकता के उतने ही दोषी है जितने अन्य लोग। आत्म प्रशसा, यश शिखर पर पहुॅचने की प्रबल उत्कठा एव बच्चो के प्रति भेड बकरियो का व्यवहार भी भीषण जुगुप्सा का कारण है।

स्वतत्रता के बाद शिक्षा के प्रति हर सरकार का सदैव उपेक्षा भाव रहा है। केवल आयोगो के गठन की घोषणा मे सरकार ने अपने कर्त्तव्य की इति श्री मान ली। गठित आयोगो ने शिक्षा मे परिवर्तन के जो सुझाव दिये वे फाइलो की ही शोभा बढा रहे है। उन पर अमल करने की फुरसत सरकार के पास नही थी, नही है और सभवत रहेगी भी नही। आज कही शिक्षा के भगवाकरण के आरोप लग रहे है तो कही साम्यवादीकरण के। शिक्षा की इस दुर्दशा का परिणाम भोगना पड रहा है नई पीढी को बिना किसी अपराध के। युवा पीढी मे इस समय व्याप्त आक्रोश, निराशा और भय भी इसी अराजकता की उपज है। नक्सलवाद की जड मे भी यह असमानता और विद्वेष की भावना रही है। युवा पीढी पर दिशाहीनता, कर्त्तव्य की उपेक्षा और परावलबिता के आरोप चाहे जितने लगाये जाय, उन्हे प्रमादी, कामचोर एव सदाचारहीन कितना ही कहा जाय लेकिन इसका दायित्व किसका है ? क्यो ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है ? यह सोचना आवश्यक है। ऐसे आरोपो को लगाते समय हमे अपने गिरेबान मे झाक कर देखना होगा कि कही हमारी स्वार्थपरता, यशैषणा, महत्त्वाकाक्षा और बडबोलापन तो इसकी जड मे नही है।

मीडिया, सचार साधनो की द्रुतता, वैश्वीकरण की प्रक्रिया, उपभोक्तावाद, फैशनपरस्ती, बाजारवाद एव अपसस्कृति की तीव्र ऑधी मे इस समय सब कुछ बहा जा रहा है। अधी होडा होड-प्रतियोगिता और बिना किसी श्रम के करोडपति बनने के वात्याचक्र मे निरीह व्यक्ति

एक वस्तु बनकर रह गया है, अस्तित्वहीन हो गया है। अत यह स्थिति और भयावह हो उससे पूर्व ही इसमे परिवर्तन आवश्यक है अन्यथा **'का वर्षा जब कृषि सुखाने, समय चूकि पछताने'** की तरह हाथ मलते रह जाना होगा। भावी पीढी के भविष्य, इस देश की सभ्यता, सस्कृति एव भूमि की आवश्यकता को ध्यान मे रखकर शिक्षा मे परिवर्तन नितान्त अपेक्षित है। 'जब जागे तभी सबेरा' मानकर शिक्षा मे व्याप्त अराजकता की समाप्ति के उद्देश्य से कटिबद्ध होकर लगना आज समय की पहली आवश्यकता है। यदि बीज को सयम पर शुद्ध खाद, पानी और पोषण मिलेगा तो वृक्ष के अकुरित, पल्लवित एव पुष्पित होकर इच्छित फल देने मे कोई बाधा उत्पन्न नही होगा।

समाज एव राष्ट्र को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एव सम्यग्चारित्र्य से सपन्न बनाने के लक्ष्य से प्रेरित शिक्षा, सेवा और साधना के क्षेत्र मे विगत साढे सात दशक से कार्यरत श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा तथा उसके द्वारा सचालित श्री जैन विद्यालय, हावडा की एक दशकीय शैक्षणिक यात्रा की सम्पूर्ति के उपलक्ष्य मे 'शिक्षा एक यशस्वी दशक' स्मारिका के प्रकाशन का निश्चय किया गया था एव इसके सपादन तथा सयोजन का दायित्व मुझे दिया गया था। पूर्व की भॉति सग्रहणीय एव पठनीय स्मारिका प्रकाशन किसी एक के बूते की बात नही हो सकती। अत साथी सपादको के अथक अध्यवसाय, लगन तथा सुरुचि के कारण ही यह सभव हो सका है। मै अपने सम्पादन सहयोगियो के प्रति हार्दिक आभार एव प्रभूत कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इसे सग्रहणीय तथा बालको को सुरुचि तथा जैनत्व के सस्कारो से सपन्न बनाने की दृष्टि से श्री रिधकरणजी बोथरा, सयोजक समारोह समिति ने केवल दिशादर्शन ही नही किया अपितु तत्सबधी सामग्री का चयन कर स्मारिका मे प्रकाशित करने का जो स्पष्ट कर्त्तव्य बोध एव बल प्रदान किया तदर्थ उनके प्रति आभार प्रकट करना तो मात्र शाब्दिक दायित्व का निर्वाह ही माना जायेगा। ऐसे आलेखो– नवकार मत्र, नवतत्व, इन्द्रभूति गौतम आदि को न केवल पढकर बल्कि उसके अनुरूप आचरित करना ही उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना सही तरीका होगा।

भाई श्री पद्मचन्द नाहटा ने इसे सर्वाग सुन्दर एव आकर्षक ढग से सज्जित करने का अभूतपूर्व कार्य किया, उसे भी मै शाब्दिक कृतज्ञता से परे की बात मानता हूँ।

स्मारिका के मुखपृष्ठ पर मुद्रित सरस्वती का चित्र बीकानेर (राज०) के गगानगर के निकट पल्लू ग्राम की खुदाई से प्राप्त ग्यारहवी बारहवी शताब्दी की प्रतिमा का छायाकन है जो दिल्ली म्युजियम से भाई श्री ललितजी नाहटा, नई दिल्ली के सौजन्य से प्राप्त हुआ है, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन मेरा कर्त्तव्य है। मै यहॉ यह स्मरण दिला दू कि श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा एव उसके द्वारा सचालित विभिन्न प्रवृत्तियो की स्मारिकाओ के मुख पृष्ठ पर विभिन्न ऐतिहासिक स्थानो से प्राप्त पुरातात्त्विक महत्त्व की जैन सरस्वती की प्रतिमा के छायाकनो का मुद्रण ही किया गया है।

ओसवाल प्रिन्टर्स एव अल्टीमम लेजरग्राफिक्स के कार्यकर्त्तायो का भी आभारी हूँ जिन्होने अपने अनर्निश श्रम द्वारा इसे समय पर तैयार कर दिया।

इस स्मारिका मे सभा खण्ड, विद्यालय खण्ड एव विद्वत खण्ड का समायोजन किया है। सभा खण्ड एव विद्यालय खण्ड मे सस्थान से सबधित पदाधिकारियो, शिक्षको एव छात्रो के आलेखो का प्रकाशन किया गया है। विद्वत खण्ड मे मान्य विद्वानो से आमत्रित आलेखो का प्रकाशन किया गया है। विद्वानो, मनीषियो एव चिन्तको ने पूर्व की भॉति हमारे अनुरोध एव आग्रह पर आलेख भेजकर हमे न केवल अनुगृहीत किया है बल्कि स्मारिका को सग्रहणीय एव पठनीय कलेवर प्रदान करने मे जो स्नेह, सहयोग एव सौजन्य प्रदान किया है तदर्थ राशि-राशि कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इस खण्ड मे शिक्षा सम्बन्धी ऐसे अनेक आलेख है जो न केवल शिक्षा जगत मे व्याप्त अराजकता पर प्रकाश डालते है अपितु उसमे मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता पर बल देते है। मै सुधी पाठको को उन्हे पढने का अवश्य अनुरोध करूँगा।

इस स्मारिका मे सभा एव उसकी प्रवृत्तियो के परिचय के साथ विभिन्न समारोहो, क्रिया-कलापो एव कर्मठ कार्यकर्ताओ के बहुरगी चित्र भी प्रकाशित किये है जो इन प्रवृत्तियो द्वारा शिक्षा, सेवा और साधना के क्षेत्र मे किये गये कार्यो का ऐसा लेखा-जोखा है जो काल के भाल पर लिखा गया अमिट लेख है। ये चित्र इसलिये प्रकाशित किये है कि भावी पीढी को सत्सस्कार, प्रेरणा और उत्साह प्रदान करे एव सेवा के मार्ग मे प्रवृत्त कर सके।

यह स्मारिका अब आपके हाथ मे है, यह कैसी है और आपको कैसी लगी है, यह तो आप जैसे सुधी पाठको की प्रतिक्रिया पर निर्भर करेगा। त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पयामि। यह स्मारिका आपकी है और यह आपको ही समर्पित है। किमधिकम्। धन्यवाद–

भूपराज जैन

शुभाशंसा

श्री जैन विद्यालय, हावडा अपनी स्थापना का एक दशक पूर्ण कर रहा है। यह दशक हावडा के शिक्षा-इतिहास का प्रामाणिक दस्तावेज है जिसका ऐतिहासिक महत्त्व निर्विवाद है। इसकी स्थापना का श्रेय श्री, श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा, कोलकाता का है जिसने कोलकाता, हावडा आदि मे शिक्षा के लिए नूतन प्रकल्प और आयाम प्रस्तुत किए है और लोकोपकार के साथ राष्ट्र की भावी पीढी के व्यक्तित्व के सम्यक् विकास का परम श्रेय प्राप्त किया है। किसी भी राष्ट्र का भविष्य उसके युवावर्ग पर निर्भर करता है। आज के मूल्यहीन और नेतृत्वहीन के परिवेश मे जब व्यक्ति, समाज और और राष्ट्र तीनो अप सस्कृति से अभिशप्त रहे है। आशा है शिक्षा के पुनर्मूल्याकन की ऐसी भूमिका प्रस्तुत करे जिससे भूमण्डलीकरण, उपभोक्तावाद और तकनीकी सभ्यता के कृत्रिम मोहजाल से मुक्त कर उच्च मानवीय आदर्शो के साथ-साथ हमारी राष्ट्रीय सस्कृति के नवोत्थान मे सक्रिय सहभागिता करे। हावडा क्षेत्र मे यह श्री जैन विद्यालय कर रहा है और मै उसके विकास, उत्थान और उन्नयन को देखकर मुग्ध हुआ हूँ। एक दशक इसका प्रमाण है। मुझे विश्वास है कि वह भविष्य मे भी उत्तरोत्तर विकास प्राप्त कर अपना महत्वपूर्ण योगदान देता रहेगा।

इन्ही शुभेच्छाओ के साथ–

कल्याणमल लोढ़ा
२ए, देशप्रिय पार्क (ईस्ट), कोलकाता-२९

श्री जैन विद्यालय हावडा 'शिक्षा एक यशस्वी दशक' के शुभावसर पर स्मारिका के प्रकाशन का मागलिक समाचार जानकर उल्लसित हुआ।

श्री जैन विद्यालय हावडा, भारत के भावी भाग्यविधाताओ के सुगठित जीवन निर्माण मे बाल्यकाल से ज्ञान, दर्शन और चारित्र की विधिवत् शिक्षा देकर उनकी नीव सुदृढ करते हुए शिक्षा का एक यशस्वी दशक पूरा कर रहा है। बालको की सहज-स्वाभाविक शिक्षा और सद्वृत्तियो का उन्नयन और समुचित विकास ही शिक्षा का मेरुदण्ड है। सद्शिक्षा से सुविवेक जगता है और विवेक से ही जीवन जागृति और राष्ट्रोन्नति के कार्यो को करने से ही मानव सौरभमय तथा साफल्य मडित होता है।

इसी मूल के सिंचन मे लगे सस्थान से जुडे सभी लोगो को समवेत भाव से अपनी शुभ कामनाये प्रेषित करता हूँ।

माणकचन्द रामपुरिया
रामपुरिया भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर

अत्यन्त गर्व और गौरव की वात है कि श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा का यह अमृत महोत्सव वर्ष है एव श्री जैन विद्यालय, हावडा एक दशक की मगलमय यात्रा भी परिपूर्ण कर आगे प्रगति के पथ पर अग्रसर है। मगलक.मना है कि विद्यालय परिवार के प्रति जिन्होंने श्रद्धा और समर्पण के साथ सभा के तीन महत्वपूर्ण सकल्पो साधना, शिक्षा और सेवा को बढाने मे पूर्ण योगदान दिया, भावी यात्रा भी मगलमय हो और शिक्षा के क्षेत्र मे एक आदर्श सरस्वती मदिर का रूप जन-जन के लिए प्रेरणादायी हो। साक्षरता अभियान मे सम्यक् ज्ञान, दर्शन और चारित्र की अभिवृद्धि करते हुए एक पारिवारिक परिवेश मे छात्र एव छात्राओ के प्रति अपने दायित्व को निभाने के सकल्प को हम सव दोहराये, यही मेरी शुभकामना है।

रिखबदास भसाली
ट्रस्टी– श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा

जैन विद्यालय की शैक्षणिक उपलब्धियाँ कोलकाता वासियो के लिए ही नही, बहुत सुदूर बैठे हमारे लिए भी गौरवदायिनी है। यहाँ के छात्र केवल शिक्षा ही ग्रहण नही कर रहे है, सात्विक एव सस्कारी जीवन जीने की दीक्षा मे भी पारगत हो रहे है। यह एक महत्वपूर्ण पक्ष है जबकि सब ओर शिक्षा व्यवसाय और डिग्री प्राप्त करने का माध्यम रह गई है। ऐसे मे शिक्षा और शिक्षक दोनो की जिम्मेदारी बढ जाती है कि शिक्षार्थी को जीवन मूल्यो से कैसे, किस प्रकार जोडा जाय।

डॉ० महेन्द्र भानावत

सम्पादक रगयोग त्रैमासिक

श्री जैन विद्यालय, हावडा का 'शिक्षा एक यशस्वी दशक' समारोह का आयोजन एव स्मारिका का प्रकाशन यह समाचार प्रेरक और सुखद है। भगवान महावीर के २६००वे कल्याण वर्ष मे यह पुनीत कार्य अत्यन्त ही उपयोगी हो यही मेरी कामना है।

विद्यालय बालको को सुसस्कारो से ओतप्रोत कर समाज एव राष्ट्र की बहुआयामी अमूल्य सेवा कर रहे है। देश के नौनिहालो को जितने अच्छे सस्कार विद्यालयो मे मिल सकते है, उतने सस्कार अन्यत्र नही मिल सकते है। इसी दिशा मे श्री जैन विद्यालय देश व समाज के उन्नयन मे अपना अमूल्य योगदान देता हुआ कार्य मे अधिक से अधिक गुणवत्ता लाने के लिये सक्रिय रहे। इसी प्रशस्त भावना के साथ।

स्मारिका के सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ।

शान्तिलाल साड

पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ

श्री जैन विद्यालय, हावडा के शिक्षा यशस्वी एक दशकीय कालचक्र की सम्पूर्णता पर स्मारिका के प्रकाशन के उपलक्ष मे मेरी हार्दिक बधाई एव शुभकामनाएँ स्वीकार करे।

पूर्व की भाँति भविष्य मे भी इसकी यशस्वी कर्ममय शैक्षणिक यात्रा मे चार चाँद लगे, यही शासनदेव से करबद्ध प्रार्थना है।

केशरीचद गोलछा

कोषाध्यक्ष

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर

शुभाशंसा

श्री जैन विद्यालय, हावडा अपनी स्थापना का एक दशक पूर्ण कर रहा है। यह दशक हावडा के शिक्षा-इतिहास का प्रामाणिक दस्तावेज है जिसका ऐतिहासिक महत्व निर्विवाद है। इसकी स्थापना का श्रेय श्री, श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा, कोलकाता का है जिसने कोलकाता, हावडा आदि मे शिक्षा के लिए नूतन प्रकल्प और आयाम प्रस्तुत किए है और लोकोपकार के साथ राष्ट्र की भावी पीढी के व्यक्तित्व के सम्यक् विकास का परम श्रेय प्राप्त किया है। किसी भी राष्ट्र का भविष्य उसके युवावर्ग पर निर्भर करता है। आज के मूल्यहीन और नेतृत्वहीन के परिवेश मे जब व्यक्ति, समाज और और राष्ट्र तीनो अप सस्कृति से अभिशप्त रहे है। आशा है शिक्षा के पुनर्मूल्याकन की ऐसी भूमिका प्रस्तुत करे जिससे भूमण्डलीकरण, उपभोक्तावाद और तकनीकी सभ्यता के कृत्रिम मोहजाल से मुक्त कर उच्च मानवीय आदर्शो के साथ-साथ हमारी राष्ट्रीय सस्कृति के नवोत्थान मे सक्रिय सहभागिता करे। हावडा क्षेत्र मे यह श्री जैन विद्यालय कर रहा है और मै उसके विकास, उत्थान और उन्नयन को देखकर मुग्ध हुआ हूँ। एक दशक इसका प्रमाण है। मुझे विश्वास है कि वह भविष्य मे भी उत्तरोत्तर विकास प्राप्त कर अपना महत्वपूर्ण योगदान देता रहेगा।

इन्ही शुभेच्छाओ के साथ–

कल्याणमल लोढा

२ए, देशप्रिय पार्क (ईस्ट), कोलकाता-२९

श्री जैन विद्यालय हावडा 'शिक्षा एक यशस्वी दशक' के शुभावसर पर स्मारिका के प्रकाशन का मागलिक समाचार जानकर उल्लसित हुआ।

श्री जैन विद्यालय हावडा, भारत के भावी भाग्यविधाताओ के सुगठित जीवन निर्माण मे बाल्यकाल से ज्ञान, दर्शन और चारित्र की विधिवत् शिक्षा देकर उनकी नीव सुदृढ करते हुए शिक्षा का एक यशस्वी दशक पूरा कर रहा है। बालको की सहज-स्वाभाविक शिक्षा और सद्वृत्तियो का उन्नयन और समुचित विकास ही शिक्षा का मेरुदण्ड है। सद्शिक्षा से सुविवेक जगता है और विवेक से ही जीवन जागृति और राष्ट्रोन्नति के कार्यो को करने से ही मानव सौरभमय तथा साफल्य मडित होता है।

इसी मूल के सिंचन मे लगे सस्थान से जुडे सभी लोगो को समवेत भाव से अपनी शुभ कामनाये प्रेषित करता हूँ।

माणकचन्द रामपुरिया

रामपुरिया भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर

अत्यन्त गर्व और गौरव की बात है कि श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा का यह अमृत महोत्सव वर्ष है एव श्री जैन विद्यालय, हावडा एक दशक की मगलमय यात्रा भी परिपूर्ण कर आगे प्रगति के पथ पर अग्रसर है। मगलकामना है कि विद्यालय परिवार के प्रति जिन्होंने श्रद्धा और समर्पण के साथ सभा के तीन महत्वपूर्ण सकल्पो साधना, शिक्षा और सेवा को बढाने मे पूर्ण योगदान दिया, भावी यात्रा भी मगलमय हो और शिक्षा के क्षेत्र मे एक आदर्श सरस्वती मदिर का रूप जन-जन के लिए प्रेरणादायी हो। साक्षरता अभियान मे सम्यक् ज्ञान, दर्शन और चारित्र की अभिवृद्धि करते हुए एक पारिवारिक परिवेश मे छात्र एव छात्राओ के प्रति अपने दायित्व को निभाने के सकल्प को हम सव दोहराये, यही मेरी शुभकामना है।

रिखबदास भसाली

ट्रस्टी– श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा

जैन विद्यालय की शैक्षणिक उपलब्धियॉ कोलकाता वासियो के लिए ही नही, बहुत सुदूर बैठे हमारे लिए भी गौरवदायिनी है। यहॉ के छात्र केवल शिक्षा ही ग्रहण नही कर रहे है, सात्विक एव सस्कारी जीवन जीने की दीक्षा मे भी पारगत हो रहे है। यह एक महत्वपूर्ण पक्ष है जबकि सब ओर शिक्षा व्यवसाय और डिग्री प्राप्त करने का माध्यम रह गई है। ऐसे मे शिक्षा और शिक्षक दोनो की जिम्मेदारी बढ जाती है कि शिक्षार्थी को जीवन मूल्यो से कैसे, किस प्रकार जोडा जाय।

डॉ० महेन्द्र भानावत

सम्पादक रगयोग त्रैमासिक

श्री जैन विद्यालय, हावडा का 'शिक्षा एक यशस्वी दशक' समारोह का आयोजन एव स्मारिका का प्रकाशन यह समाचार प्रेरक और सुखद है। भगवान महावीर के २६००वे कल्याण वर्ष मे यह पुनीत कार्य अत्यन्त ही उपयोगी हो यही मेरी कामना है।

विद्यालय बालको को सुसस्कारो से ओतप्रोत कर समाज एव राष्ट्र की बहुआयामी अमूल्य सेवा कर रहे है। देश के नौनिहालो को जितने अच्छे सस्कार विद्यालयो मे मिल सकते है, उतने सस्कार अन्यत्र नही मिल सकते है। इसी दिशा मे श्री जैन विद्यालय देश व समाज के उन्नयन मे अपना अमूल्य योगदान देता हुआ कार्य मे अधिक से अधिक गुणवत्ता लाने के लिये सक्रिय रहे। इसी प्रशस्त भावना के साथ।

स्मारिका के सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ।

शान्तिलाल साड

पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ

श्री जैन विद्यालय, हावडा के शिक्षा यशस्वी एक दशकीय कालचक्र की सम्पूर्णता पर स्मारिका के प्रकाशन के उपलक्ष मे मेरी हार्दिक बधाई एव शुभकामनाऍ स्वीकार करे।

पूर्व की भॉति भविष्य मे भी इसकी यशस्वी कर्ममय शैक्षणिक यात्रा मे चार चॉद लगे, यही शासनदेव से करबद्ध प्रार्थना है।

केशरीचद गोलछा

कोषाध्यक्ष

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा

(सस्थापित सन् १९२८)

१८-डी, सुकियस लेन, कोलकाता-७०० ००१
(सोसायटी एक्ट १९६० के अन्तर्गत पजीकृत)

१ शिक्षा

क **श्री जैन विद्यालय (सस्थापित सन् १९३४)**
१८-डी, सुकियस लेन, कोलकाता-७०० ००१
(उच्च माध्यमिक विद्यालय, पश्चिम बग माध्यमिक शिक्षा परिषद एव पश्चिम बग उच्चतर माध्यमिक शिक्षा परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त, सप्रति ३००० छात्र अध्ययनरत)

ख **श्री जैन विद्यालय (सन् १९९२) लडको के लिए**
२५/१, बन बिहारी बोस रोड, हावडा-७११ १०१
(उच्च माध्यमिक विद्यालय, पश्चिम बग माध्यमिक शिक्षा परिषद एव पश्चिम बग उच्चतर माध्यमिक शिक्षा परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त) सप्रति २१०० छात्र अध्ययनरत

ग **श्री जैन विद्यालय (सन् १९९२) लडकियो के लिए**
(पश्चिम बग माध्यमिक शिक्षा परिषद एव पश्चिम बग उच्चतर माध्यमिक शिक्षा परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त) सप्रति २००० छात्राऍ अध्ययनरत

घ **हावडा मे लडकियो के लिए प्रस्तावित स्नातकीय महाविद्यालय**

ङ **श्री जैन शिल्प शिक्षा केन्द्र (१९८६-८७)**
१८-डी, सुकियस लेन, कोलकाता-७०० ००१
(राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय कक्षा १० एव कक्षा १२ लडकियो के लिए)
मानव विकास एव ससाधन मन्त्रालय के नेशनल ओपन स्कूल के अन्तर्गत सम्प्रति १५० छात्राएँ अध्ययनरत

च **हरखचद काकरिया जैन विद्यालय, जगतदल**
कक्षा ९, ६०० छात्र-छात्राऍ अध्ययनरत

छ सागर माधोपुर मे तागदेवी काकरिया प्राथमिक विद्यालय की स्थापना

झ गुजरात के भूकम्प प्रभावित क्षेत्र कच्छ भुज मे माँ आशापुरा इग्लिश मिडियम प्राइमरी स्कूल का दिनाक ६ जनवरी २००० को उद्घाटन।
श्री वीरायतन द्वारा निर्माणाधीन विद्यालय मे ६ कमरो के एक प्रखण्ड हेतु आर्थिक सहयोग।

ञ अशोक नगर (पश्चिम बगाल) मे प्राथमिक विद्यालय की स्थापना।

२ महिला उत्थान एव विकास

क **स्वावलम्बन योजना के अन्तर्गत महिलाओ को सिलाई मशीनो का वितरण**

३ **ग्रामाचल विकास (बुक बैक योजना)**

क **श्री जैन बुक बैक योजना (१९७९)**
१८-डी, सुकियस लेन, कोलकाता-७०० ००१

ख **नि शुल्क पाठ्य-पुस्तको का वितरण**
उच्च माध्यमिक, स्नातकीय एव उच्चतर स्नातकीय छात्रो को सदर्भ ग्रन्थ एव पाठ्य-पुस्तको का नि शुल्क वितरण प्रति वर्ष दो हजार छात्र-छात्राओ को।

ग **ग्रामाचलो मे विद्यालयो का निर्माण एव जर्जर विद्यालयो का पुनर्निर्माण** (सम्प्रति दो ग्रामो के कार्यारम्भ)

घ **स्वरोजगार योजना के अन्तर्गत ग्रामाचलो मे पेड-पौधे लगाने एव कृषि कार्य के लिए ऋण**

ङ **विभिन्न ग्रामीण विद्यालयो मे कम्प्यूटर सेन्टर, लायब्रेरी, विज्ञान प्रत्येक शाखाओ की स्थापना**

४ **मानव सेवा प्रकल्प**

क नि शुल्क नेत्र चिकित्सा शिविर

ख विकलागो के लिए नि शुल्क कृत्रिम अग वितरण शिविर एव चार पहिए वाली साइकल का वितरण

ग सूती, ऊनी तैयार वस्त्र एव कम्बलो का ग्रामाचलो मे नि शुल्क वितरण

घ रक्तदान शिविर का आयोजन

ङ अस्पतालो मे फलो का वितरण

च नि शुल्क औषधि वितरण

छ प्रत्येक माह मे एक सौ नितान्त असहाय गरीब एव विकलाग व्यक्तियो को दो बार नि शुल्क राशन वितरण

ज ग्रामीण महिलाओ को स्वरोजगार हेतु ब्याज मुक्त ऋण

५ **श्री जैन हास्पीटल एव रिसर्च सेन्टर, हावडा**
४९३/बी/१२, जी टी रोड (दक्षिण) हावडा-७११ १०२
सात करोड रुपये की लागत से २२० (बेड) शय्याओ एव अधुनातन ससाधनो तथा सयत्रो से युक्त साठ हजार वर्ग फीट पर निर्मित आधुनिक चिकित्सा एव निदान केन्द्र।
१५ अगस्त, १९९७ को स्वतत्रता दिवस की स्वर्ण जयन्ती के पावन प्रसग पर आउटडोर विभाग का उद्घाटन सम्पन्न।
दिसम्बर, १९९७ मे इन्डोर विभाग का प्रारम्भ।

SHREE SHWETAMBER STHANAKWASI JAIN SABHA

18/D, Sukeas Lane, Kolkata-700 001

LIST OF OFFICE BEARERS OF THE SABHA

Trustees
Sri Manak Chand Rampuria
Sri Sardarmull Kankaria
Sri Rikhabdas Bhansali
Sri Balchand Bhura

President
Sri Bachhraj Abhani

Vice President
Sri Ridhkaran Bothra

Secretary
Sri Vinod Minni

Joint Secretaries
Sri Ashok Kumar Bothra
Sri Kishore Kumar Kothari

Treasurer
Sri Parasmal Bhurat

Working Committee Member
Sri Jaichandlal Minni
Sri Bhanwarlal Dasani
Sri Phagmal Abhani
Sri Sohanraj Singhvi
Sri Mohanlal Bhansali
Sri Kishanlall Bothra
Sri Pannalal Kochar
Sri Shantilal Daga
Sri Surendra Kumar Banthia
Sri Subhash Chand Kankaria
Sri Shantilal Kothari
Sri Sunderlal Dugar
Sri Rajendra Kumar Nahata
Sri Chandra Prakash Daga
Sri Lalit Kumar Kankaria
Sri Ashok Minni
Sri Subhash Bachhawat
Sri Mahendra Kumar Karnawat
Sri Arun Kumar Maloo
Sri Nischal Kankaria
Sri Pankaj Bachhawat

Permanent Invitees
Sri Jaichandlal Rampuria
Sri Sohanlal Golchha
Sri Bhanwarlal Baid
Sri Chandmal Abhani
Sri Gopal Chand Bothra
Sri Kundanmal Baid
Sri Kharag Singh Baid
Sri Manik Chand Gelra
Sri Kamal Singh Kothari
Sri Kamal Singh Bhansali
Sri Tansukh Raj Daga
Sri Hastimal Jain
Sri Gautam Chand Kankaria
Sri Jawaharlal Karnawat
Sri Kanwarlal Maloo
Sri Binod Chand Kankaria
Sri Suresh Kumar Minni
Sri Ajay Kumar Bothra
Sri Surendra Kumar Sethia
Sri Gopal Chand Bhura
Sri Ajay Kumar Daga
Sri Rajendra Kumar Bucha
Sri Surendra Daftry
Sri Kamal Karnawat
Sri Sushil Kumar Gelra

OFFICE

Office Secretary
Sri Hanuman Nahata

Note The President and the Secretary of Shree Shwetamber Sthanakwasi Jain Sabha will be the Ex-officio members over all the Committees and Sub-committees Governed by the Sabha

SHREE JAIN VIDYALAYA - KOLKATA

18-D, Sukeas Lane, Kolkata-700 001
Phone 242-4958, Telefax 210-4139

President
Sri Sohanraj Singhvi

Vice President
Sri Vinod Minni

Secretary
Sri Binod Chand Kankaria

Principal
Sri Sharad Chandra Pathak

HARAKH CHAND KANKARIA JAIN VIDYALAYA - JAGATDAL

Auckland Jute Mill Compound
Post-Jagatdal, Dist 24 Parganas (N)
Jagatdal-743 125, Phone 581-7925

Presient
Sri Harakh Chand Kankaria

Vice President
Sri Surendra Kumar Banthia

Secretary
Sri Sardarmull Kankaria

Principal
Sri Bal Krishna Harsh

SHREE JAIN SHILPA SHIKSHA KENDRA (National Open School)

18/D, Sukeas Lane, Kolkata-700 001
Phone 242-6369

Secretary
Sri Lalit Kankaria

Joint Secretary
Smt Geetika Bothra

Principal
Sri Arun Kumar Tewari

Co-ordinator
Sri Radheyshyam Mishra

SHREE JAIN BOOK BANK PROJECT COMMITTEE

Convenor
Sri Subhash Bachhawat

Co-convenor
Sri Ajay Bothra
Sri Ajay Daga
Sri Surendra Daftary

Member
Sri Chandra Prakash Daga
Sri Surendra Kumar Sethia
Sri Chandra Kumar Bachhawat
Sri Bhagi Chand Daga
Sri Mahavir Lunawat
Sri Padam Bachhawat
Sri Vijay Kumar Anchalia
Sri Ajit Parekh
Sri Pankaj Bachhawat
Sri Tarak Nath Das
Sri Radhey Shyam Dutta
Sri Ujjal Nandi
Sri Gautam Kumar Bose
Sri Shyam Sunder Nayak
Sri Sankar Mahapatra
Ms Tripti Biswas

SHREE JAIN DHARMA SABHA SAMITY

Convenor
Sri Kewal Chand Patwa

Co-convenor
Sri Kewal Chand Kankaria
Sri Jawaharlal Karnawat

Member
Sri Sohanlal Golchha
Sri Gopal Chand Bothra
Sri Shantilal Daga
Sri Kundanmal Falodia
Sri Kanwarlal Sethia
Sri Ajay Kumar Daga
Sri Bhagi Chand Daga
Sri Nirmal Kumar Baid

LEGAL COMMITTEE

Convenor
Sri Ashok Minni

Co-convenor
Sri Lalit Kankaria

MAHILA UTTHAN AND VIKAS SAMITY

Convenor
Smt Leela Devi Bothra

Co-convenor
Smt Prabha Bhansali
Smt Kiran Hirawat

SHREE JAIN HOSPTIAL AND RESEARCH CENTRE - HOWRAH

493B/12, G T Road (South), Howrah-711 101
Phone 6502066/3067/7502/0795, Telefax 6503068

President
Sri Harakh Chand Kankaria

Vice President
Sri Srichand Nahata
Sri Shyam Sundar Kejriwal

Secretary
Sri Sardarmull Kankaria

Joint Secretaries
Dr Narendra Sethia
Sri Ahok Minni

Treasurer
Sri Ridh Karan Bothra

Medical Superintendent
Dr Arunava Chatterjee

Managing Committee Members
Sri Rikhab Das Bhansali
Sri Sohan Raj Singhvi
Sri Bhanwarlal Dasani
Sri Mohanlal Bhansali
Sri Surendra Kumar Banthia
Sri Kishanlal Bothra
Sri Shantilal Daga
Sri Subhas Bachhawat
Sri Pannala Kochar
Sri Padam Chand Nahata
Sri Devendra Kochar
Sri Panmal Maloo
Sri Radhey Shyam Mishra
Sri Binod Bhai Shah
Sri Tara Chand Surana
Sri Ashok Bothra
Sri Kanmal Sethia
Sri Phagmal Abhani
Sri Chandra Prakash Daga
Sri Ajay Kumar Daga
Sri Rajendra Kumar Bucha
Sri Ashwini Bhai Desai
Sri Thanmal Bothra
Sri Surendra Kumar Sethia
Sri Shanti Lal Kothari
Sri Kishor Kothari
Sri Pankaj Bachhawat
Sri Rajendra Kumar Nahata
Sri Kanwarlal Maloo
Sri Sushil Daga
Smt Chandrakala Bang

SHREE JAIN VIDYALAYA/COLLEGE NEW PROJECT COMMITTEE

Convenor
Sri Sardarmull Kankaria

Co-convenor
Sri Surendra Banthia

Member
Sri Ridh Karan Bothra
Sri Sohanraj Singhvi
Sri Sunderlal Dugar
Sri Binod Chand Kankaria
Sri Shantilal Kothari

SHREE JAIN HOSPITAL & RESEARCH CENTRE

A Brief Progress Report

Situated 493 B-12, G T Road, Howrah (S)-711 102 on total 63 cathas of land constructed area 65000 sq ft approximately Ground plus four floor, 220 bedded Charitable Hospital with the following facilities

Outdoor Department inaugurated on 15-8-97 by Hon'ble Mayor, Howrah Municipal Corporation– Sri Sowdesh Chakraborty, Hon'ble Minister Incharge– Sports Transport Minister– Incharge Small Scale & Cottage Industries Govt of West Bengal– Sri Pralay Talukdar and other dignitories At present approximately 150 patients are visiting outdoor daily

Indoor Department started practically in the 3rd week of Dec '97 At present following facilities are available in the Hospital

24 HRS EMERGENCY

- COMPUTERISED PATHOLOGY
- X-RAY
- ULTRASONOGRAPHY
- ECHO-CARDIOGRAPHY
- TMT
- DENTAL
- COMPUTERISED EYE CHECKUP
- PHYSIOTHERAPY
- FREE ARTIFICIAL LIMB & CALIPER UNIT
- AUDIOMETRY
- INTENSIVE CARE UNIT (ICU)
- INTENSIVE CARDIAC CARE UNIT (ICCU)
- NEONATAL INTENSIVE CARE UNIT (NICU)
- ENDOSCOPY
- SPIROMETERY
- 24 HRS AMBULANCE
- MEDICINE SHOP
- SPECIAL WING
- LAPAROSCOPY UNIT
- UROLOGY DEPT
- NEPHROLOGY DEPT
- C-ARM
- PAEDIATRIC SURGERY
- RESPIRATORY MEDICINE
- PERMANENT PALEMAKER
- IMPLANTATION FACILITY
- DIALYSIS UNIT
- DIALYSIS PAY CLINIC

श्री जैन विद्यालय, कलकत्ता
विहंगम दृष्टि में

- श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा द्वारा सन् १९३४ मे सस्थापन
- पाचागली के एक कमरे मे प्रारम्भ
- प्रथम प्रधानाध्यापक श्री बच्चन सिह
- विद्यार्थियो की सख्या मे वृद्धि पर मोहनलाल गली मे सन् १९४५ मे स्थानान्तरण
- मोहनलाल गली मे कक्षा ५ तक अध्यापन
- विद्यार्थियो की बढती सख्या को दृष्टिगत रख नवीन भवन निर्माण का सकल्प
- सुकियस लेन मे जमीन क्रय एव सन् १९५६ मे भवन निर्माण प्रारम्भ
- सन् १९५८ मे १८-डी, सुकियस लेन मे विद्यालय स्थानान्तरित
- श्री रामानन्द तिवारी प्रधानाध्यापक नियुक्त
- पश्चिम बग माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा १९६० मे मान्यता एव हाई स्कूल की कक्षाएँ प्रारम्भ
- सन् १९६० बहुद्देशीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के रूप मे मान्यता एव कक्षाएँ प्रारम्भ
- कार्यकारिणी अध्यक्ष श्री फूसराज बच्छावत, मत्री श्री सरदारमल काकरिया, सयुक्त मत्री एव प्रधानाचार्य श्री रामानन्त तिवारी
- सन् १९७६ मे पश्चिम बग उच्च माध्यमिक परिषद द्वारा मान्यता एव १०+२ का अध्यापन प्रारम्भ
- सन् १९७८ मे विद्यार्थियो का प्रथम दल उच्च माध्यमिक परीक्षा मे सम्मिलित
- विज्ञान एव वाणिज्य की कक्षाएँ
- विगत दो दशक से परीक्षा परिणाम शत-प्रतिशत
- विज्ञान एव वाणिज्य के कई विषयो मे छात्रो को विशेष योग्यता
- सन् १९८४ मे विद्यालय की अष्ट दिवसीय स्वर्ण जयन्ती
- १५ जनवरी, १९८४ को नेताजी इन्डोर स्टेडियम मे दस हजार दर्शको की उपस्थिति मे स्वर्ण जयन्ती का प्रधान समारोह
- विशिष्ट प्रतिभा पुरस्कार– विभिन्न क्षेत्रो मे कीर्तिमान बनाने वाले छात्रो का सम्मान
- विज्ञान की समृद्ध आधुनिक प्रयोगशालाएँ एव पुस्तकालय – बीस हजार पुस्तके
- ज्ञान-विज्ञान के आधुनिक ससाधन – जेनरेटर, सभी कक्षाओ मे ध्वनि-विस्तारक यत्र, लिफ्ट आदि
- बालचर, कराटे, सगीत एव कला प्रशिक्षण, नैतिक एव शारीरिक प्रशिक्षण
- कम्प्यूटर शिक्षण कक्षा ५ से अनिवार्य
- सम्प्रति २४०० विद्यार्थी
- १९९४ मे छ दशकीय शैक्षणिक यात्रा पूर्ण हीरक जयन्ती वर्ष
- हीरक जयन्ती वर्ष मे माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक परीक्षाफल एक कीर्तिमान। माध्यमिक मे १८९ छात्रो मे ९५ छात्र प्रथण श्रेणी मे शेष द्वितीय श्रेणी मे। उच्च माध्यमिक मे ४२४ छात्रो मे १८२ छात्र प्रथम श्रेणी मे, शेष द्वितीय श्रेणी मे। गणित मे १० छात्रो को स्टार मार्क (विशेष योग्यता)
- अनेक प्रतियोगिताएँ, अखिल भारतीय मुद्रा एव स्टाम्प प्रदर्शनी, विज्ञान एव कला प्रदर्शनी, सगीत सध्या आदि का आयोजन
- १७ दिसम्बर, १९९४ को कलकत्ता मिन्ट के डिप्टी जनरल मैनेजर डॉ० श्री दत्ता द्वारा जैनपेक्स एव हीरक जयन्ती विशेष मुद्रा का अनावरण एव कलकत्ता उच्च न्यायलय के मुख्य न्यायाधीश श्री के० सी० अग्रवाल को भेट
- १७ दिसम्बर, १९९४ को जी० पी० ओ० फिलटेलिक विभाग द्वारा विद्यालय प्रागण मे स्काउट मेल एव प्रथम दिवसीय आवरण जारी एव अतिथियो को भेट
- २३ दिसम्वर, १९९४ को जनरल मैनेजर श्री डी० एम० सरकार, कलकत्ता मिन्ट, भारत सरकार की अध्यक्षता मे सम्पन्न समारोह मे श्री सुभाष चक्रवर्ती, क्रीडा एव युवा कल्याण मत्री, पश्चिम बग के कर-कमलो से कबूतर डाक सेवा का उद्घाटन
- दिनाक २५ दिसम्बर, १९९४ को नेताजी इन्डोर स्टेडियम मे समापन समारोह। प्रधान अतिथि श्री टी० एन० शेषन, मुख्य चुनाव आयुक्त, भारत सरकार
- १०-७-९४ को श्रीमती विमला मिन्नी कम्प्यूटर सेन्टर का उद्घाटन। कक्षा ५ से कक्षा १२ तक के छात्रो के लिए कम्प्यूटर शिक्षा अनिवार्य
- सन् १९९६ मे मल्टी-मीडिया कम्प्यूटर एव इन्टरनेट सर्विस का उद्घाटन, इ-मेल की सुविधा से सम्पन्न
- सन् १९९८ से परीक्षाफल मे नया कीर्तिमान
- विद्यालयी गतिविधियो की परिचायिका – षट्मासिक 'आभास' का प्रकाशन २००१ से प्रारम्भ
- गाइड यूनिट की स्थापना
- श्रेष्ठ स्काउट एव गाइड को पुष्करलाल केडिया पदक (समग्र कलकत्ता जिला)
- श्रेष्ठ छात्र को डॉ० महेश गोयनका के पिताश्री की स्मृति मे चार हजार रुपये की वार्षिक छात्रवृत्ति सन् २००१ से प्रारम्भ
- पूर्व छात्र डॉ० ओम टाटिया की ओर से विज्ञान के श्रेष्ठ छात्र को २०००) वार्षिक छात्रवृत्ति सन् २००२ से प्रारम्भ
- स्कोप एव विद्यालय के तत्वावधान मे कम्प्यूटर प्रशिक्षण प्रारभ, सभी के लिए
- जरूरतमद प्रतिभा सम्पन्न छात्र को स्व० भीखमचद भसाली की स्मृति मे भसाली परिवार की ओर से चार हजार रुपये की छात्रवृत्ति

❑ R D Bhansali

Education - 2002

The concept of education is very old The momen it was conceived that man is rational animal sources for education were discovered Primitive Sources were nature, old legends ethics, Spiritual Sermons Gurukul As science developed the system was changed Apart from moral education one must achieve materials knowledge also to preserve himself mentally and physically fit Moral virtues are the means and not the end to achieve the goal

When we think of education in 2002 a lot of changes are required With the existing School syllabi extra curricular projects should be evolved In this manner of education learning will be an enjoyable experience There must not be stereo type of education The school must create suitable work environment A child's potentiality has to be tapped he should be kept abreast of latest technologies so that conventional methods of education are more interesting and meaningful This will naturally lead towards polishing their hidden abilities and help in reducing examination stress and offer career counselling Schools must take initiative Emphasis should be on projects organised tours to achieve pressure fire environment The aim should be on how to learn ratter than what to learn This will enable them to adjust to the mainstream of education It is must to infuse in students keenness for art and culture and a strong environmental awareness along with regular curriculum

Students usually spend ten to twelve years of their prime time of life in class rooms burdened with school syllabi homework and preparing for terminal exams weekly tests It is pity that they do not enjoy the process of education through audio and visual methods Which can provide a graphic memory to students

To impart fair education the school must organise counseling debates, seminars exhibitions, conference, talks etc These activities enable students in choosing a career- an extra ordinary one-which emerge from a most unique, sophisticated and advance academic and technical knowledge with total personality development leading to inner strength of both mind and soul because faith in moral virtues make a person a super human Respect for riders, teachers,, society and faith in God are all concerned with moral virtues Each one will become a success story, futures will be bright and life will have enormous joy and satisfaction Then alone, he will lean towards humility compassion, and understanding for others This quality will maintain positive relationship with others The teacher is not a fountain of wisdom as has been traditionally held but is a facilitator and guide of the modem era For everybody learning should be exciting and fun This also will insist each one to move on right track with open eyes and clear perception

Trustee Shree S S Jain Sabha

❑ S R Singhvi

Dream has come into the reality

Ten years ago Shree Jain Vidyalaya, Howrah was a dream project When the site was visited some of us had reservations because of location and approach Today the dream has come into the reality much more than expectations The six-storey construction with a lot of open space and large approach has give the school a distinctive place in Howrah In course of 10 years the Vidyalaya has sealed new heighs and has emerged as a leading educational institute in Howrah

The objects of education is complete development of all faculties and by numerous activities - social, cultural, sports etc It has helped students to be proud of belonging to Shree Jain Vidyalays In the present times all education is incomplete without computer courses In addition to this facility speaks the outlook of the management A very cordial relation exists among the management, staff members, students and Shree Shwetambar Sthanakwasi Jain Sabha This team spirit is the main contributor of fast progress and better result of the students

I send my hearty congratulations and share with the School the joy for celebrating its 10th anniversary My all the best wishes for further development and hope the management will be successful in giving value based education to the students

President, Shree Jain Vidyalaya
18D, Sukeas Lane Kolkata

EDITORIAL BOARD

SHREE JAIN HOSPITAL & RESEARCH CENTRE

▯ वच्छराज अभानी

शिक्षण संस्थाओं में अग्रणी

अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि हमारी सभा की प्लेटिनम जुबिली वर्ष के प्रथम आयोजन के रूप मे श्री जैन विद्यालय हावडा की यशस्वी शैक्षणिक यात्रा की दशवी वार्षिकी १२ मई २००२ को नेताजी इन्डोर स्टेडियम मे मनाने जा रहे है। गत् ७५ वर्षो से सस्था साधना, शिक्षा और सेवा के कार्यो मे निरन्तर बढती जा रही है। इसका मूल श्रेय सिर्फ पदाधिकारियो को ही नही वरन् सभा के सभी सदस्यो का सभा के प्रति पूर्ण समर्पण और सहयोग की भावना है।

सभा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण एव गौरवशाली बात तो यह है कि सभा के पदाधिकारियो एव कार्यकारिणी समिति व सदस्यो आदि का चुनाव सर्वसम्मति से होता है न कि पद के लिये किसी प्रकार की प्रतिद्वन्द्विता से। इसके प्रतिकूल सुयोग्य व्यक्तियो की पहचान कर उन्हे पद सम्भालने के लिये सभी सदस्य विशेष अनुरोध करते है एव प्रभाव डालते है। सभा के सभी सदस्य पदाधिकारियो को सर्वदा हार्दिक सहयोग देते रहते है।
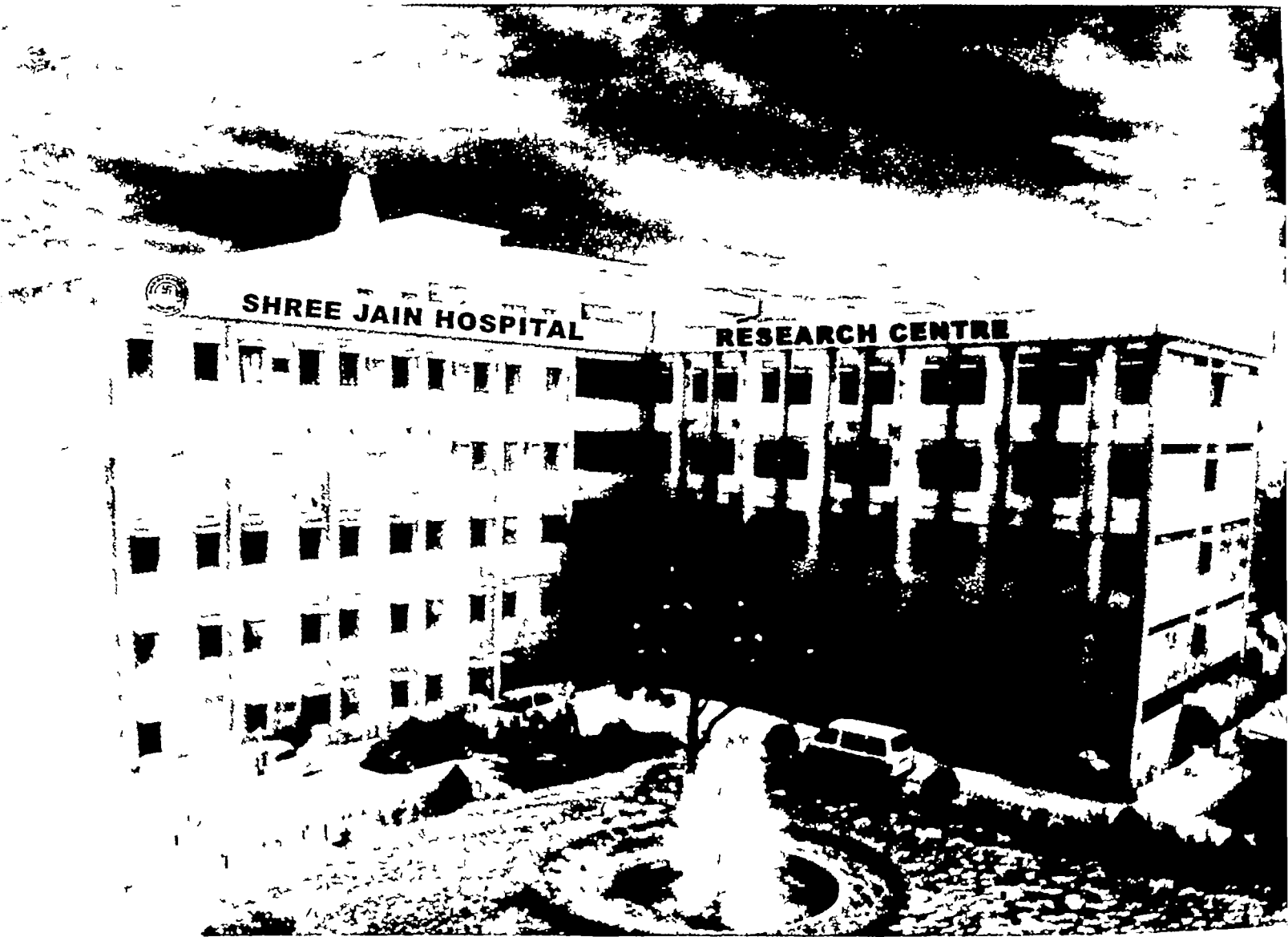
पदाधिकारियो ने भी सभी समाज के प्रति शुभकामना एव समन्वय तथा एकता की भावना रखते हुए साम्प्रदायिकता के अहम् की लहर मे न बहते हुए सिर्फ स्थानकवासी समाज ही नही वरन् समस्त जैन समाज के लोगो के हृदय को जीता है जिसका जीता जागता प्रमाण श्री जैन विद्यालय, हावडा एव श्री जैन हॉस्पीटल एण्ड रिसर्च सेन्टर, हावडा है जिसमे सभी समाज व सम्प्रदाय के लोगो ने सहर्ष तन-मन-धन से सहयोग दिया है।

शिक्षा के क्षेत्र मे तो विद्यालय एव सभा ने सिर्फ जैन समाज की शिक्षण सस्थाओ मे ही नही वरन् कलकत्ते की सभी शिक्षण सस्थाओ मे अपनी साख जमाई है। स्कूल के विद्यार्थियो का अनुशासन सराहनीय रहा है। विद्यालय के माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक परीक्षाओ के शत्प्रतिशत् परिणाम ने एक कीर्तिमान स्थापित किया है। यह विद्यार्थियो की पढने मे लगन, रुचि एव परिश्रम के साथ अध्यापको की भी दिल से पढाने की तन्मयता एव आशीर्वाद का फल है।

सम्पूर्ण समाज की शुभकामनाओ और सहयोग से एव स्थानकवासी सदस्यो की सभा के प्रति समर्पण भावना से पदाधिकारियो को भी नि स्वार्थ भाव से सस्था को सेवा देने की शक्ति और प्रेरणा मिलती रही है और मिलते रहने की अपेक्षा है ताकि सभा द्वारा सचालित सभी शिक्षा और सेवा सस्थान दिन-प्रतिदिन प्रगति और उन्नयन के मार्ग पर बढते रहे।

इसी आशा और विश्वास के साथ – समारोह की सफलता की शुभ कामना करता हूँ।

अध्यक्ष– श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा

❑ Vinod Minni

अहम् का विसर्जन

श्री जैन विद्यालय, हावडा, १२ मई को नेताजी स्टेडियम मे
ना यशस्वी एक दशक कार्यक्रम आयोजित करने जा रहा है,
न्द का विषय है। हमारे लिये ऐसे आयोजन सिर्फ आनन्द के
ये ही नही होते है वरन् हमारे कार्यकर्ताओ के लिए प्रेरणा के
त होते है, उन्हे नये मगलमय सामाजिक कार्य करने का उत्साह
है। श्री जिनेश्वर देव से यही प्रार्थना है कि यह विद्यालय के जी
ा से कॉलेज तक का हो व हमारे कार्यकर्ता, सभा, विद्यालय
वार, अपने अहम् का विसर्जन कर एकजुट हो, एक परिवार की
ह कार्य करे। इस विद्यालय के निर्माण के लिये जिन सज्जनो का
यक्ष व परोक्ष मे हमे सहयोग मिला है हम उन्हे नमन करते है व
से उनके आनन्द व मगलमय जीवन की कामना करते है।

रिधकरण बोथरा

उपाध्यक्ष - श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा

A Glorious Decade

Shri R K Bothraji,

At first my due respect to you, Sir as you are one of the pillars of this institution It is a matter of great happiness to celebrate this achievement As far as I know this place of land was procured by Shri Sundarlalji Dugar for developing but the moment he came to know we were planning to set up a School he surrendered this deal in our favour & contributed generously for the development of the project

The role played by Shri Sardarmalji Kankaria in nursing & grooming this institution reveals his dedication He is the captain of our team supported by dedicated Shri Rikhabdasji Bhansali & yourself We cannot forget the active role played by late Bhawarlalji Karnawat

I pray God & with that in future the School would smoothly reach exciting heights with improvement in quality of education

I wish the function all success Definitely the credit of glorious decade also goes to the Principal, Teachers & Members of the staff who have played key role in the development of this institution

As you are the convener of this Glorious Decade function I wish you all success

Best regards,

Secretary
Shree S S Jain Sabha

❑ मोहनलाल भसाली

श्री जैन विद्यालय और आज का विद्यार्थी

वर्तमान काल मे विद्या का महत्व बहुत अधिक बढ गया है। विज्ञान के विकास के साथ-साथ इस सम्पूर्ण जगत का विकास हो रहा है। चारो ओर विज्ञान एव विद्या का ही बोलबाला है। विद्या एव विज्ञान के निर्माण से लेकर विकास तक, प्रचार से लेकर प्रसार तक 'आज के विद्यार्थी' का अभूतपूर्व योगदान रहा है।

आज मानव जाति के विकास के उपरात/पश्चात् भी किसी विद्यार्थी के लिए विद्या ग्रहण करना आसान नही अपितु अधिक जटिल एव दुर्गम हो गया है। आज के विद्यार्थी का जीवन कठिन हो गया है। उच्च शिक्षा प्राप्त कर नौकरी प्राप्त करना बहुत मुश्किल हो गया है। विद्यार्थियो की इन्ही कठिनाइयो को मद्देनजर रखते हुये आज से करीब ७० वर्ष पूर्व श्री जैन विद्यालय, कोलकाता जैसे अनुपम शिक्षा सस्थान की स्थापना हुई थी। यह सस्थान अपने आप मे अनूठा, सर्वोच्च एव सर्वश्रेष्ठ है।

श्री जैन विद्यालय, कोलकाता मे विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने के साथ-साथ अनुशासन का अमूल्य पाठ भी पढते है। इस विद्यालय के शिक्षक, प्राध्यापक आदि उच्च श्रेणी के है। विद्यार्थियो को पढाने मे निष्णात शिक्षक अनुशासन प्रिय है। इन्ही के लगन एव मेहनत की वजह से इस विद्यालय का वार्षिक परीक्षाफल पिछले दो दशक से शत-प्रतिशत रहा है जिसका मीठा फल इनसे विद्या-ग्रहण करने वाले विद्यार्थी पाते है।

सूचना प्रौद्योगिकी के निरन्तर बढते विकास को देखते हुये इस सस्थान मे कम्प्यूटर आदि जैसे नये उपकरणो की स्थापना भी मेरे अध्यक्षकाल मे कराई गई। इस वक्त यह सस्था नवीन उपकरणो एव यन्त्रो से लैस है।

शिक्षा के क्षेत्र मे "श्री जैन विद्यालय" ने क्राति ला दी है। इस विद्यालय से शिक्षा ग्रहण करने वाला विद्यार्थी इस विद्यालय के प्रति आभारी है।

शिक्षा के क्षेत्र मे "श्री जैन विद्यालय" के अद्वितीय योगदान के प्रति मै नतमस्तक हूँ। श्री जैन विद्यालय, हावडा भी अपनी एक दशक की शिक्षा यात्रा पूर्ण कर चुका है, यह गर्व एव गौरव की बात है। मै इस अवसर पर हार्दिक शुभकामना व्यक्त करता हूँ एव शिक्षा एक यशस्वी दशक की सफलता चाहता हूँ।

पूर्व अध्यक्ष
श्री जैन विद्यालय, कोलकाता

□ किशनलाल बोथरा

णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं

श्री जैन विद्यालय हावडा (अपने दोनो विभागो को साथ लिए) गरिमामय एक दशक पूर्ण कर रहा है। श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा (अभिभावक सस्था) के सस्थापकगणो का शुभाशीर्वाद फलीभूत रहा। पश्चिम बगाल के माध्यमिक और उच्च माध्यमिक परिक्षाओ मे यहॉ के विद्यार्थियो की शतप्रतिशत सफलताओ से इस विद्यालय को भी एक महत्वपूर्ण स्थान मिला। विद्यालय के शिक्षक और कार्यकर्ताओ की स्वार्थरहित एकनिष्ठ भावना और भी मजबूत सिद्ध हुई और विद्यालय हावडा मे समूचे समाज का एक कीर्तिस्तम्भ बना। मुझे भी अत्यन्त गर्व महसूस होता है कि ऐसे कार्यकर्ताओ और शिक्षको की प्रथम कार्यकारिणी समिति के अध्यक्ष के रूप मे कार्य करने का मौका मिला था।

भवन निर्माण के समय हावडा के मेरे कतिपय औद्योगिक मित्रो ने बहुत ही सहयोग दिया था। उनमे सर्वश्री श्यामसुन्दरजी केजडीवाल, श्री घनश्याम अग्रवाल, श्री शरद दूगड एव श्री शकरलालजी हाकिम अग्रणी थे। इस समय मै उन्हे भूल नही सकता। उन्हे मै उनके सहयोग एव इस सुकार्य के लिए हार्दिक बधाई एव साधुवाद देता हूँ।

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा के हर कार्यकर्ता ने विद्यालय के शिक्षक वर्ग को सदा आदरणीय एव पूजनीय स्थान दिया और सिद्ध किया कि शिक्षक का समाज मे सर्वोत्तम स्थान है। यही हमारा महामत्र भी कहता है णमो आयरियाण एव णमो उवज्झायाण। ऐसी भावनाओ से हर विद्यालय स्वार्थ रहित होकर समाज को सच्ची सेवाएँ देता है और देता रहेगा। मै सभा के हर कार्यकर्ता को बधाई एव साधुवाद देता हूँ। वे सदा इस कार्य मे सहयोगी रहे।

बढती हुई जनसख्या को देखते हुए आज विद्यालय कम है। जरुरत है और भी अच्छे विद्यालय एव कॉलेजो की जहॉ राजनीति और स्वार्थ की भावना से दूर विद्यार्थी सही शिक्षा प्राप्त कर सके। और यह जरुरत पूरी करने के लिए श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा सदा प्रयत्नशील रहेगी, ऐसा विश्वास है।

पूर्व अध्यक्ष
श्री जैन विद्यालय, हावडा

❑ श्रीचन्द नाहटा

जे आचरहि नर न घनेरे

एक बार की बात है कि एक इलाके मे एक सिद्ध पुरुष रहते थे। एक दिन उनके पास एक स्त्री अपने लडके को लेकर पहुँची। उसने सिद्ध-पुरुष से कहा, ''महाराज, मेरा यह बच्चा मिठाइयाँ बहुत खाता है, कुछ उपाय बताइये जिससे इस की यह आदत बदली जा सके।'' साधु ने कहा, ''पन्द्रह दिन बाद आओ।'' स्त्री अपने बच्चे को लेकर चली गई। वह पन्द्रह दिन बाद महात्मा के पास आई। महात्माजी ने कहा, ''प्रिय बच्चे मिठाई अधिक खाना अच्छा नही है। मै यह भी नही कहता कि मिठाई खाना एकदम बन्द कर दो बल्कि जितनी मिठाई खाते हो उसका चौथाई भाग खाओ।''

स्त्री ने कहा, ''अगर यही बात कहनी थी तो आप इसे उसी समय कह देते तो मुझे फिर आना न पडता।'' साधु ने कहा, ''मै स्वय मिठाई खाता था इसलिए मैंने पन्द्रह दिन मिठाई न खाकर देखा और मैंने अनुभव किया कि मिठाई न खाने से कुछ नुकसान नही है बल्कि शरीर मे कुछ स्फूर्ति अधिक है। इसलिए मैंने अब बच्चे को यह शिक्षा दी। शिक्षा देने से पहले उस पर आचरण आवश्यक है अन्यथा वह शिक्षा प्रभावी नही हो सकती। आज की शिक्षा अप्रभावी इसलिए है कि 'पर उपदेश कुशल वहुतेरे, जे आचरहि नर न घनेरे'। अत मैंने स्वय उस पर आचरण कर अपने को इस योग्य बनाया।''

कहानी समाप्त हुई। इसका तात्पर्य यह है कि बच्चो को वही शिक्षा दी जानी चाहिए जिसे शिक्षक-शिक्षिकाएँ स्वय आचरित कर सके। विशेष कर चरित्र-निर्माण के क्षेत्र मे तो यह अत्यन्त आवश्यक है। एक झूठ बोलने वाला, सत्य बोलने की शिक्षा नही दे सकता। एक पान पराग खानेवाला इसे न खाने की शिक्षा देने मे कठिनाई का अनुभव करेगा। इसी प्रकार और भी बुराइयाँ है जिनके लिए शिक्षक को भी आदर्श होना चाहिए। हमे प्रसन्नता है कि सौभाग्य से श्री जैन विद्यालय के अध्यापक अध्यापिकाएँ आदर्शवान है। इनमे बडो के प्रति सम्मान तथा छोटो के प्रति प्यार है।

किसी भी विद्यालय मे केवल पाठ्य पुस्तको के रटा देने से ही विद्यालय के कर्तव्य की इति श्री नही हो जाती, बल्कि अच्छी रुचि स्वच्छ आदते और उचित मूल्यो का भी ज्ञान कराना चाहिए। आज के बच्चे कल के भविष्य का निर्माण करते है कल यही देश के शासक भी होगे। ये ही राष्ट्र की सच्ची निधि है। इसलिए इनका सर्वतोमुखी विकास आवश्यक है।

मुझे सुनकर हर्ष होता है कि जैन विद्यालय लडके-लडकियो की सर्वतोमुखी विकास के लिए प्रयत्नशील है। विद्यालय अपना गौरवमय दशक मनाने जा रहा है और एक पत्रिका भी प्रकाशित कर रहा है। इस अवसर पर मै शिक्षक, शिक्षिकाओ तथा अन्य सम्बन्धित व्यक्तियो को हार्दिक बधाई देता हूँ तथा विद्यालय के गौरव को अक्षुण्ण रखने की कामना करता हूँ।

उपाध्यक्ष–
श्री जैन हॉस्पीटल एण्ड रिसर्च सेन्टर, हावडा

❑ अशोक बोथरा

शिक्षा का स्वरूप

शिक्षा का उद्देश्य केवल धन अर्जित करना नही है बल्कि इसका मूल उद्देश्य मनुष्यता का विकास करना है। विद्या विनय आदि गुणो से ओत-प्रोत होनी चाहिए। विनयहीन व्यक्ति कितना भी बडा विद्वान क्यो न हो वह समाज मे न अपना स्थान बना पाता है, न लोग उससे किसी प्रकार का लाभ पाते है। उसकी स्थिति पलाश के उस पुष्प के समान होती है जो देखने मे बहुत ही सुन्दर परन्तु गन्धहीन होता है। समाज मे ऐसे विद्वानो से स्वार्थ पनपता है और सामान्य वर्ग उनकी विद्वता के प्रकाश से वचित रह जाता है। ऐतिहासिक ग्रन्थो मे भी इसका उल्लेख मिलता है कि सभी गुणो के होते हुए भी विनय गुण के अभाव मे व्यक्ति को या तो अपमान या पराजय वरण करना पडा है। महाभारत युद्ध की पूरी तैयारी के वाद अर्जुन और दुर्योधन दोनो एक साथ श्रीकृष्ण के यहॉ सहायता मॉगने पहुँचे। दुर्योधन अभिमान के कारण उनके सिरहाने और अर्जुन श्रद्धावश पैर की तरफ बैठे। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण की सेना मॉगी और अर्जुन ने निहत्थे श्रीकृष्ण को। अर्जुन को श्रद्धा और विनय के कारण सर्वशक्तिमान का आशीर्वाद प्राप्त हुआ और वे जयी हुए। स्वाभिमान और विनय दो शब्द है इनका मेल यदि किसी व्यक्ति के चरित्र मे हो जाय, तो वह आदर्श पुरुष हो जाता है और ऐसे व्यक्तित्व विरले होते है। शिक्षा विएत्ति मे धैर्य, सयम, विनय आदि गुणो को देने मे समर्थ होनी चाहिए। चरित्र निर्माण को वढावा देने वाली शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है जो मानवीय मूल्यो की समझ लोगो मे पैदा कर सके। तकनीकी शिक्षा मनुष्य को इन गुणो के अभाव मे रोबोट के अलावा कुछ और नही बनाती। अत शिक्षाप्रेमियो, शिक्षण सस्थाओ और शिक्षको को तकनीकी शिक्षा के साथ-साथ मानवीय मूल्यो के स्तम्भ विनय, श्रद्धा, स्नेह, आत्मसम्मान आदि गुणो के विकास पर निरन्तर ध्यान देना चाहिए।

मै आशा रखता हूँ कि हमारे विद्यालयो के शिक्षक हमारे बच्चो मे इन सभी गुणो को विकसित करने मे समर्थ रहेगे जिससे हम दयावान, धैर्यवान, पुरुषार्थी लोगो को निरन्तर समाज सेवा हेतु अग्रसर पायेगे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए जैन धर्म मे सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र, सम्यक् ज्ञान पर बल दिया गया है। स्थानकवासी जैन सभा ने शिक्षा प्रचार और प्रसार हेतु तीन विद्यालयो की स्थापना की है और कॉलेज की स्थापना के लिए प्रयासरत है। यही कारण है कि सभा की कौस्तुम्भ जयती के प्रारभ के साथ श्री जैन विद्यालय, हावडा के गौरवमय दशक को भी मनाने का आयोजन हुआ है। ईश्वर हमे ऐसी शक्ति दे कि हम निरतर सेवा की ओर अग्रसर हो।

सहमत्री
श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा

❒ पारसमल भूरट

हम होंगे कामयाब एक दिन

सन् १९२८ मे सस्थापित श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा का इस वर्ष कौस्तुभ जयन्ती वर्ष प्रारम्भ होने जा रहा है, यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इस सस्था द्वारा सचालित विविध गतिविधियो मे से एक श्री जैन विद्यालय, हावडा है जो कोलकाता एव हावडा के प्रमुख विद्यालयो मे अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। यह हर्ष का विषय है कि यह विद्यालय शिक्षा यात्रा का एक दशक पूर्ण कर रहा है। इस अल्पावधि मे ही इसने शिक्षा, अनुशासन मे एक सुनाम अर्जित किया है। प० ब० माध्यमिक शिक्षा पर्षद् एव प० ब० उच्च माध्यमिक शिक्षा ससद द्वारा मान्यता प्राप्त इस विद्यालय मे सम्प्रति ४२०० छात्र-छात्राएँ शिक्षार्जन करते हुए अपने जीवन-पथ पर अग्रसर हो रहे है। विद्यालय का परिणाम प्रारम्भ से ही प्रतिवर्ष शत-प्रतिशत होता आ रहा है। पाठ्येतर कार्यक्रमो मे भी इसका विशिष्ट स्थान है। आधुनिक तकनीक मे कही हम पीछे न रह जाएँ इसलिए विद्यालय के समस्त छात्र-छात्राओ के लिए कम्प्यूटर शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध है। मल्टीमीडिया द्वारा भी बच्चो को शिक्षा दी जाती है। पठन-पाठन तथा सुन्दर प्रशासन के कारण ही आज अनेक स्थानीय एव गणमान्य व्यक्तियो द्वारा उच्च माध्यमिक कक्षाओ म विज्ञान की कक्षाएँ प्रारम्भ करने का अनुरोध हो रहा है किन्तु स्थानाभाव के कारण यह सम्भव नही हो पा रहा है। प्रवेश के समय इतना दवाव रहता है कि सैकडो अभिभावको को निराश लौटना पडता है। कभी-कभी प्रवेश न पाने के कारण कुछ लोग नाराज भी हो जाते है किन्तु विद्यालय प्रबधन की लाचारी है। हमलोग स्थान ढूँढ रहे है। एक कॉलेज भी स्थापित करने का विचार चल रहा है। समस्या है उपयुक्त स्थान का न मिल पाना। लेकिन 'जहॉ चाह वहॉ राह'। 'हम होगे कामयाब एक दिन'। सभा के कार्यकर्ताओ एव सदस्यो मे उत्साह है, इच्छाशक्ति है तथा सामर्थ्य भी है और उत्साही शिक्षाविधो का पथ-प्रदर्शन एव आशीर्वाद भी प्राप्त है।

श्री जैन विद्यालय, हावडा के इस गौरवशाली दशक के अवसर पर मै अध्यापको, प्रधानो तथा अन्य कार्यकर्ताओ को बधाई देता हूँ और कामना करता हूँ कि इसी प्रकार विद्यालय भविष्य मे और भी उन्नति के शिखर की ओर अग्रसर होगा।

कोषाध्यक्ष
श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा, कोलकाता

❑ भँवरलाल दस्सानी

उल्लेखनीय प्रगति

आज तकनीकी शिक्षा के कारण विश्व अत्यन्त समीप आ गया है। हम यहाँ बैठे-बैठे यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया मे बैठे हुए व्यक्ति से बात कर सकते है। इन्टरनेट द्वारा हम जिससे बात करते है उसका चित्र भी देख सकते है। इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान की प्रगति के कारण आज भारतवर्ष काफी आगे हो गया है। यहाँ के बच्चे विश्व के कोने-कोने मे अपनी प्रखर बुद्धि का परिचय दे रहे है।

हमारे देश की आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण लोग समझते थे कि हम विज्ञान की दौड मे पीछे रह जाएँगे लेकिन हमारे बच्चो ने कमाल करके दिखाया। इस प्रकार हमारा मस्तिष्क पक्ष तो बढता गया मगर हृदय पक्ष सूना होता जा रहा है। व्यक्तिगत स्वार्थपरता बढती जा रही है। इसी के साथ मनुष्य का मन छोटा होता जा रहा है। वह परोपकार एव दीन दु खियो की सेवा से मुख मोडता जा रहा है, यह समाज के लिये एक अच्छी बात नही है।

लेकिन आज भी दुनिया अच्छे विचार वाले आदमियो से खाली नही हो गई है। इन्ही उद्देश्यो की पूर्ति के लिए श्री स्थानकवासी जैन समाज के तत्कालीन नवयुवको ने इस सभा की स्थापना सन् १९२८ ई० मे की। इस सभा की कौस्तुभ जयन्ती भी इसी वर्ष मनाई जा रही है। इस जयन्ती के साथ ही सभा श्री जैन विद्यालय, हावडा का भी गौरवमय दशक मनाने जा रही है। योग्य शिक्षको तथा प्रधानो के दक्ष पथ-प्रदर्शन से अत्यन्त अल्प समय मे इस विद्यालय की ख्याति इतनी अधिक हुई कि हम अब सभी कक्षओ मे आये हुए प्रवेशार्थियो को दाखिल नही कर पा रहे है। कक्षा १० तथा कक्षा १२वी के की छात्र उच्चतम अक पाने के कारण छात्रवृत्तियाँ भी पा रहे है। बच्चो का मानसिक स्तर दिन ब दिन बढता जा रहा है। अत उनकी चाह भी ऊँचे से ऊँचा गौरव पा लेने की है। उनकी इच्छा फलीभूत होगी, ऐसा मेरा विश्वास है क्योंकि जहाँ चाह है वही राह भी है। विद्यालय के गौरवमय दशक और सभा की कौस्तुम्भ जयन्ती पर होने वाले आयोजनो की सफलता की मै हार्दिक कामना करता हूँ।

पूर्व कोषाध्यक्ष
श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा

SRI SARDARMAL KANKARIA

Founder Member and Hony Secretary of the School

SHREE JAIN VIDYALAYA FOR BOYS, HOWRAH
Managing Committee

Sundarlal Dugar
President

Surendra Kumar Banthia
Vice-President

Sardarmal Kankaria
Secretary

Dr Gopalji Dubey
Rector

Ram Adhin Singh
Vice Principal

SHREE JAIN VIDYALAYA FOR GIRLS,HOWRAH
Managing Committee

Pannalal Kochar
President

Mahendra Kumar Karnawat
Vice President

Sardarmal Kankaria
Secretary

Mrs Olga Ghosh
Principal

Managing Committee - Shree Jain Vidyalaya for Boys , Howrah

Managing Committee - Shree Jain Vidyalaya for Girls , Howrah

Celebration committee and other members of the teaching staff

Principal and other Administrative staff and Non teaching staff of Shree Jain Vidyalaya, Howrah

Sri R D Bhansali being garlanded by Ram Adhin Singh
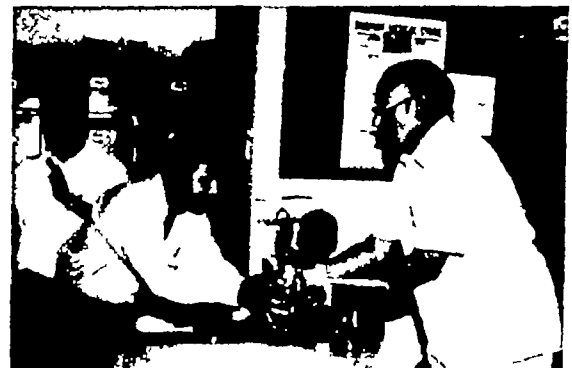
Sri S M Kankana receiving the momento from Arindam Bose

SHREE JAIN VIDYALAYA, HOWRAH

Sri Ridhkaran Bothra, Sri Surajmal Bachhawat and Sri & Smt Sardarmal Kankaria performing the Bhumi Pujan of newly constructed Shree Jain Vidyalaya, Howrah
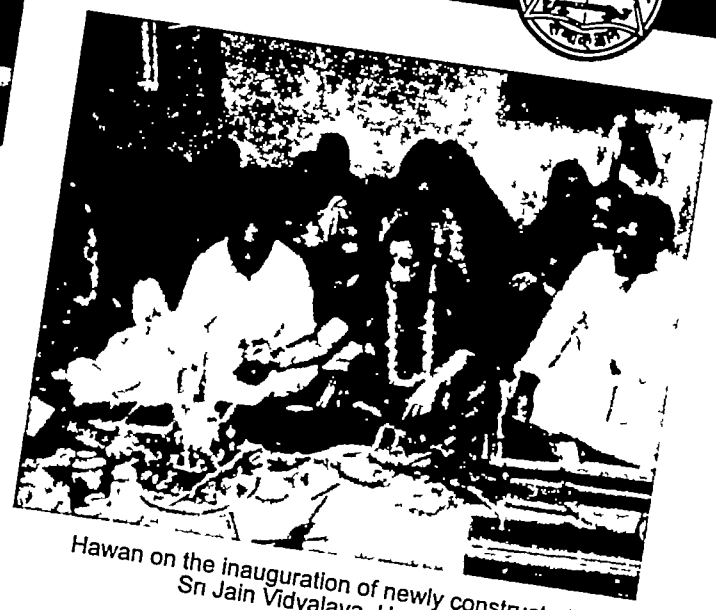
Hawan on the inauguration of newly constructed Sri Jain Vidyalaya Howrah

Sahitya Manishi Sri Kanhaiyalal Sethia Sri Ratan Choudhury, Sri Rikhab Chand Jain and Sri Jagdish Roy Jain sitting on the stage in the inauguration ceremony
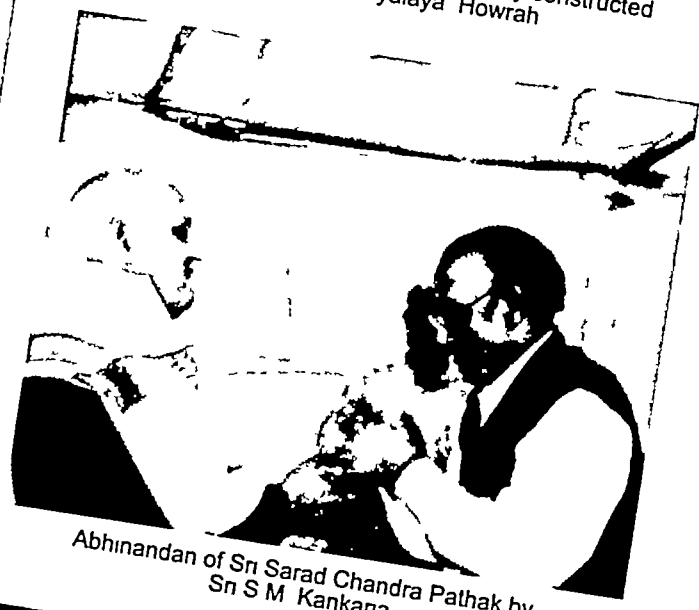
Abhinandan of Sri Sarad Chandra Pathak by Sri S M Kankaria
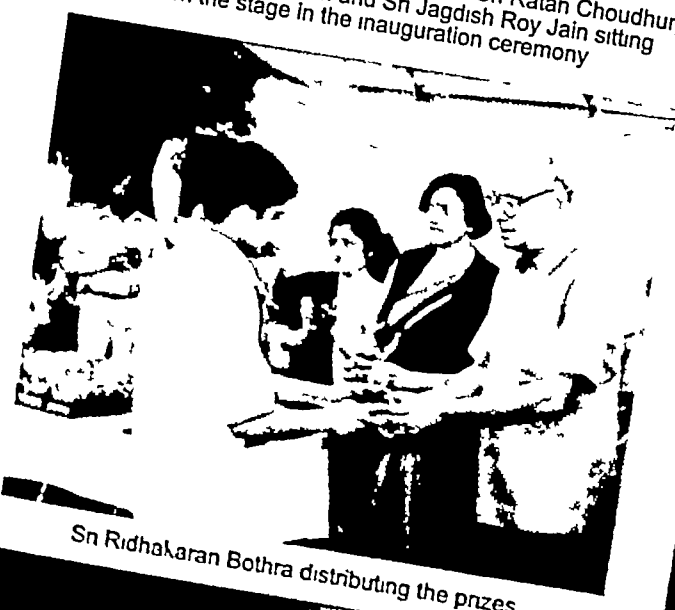
Sri Ridhakaran Bothra distributing the prizes

Sri Anand Chopra Sri Sardarmal Kankaria & Smt. Olga Ghosh giving the shield to the winning student

Annual Function 2002

Sri Rajendra Banthia awarding the medal

March Past by guides

Dr Basumati Daga giving away the prizes

Sri P L Kochar giving away the prizes
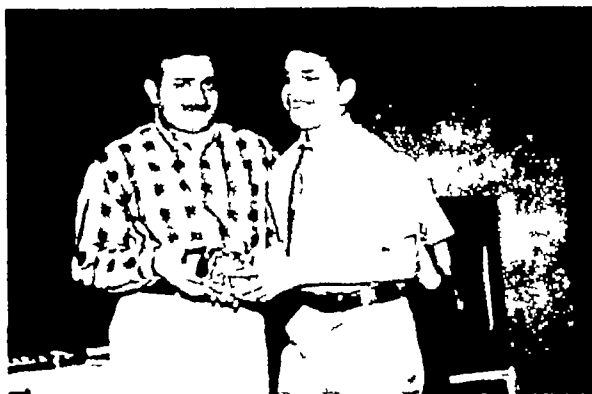
Sri Mahendra Karanawat, Vice President giving away the prizes

A group photo on the ocassion of the Republic Day

26th January'2002, Republic Day & Lokarapan Ceremony of Deepnarayan Choudhury Block

Sri Thanmal Bothra giving away the award to Mrs Nilima Doshi, teacher(Girls Section)

A Reception after the programme at the Vidyalaya on 26 01 2002

Smt. Panchi Debi Choudhury with Mrs Kankaria, Smt Sushila Kochar and Momento , 26th Jan 2002

Sri Vinod Bald renowned businessman and Sri Bajrang Jain on the dias during the inauguration of Computer Centre

Sri Pradip Kundalia Sri Ridhkaran Bothra and Sri Sardarmal Kankaria discussing during the construction of the school

Smt. Tara Devı Dugar addressıng on the ocassion of Shraman Bhagwan Mahabır Jayantı

Srı Prabodh Chandra Sınha, Parlıamentry affairs minister dıstributing free ratıon at Shree Jaın Vidyalaya Howrah

Chıef Guest addressıng in the Annual Sports and Prıze Dıstrıbutıon Ceremony

Smt Sarla Maheswarı, M P Srı Arun Maheswarı, Srı S M Kankaria and Srı B L Karnawat on the ocassıon of Independence Day

Srı dulıchand Chopts being honoured by Srı R D Bhansalı

Smt. Phul Kunwar Kankarıa greeting Smt Sarla Maheswarı, M P

Sri Shyam Sunder Acharya
Editor, Jansatta speaking to the students

Sri Biman Mukherjee D I of Schools, Howrah
Sri Rikhabdas Bhansali Sri Akshay Chandra Sharma
and Sri Vishnukant Shastri in the programme
organised on the ocassion of Hindi Divas

Teachers and students on Hindi Divas

A Scene of Prabhat Pheri on the ocassion of
Shraman Bhagwan Mahabir Jayanti
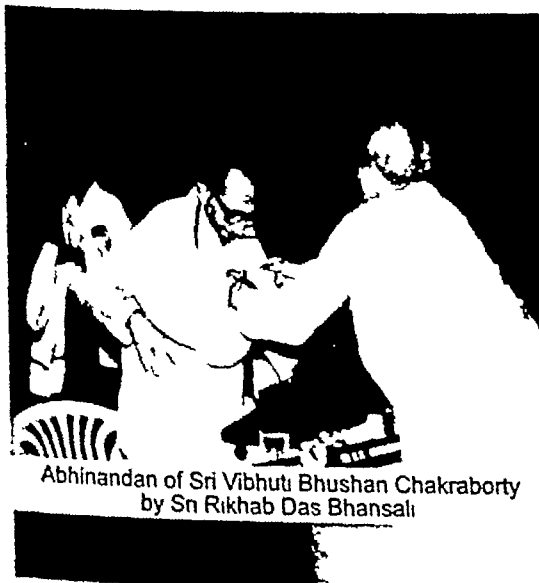
Abhinandan of Sri Vibhuti Bhushan Chakraborty
by Sri Rikhab Das Bhansali

Vidyalaya teachers Ms Kusum Khan Sri Anndam Bose
Smt. Nandita Roy and Sri Lakshmi Shankar Mishra presenting
cheque to the Chief Minister s Relief Fund
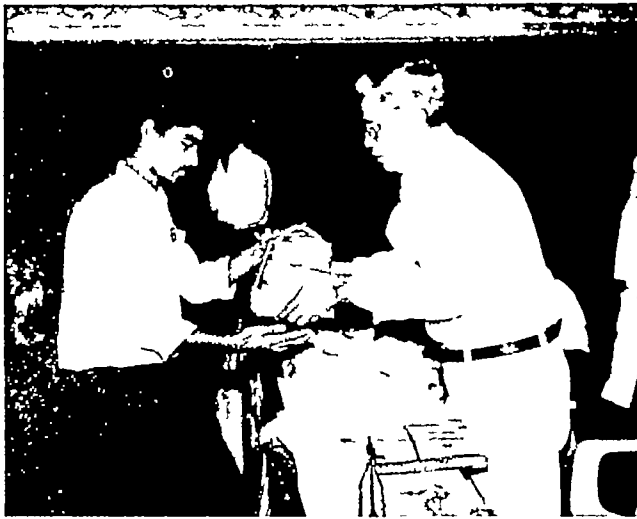
Sri J R Saha, I A S , Education Secretary,
West Bengal distributing the prizes
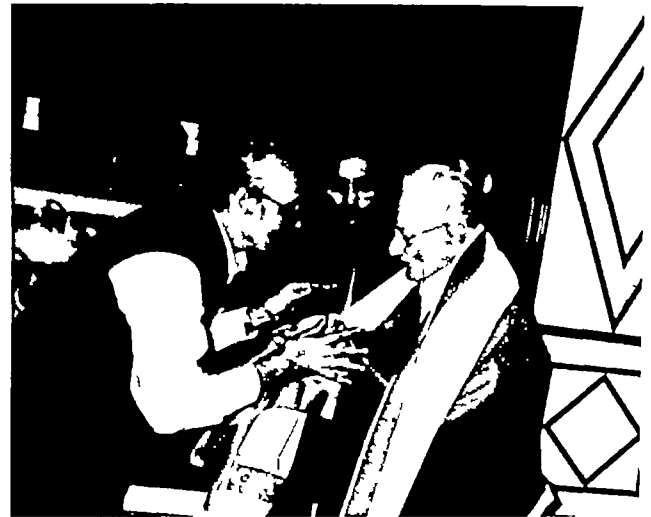
Abhinandan of Sri Bhikham Chand Bhansali
on the ocassion of Dharmik Shiksha Sivir
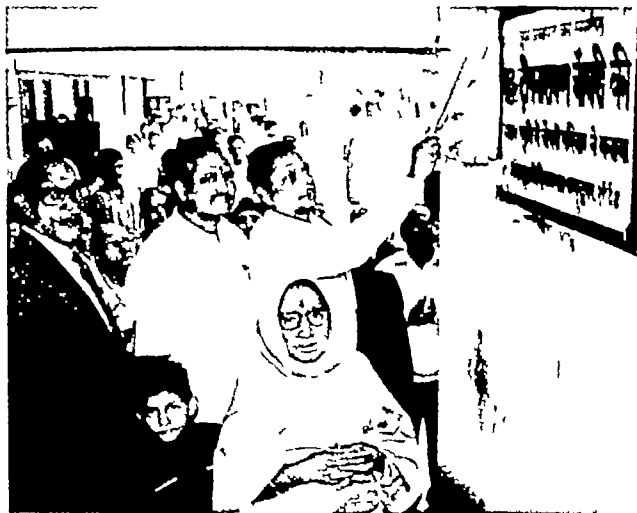
Inauguration of Deep Narayan Block by
Smt Panchi Devi Choudhury and Sri Ratan Choudhury

Sri B C Bhansali, being greeted by
Sri B L Baid, Sri Rajmal Choradia,
Sri Champalal Daga, with him
Sri Kamal Bhansali's Son

Drill by different group of students in the Annual Sports

Sri B C Bhansali donated 1500 hand written books to Agam
Ahimsa Samta Sodh Sansthan, being honoured
by Sri Rajmal Choradia

Students of Shree Jain Vidyalaya, Howrah with Guests

Gymnasium by students

A Karate Show by Jain Vidyalaya Howrah Students

A Karate Show by Jain Vidyalaya, Howrah Students
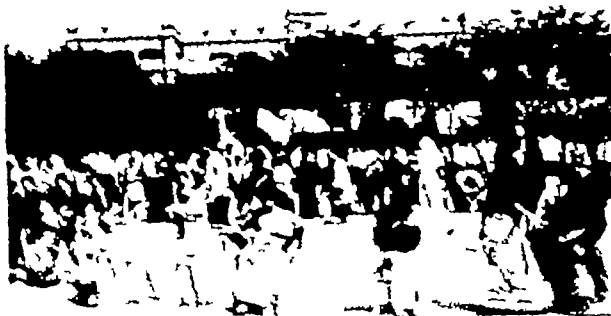
Annual Sports - Musical Chair

A Karate Show by Jain Vidyalaya Howrah Girl Students

Scouts of Shree Jain Vidyalaya, Howrah

Principal and others with Volleyball Team of
Shree Jain Vidyalay Kolkata
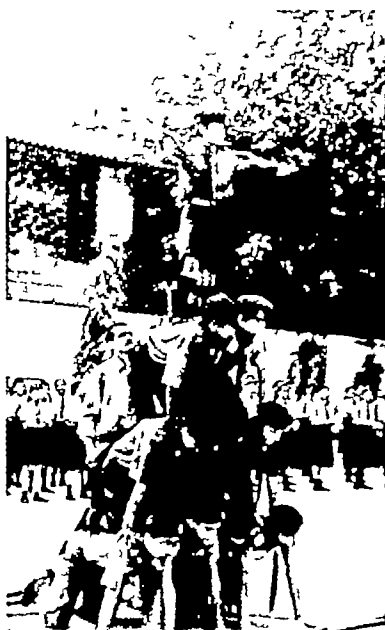
Pyramid made by scouts of Shree Jain Vidyalaya Howrah

Abhinandan of Sri Anand Chopra by Secretary,
Sri S M Kankaria on the ocassion of Annual Sports

Shri I Goswami and Sri Abhay Chopra getting
introduction of volleyball team

Sri S M Kankaria and Sri B L Karnawat
on the occasion of Independence day

REPUBLIC DAY CELEBRATIONS 2002
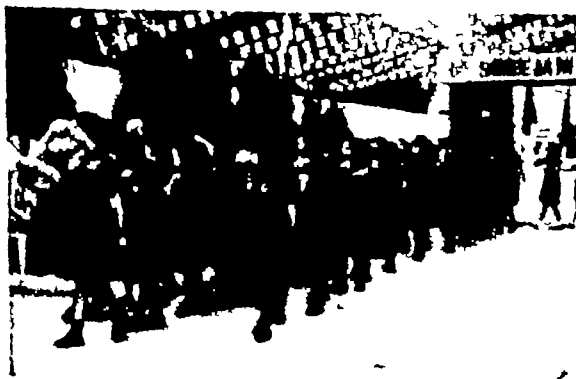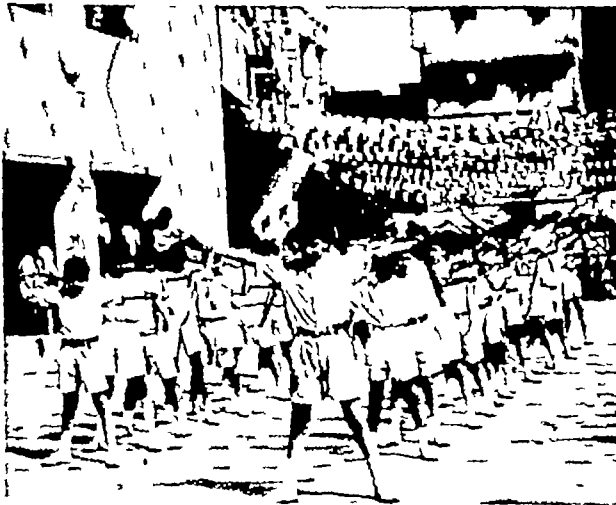
SHREE JAIN VIDYALAYA FOR BOYS
(Secondary)

Ms Sipra Mitra

Ms Aseema Sen

Dr Renu Gupta

Ms Ratna Mitra

Ms Ansuya Sikdar

Sri Vinay Kr Tiwari

Dr Ajay Ray

Sri Sanjay Singh

Sri Arun Kr Tiwari
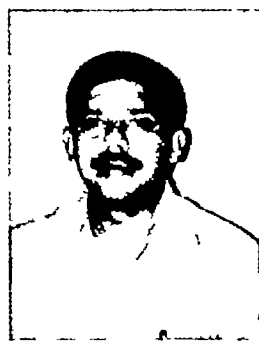
Sri Arindam Bose

Ms Kumkum Bhargava
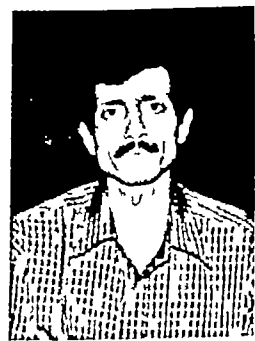
Sri Shailendra Kr Mishra

Ms Indrani Sen

Ms Swarita Singh

Sri Pranvesh Kr Mishra
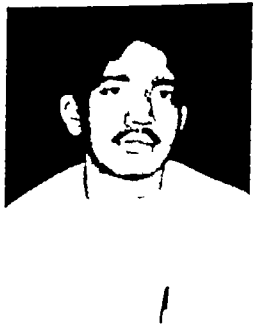
Sri Harish Kumar Pathak

Sri Partha Bandopadhyay

Dr Jagat Narayan Singh

Sri Pramod Kr Pandey

Ms Manasi Mitra

Ms Aruna Sharma

Sri Kashee Prasad Mishra

Ms Anamika Tiwari

Sri Rampukar Sharma

Ms Anindita Chakraborty

Sri Satish Kumar Singh

Sri Dibendu Bhattacharya

Ms Chanda Singh
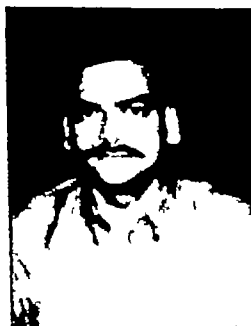
Sri Amit Pramanik

Ms Deepali Chakraborty

Ms Suparana Goswami

SHREE JAIN VIDYALAYA FOR GIRLS
(Secondary)

Ms Kusum Khan

Ms Neelima Doshi

Ms Kanta Sharma

Ms Anvita Mishra

Ms Sutapa Roychowdhury

Ms Mitali Chongdar

Ms Krishna Mohta

Ms Geetanjali Chaturvedi

Ms Chandana Bhattacharya

Ms Sharmistha Rana

Ms Ipsita Sen

Ms Neelanjana Banerjee

Dr Mira Choudhury

Ms Sonika Mallick (Shaw)

Ms Sanyukta Dasgupta

SHREE JAIN VIDYALAYA FOR GIRLS
(Secondary)

Ms Jayanti Singh

Ms Paramita Mazumdar

Ms Sraboni Chakraborty

Ms Papri Bose

SHREE JAIN VIDYALAYA FOR BOYS (Primary)

Ms Deepa Mukherjee

Ms Abhinanda Samanto
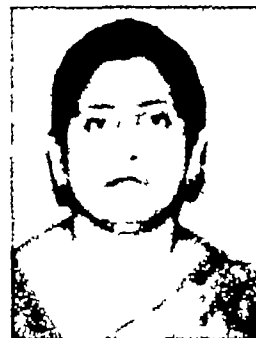
Ms Babita Jain

Sri Nilratan Karfa
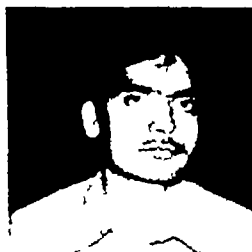
Sri Yagyia Narayan Mishra
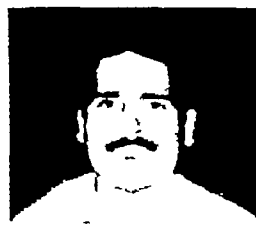
Sri Kashee Nath Pandey

Sri Anirban Neogy
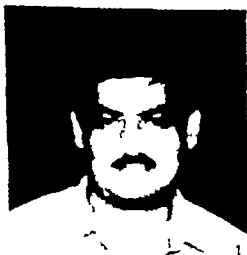
Sri Gopal Krishna

Sri Santosh Tiwari

Ms Shakuntala Sharma

Ms Ela Vyas

SHREE JAIN VIDYALAYA FOR GIRLS
(Primary)

Ms Mansa Singh

Ms Sunbeam Manual

Ms Shikha Mitra

Ms Sangita Mandhana

Ms Shubhalaxmi Banerjee

Ms Gayatri Mishra

Ms Durba Ganguly

Ms Shanaz Bakht

Ms Nandita Roychowdhury

Ms Romi Chatterjee

Ms Shampa Ghosh

Ms Sangita Gupta

Ms Sharmila Bose

Ms Ratna Srivastava

Ms Bina Gupta

Ms Soma Bose

Class - I A

Class - I B
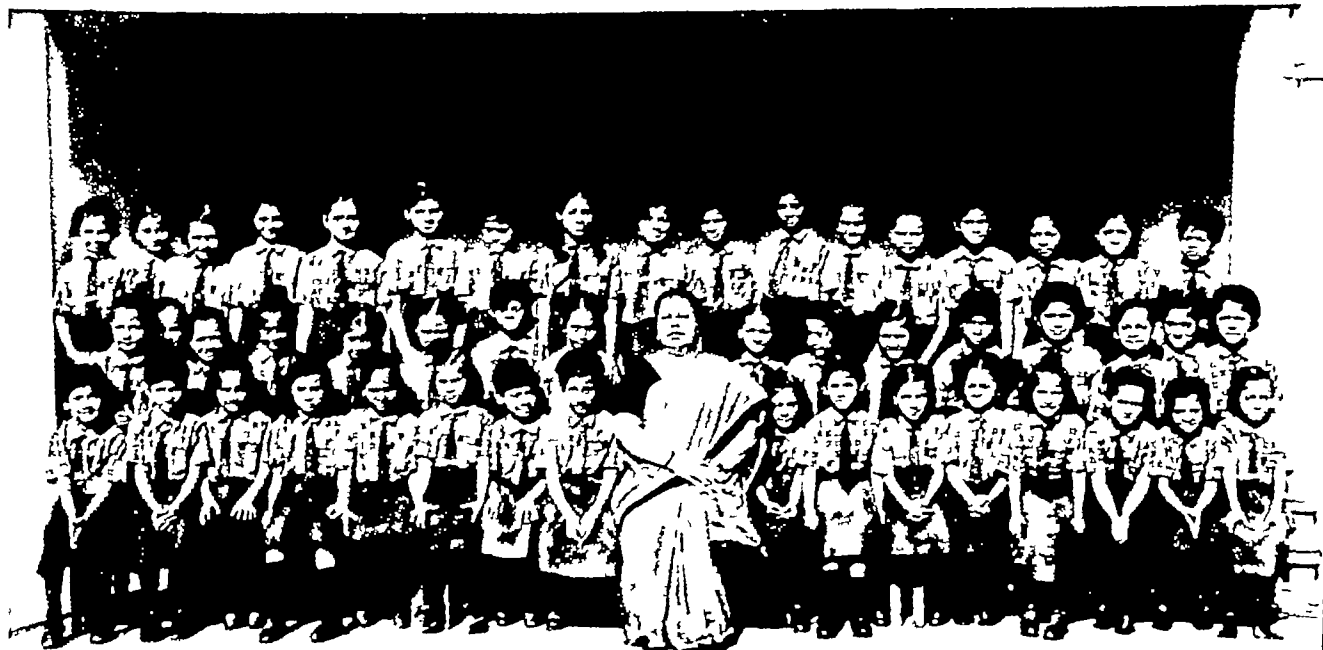
Class - II A
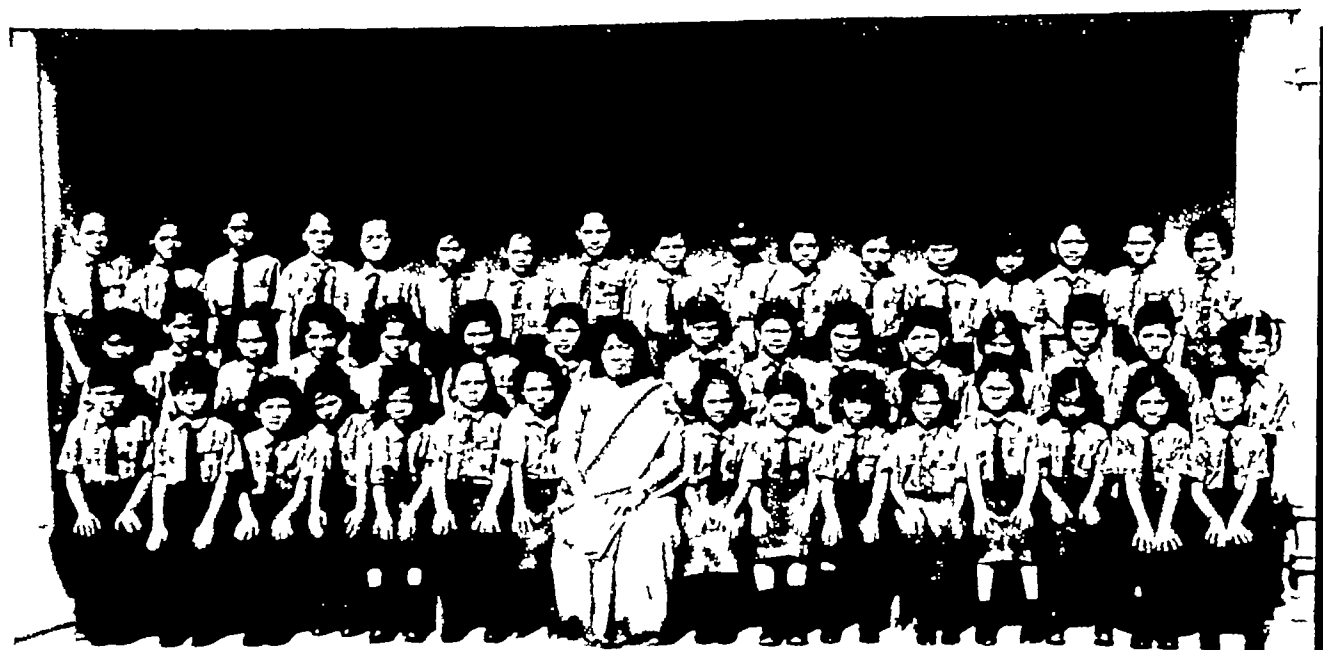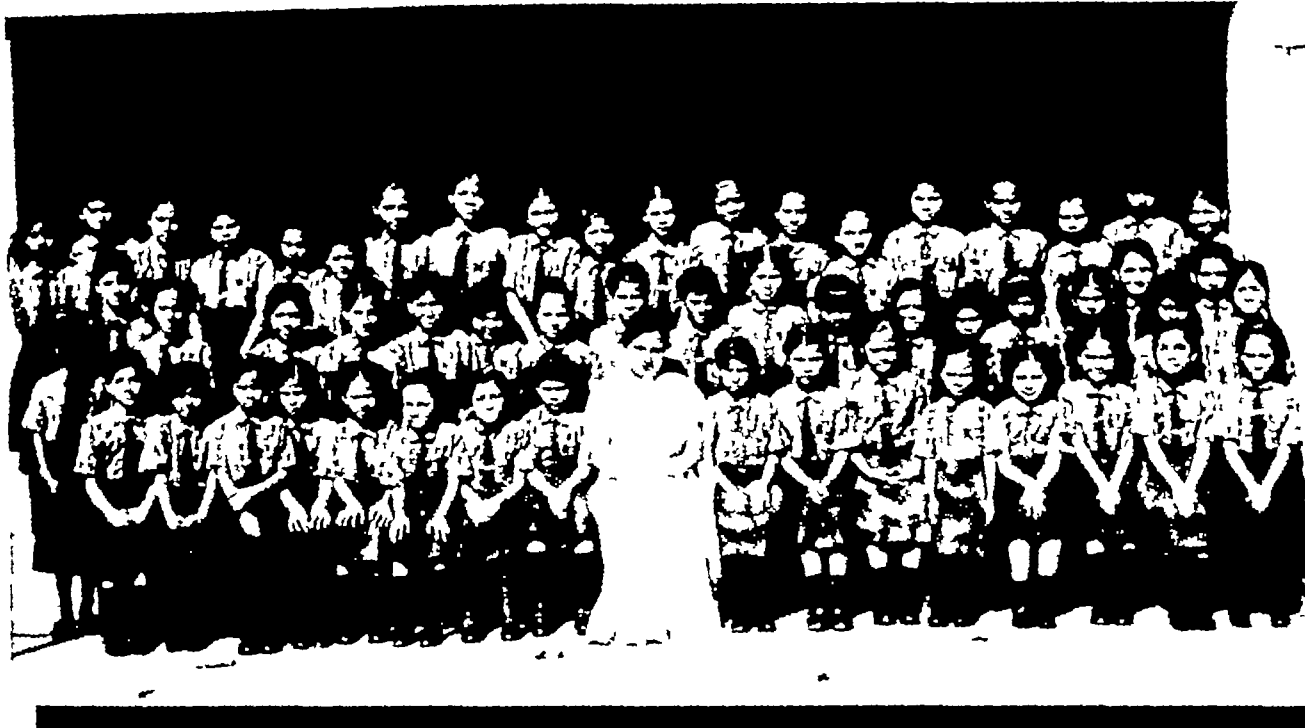
Class - II B
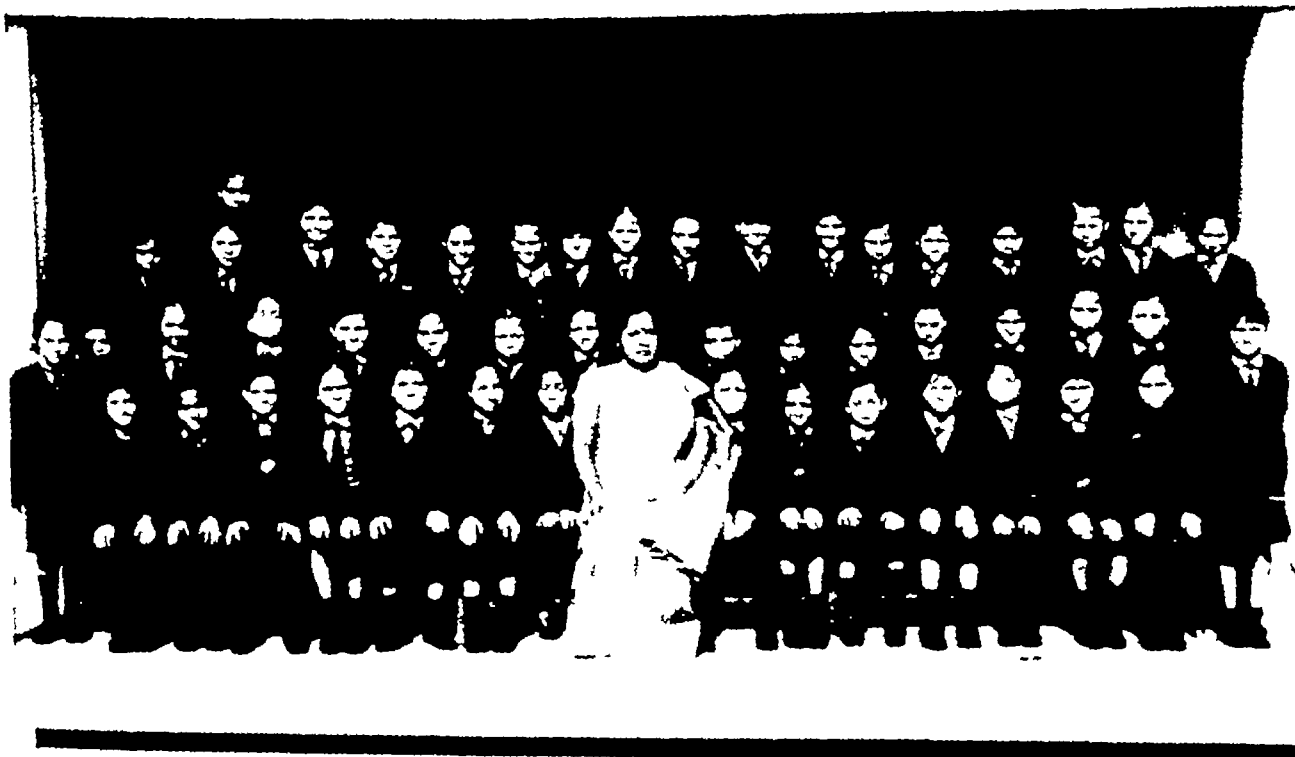
Class - III A
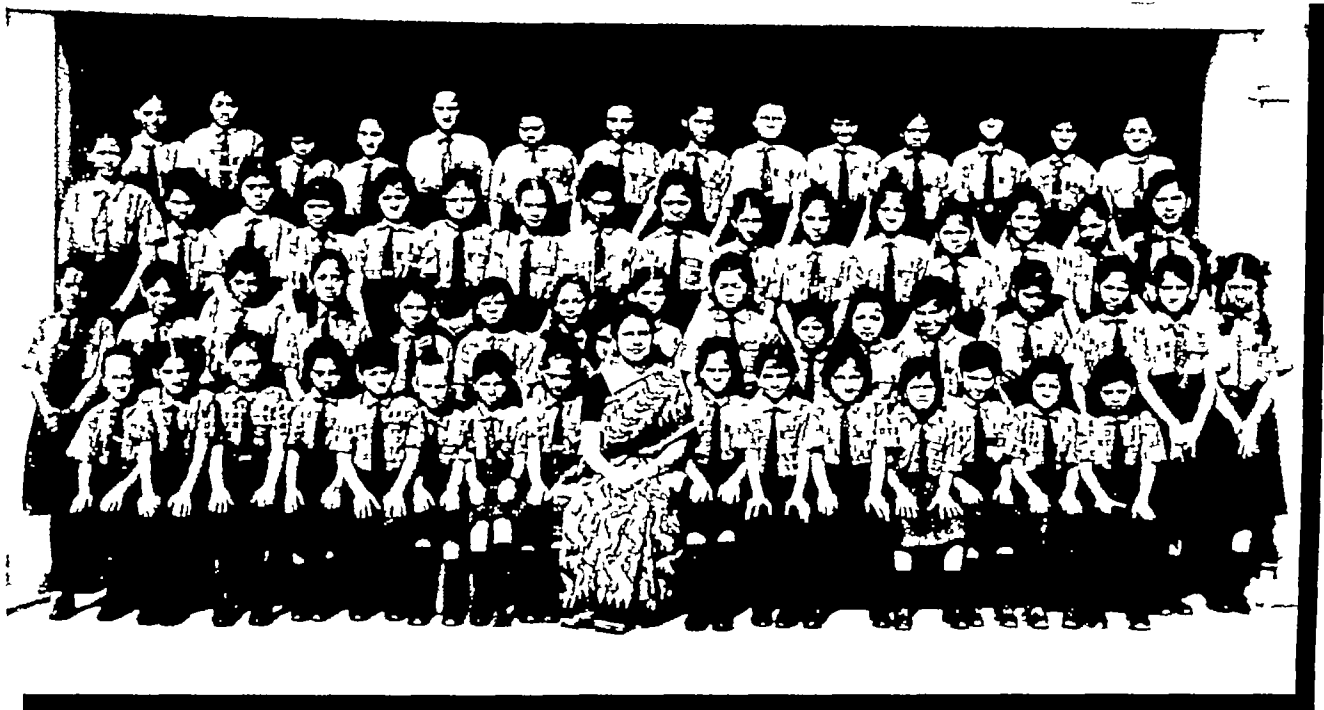
Class - III B
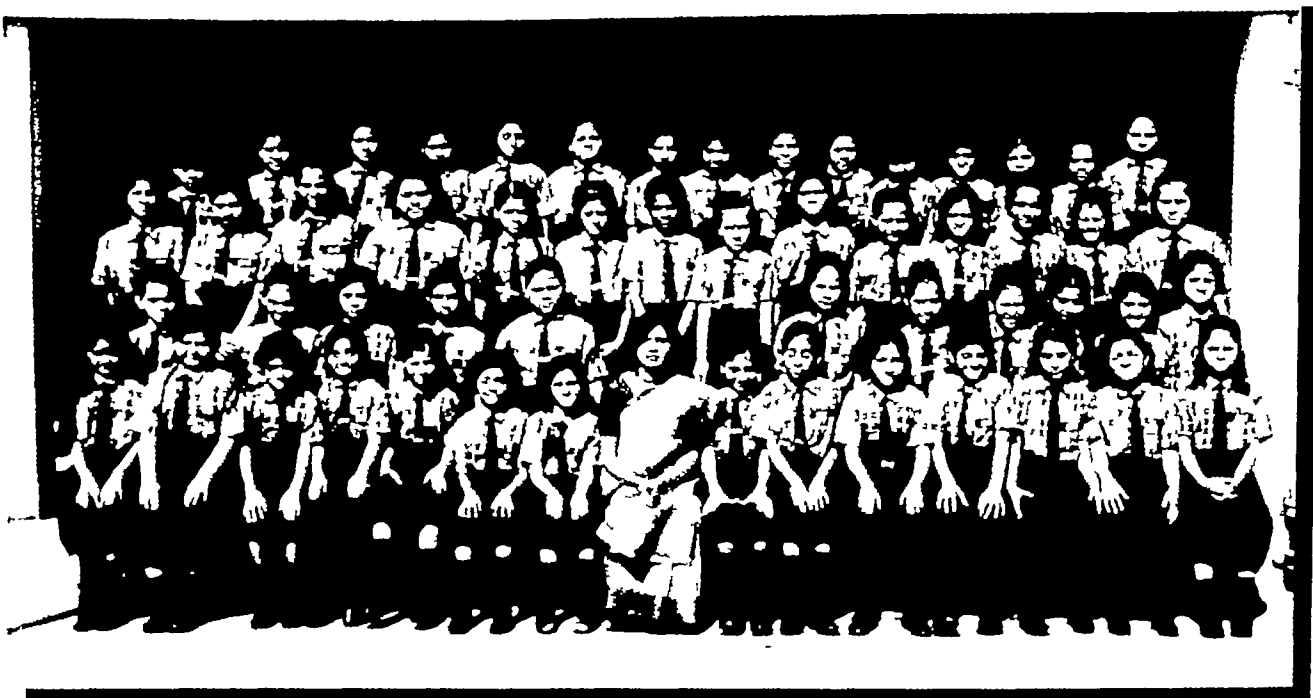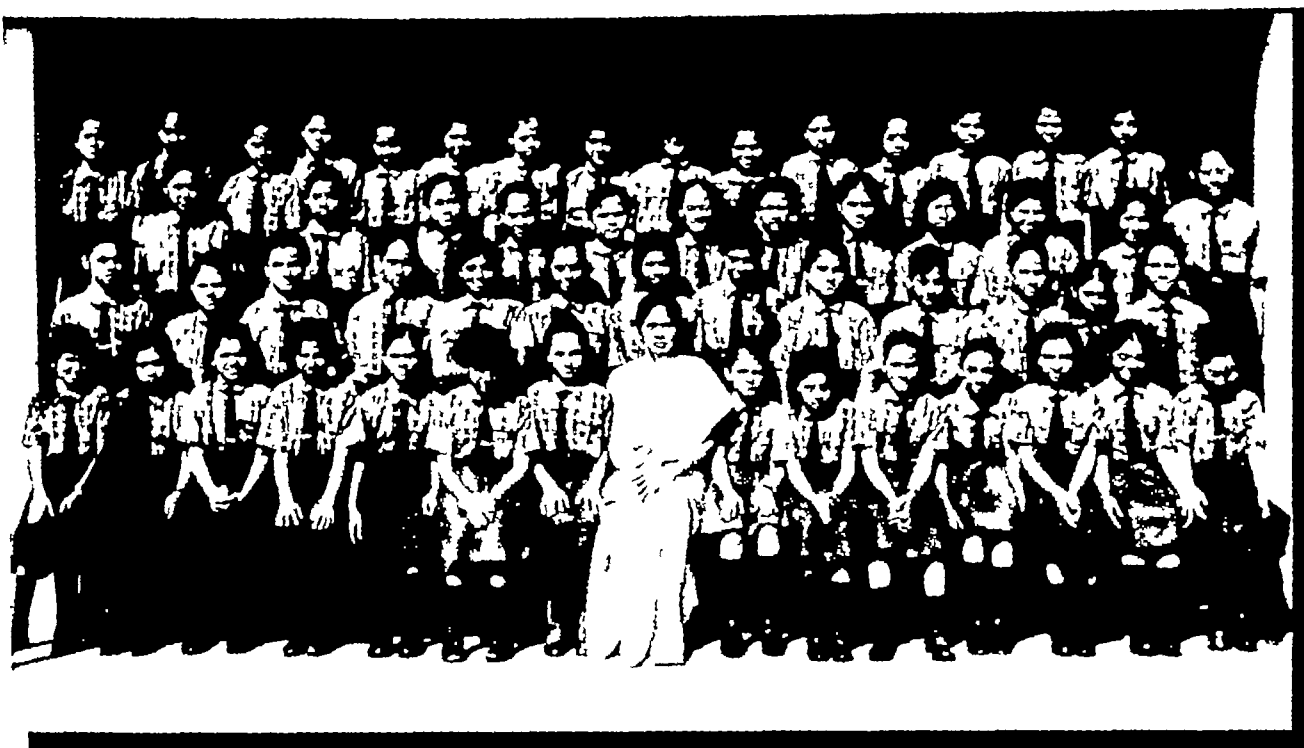
Class - IV A
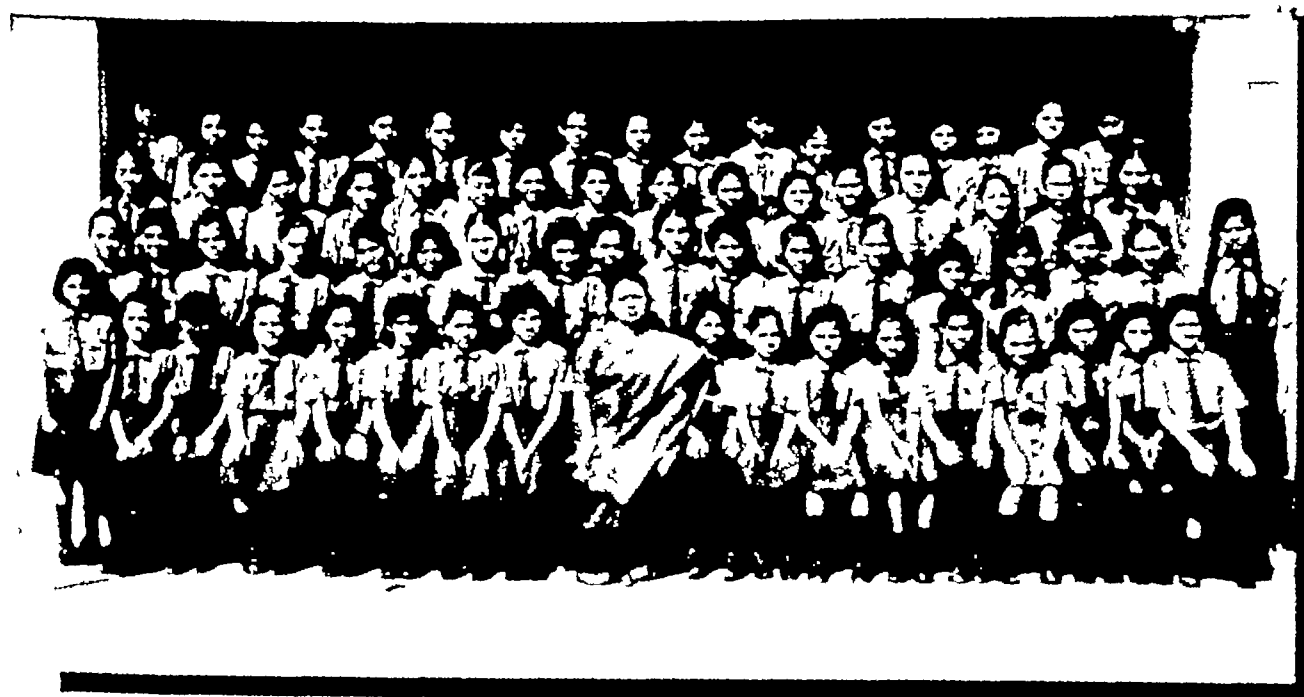
Class - IV B
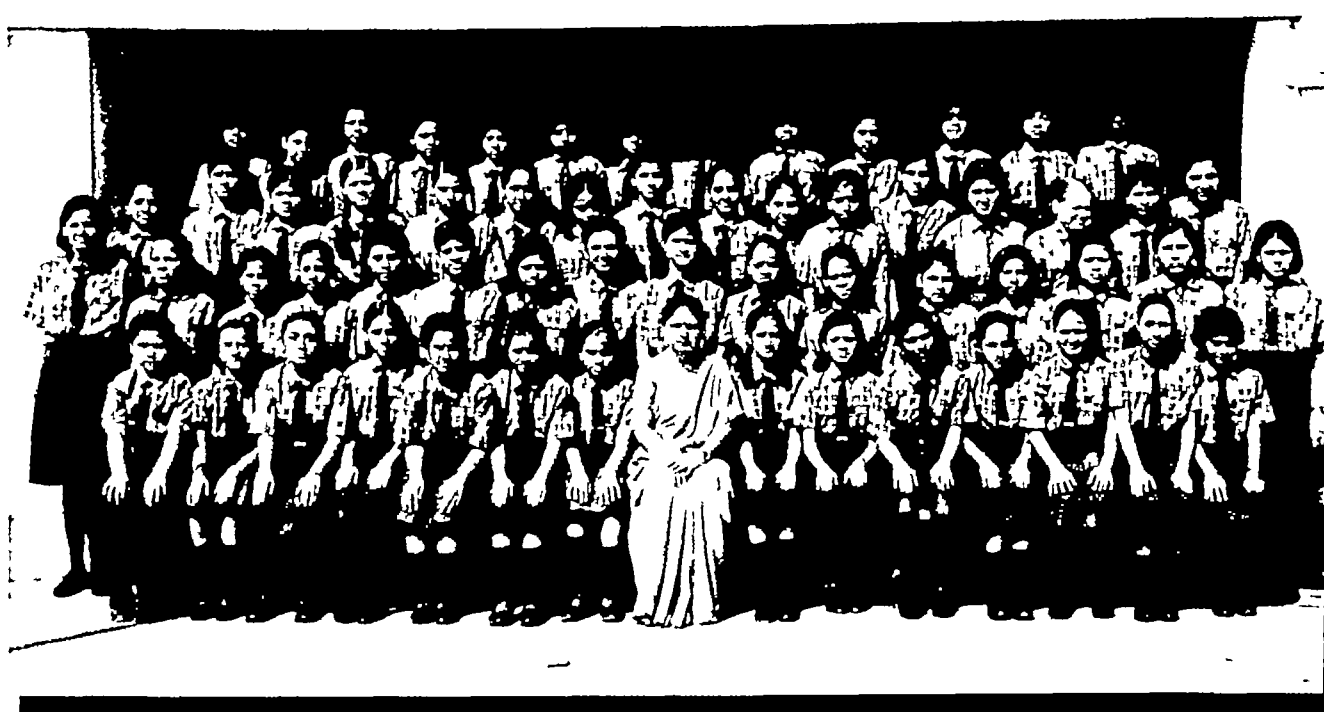
Class - V A

Class - V B

Class - VI A
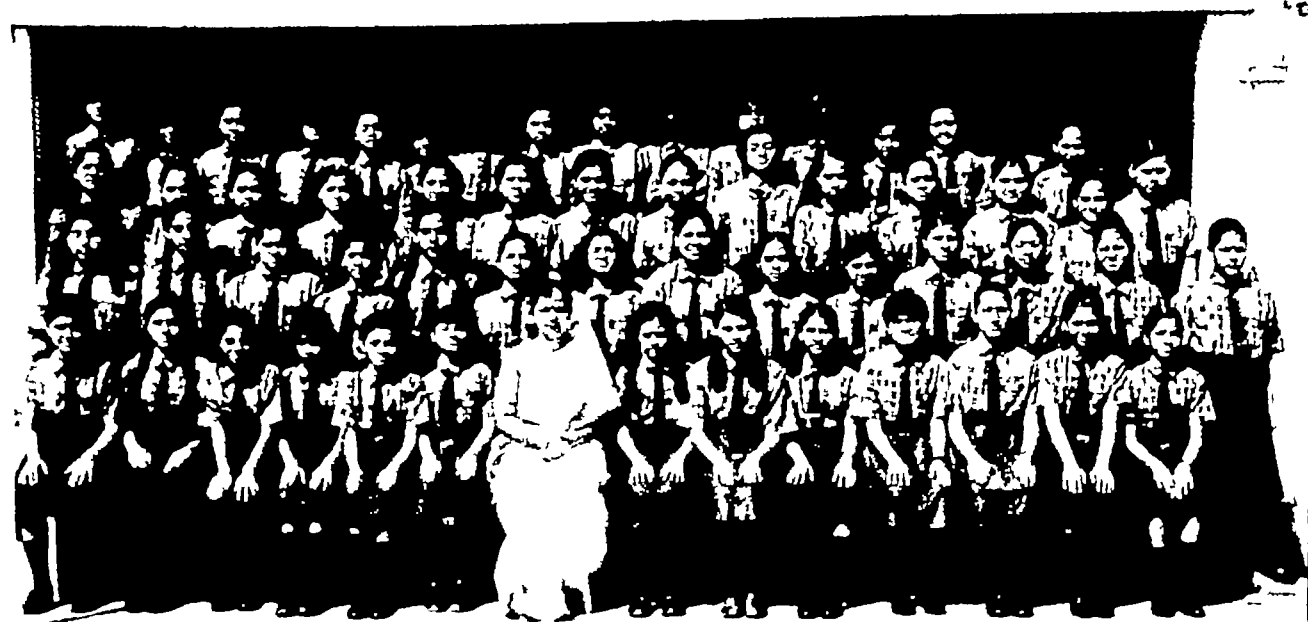
Class - VI B

Class - VI C

Class - VII A

Class - VII B
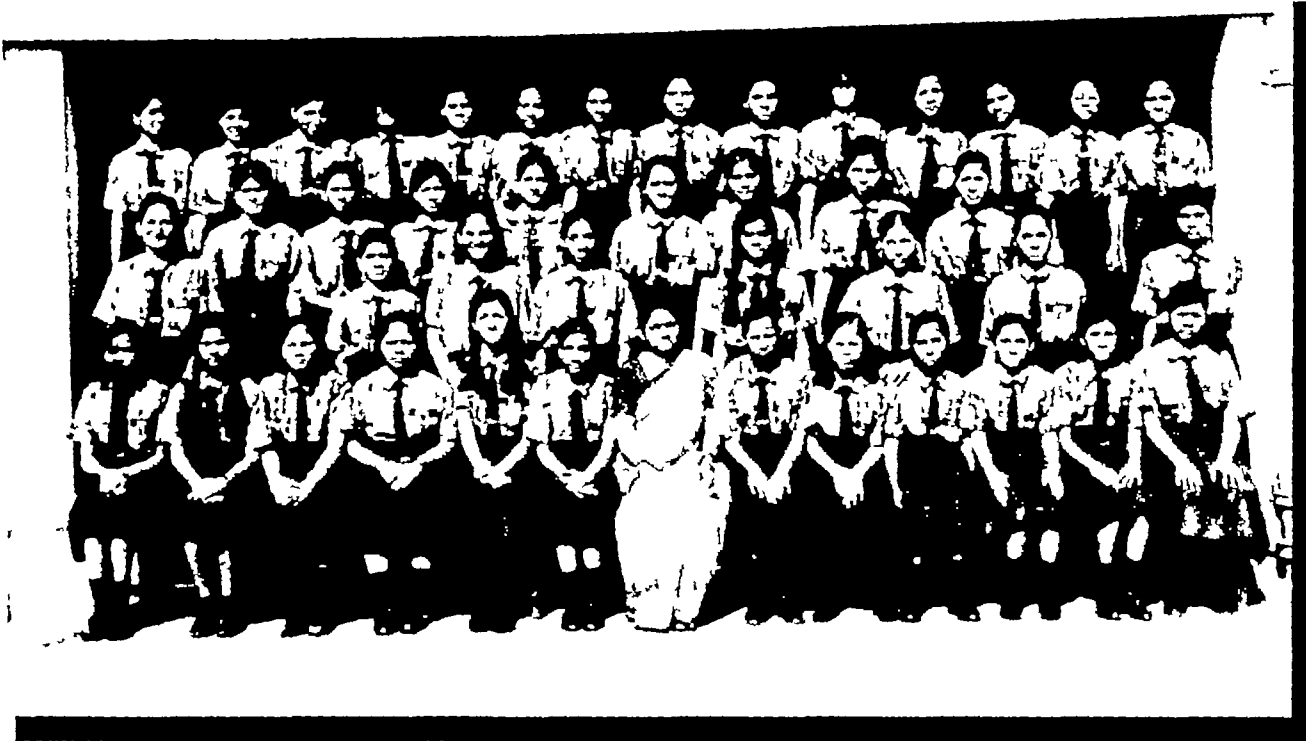
Class - VII C
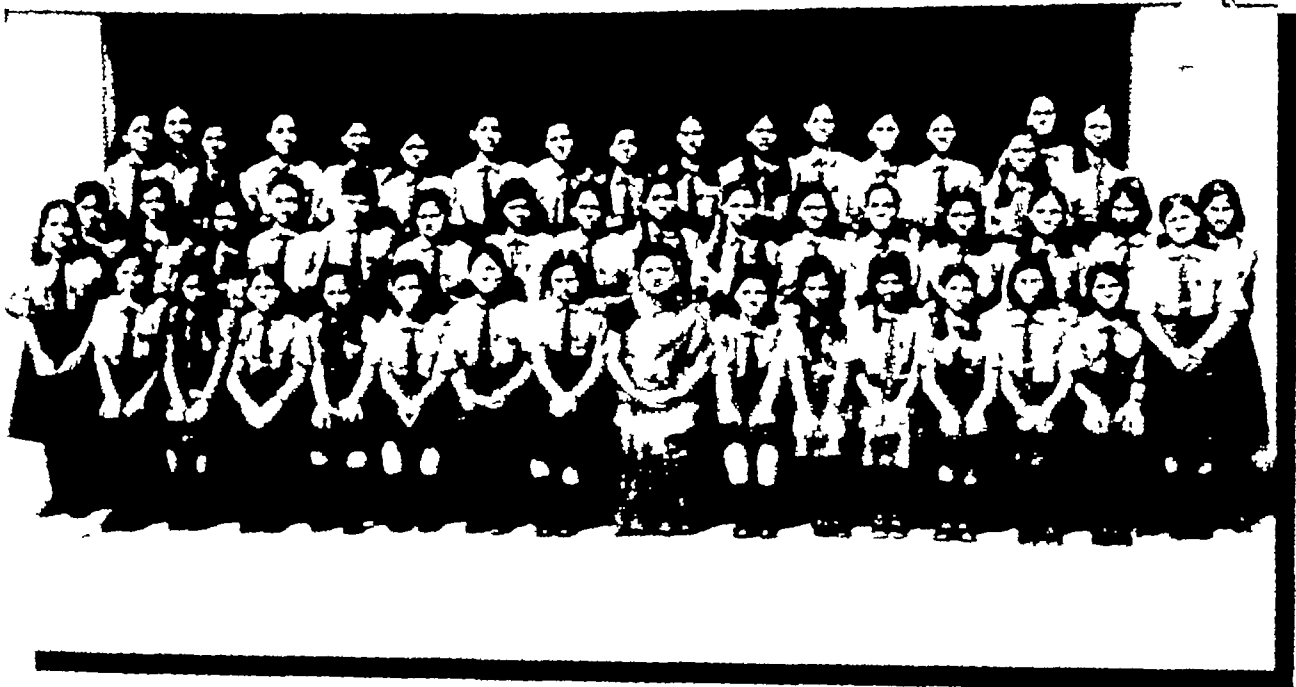
Class - VIII A

Class - VIII B

Class - VIII C
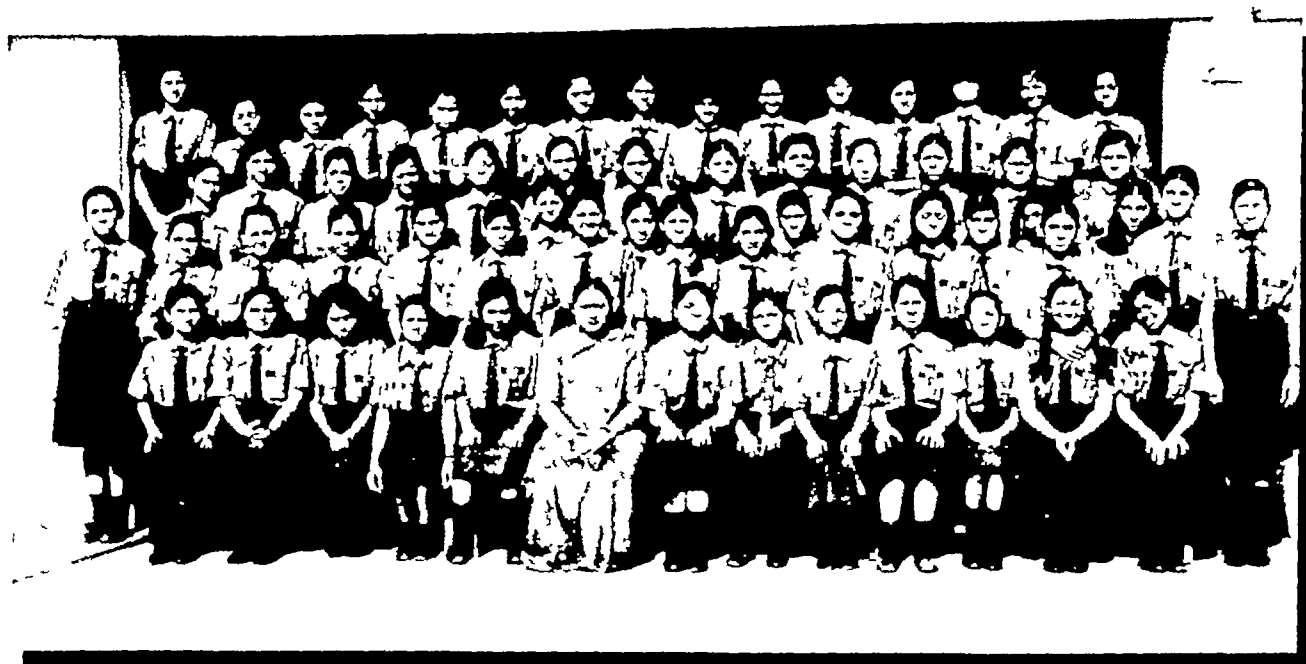
Class - IX A

Class - IX B

Class - X A
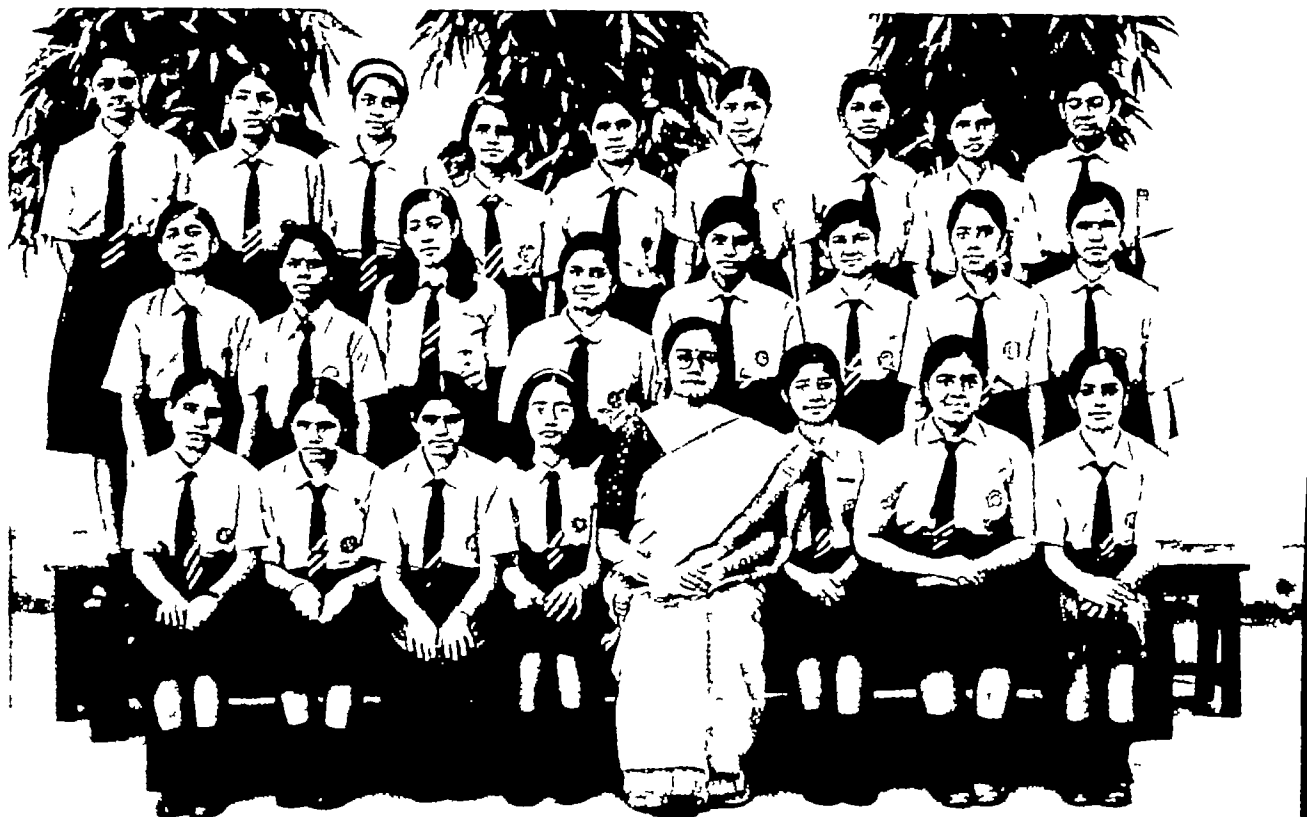
Class - X B

Class - X C

Class - XI A

Class - XI B

Class - XI C

Class - XI D

Class - XII A

Class - XII B

Class - XII C

SHREE JAIN VIDYALAYA FOR BOY'S
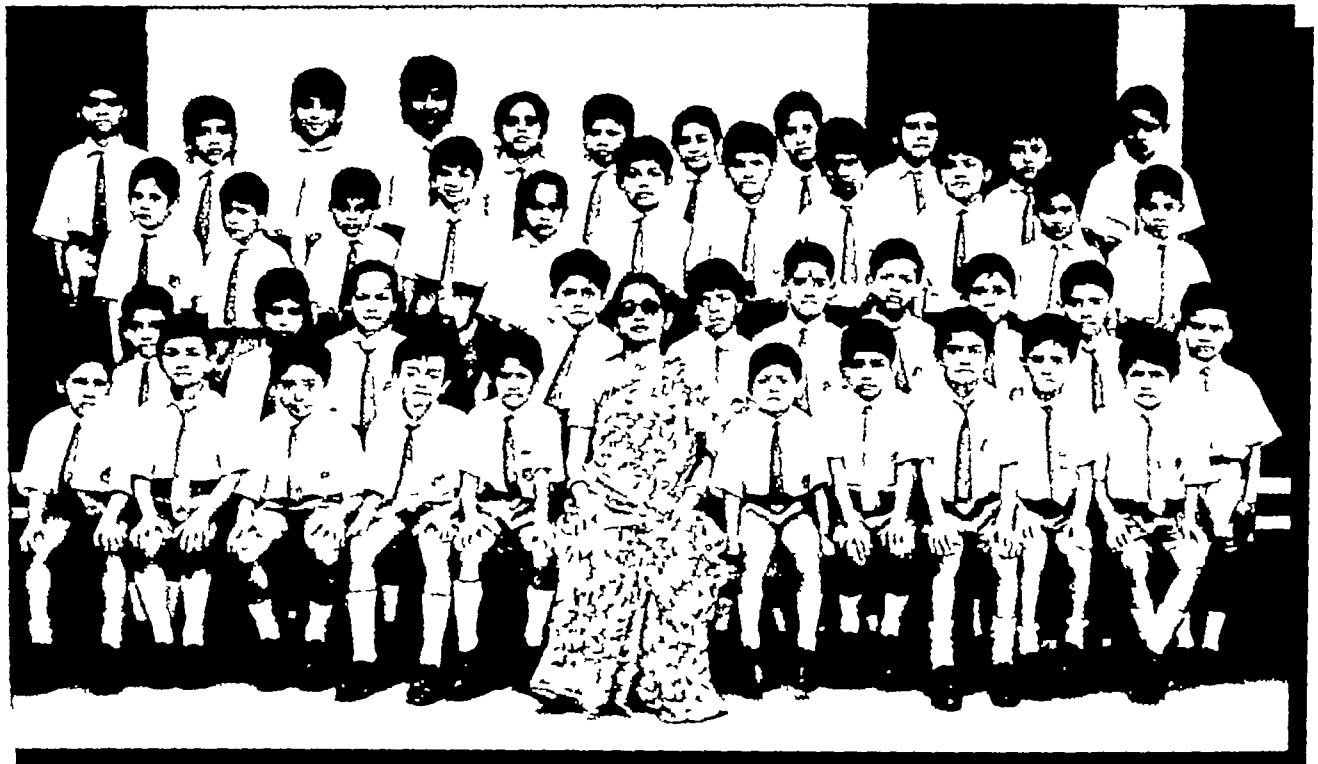
Class - I A
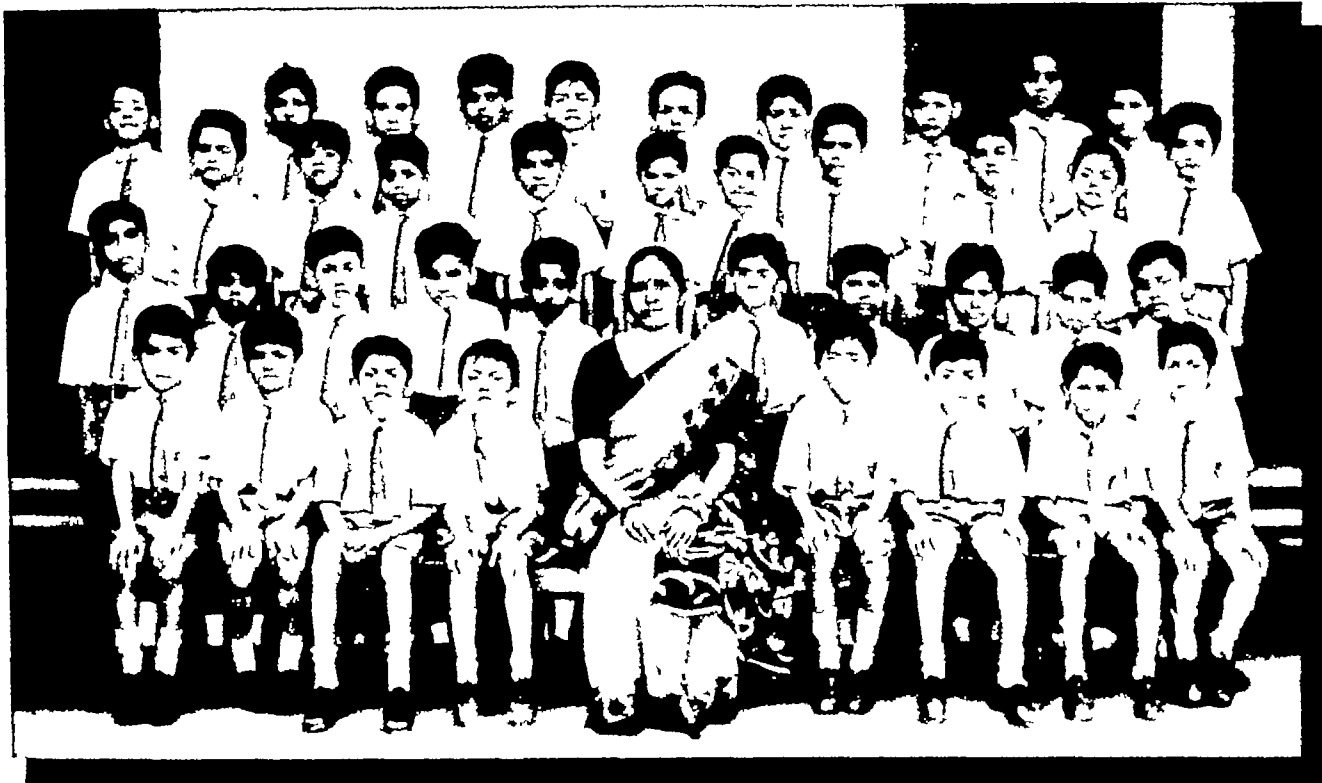
Class - I B
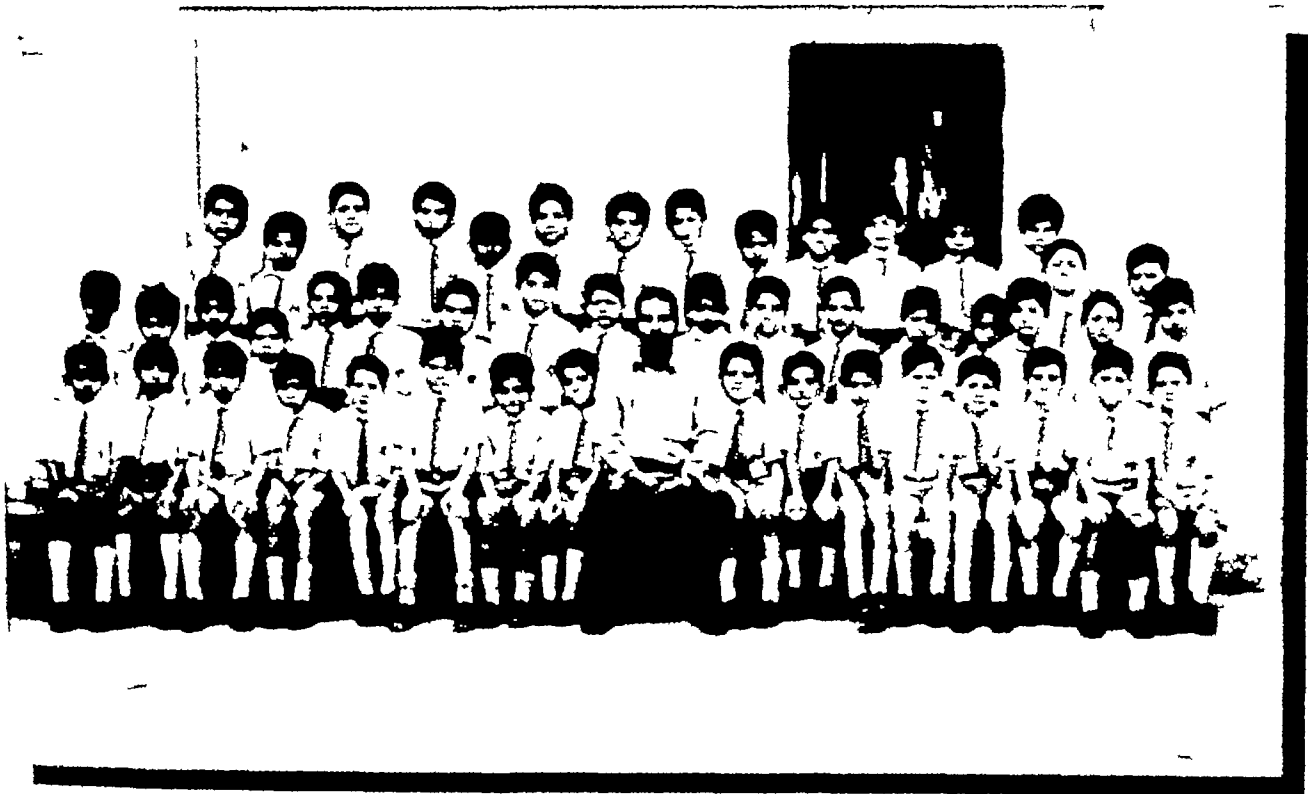
Class - II A
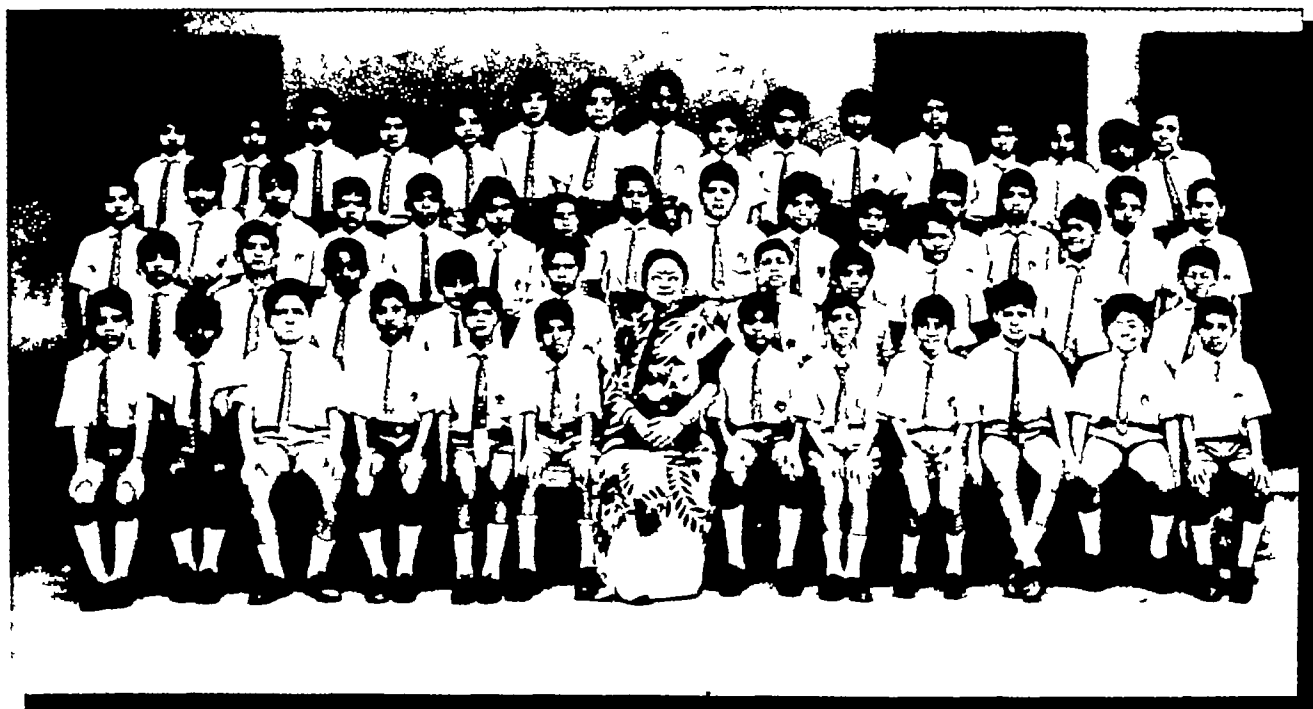
Class - II B
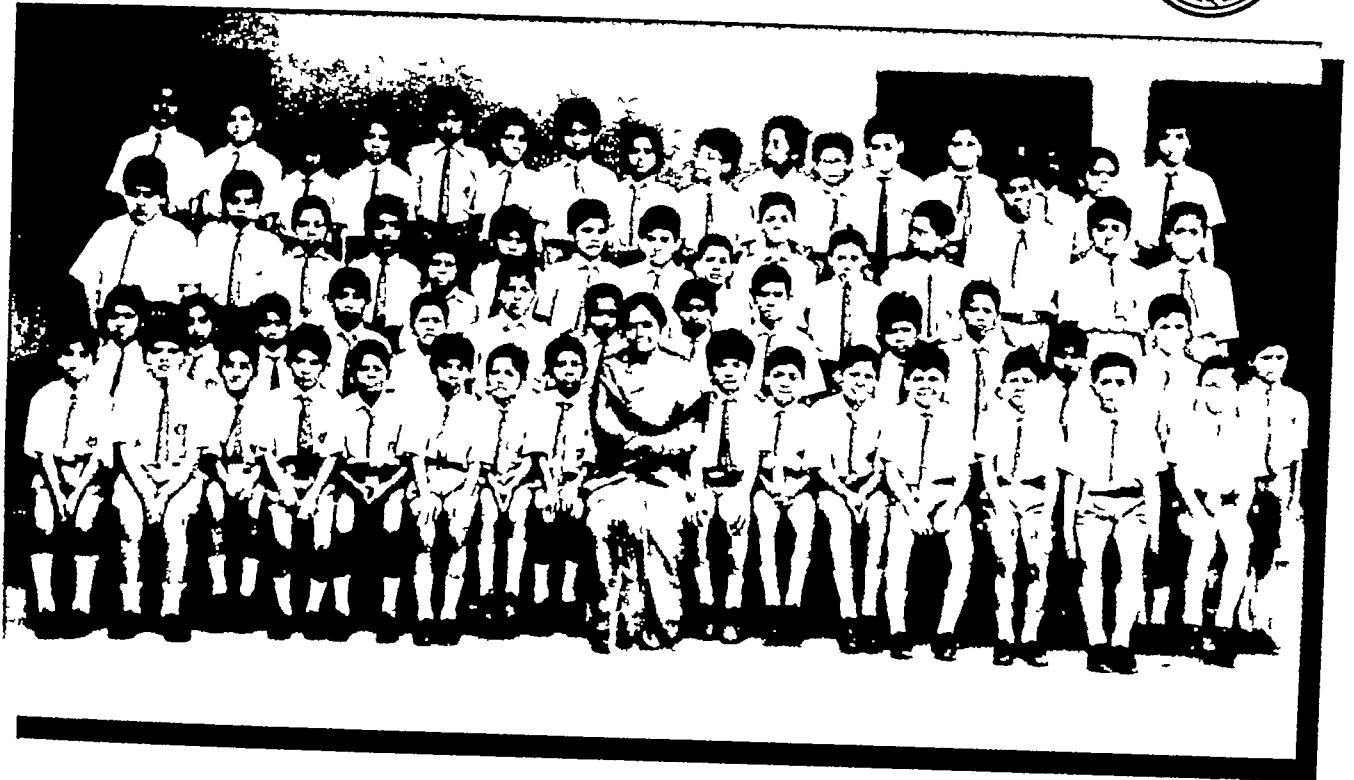
Class - III A
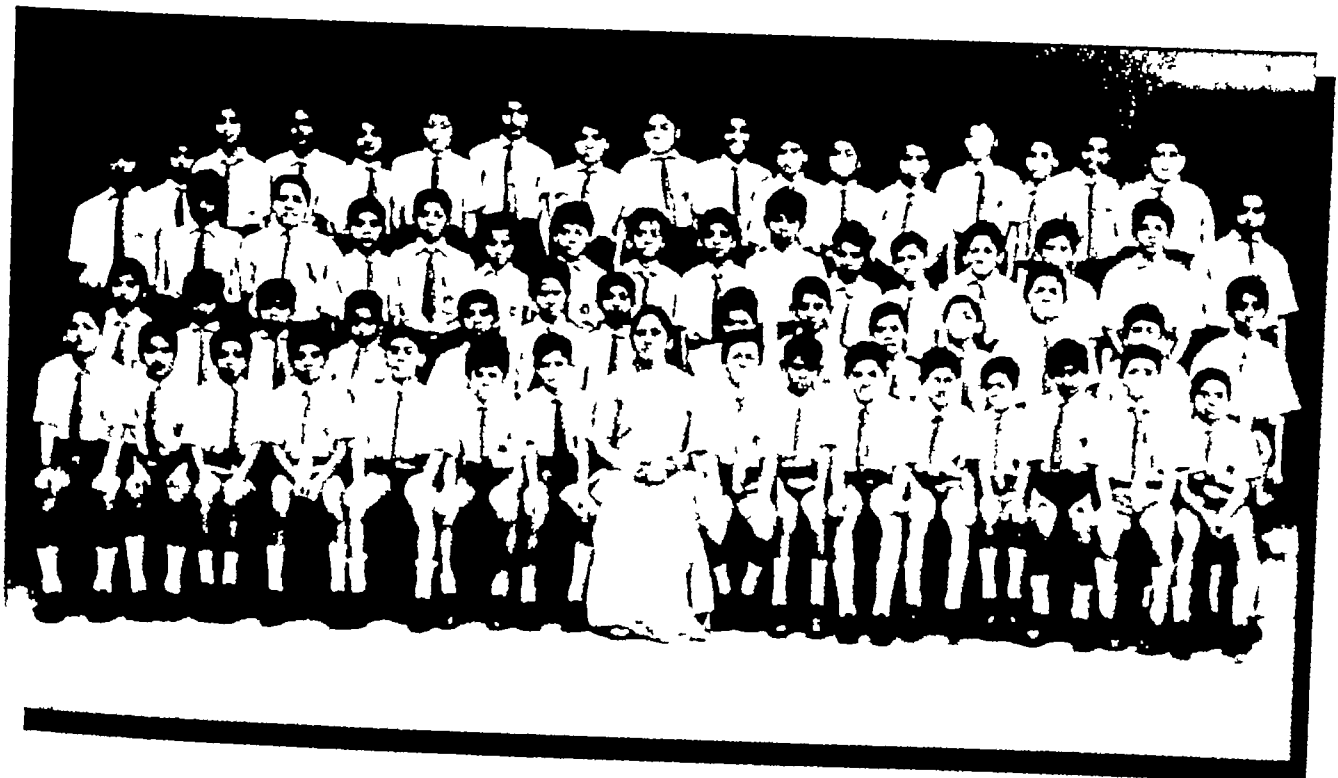
Class - III B
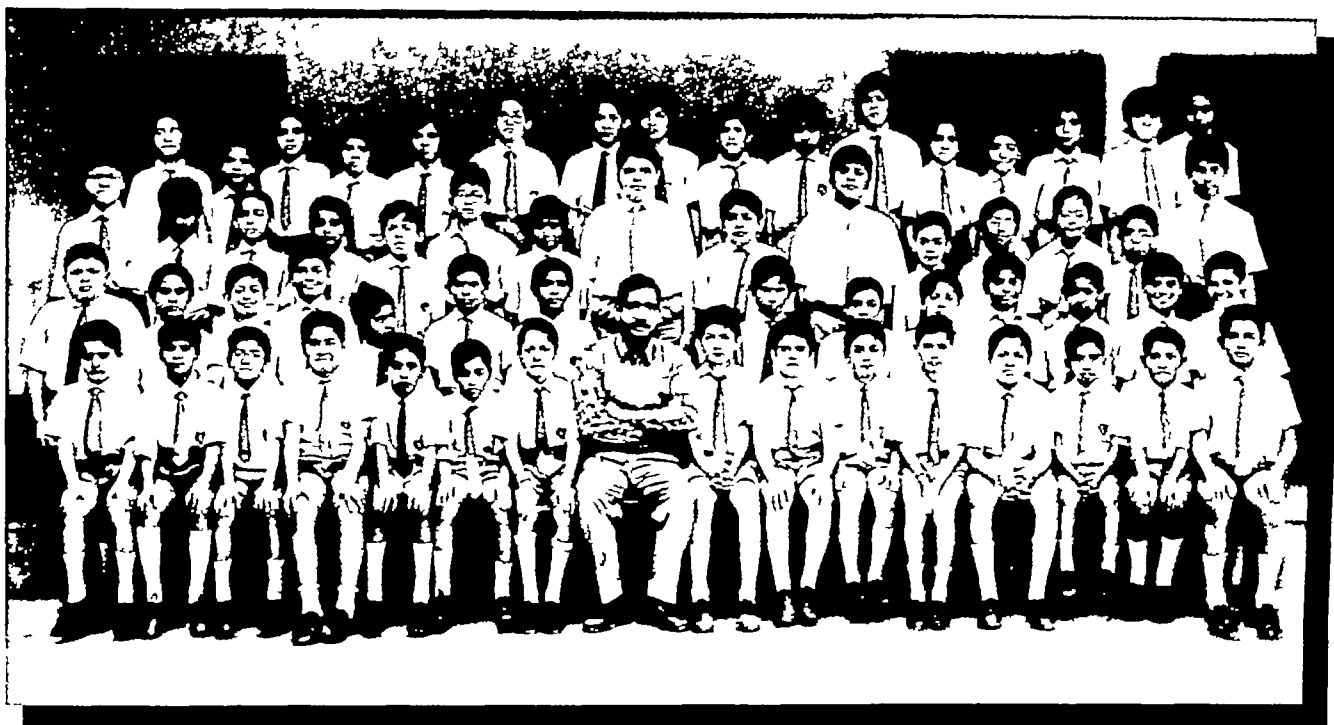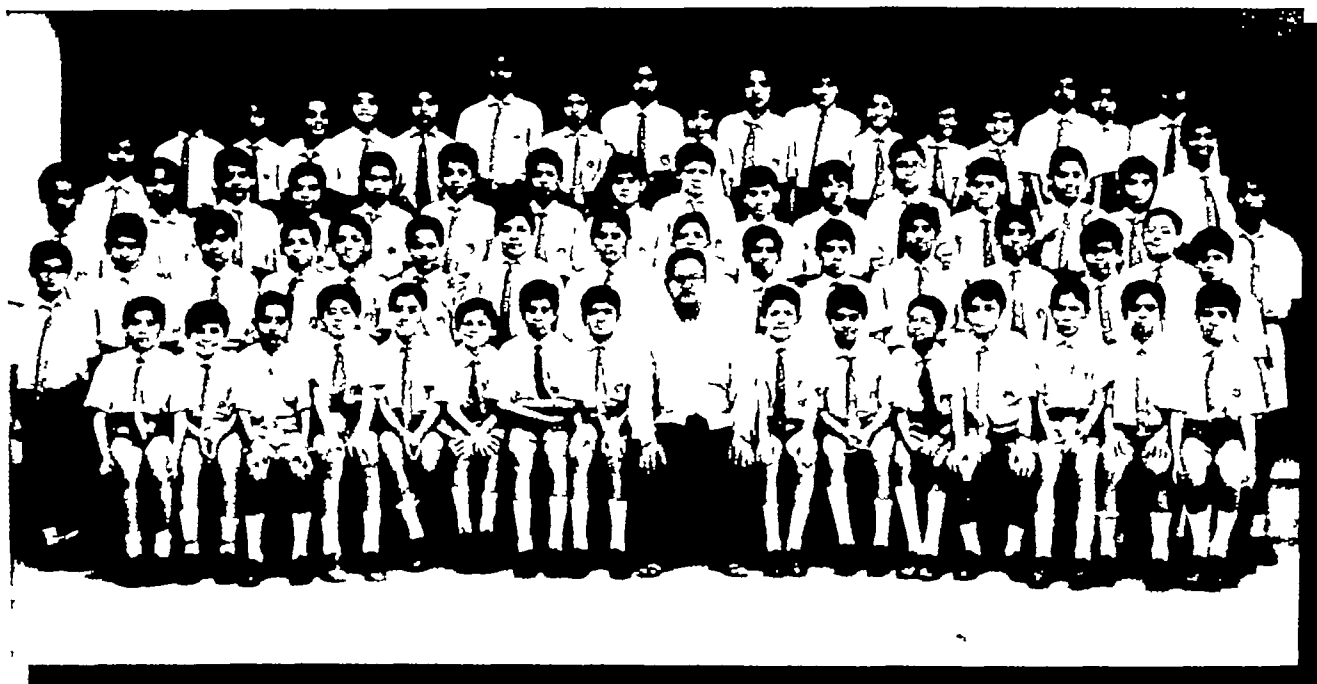
Class - IV A
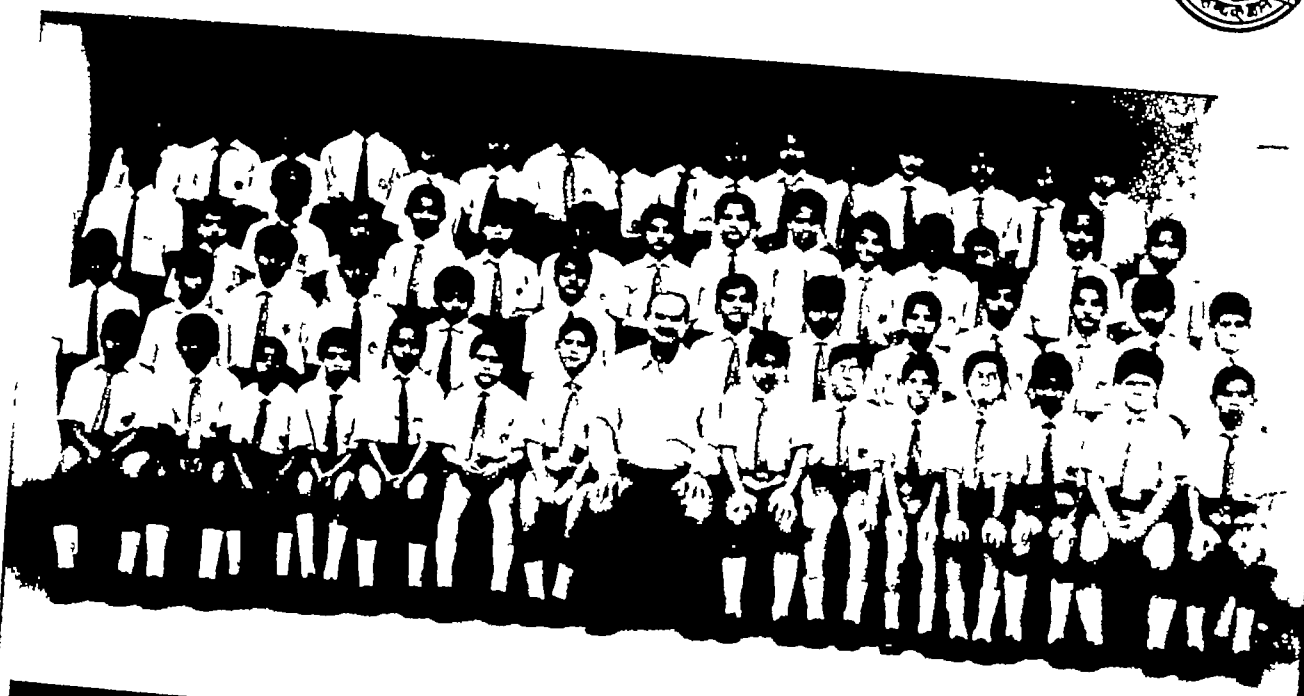
Class - IV B
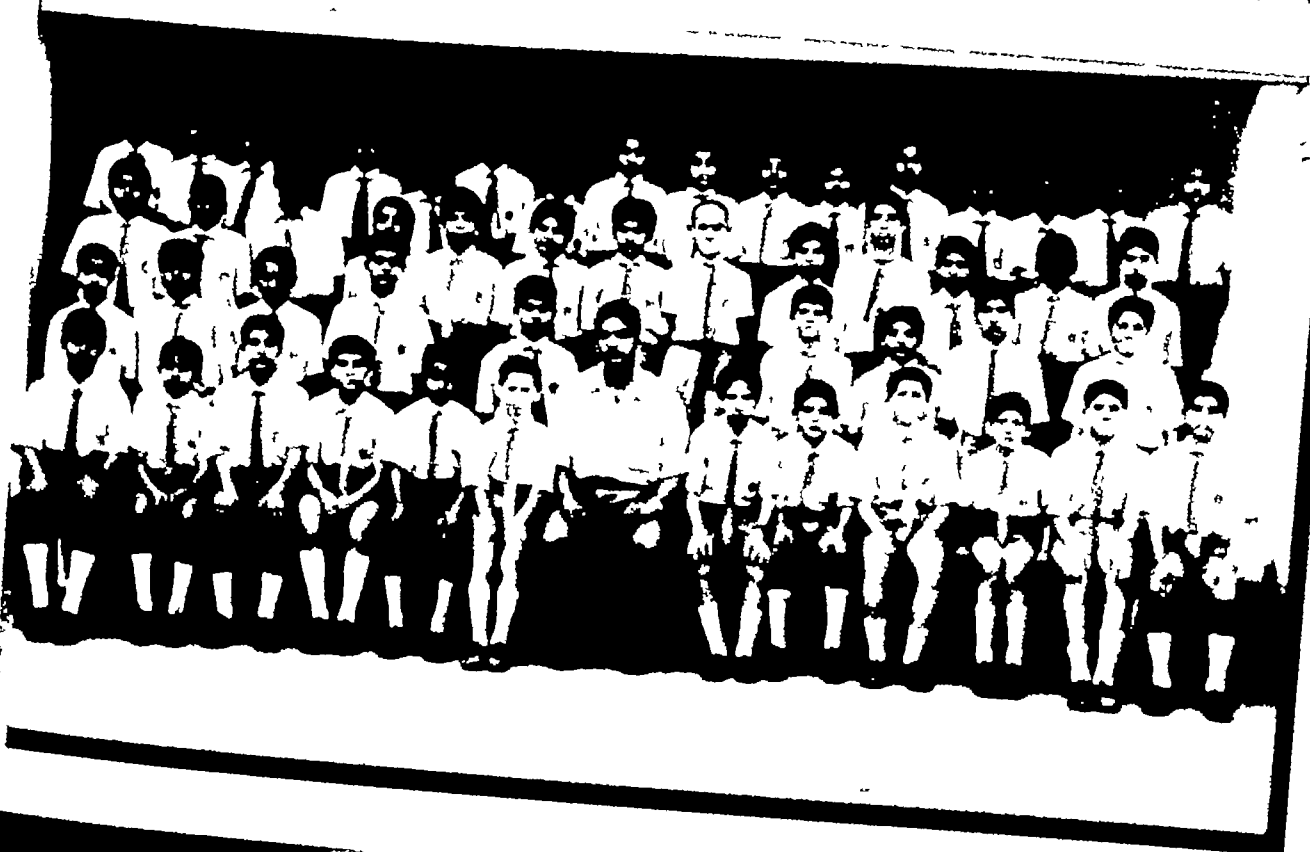
Class - V A

Class - V B

Class - V C
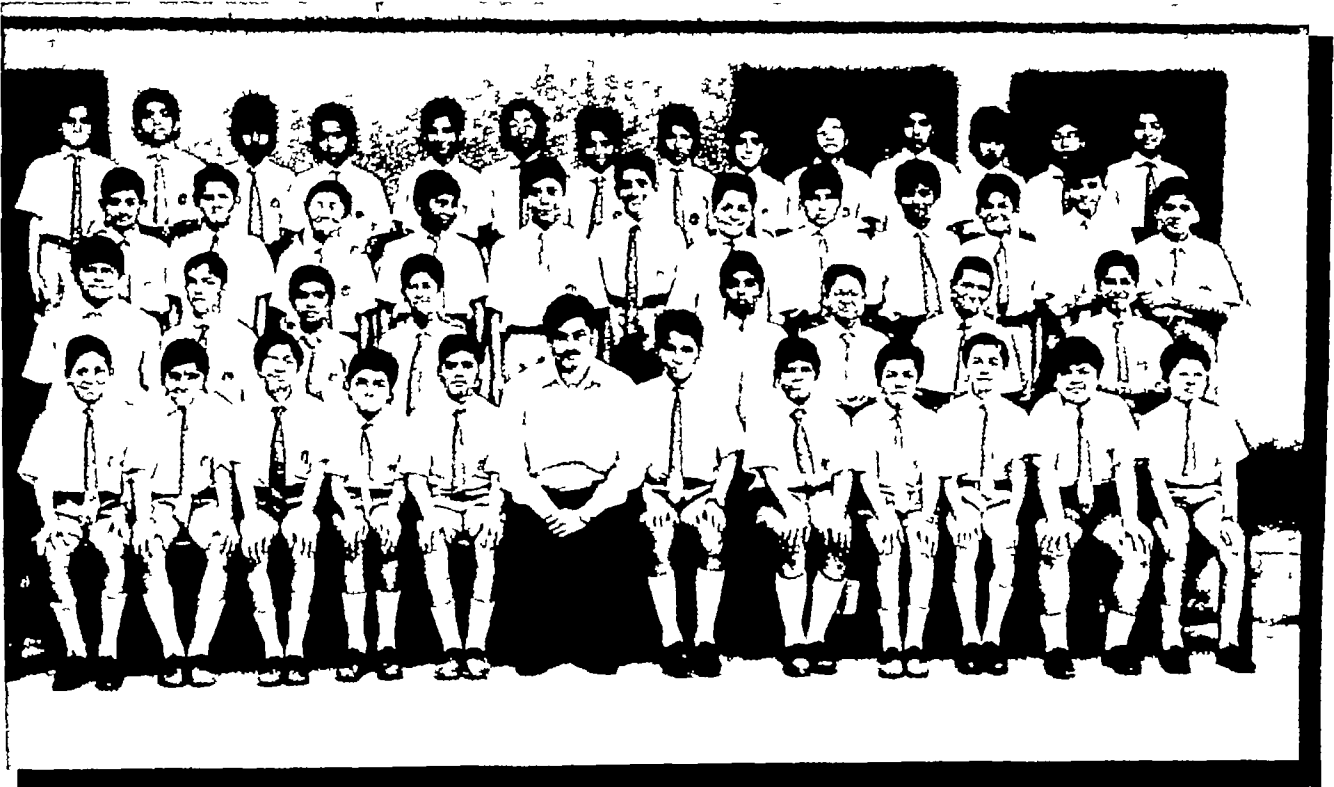
Class - VI A
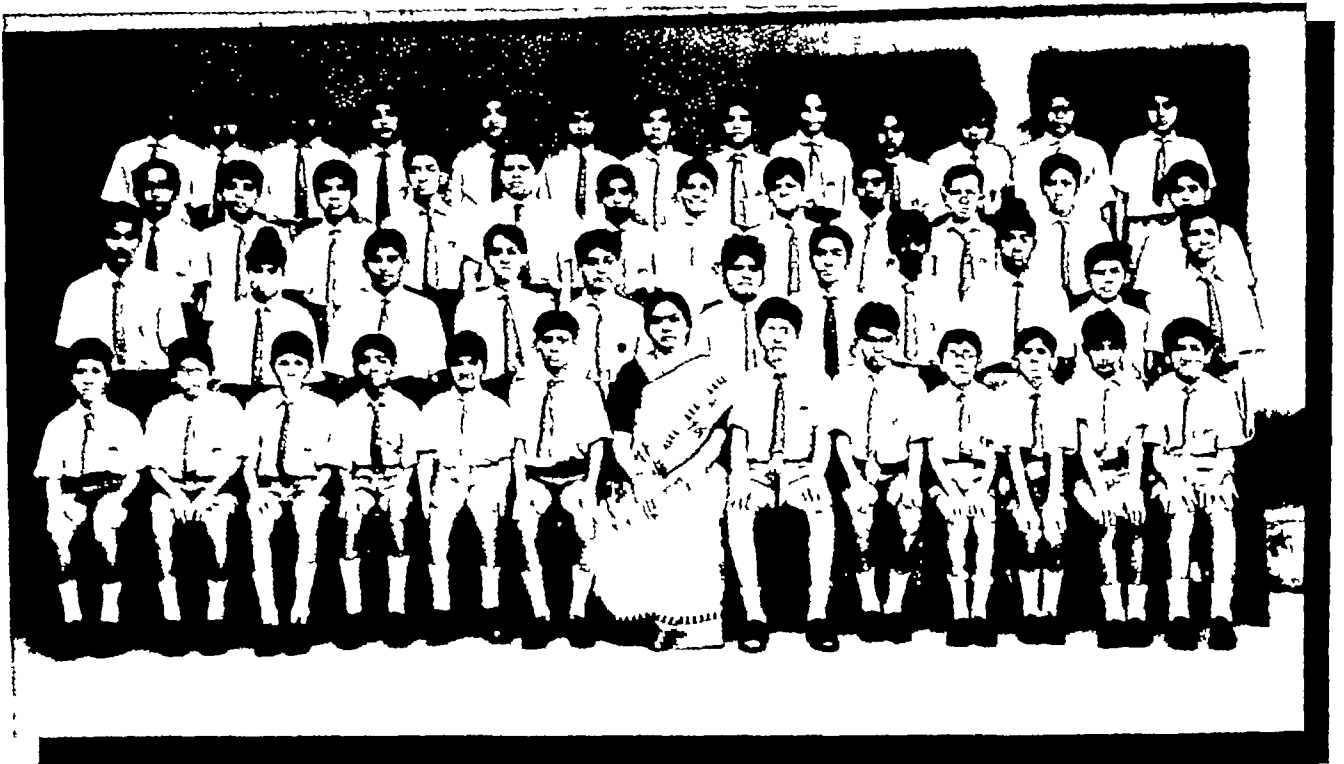
Class - VI B
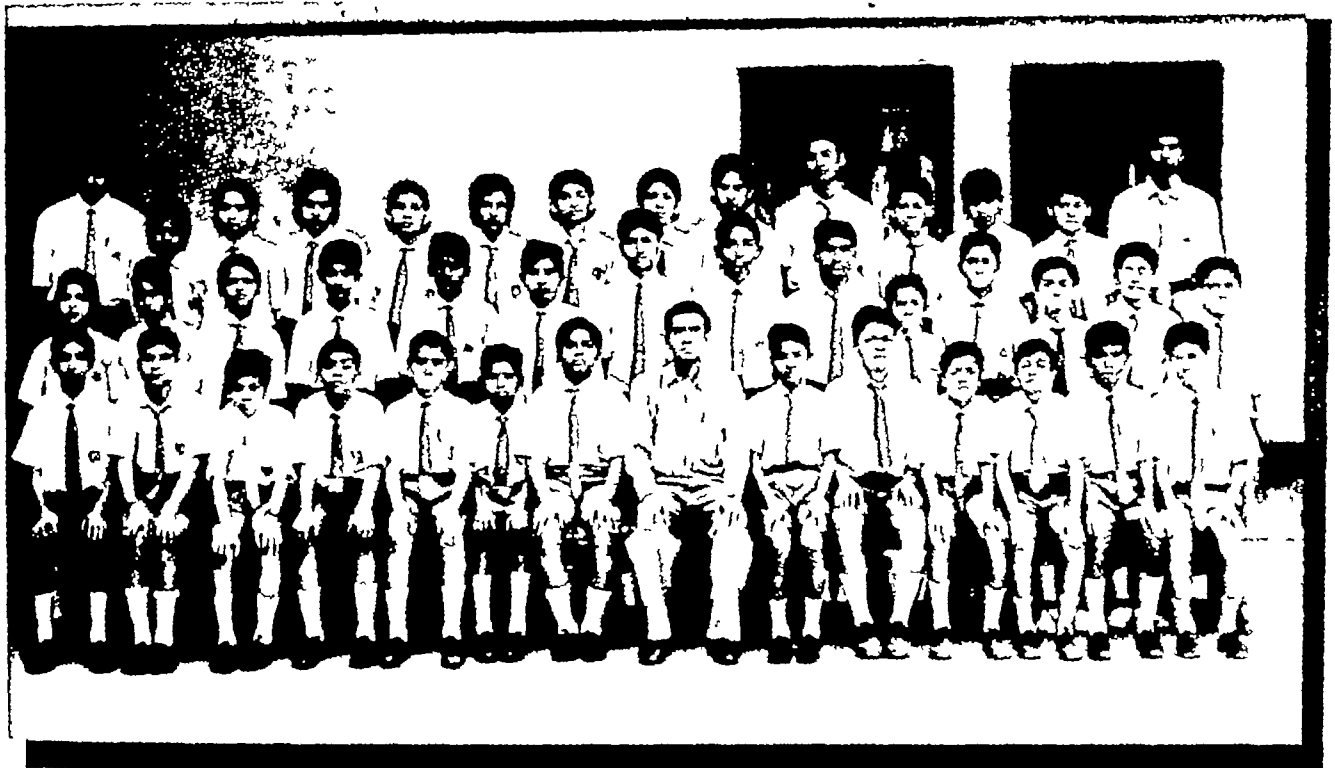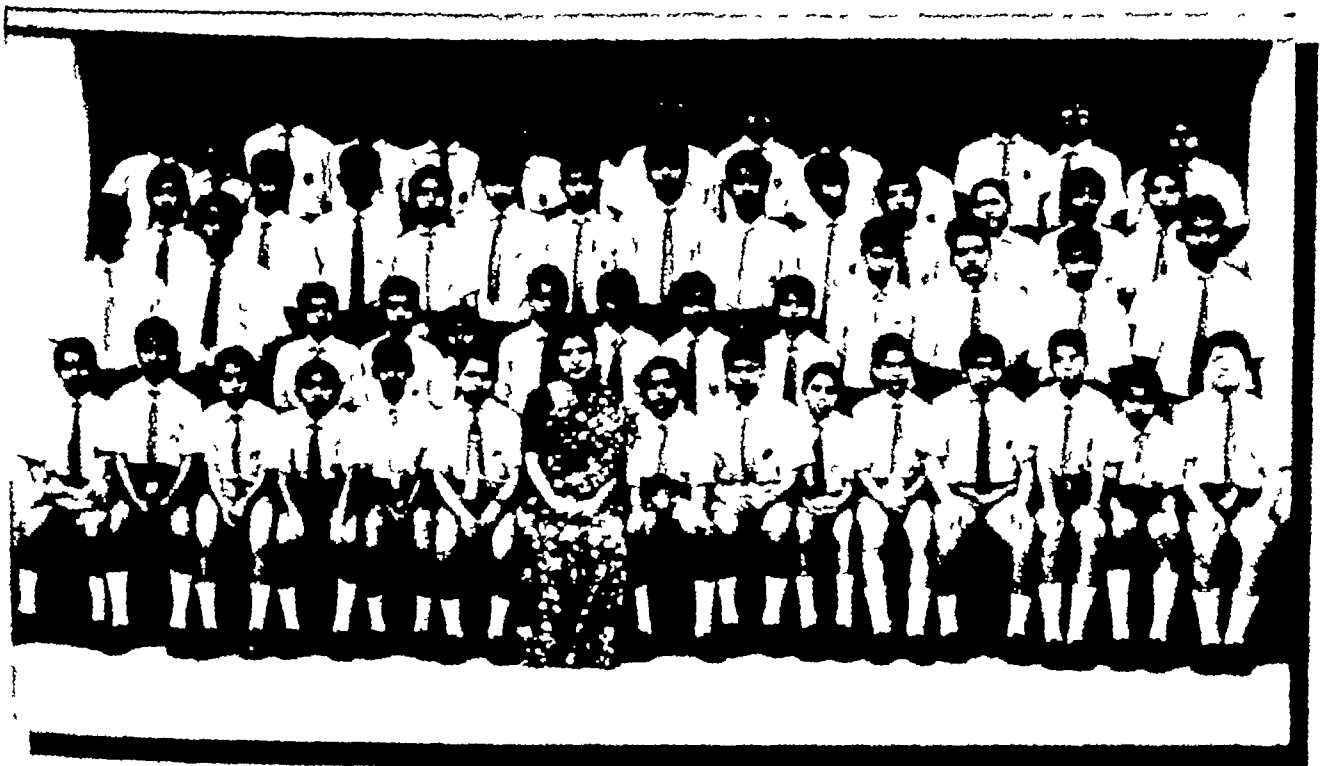
Class - VI C

Class - VII A
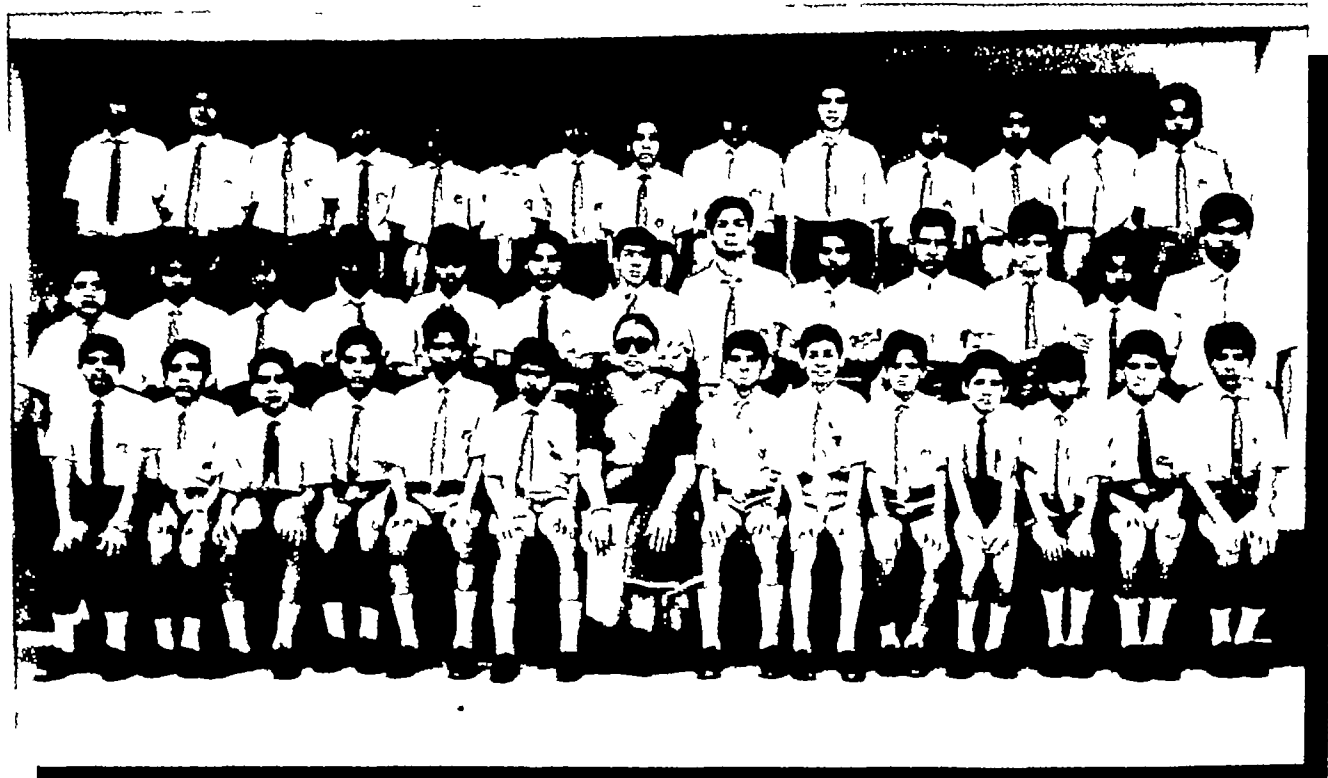
Class - VII B
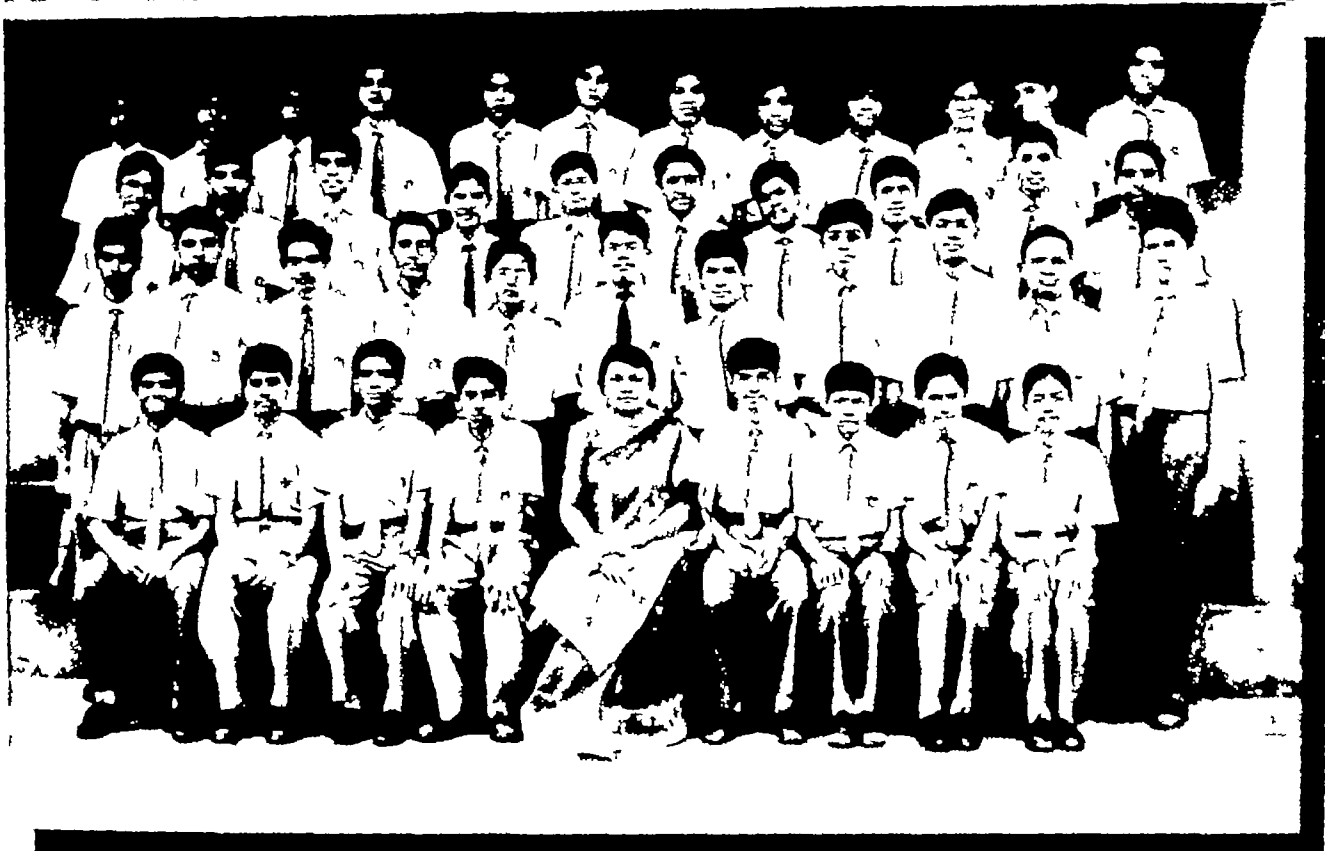
Class - VII C
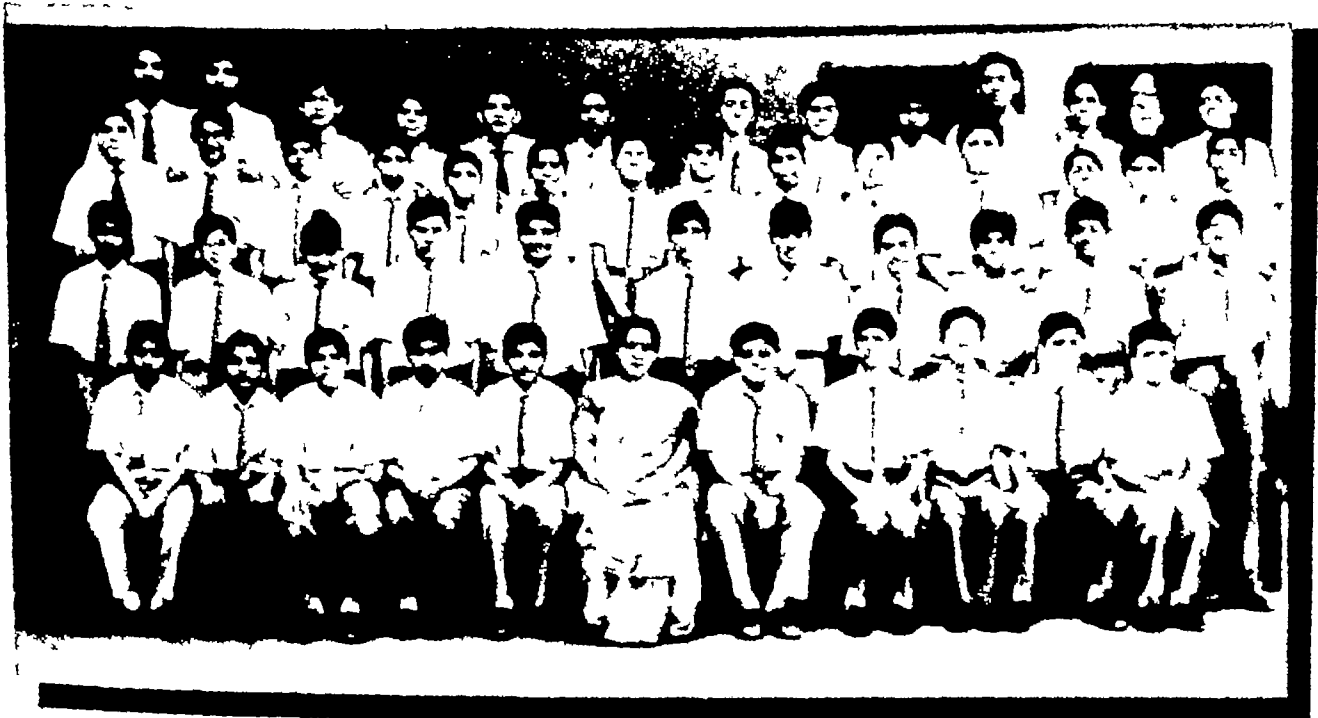
Class - VIII A
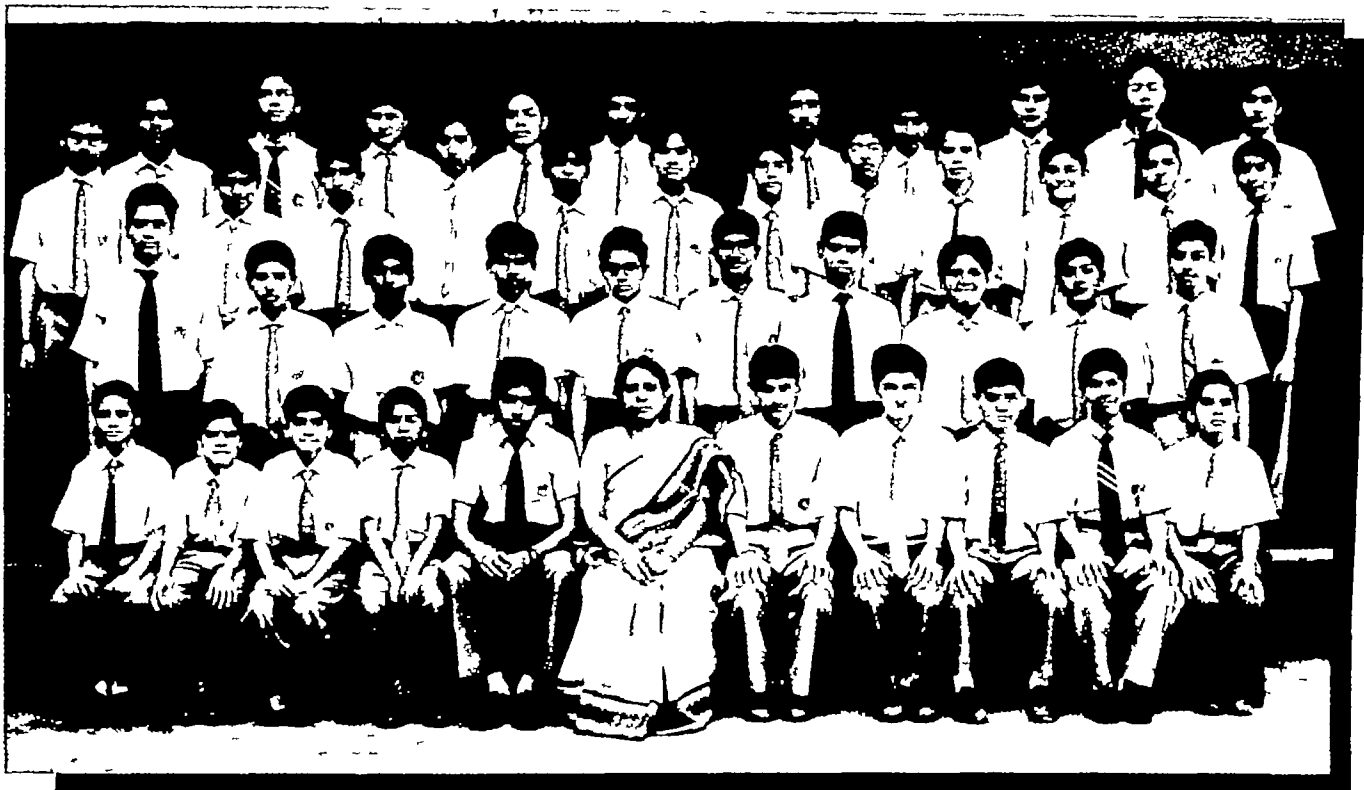
Class - VIII B

Class - VIII C
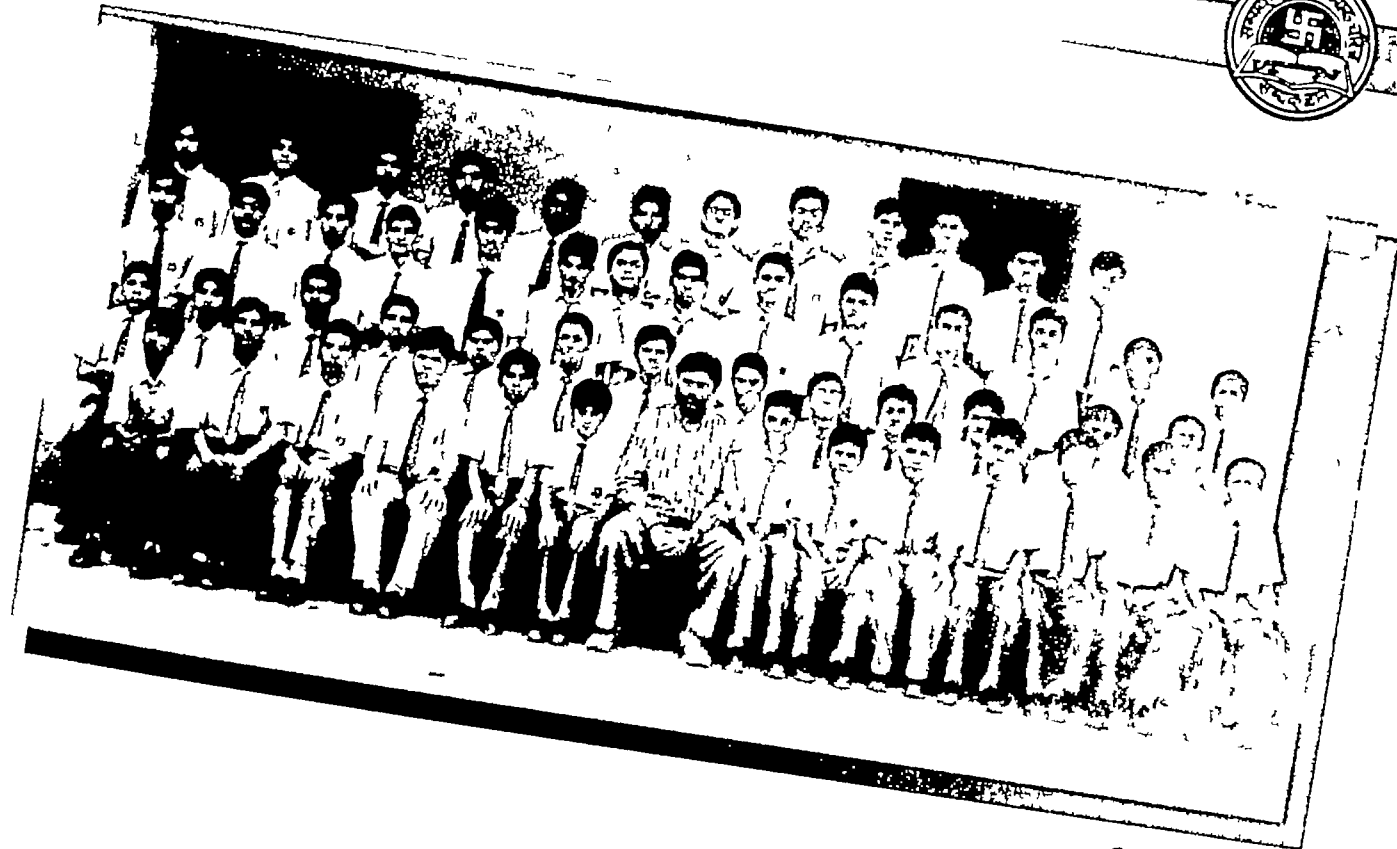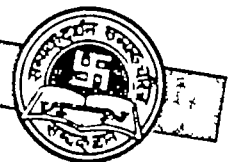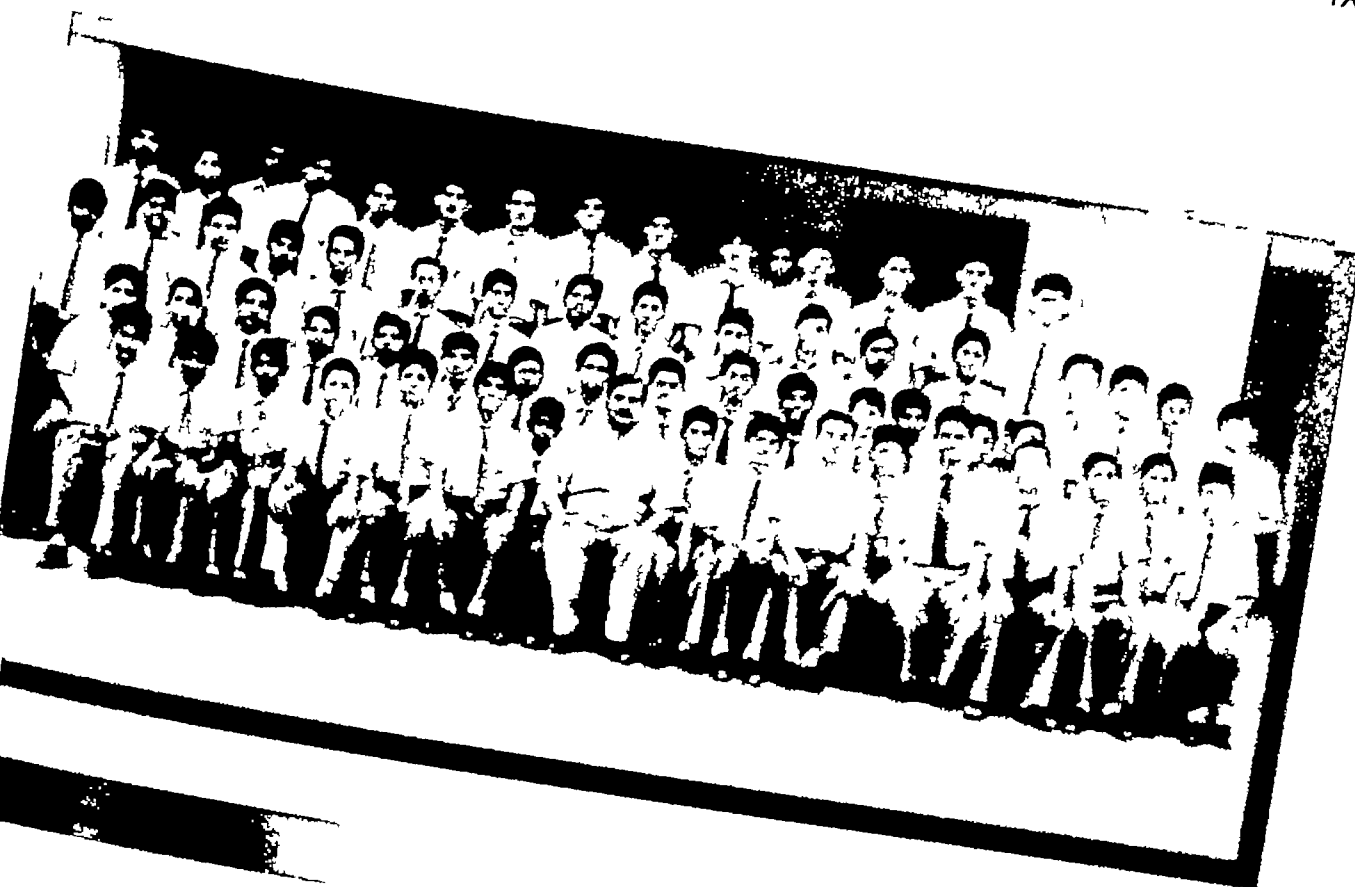
Class - IX A

Class - IX B

Class - IX C

Class - X A
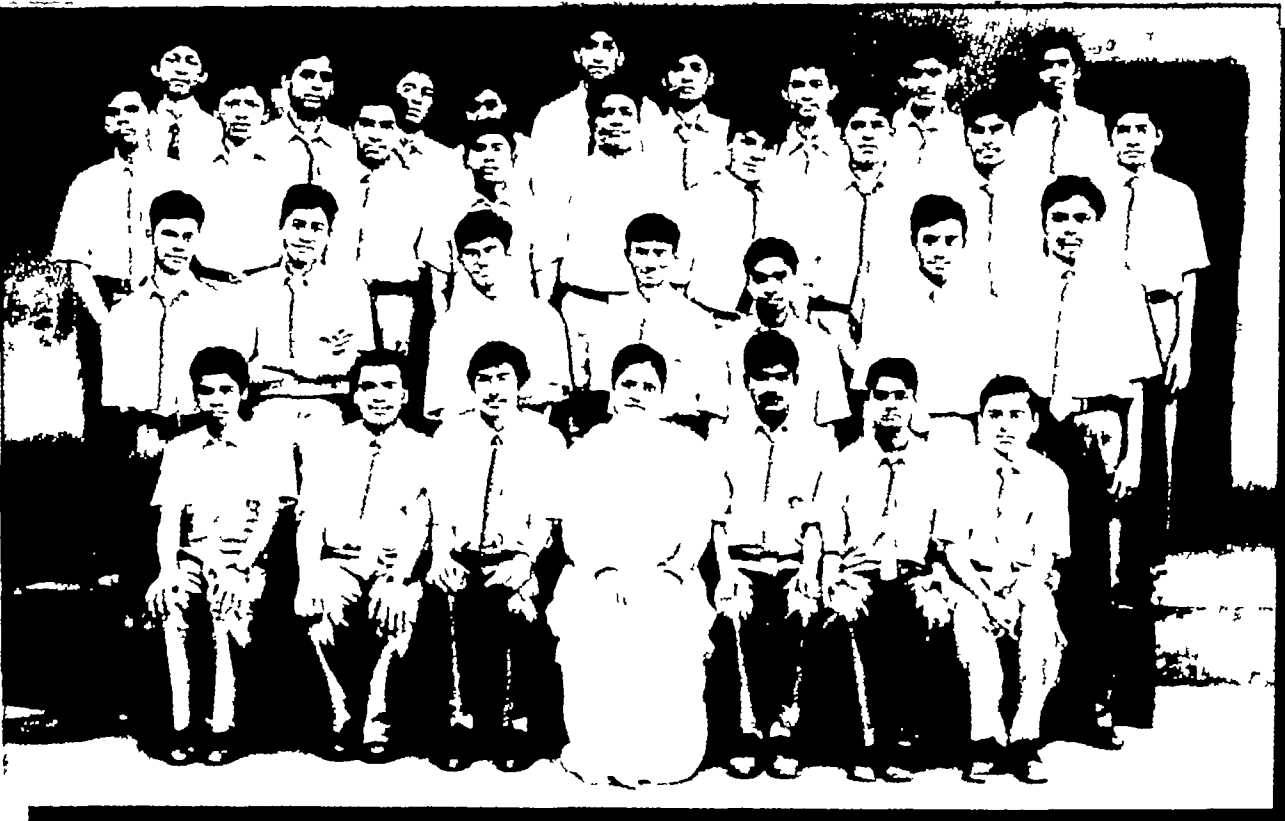
Class - X B
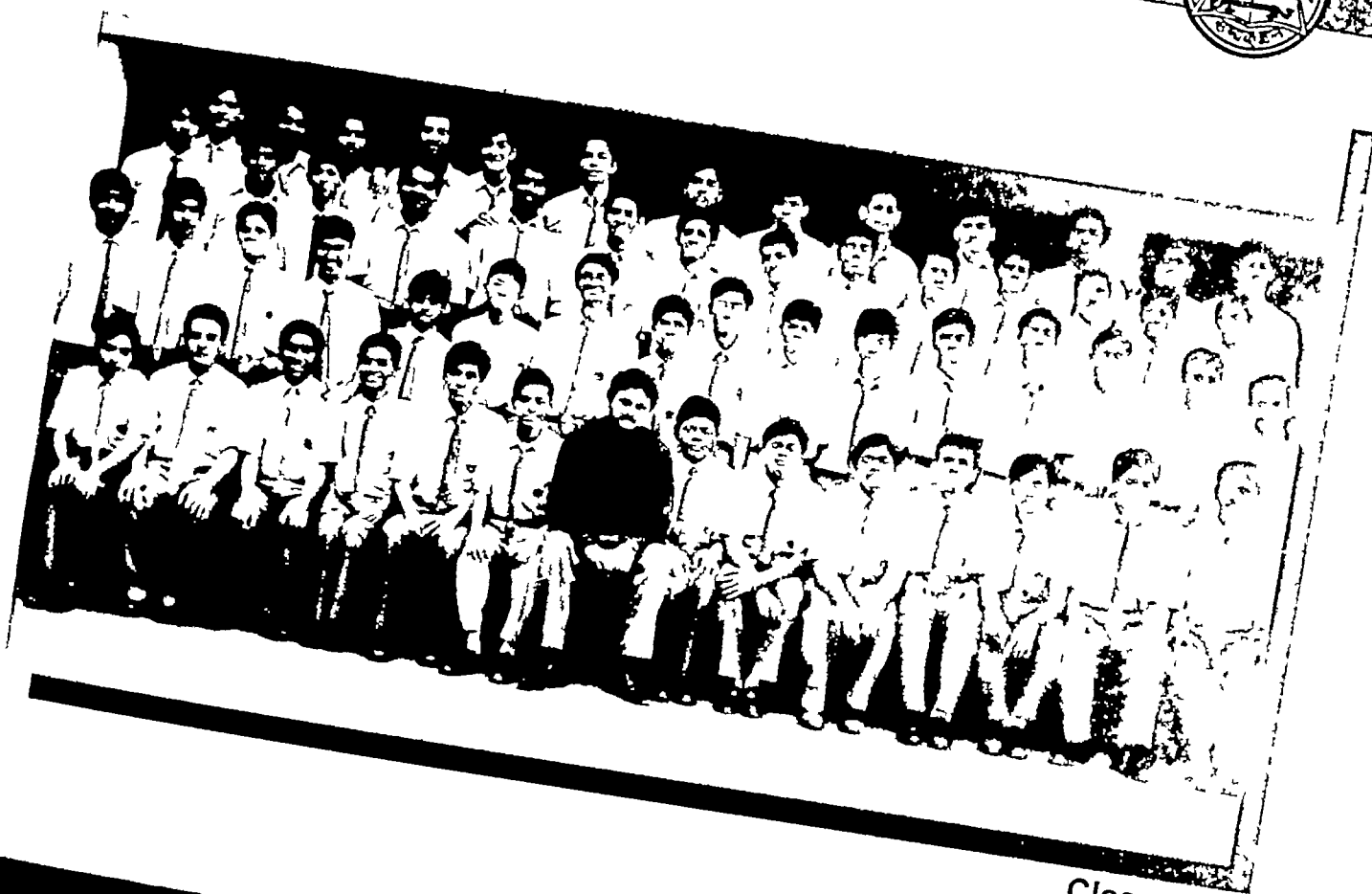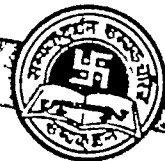
Class - X C
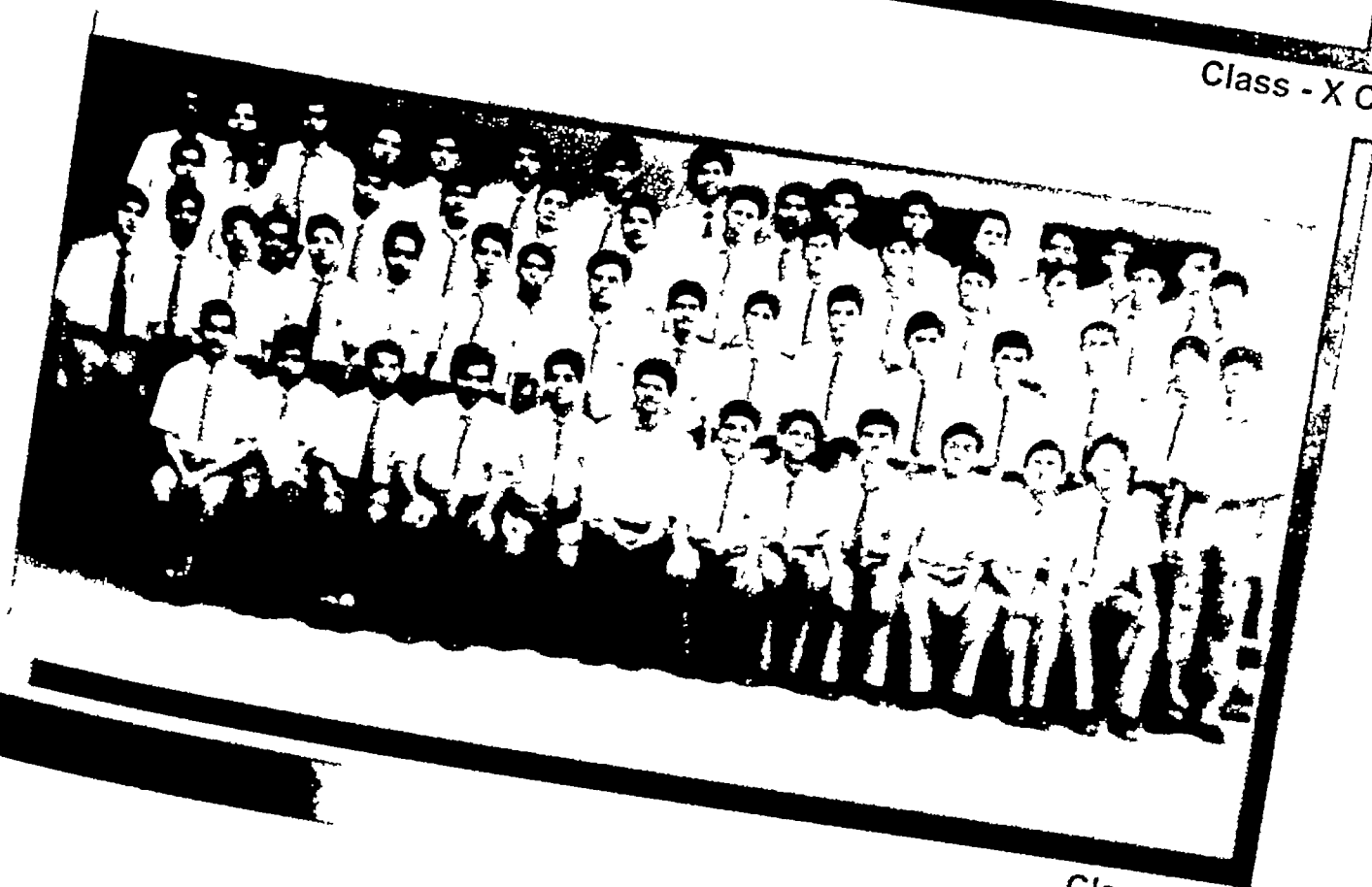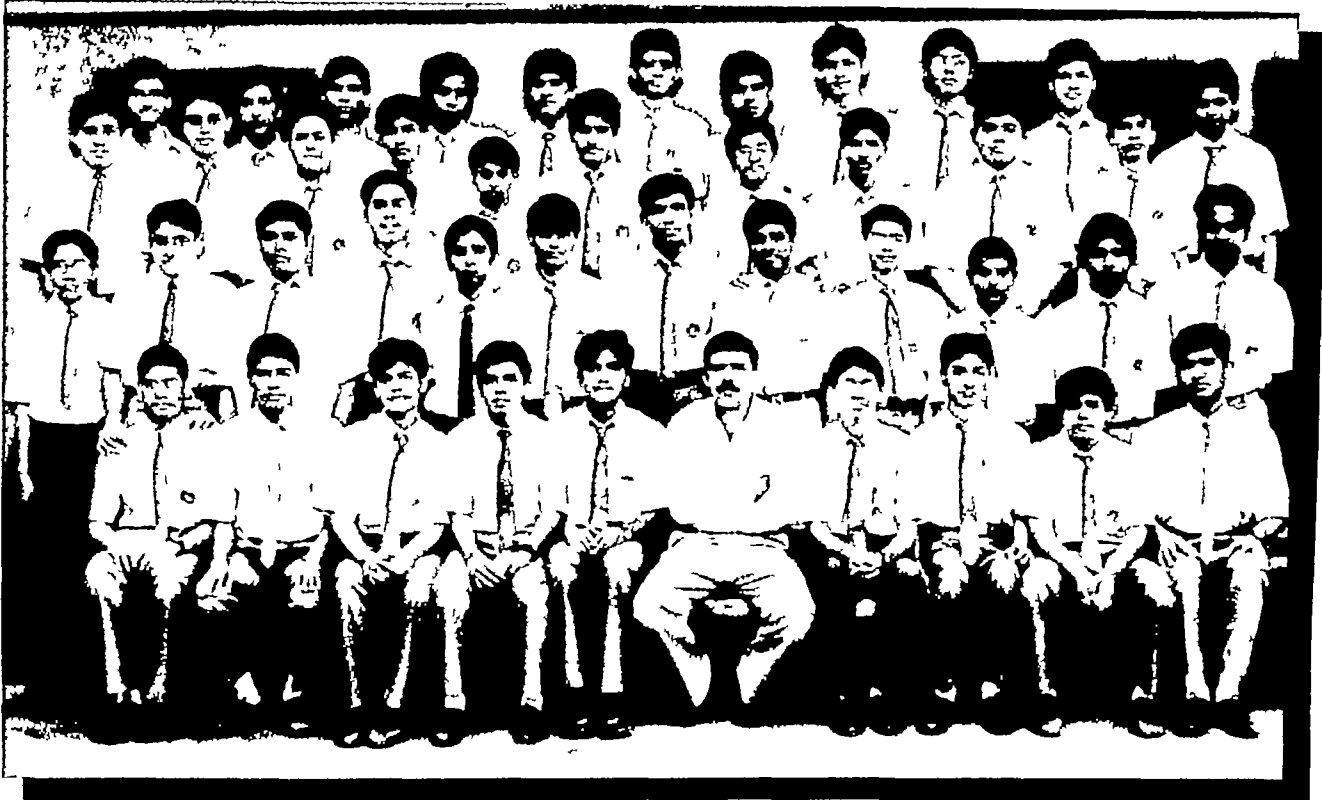
Class - XI A

Class - X A
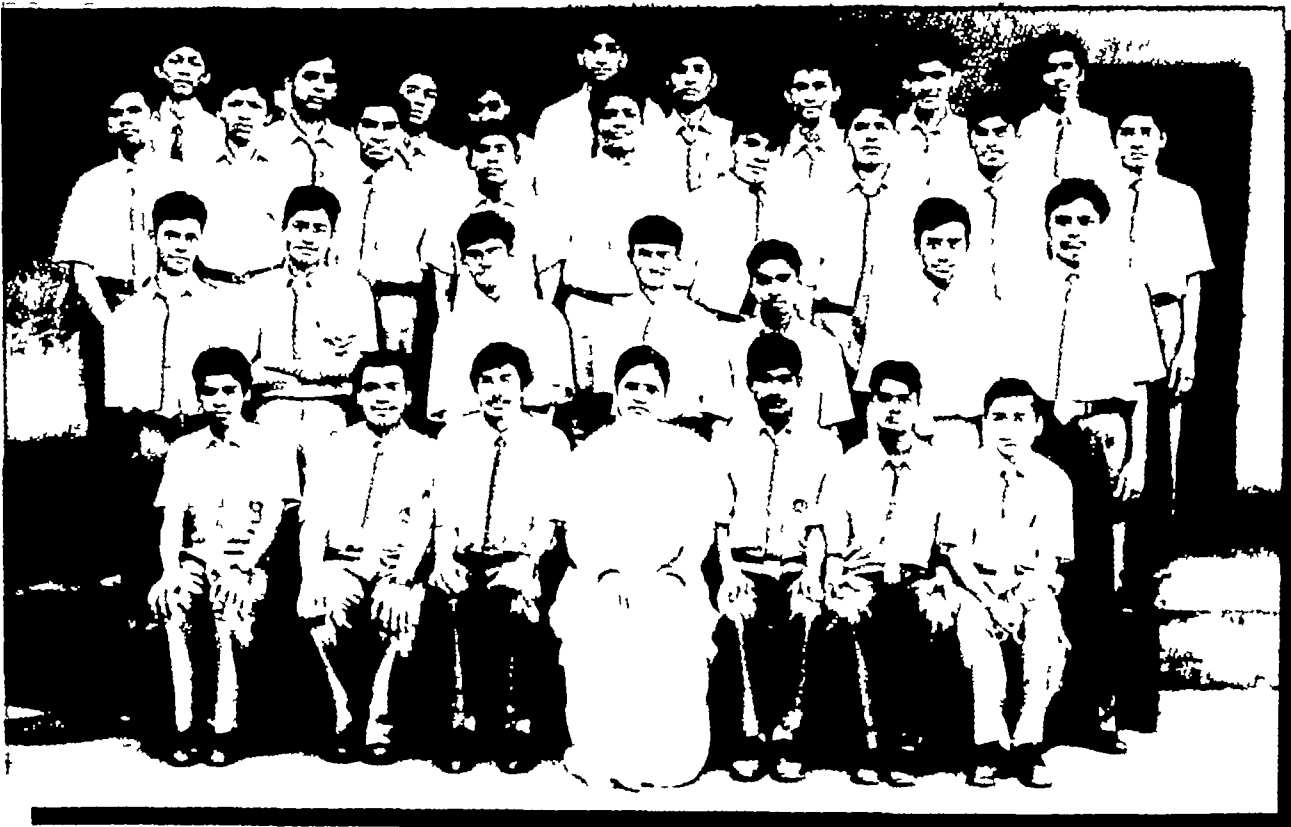
Class - X B
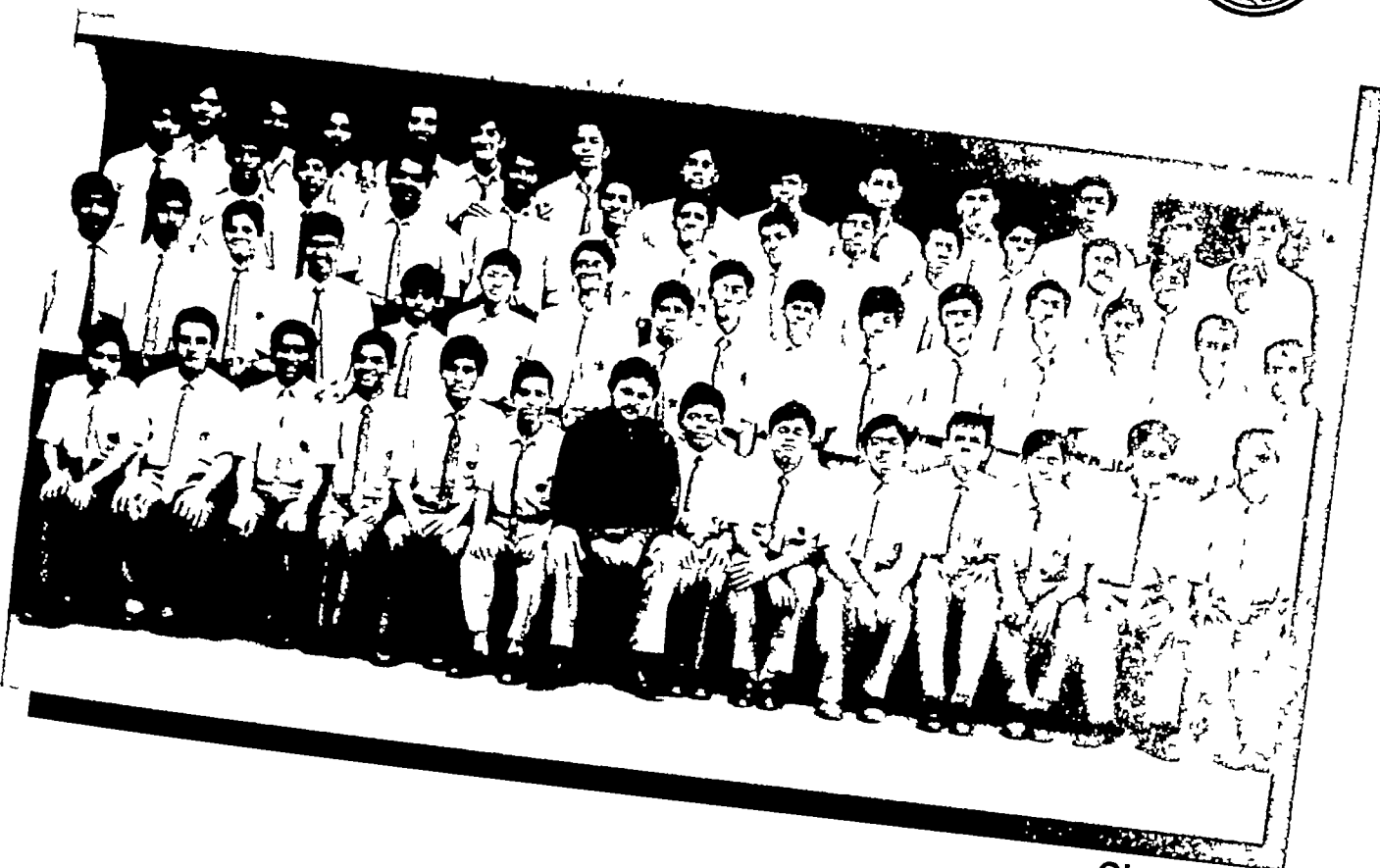
Class - X C
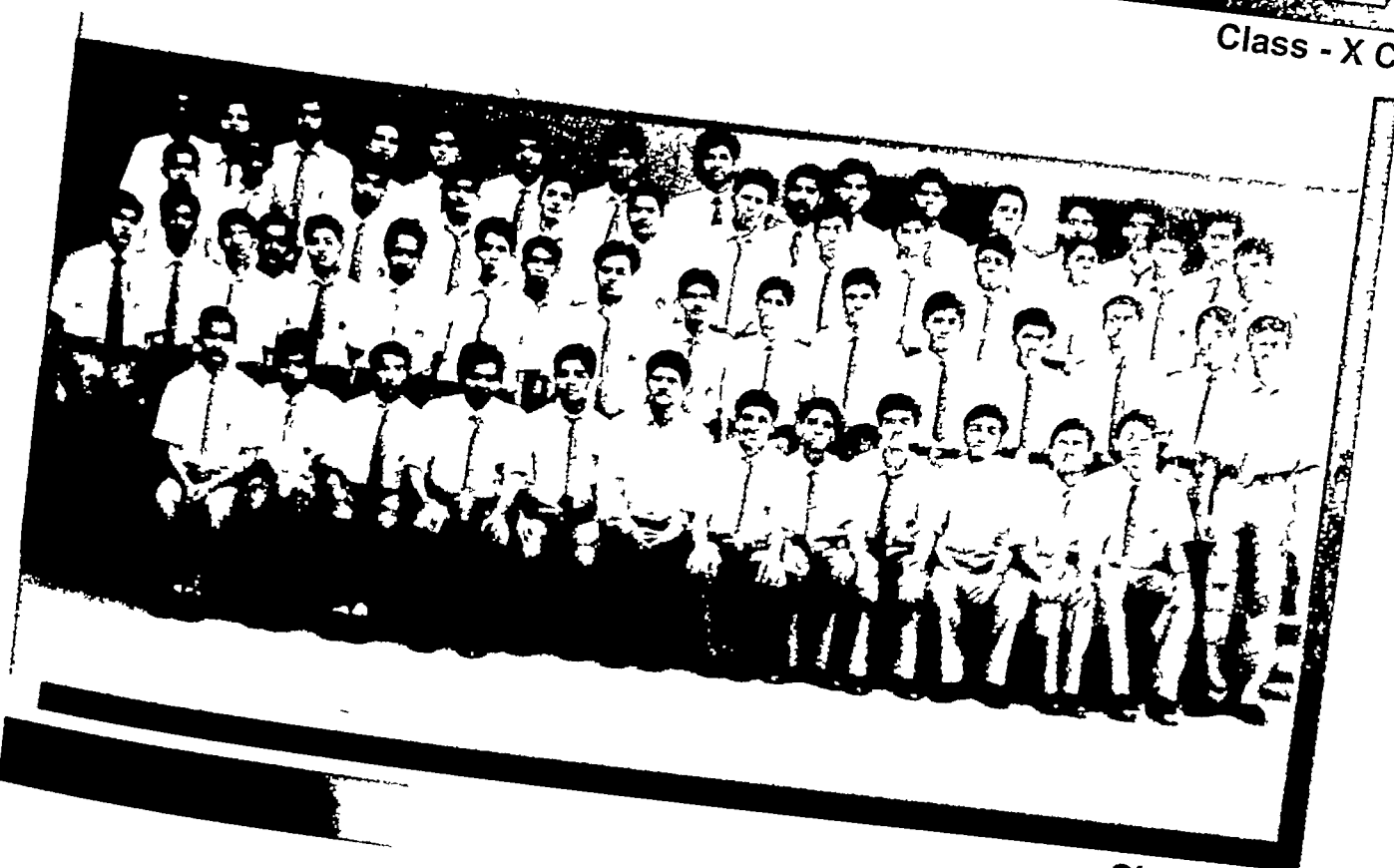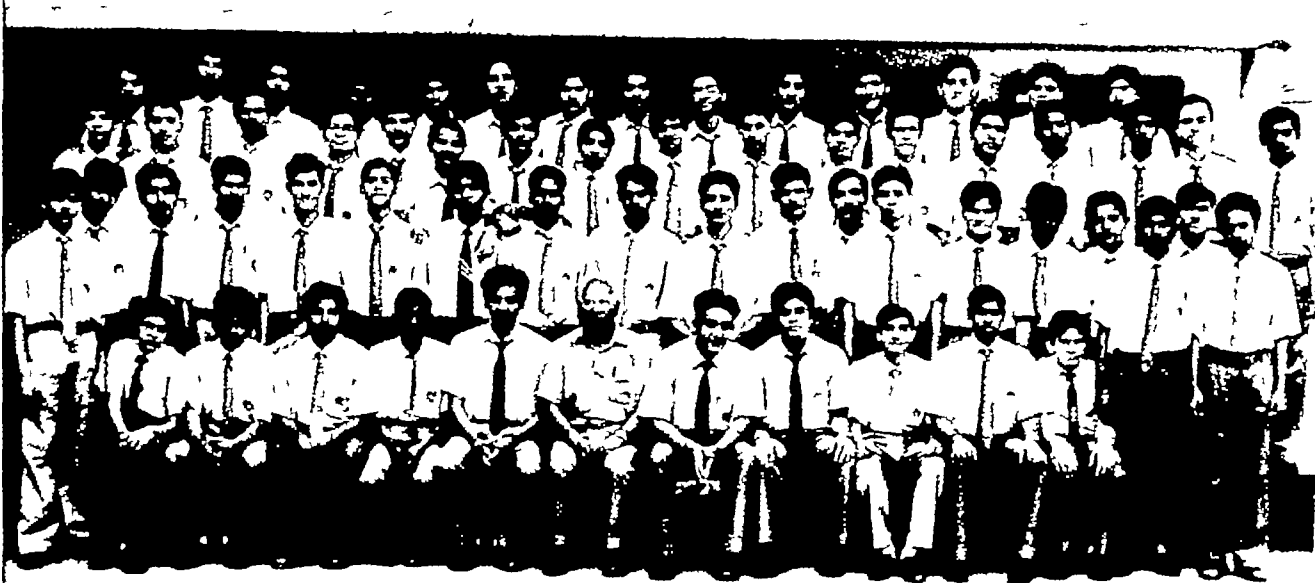
Class - XI A

Class - XI B

Class - XI C

SRI R D BHANSALI
Founder member of the School

Bhanwarlal Karnawat

Kanhaiyalal Maloo

Surajmal Bachhawat

Puranmal Kankaria

SHREE S. S. JAIN SABHA
COMMITTEE - OFFICE BEARERS
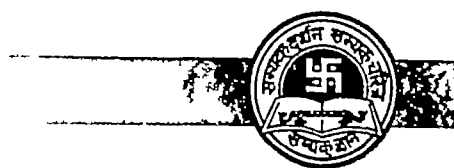
Sri Bachharaj Abhani - President
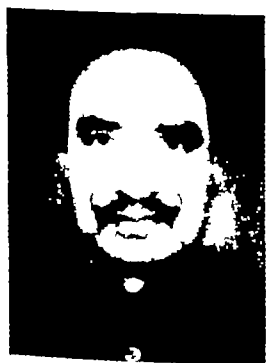
Sri Manakchand Rampuria
Trustee

Sri Sardarmull Kankaria
Trustee

Sri R D Bhansali
Trustee

Sri Balchand Bhura
Trustee

Sri R K. Bothra
Vice-President

Sri Vinod Minni
Secretary

Sri Ashok Bothra
Jt. Secretary

Sri Kishore Kothari
Jt. Secretary

Sri Parasmal Bhurat
Treasurer

SHREE S. S. JAIN SABHA
COMMITTEE MEMBERS

Sri Jaichandlal Minni

Sri Bhanwarlal Dassani
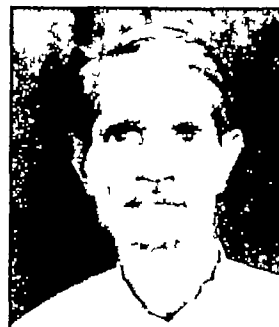
Sri Fagmal Abhani

Sri Mohanlal Bhansali

Sri Kishanlal Bothra

Sri Pannalal Kochar
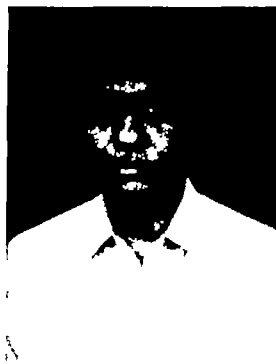
Sri S L Daga

Sri Surendra Banthla

Sri Subhash Kankana

Sri Rajendra Nahata

Sri Rajendra Nahata

Sri Sunderlal Dugar

Sri C P Daga

Sri Lalit Kankana

Sri Ashok Minni

Sri Subhash Bachhawat

SHREE S. S. JAIN SABHA
COMMITTEE MEMBERS

Sri Mahendra Kamawat
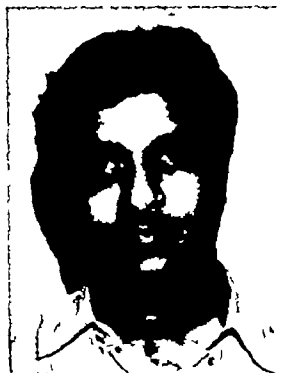
Sri Arun Maloo
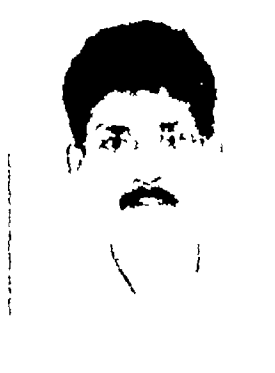
Sri Nischal Kankaria
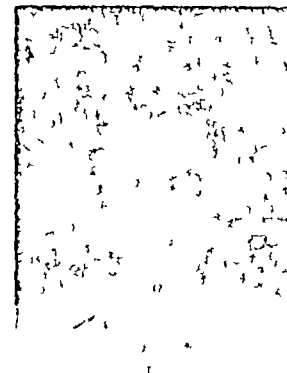
Sri Pankaj Bachhawat

Sri Sohan Raj Signhvi

Sri J L Rampuria

Sri Sohan Lal Golchha
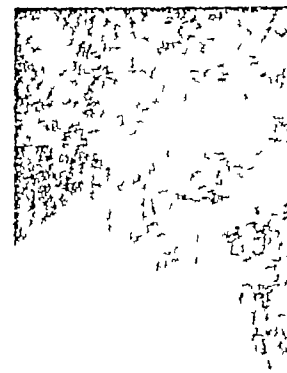
Sri B L Baid

Sri C M Abhani

Sri G. C Bothra

Sri M C Gelra
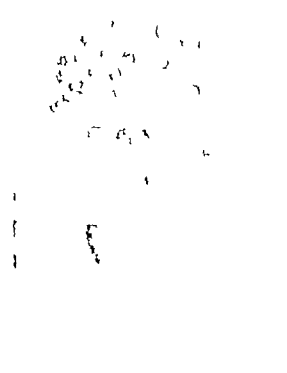
Sri S K Daftary

Sri K S Bhansali
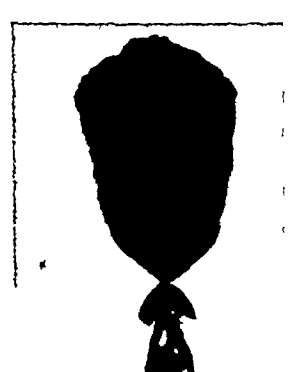
Sri T R Daga

Sri K S Kothari

Sri J L. Kamawat

SHREE S. S. JAIN SABHA
COMMITTEE MEMBERS

Sri K L Maloo
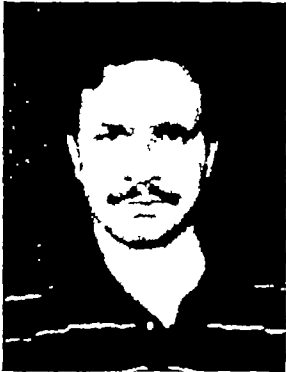
Sri B C Kankaria

Sri Suresh Minni

Sri Surendra Sethia

Sri Gopal Ch Bhura
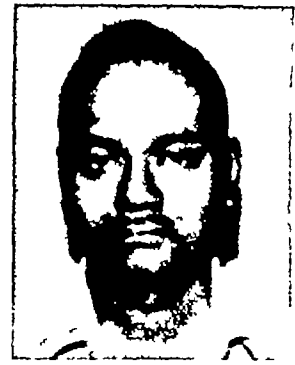
Sri Ajay Daga

Sri Sushil Gelra

Sri Kamal Karnawat

Sri G. C Kankaria

Sri Ajay Bothra

Sri Rajendra Buchha
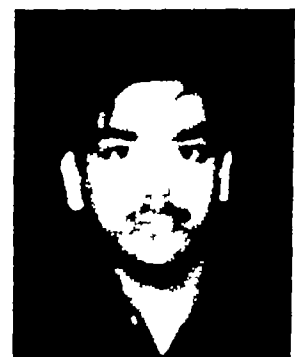
Sri Hanuman Nahata
(Office - in-charge)

Sri Bachhraj Abhani, Sri Rikhab Das Bhansali and Sri Harakh Chand Kankaria presenting the Sabha Literature to Swami Nityanandji Maharaj

Shree Burabazar Kumar Sabha Pustakalaya honours Sri S M Kankaria

Honourable guests on the occation of Diamond Jubliee of Shree Burabazar Kumar Sabha Pustakalaya
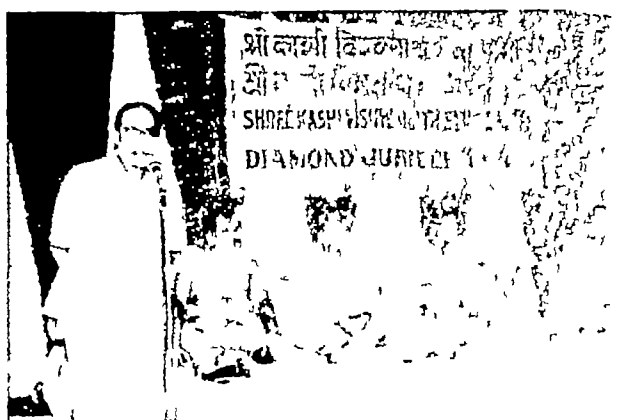
A speech of Sri S M Kankaria at Shree Kasi Vishwanath Seva Samity

Representation of our institution with different social & cultural organisations

Guest being honoured by Smt Phoolkunwar Kankaria

Smt Leela Bothra addressing the Dhyan & Yoga Camp

Sri S L Dugar President Shree Jain Vidyalaya, Howrah giving away the Cheque for Kargil War Relief Fund

Sri B L Baid honouring Sri K.L Sethia

Audience present at the eve of Annual Function and Mahavir Jayanti

Rashtrageet Scene
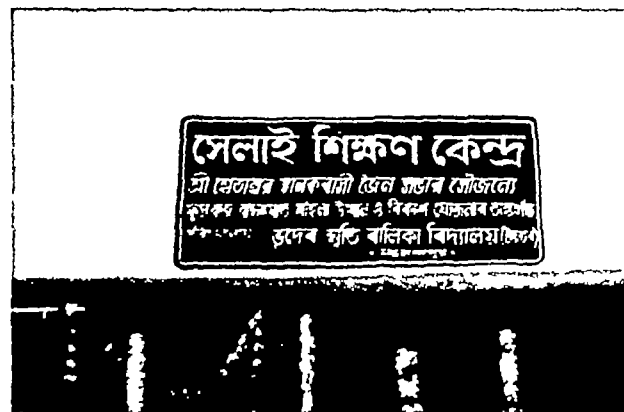
DIFFERENT SOCIAL SERVICES OF SABHA

Sri B L Karnawat taking the initial of the trustee Sri S M Kankaria

Dr D K Sinha, Vice Chancellor, Viswa Bharati University being garlanded by Sri R K Bothra

A Group Photgraph

Sri S M Kankaria presenting the momento to Dr L M Singhvi

Sri K L Gupta, Principal awarded by Sri K L Sethia on the occasion of Saat Dashak of Shree S S Jain Sabha at Science City

Sri B R Jain, Editor, Shiksha, Seva Aur Sadhana ke Saat Dashak receiving his momento from Dr L M Singhvi

Sri T N Sheshan and other dignitaries at Netaji Indoor Stadium, Diamon Jubilee of Shree Jain Vidyalaya, Kolkata

Sri S M Bachhawat, Sri R K Bothra & Sri S M Kankaria presenting the Lord Ganesha's framed idol made of sea foam
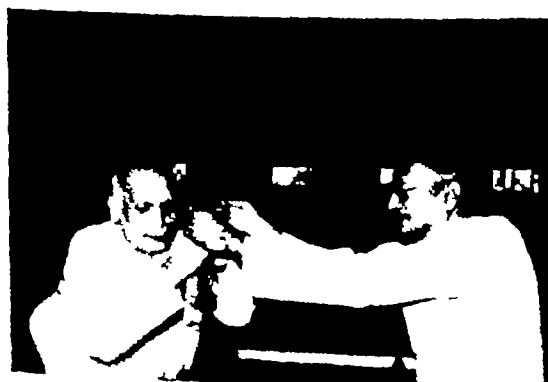
Sri S M Bachhawat garlanded by Sri B R Abhani

Dr Santosh Kr Bhattacharya awarding the Student

HIS EXCELLENCY SHRI VIREN J. SHAH

FELICITATING SRI SARDARMAL KANKARIA

A Millennium Tribute to Howrah

On 20th January 2001
At Agrasain Balika Siksha Sadan
1 Agrasain Street Liluah Howrah
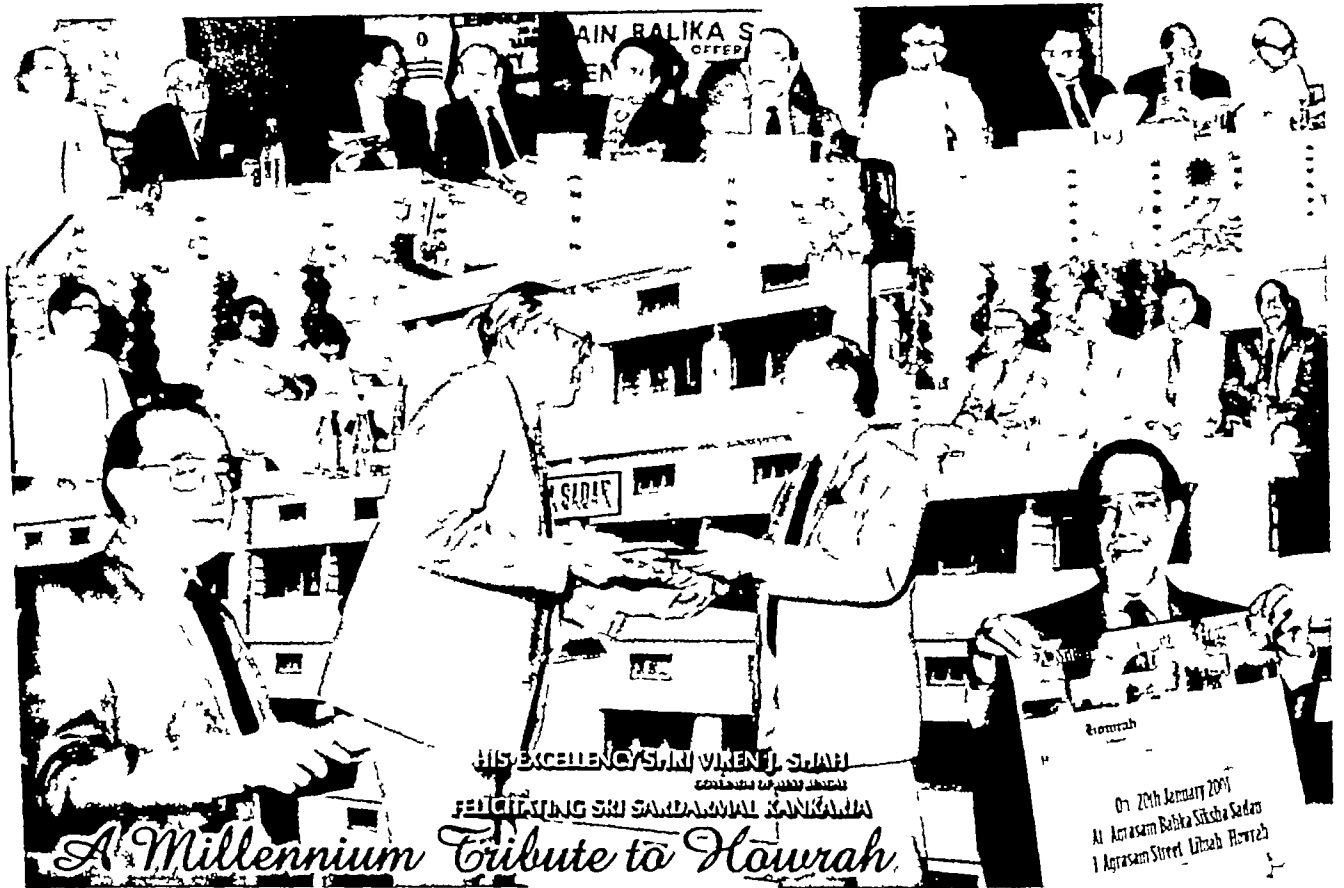
Felicitation of Sri Sardarmal Kankaria
by His Excellency Sri Viren J Shah Governor of West Bengal

Students welcoming Smt & Sri Kankaria

Sri S M Kankaria representing our sabha at Hooghly District Marwari Sammelan

Sri S M Kankaria representing our sabha at Akhil Bhartiya Marwari Sammelan

Sri Sardarmull Kankaria at Alokendu Bodh Niketan in a programme of Handicapped and mentally retarded students

His Excellency Governer, Prof Nurul Hasan in Handicapped camp at Shree Swetamber Sthanakvasi Jain Sabha Hall

SHREE S. S. JAIN SABHA

Sri Sardarmull Kankaria at the Inauguration of newly constructed Hall at Kolaghat

Cloth Distribution in the Rural Area - Sabha members, Sri Jaichand Lal Mukim and Sri Subhash Bachhawat. Ms Tripti Kankaria is also alongwith them

Computer Centre Inauguration
at Shreerampur Krishi Uchcha Vidyalaya
by Sri S M Kankaria Trustee
& Sri Lakhan Seth , M P

Sri K Sriwastav, Sri M C Sethia, Sri H C Kankaria & Sri Paras Kochar at Free eye operation and handicap camp organised in memory of Acharya Nanesh

President Sri Bachhraj Abhani and Trustee Sri Sardarmal Kankaria inaugurating "Ma Ashapura English Medium Primary School" in the Quake prone Kutch

SHREE S. S. JAIN SABHA

TARA DEVI KANKARIA JAIN VIDYALAYA (SAGAR MADHABPUR)
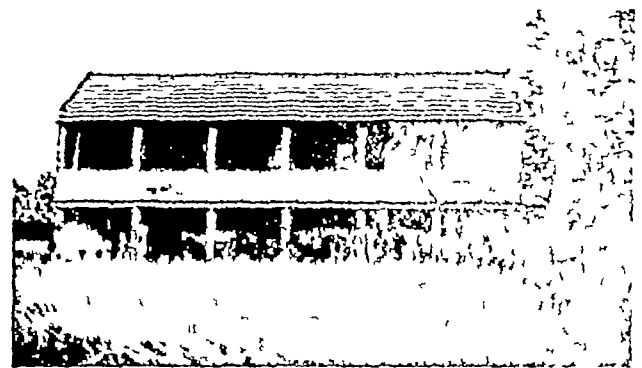
Inaugural Ceremony on 30th September 2001

SHREE S.S. JAIN SABHA
GRAMIN ANCHAL

Free Eye Operation Camp at Shantiniketan

Members of sabha at Sagar Madhabpur

Inaugural function of Deep Tube Well Sagar Madhabpur

Welcoming to B L Karnawat & R D Bhansali at Shantiniketan

Sri S M Kankaria addressing the inaugural ceremony of Computer Centre at Shreerampore Krishi Uchcha Vidyalaya

"Toran Dwar" at the eve of Inaugural Ceremony of Computer Centre

SHREE JAIN BOOK BANK
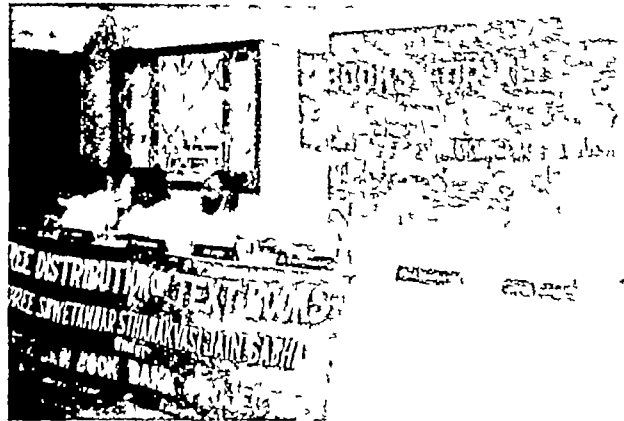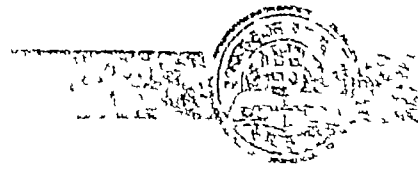
SHREE JAIN BOOK BANK

Sri Upendra Biswas, Director, C B I , along with
Sri R D Bhansali,Sri Sundarlal Dugar and
Sri Mohanlal Bhansali in the
Free Book Distribution Ceremony

Sri Subhash Bachhawat, Convenor introducing
Shree Jain Book Bank On the dias are Sri Arvind Chaturved,
Mahasweta Devi and Sri Thanmal Bothra

Md Salim Hon'ble Minister Minority Community
with other guests

Dr Mondal being honoured by Sri S M Kankaria

Mahasweta Devi deliberating speech
on the occasion of Book Bank

Mahasweta Devi distributing books to the student

SHREE JAIN VIDYALYA, KOLKATA
MANAGING COMMITTEE

S R Singhvi
President

Vinod Minni
Vice-President
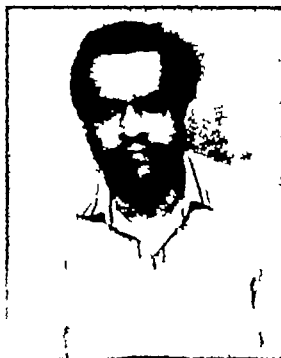
B C Kankaria
Secretary
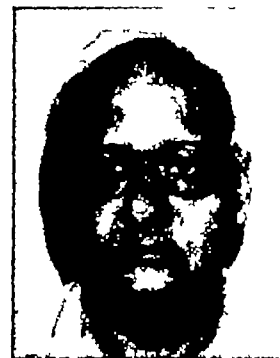
S C Pathak
Principal

S M Kankaria
Member

R K Bothra
Member

Mohan Lal Bhansali
Member
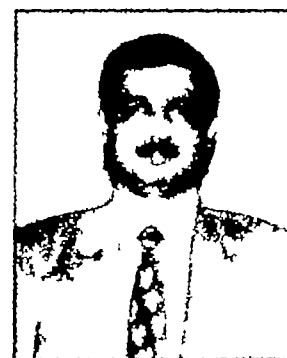
R K Daga
Member
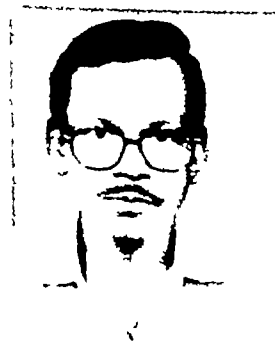
Gaur Vaidya
Govt. Nominee Member

R S Mishra
Member

A.K Tiwari
Vice-Principal

H N Upadhyaya
Vice-Principal

SHREE JAIN VIDYALYA
KOLKATA
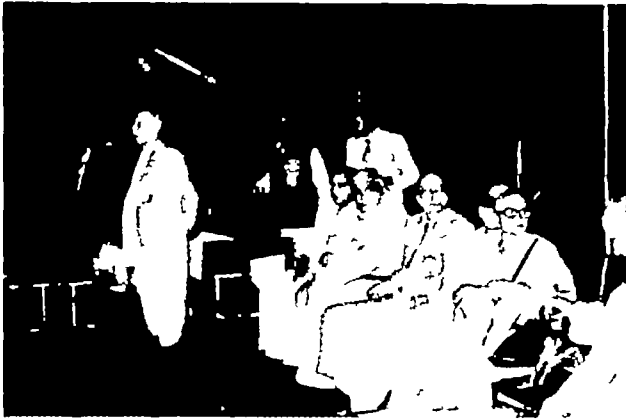
President S M Bachhawat addressing Golden Jubilee celebrations at Netaji Indoor Stadium, Kolkata Smt Anita Debi, President W B Council of H S Education being present as chief guest

Renowned Medical practitioner & Ex-student of the school Dr M K Goenka giving away the prizes
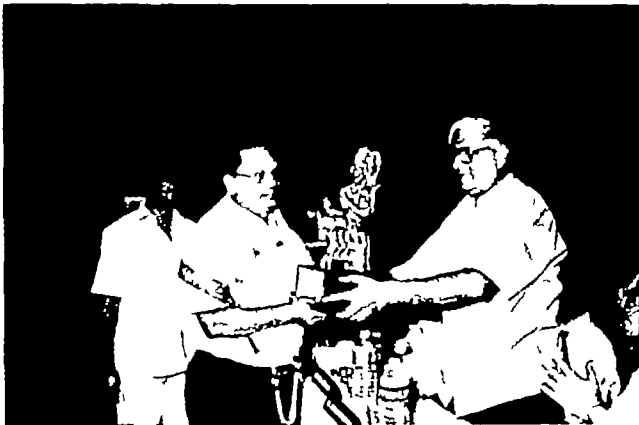
Dr B C Saha , devoted & renowned chemistry teacher being receiving the momento of Goddess Saraswati from Sri Jyotirmoya Mukhopadhyay, President W B Council of H S Education
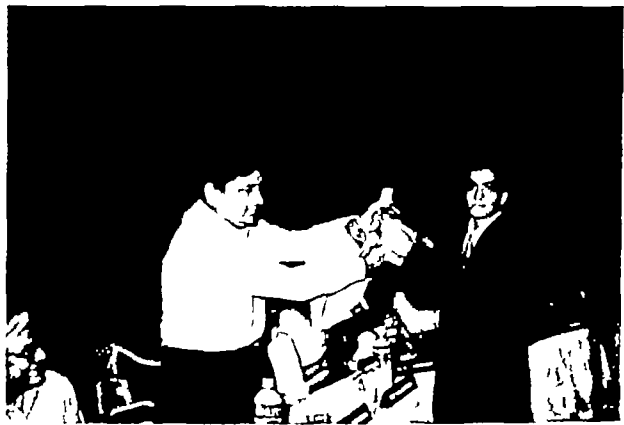
Sri Gautam M Chakravarti presenting "Vishistha Pratibha Puraskar" to Sri Mahavir Lunawat Gold Medalist at Company Secretary throughout India Exams

Welcome song on the ocassion of Annual Function Sri Jain Vidyalaya, Kolkata

Sri R K. Bothra honouring Sri G. Baidya, A I of Schools(SE) & Govt. Nominee of the school

HARAKH CHAND KANKARIA JAIN VIDYALYA - JAGATDAL

Harakh Chand Kankaria - President

Surendra Kumar Banthia -Vice-President

Sardar Mull Kankaria - Secretary

Balkrishna Harsh - Principal

R D Bhansali

R K Bothra

Ashok Bothra

R C Shukla

Vinod Singh

SHREE JAIN SHILPA SHIKSHA KENDRA - MANAGING COMMITTEE
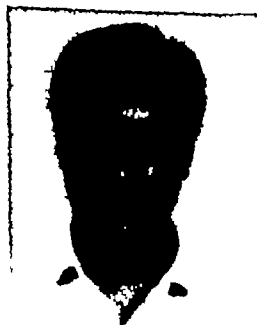
Lalit Kankaria-Secy

Geetika Bothra - Jt. Secy

A.K. Tewari - Principal

R.S Mishra - Co-ordinator

HARAKH CHAND KANKARIA JAIN VIDYALYA - JAGATDAL

Sabha President Sri Bachraj Abhani awarding the students Sri Harakh Chand Kankaria, President of the school is sitting on the stage

Sri Biswambhar Newar, Editor, Chhapte - Chhapte inaugurating the Computer Centre Also present are Sri Radheyshyam Mishra and Sri Surendra Kr Banthia

Sri Harakhchand Kankaria felicitating Sri Chatter Singh Baid

Sri Jay Kankaria felicitating Md Amin, Labour Minister Govt of West Bengal

Specialists from Shree Jain Hospital & Research Centre conducting the Health and Eye Check-up in the school

Girl students presenting the cultural programme on 26th Jan 2002

SHREE JAIN HOSPITAL & RESEARCH CENTRE

MANAGING COMMITTE - OFFICE BEARERS
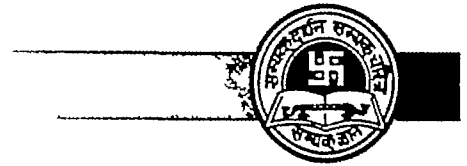
H C Kankana
President

S S Kejriwal
Vice-President
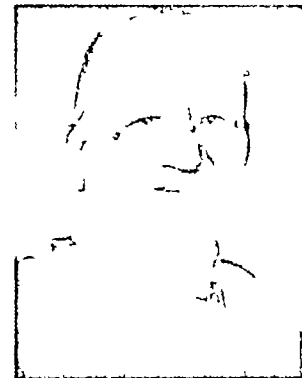
Shrichand Nahata
Vice-President

S M Kankana
Secretary

Ridhkaran Bothra
Treasurer

Ashok Minni
Jt. Secretary

Dr Narendra Sethia
Jt. Secretary

Manoj Mishra
Administrative Officer

SHREE JAIN HOSPITAL
& RESEARCH CENTRE

Welcome by the Band Party of Shree Jain Vidyalaya for Girls

Presenting the momento to the consulate, Germany on the ocassion of closing ceremony of Free Plastic Surgery Camp

Flag hoisting on the eve of Republic Day

Bhumi - Pujan

Abhinandan of Dr Urmila Binaikia by Mrs Kankaria

Sri Ashok & Alok Gupta receiving the momento from Sri Vinod Minnin on the ocassion of the Dialysis unit

SHREE JAIN HOSPITAL & RESEARCH CENTRE

Smt Umraodevi Kankaria, Smt Kesar Bai Kankaria and Sri Harakh Chand Kankaria inaugurating the Phusraj Puranmal Operation Theatre

Honouring Sri Mohan Chand Dhadha President Akhil Bharatiya Sri Jain Swetambor Khartargacha M...

Abhinandan of Dr Indrajeet Roy, Director, Medical Education, Govt of West Bengal by Sri B R Abhani, President Shree S S Jain Sabha

Sri Rikhab Das Bhansali Sabha President felicitating the renowned Eye Surgeon Dr I S Roy

Sri Rikhab Das Bhansali , Sabha President felicitating His Excellency Sri Vishnu Kant Shastri, Governor Himachal Pradesh
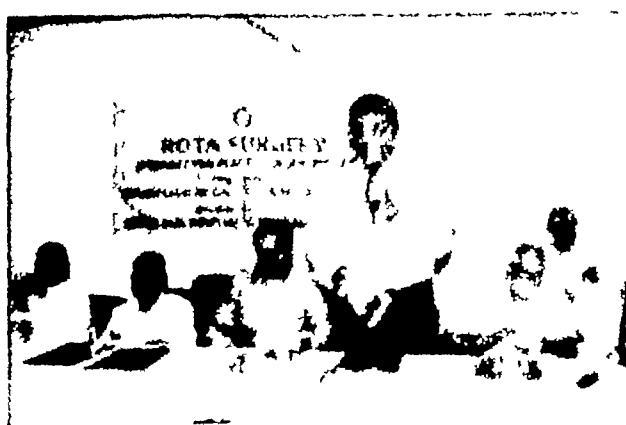
Sri Pradip Bothra speaks on the inaugu... of plastic surgery camp

SHREE JAIN HOSPITAL & RESEARCH CENTRE

Dr Lalit Agarwal, Sri Ashok & Alok Gupta, Sri S M Kankaria, Secretary of Hospital present on the inauguration of Dialysis Unit

Acharya Sri Chandanaji inaugurating the Jaichandlal Vindokumar Minni Conference Hall

Abhinandan of Smt Iswari Pd Tantia by Smt Shashi Kankaria on the inauguration of Dialysis Unit

Closing Ceremony of 2nd Plastic Surgery Camp

Sri Narendra Saraogi distributing Artificial Limb and Tricycle

Surgeons from Interplast, Germany

SHREE JAIN HOSPITAL & RESEARCH CENTRE
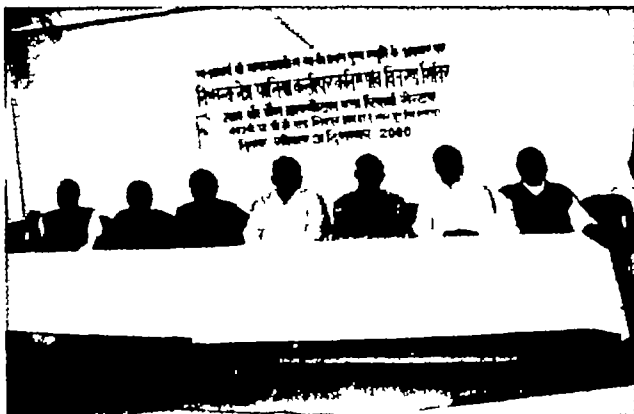
Dignitaries present in Free Polio Caliper and Artificial Limb Camp organised on the ocassion of 1st Punya Smriti of Acharya Sri Nanalalji Ma Sa

Free Artificial Limb provided by Shree Jain Hospital & Research Centre, Howrah
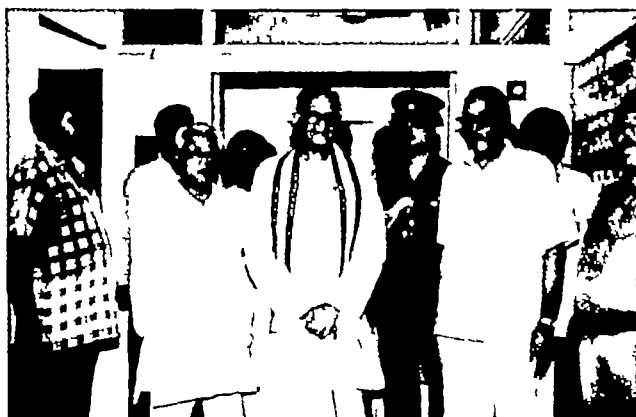
Free Surgical Camp organised by the Hospital being inaugurated by His Excellency Sri Vishnu Kant Shastri Governor Himachal Pradesh

Free Plastic Surgery performed by the surgeons of Interplast Germany

Pradip Bothra President, Rotary Club being garlanded by Sri Subhash Kankaria

Free Plastic Surgery performed by the surgeons of Interplast, Germany

SHREE JAIN HOSPITAL & RESEARCH CENTRE

Abhinandan of Sri Rajkaran Sirohia & Sri Vijay Ch Sirohia by Sri S L Dugar

Abhinandan of Sri Sanjay Sethia by Sri B L Karnawat

Sri Bhanwarlal Bothra inaugurating the Smt Munni Devi Moolchand Bothra Cabin. Also present are Sri Bherudan Bothra Sri Kishanlal Bothra Sunder Bothra and Jay Bothra

His Excellency Governer Sri Vishnukant Shastri inspecting the Hospital facilities

Smt Chinmoyee Dey addressing on the inauguration of Eye Department

Abhinandan of Sri and Smt. Iswari Pd Tantia by Sri Harakh Chand Kankana Also present Sri S M Kankana Secretary of the Hospital

विद्यालय खण्ड

श्री जैन विद्यालय, हावड़ा

२५/१, बोन विहारी बोस रोड, हावडा-७११ १०१

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा, कोलकाता द्वारा सन् १९९२ मे स्थापित एव सचालित।

प्रात कालीन एव दिवस विभाग

श्री जैन विद्यालय फॉर गर्ल्स १० + २

प्रात कालीन ६ ३० से ११ १५ बजे तक

पश्चिम बग माध्यमिक शिक्षा ससद एव पश्चिम बग उच्च माध्यमिक शिक्षा पर्षद द्वारा मान्यता प्राप्त

३३ सेक्सन २०४८ छात्राएँ ४७ शिक्षिकाएँ

श्री जैन विद्यालय फॉर ब्वायज १० + २

दिवस ११ ३० से ४ ३० बजे तक

पश्चिम बग माध्यमिक शिक्षा ससद एव पश्चिम बग उच्च माध्यमिक शिक्षा पर्षद द्वारा मान्यता प्राप्त

३२ सेक्सन २००६ छात्र ४३ + ७ = ५० शिक्षकवृन्द

छ तल्ला बिल्डिग, ६ तल्ले पर विशाल सभागार स्टेज सहित

पुस्तकालय पन्द्रह हजार पुस्तके एव विभिन्न पत्र पत्रिकाएँ

कम्प्यूटर कम्प्यूटर प्रशिक्षण प्रत्येक छात्र-छात्राओ के लिए अनिवार्य मल्टीमीडिया एव इण्टरनेट, लिफ्ट, जेनरेटर एव आधुनिक साउड सिस्टम से युक्त

माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक मे विगत अनेक वर्षो से परीक्षाफल शतप्रतिशत

दस वर्षीय सफल शैक्षणिक यात्रा की सम्पूर्ति के उपलक्ष्य मे **शिक्षा एक यशस्वी दशक**

`Education a glorious decade' समारोह का दिनाक १२ मई २००२ रविवार को प्रात काल ९ ३० बजे से नेताजी इन्डोर स्टेडियम मे भव्य आयोजन एव शिक्षा एक यशस्वी दशक स्मारिका का लोकार्पण, सास्कृतिक कार्यक्रम

सन् १९२८ मे सस्थापित श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा, कोलकाता के अमृत महोत्सव (प्लेटिनम जुबिली) का भी इसी भव्य समारोह मे शुभारभ। *प्रस्तुति* भूपराज जैन

श्री जैन विद्यालय फॉर ब्वॉयज

अध्यक्ष

१	श्री किशनलाल बोथरा	१९९२ से १९९६
२	श्री सुन्दरालल दूगड	१९९६ से अनवरत

उपाध्यक्ष

१	श्री सुरेन्द्र बाठिया	१९९२ से अनवरत

मत्री

१	श्री सरदारमल काकरिया	१९९२ से अनवरत

प्रधानाध्यापक

१	श्री कन्हैयालाल गुप्ता	१९९२ से १९९३
२	श्री भूपराज जैन	१९९३ से १९९४
३	श्री जयराम सिंह	१९९४ से १९९६
४	डॉ० गोपालजी दूबे	१९९६ से अनवरत

सदस्य

१	श्री रिखबदास भसाली	१९९२ से १९९६
२	श्री रिधकरण बोथरा	१९९२ से १९९६ २००० से अनवरत
३	श्री किशनलाल बोथरा	१९९६ से अनवरत
४	श्री भँवरलाल दस्साणी	१९९६ से २०००
५	श्री ललित काकरिया	१९९२ से २०००
६	श्री राधेश्याम मिश्रा	१९९२ से १९९६ २००० से अनवरत
७	श्रीमती शिप्रा मित्रा	१९९३ से १९९६
८	श्री विमल भसाली	१९९६ से २०००
९	श्री दिलीपकुमार गागुली	१९९६ से २०००
१०	श्रीमती अर्पिता अधिकारी	२००० से अनवरत
११	श्री दीपक काकरिया	२००० से अनवरत
१२	श्री अरुणकुमार तिवारी	१९९६ से अनवरत
१३	श्री अरिन्दम बोस	१९९६ से अनवरत
१४	श्री चन्द्रदेव चौधरी	१९६६ से अनवरत

स्थायी आमन्त्रित सदस्य

१	श्री रिखबदास भसाली	१९९६ से अनवरत
२	श्री कन्हैयालाल गुप्ता	१९९६ से २०००
३	श्री बच्छराज अभाणी	२००१ से अनवरत
४	श्री विनोदकुमार मित्री	२००१ से अनवरत
५	श्री अरुणकुमार तिवारी	१९९६ से अनवरत
६	श्री लक्ष्मीशकर मिश्र	१९९६ से अनवरत

श्री जैन विद्यालय फॉर गर्ल्स

अध्यक्ष

१	श्री किशनलाल बोथरा	१९९२ से १९९६
२	श्री सुन्दरलाल दूगड	१९९६ से २००१
३	श्री पन्नालाल कोचर	२००१ से अनवरत

उपाध्यक्ष

१	श्री सुरेन्द्र बाठिया	१९९२ से २००१
२	श्री आनन्दराज झाबक	२००२ से अनवरत
३	श्री महेन्द्र कर्णावट	२००२ से अनवरत

मत्री

१	श्री सरदारमल काकरिया	१९९२ से अनवरत

प्रधानाध्यापिका

१	श्रीमती ओल्गा घोष	१९९२ से अनवरत

सदस्य

१	श्री रिधकरण बोथरा	१९९२ से २००१
२	श्री राधेश्याम मिश्र	१९९२ से २००१
३	श्रीमती काता शर्मा	१९९२ से अनवरत
४	श्री ललित काकरिया	१९९२ से १९९६
		२००१ से अनवरत
५	श्रीमती स्वाति घोष	१९९२ से १९९८
६	श्रीमती कुसुमलता खान	१९९८ से अनवरत
७	श्री सुभाष बच्छावत	१९९२ से २००१
८	श्री दिलीपकुमार गागुली	१९९६ से २००१
९	श्री विजय शाहा	१९९६ से अनवरत
१०	श्री जवाहरलाल कर्णावट	२००१ से अनवरत
११	श्री अशोक बोथरा	२००१ से अनवरत
१२	श्री अरुण मालू	२००१ से अनवरत
१३	श्री सर्वानीशकर चौधरी	२००१ से अनवरत

स्थायी आमन्त्रित सदस्य

१	श्री रिखबदास भसाली	१९९६ से अनवरत
२	श्री कन्हैयालाल गुप्त	१९९६ से २००१
३	श्री बच्छराज अभ्भाणी	२००१ से अनवरत
४	श्री विनोदकुमार मित्री	२००१ से अनवरत
५	श्री अरुणकुमार तिवारी	१९९६ से अनवरत
६	श्री लक्ष्मीशकर मिश्र	१९९६ से अनवरत

श्री जैन विद्यालय, हावड़ा के निर्माण के सहयोगी

१	श्री नरेश दासगुप्ता
२	श्रीमती अनिला देवी
३	श्री बादल बोस
४	श्री प्रलय तालुकदार
५	श्री रमन माहेश्वरी
६	श्रीमती सरला माहेश्वरी
७	श्री अरुण माहेश्वरी
८	श्री रतन चौधरी
९	श्री विनोद बैद
१०	श्री विक्रम सिंह
११	श्री मुस्ताक अहमद
१२	श्री मूगालाल टेकडीवाल
१३	श्री सत्यनारायण मखारिया
१४	श्री प्रदीप कुण्डलिया
१५	श्री सुरेन्द्र चौधरी
१६	श्री इन्द्रदेव चौधरी
१७	श्री नरसिंहदास डागा
१८	श्री मनोज भरवाडा
१९	श्री सुपारसमल चौरडिया
२०	श्री प्रकाश कोठारी
२१	श्री सुशील डागा
२२	श्री पुखराज कोठारी
२३	श्री अब्दुल खान
२४	श्री कन्हैयालाल अग्रवाल
२५	श्री विभूतिभूषण चक्रवर्ती
२६	श्री दीनदयाल सारदा
२७	श्री कवल देव
२८	श्री शकर मोर
२९	डॉ० ए एन सामन्त
३०	श्री सज्जन टेकडीवाल
३१	श्री देवकान्त लाल
३२	श्री समर सिंह

अर्थ सहयोगी

श्री जैन विद्यालय, हावड़ा

(श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा कलकत्ता द्वारा सचालित भवन निर्माण के सहयोगीगण)

१। श्री फूसराज पूरनमल काकरिया
२। श्री जीवराज, विनोद कुमार वैद
३। श्री जयचन्द, मानकचन्द रामपुरिया
४। श्री दीपनारायण रामरतन चौधरी
५। श्री जेसराज वैद, परिवार
६। भीखमचन्द, भूरा परिवार
७। श्री सीताराम भरतिया चैरिटेबल ट्रस्ट
८। श्री पारसमल सरदारमल काकरिया
९। श्री हरखचन्द जयकुमार काकरिया
१०। श्री दीपचन्द, दिलीपचन्द काकरिया
११। श्री भँवरलाल करणावट
१२। श्री मोतीलाल, सुन्दरलाल दुगड
१३। श्री पाँचीराम नाहटा चैरिटेवल ट्रस्ट
१४। श्री सेठ भँवरलाल रामपुरिया चैरिटेवल ट्रस्ट
१५। श्री केशरदेव, रतनीदेवी गोयनका ट्रस्ट
१६। श्री बशीलाल, जानकीदेवी, अग्रवाल ट्रस्ट
१७। श्री चपालाल, भँवरलाल, हेरालाल भडारी
१८। श्री चतुर्भुज हनुमानलाल बोथरा
१९। श्री शिखरचन्द, प्रकाशचन्द मिन्नी
२०। श्री डुँगरमल, भँवरलाल, प्रकाशचन्द प्रदीपकुमार दस्सानी
२१। श्री आसकरन, किशनलाल बोथरा
२२। श्री जयचन्दलाल विनोद कुमार मिन्नी
२३। श्री नथमल, रिखबदास भसाली
२४। श्री कन्हैयालाल बच्छराज चादमल, फागमल अभानी
२५। श्री जसकरन, आसकरन, पारख
२६। श्री मोहनलाल विनायकिया
२७। श्री धनराज, निर्मलकुमार बाठिया
२८। श्री नेमीचन्द करणावट
२९। श्री अनूपचन्द अबीरचन्द सेठिया
३०। श्री विजयसिंह, अभयसिंह सुराना
३१। श्री जयचन्दलाल, इद्रचन्द सिरोहिया - सरदार शहर
३२। श्री छोटूलाल सेठिया चैरिटेबल ट्रस्ट
३३। श्री रूपचन्द, चन्द्रप्रकाश सिंघी
३४। श्री सोहनलाल बच्छराज दूगड
३५। श्री देवराज मेहता
३६। श्री महावीर सोनिका
३७। मेसर्स सुमेरलाल रायचन्द सेठिया
३८। श्री आनदमल, सुमेरमल भूतोडिया
३९। श्री सोहनराज सिंघवी
४०। श्री धनपति सिंह, दौलतसिह सुराना (विकानेर निवासी)
४१। श्री झूमरमल सुरेन्द्र कुमार दुगड
४२। श्री मोतीलाल प्रदीपकुमार बोथरा
४३। श्री मिर्जामल छगनलाल केजरीवाल चौरिटी ट्रस्ट
४४। मेसर्स बगाल आयरन कॉरपोरशन
४५। श्री फूसराज बच्छावत, बच्छावत परिवार
४६। श्री कन्हैयालाल शातिलाल मालू
४७। श्री कानमल जयचन्द मुकीम
४८। स्व० श्रीमती सुन्दरदेवी कोठारी (चुरू) की पुण्य स्मृति मे प्रकाशचन्द्र कोठारी
४९। स्व० श्री ताराचन्द बराडिया (बीकानेर) की पुण्य स्मृति मे श्री चादमल, पारसमल, राजमल बराडिया
५०। श्री कन्हैयालाल, नरेन्द्रकुमार अचलिया
५१। श्री नवरतनमल जैन
५२। श्री तेजकरण बोथरा की पुण्य स्मृति मे सुमतिचन्द, देवेन्द्र कुमार बोथरा
५३। श्री प्रदीपकुमार, विनोदकुमार कुंडलिया
५४। विजय सिंह कोठारी

५५। श्री चुन्नीलाल, भवरलाल कोठारी
५६। श्री कल्याणमल कोठारी (बीकानेर)
५७। श्री मगनलाल नथमल बेगानी
५८। श्री पन्नालाल हीराचन्द कोठारी
५९। श्री बालचन्द भूरट (कुचेरा) निवासी की पुण्य स्मृति मे पारसमल, राजमल, विजयसिह, वसत व निर्मल भूरट द्वारा
६०। श्री नवरतन, गौतमचन्द काकरिया
६१। श्री प्रतापसिंह ठठ्ठा (बीकानेर) परिवार
६२। श्री अखेचन्द, लूणकरण भण्डारी
६३। श्री जेठमल सुरेन्द्रकुमार बाठिया
६४। श्री छत्तरसिंह वैद
६५। मेसर्स बगाल रोलिग शटर्स एण्ड इजीनियारिंग वर्क्स
६६। श्री मिलाप प्रकाश चोरडिया
६७। श्री बुधमल दुगड (जौहरी) ट्रस्टी मानिकचन्द, मालीदेवी दुगड
६८। श्री त्रिलोकचन्द दुधोडिया
६९। श्री जगदीश राय जैन एण्ड सन्स
७०। श्री पानमल्त मिन्नी की पुण्य स्मृति मे श्रीमती भवरीदेवी मिन्नी (धर्मपत्नी)
७१। श्री मगनलाल, भवललाल, पारख (बीकानेर) की पुण्य स्मृति मे श्री भन्नूलाल पारख
७२। श्री सुखदेवदास, गोपीकिशन मेहता
७३। श्री दीपचन्द, जयचन्दलाल सेठिया
७४। श्री अजय कपूर
७५। श्री बस्तीमल्त, हस्तीमल रेखावत
७६। श्रीमती राधारानी सुखानी धर्मपत्नी - श्री चन्दनमल सुखानी
७७। श्री मानमल भूतोडिया-ट्रस्टी भूतोडिया मेमोरियल ट्रस्ट
७८। श्री छगनलाल, मोतीलाल सिरोहिया
७९। श्री शोभाचन्द पन्नालाल विनायक
८०। श्री भॅवरलाल कोठारी (चुरन) की पुण्य स्मृति मे श्री उमेन्द्र सिह, बच्छराज कोठारी
८१। श्री सुन्दरलाल गोलछा
८२। श्री रतनलाल डागा व श्रीमती जमुनादेवी डागा की पुण्य स्मृति मे श्री तनसुखराज, मनोजकुमार डागा
८३। श्री सुशीलचन्द, सजयकुमार दुगड
८४। श्री सूरजमल मगलचन्द चौधरी
८५। श्री ज्ञानचन्द ललितकुमार कोठारी
८६। श्री जयचन्दलाल, राजेन्द्रकुमार गेलडा
८७। श्री जशुभाई पटेल
८८। श्री ललितकुमार चौधरी
८९। श्री शुभकरण रायजादा
९०। श्री कृपाचन्द शातिलाल सुराना
९१। श्री लखमीचन्द लूणिया की पुण्य स्मृति मे अमरचन्द, जतनलाल, लूणिया
९२। श्री तोलाराम, फतेहराज डागा
९३। श्री भैरूदान काकरिया की पुण्य स्मृति मे मोतीलाल, मगनलाल गुलगुलिया
९४। श्री शखिरचन्द, मस्तपाल, बच्छावत
९५। श्री भँवरलाल राजेन्द्रकुमार नाहटा
९६। श्री गुलाबमल सिंघवी
९७। श्री मानकचन्द केसरीचन्द दुगड चैरिटेबल ट्रस्ट
९८। श्री हरिकिशनदास मल्ल ट्रस्ट
९९। श्री महेन्द्रकुमार, आनन्द राज झावक।
१००। श्री नथमल, विमलचन्द लूडिया
१०१। स्व० श्रीमती सूरजदेवीं खजाची धर्मपत्नी श्री हेमराज खजाची।
१०२। श्री तेजराज, अभयमल लोढा
१०३। श्री मनोहर, मदनचन्द बेगानी
१०४। श्री चन्दनमल दुगड
१०५। श्री जोधराज बोहरा चैरिटेबल ट्रस्ट
१०६। श्री विजयसिंह मानिकचन्द बोथरा
१०७। श्री वासुदेव लोहिया चैरिटी ट्रस्ट
१०८। श्री निर्मल नाहर
१०९। श्री दीपचन्द सुन्दरलाल गोलछा।
११०। स्व० भवरीदेवी नाहटा की पुण्य स्मृति मे नौरतमल नाहटा
१११। श्री दीपचन्द नवरतनमल बोथरा
११२। श्री लूनकरन, केशरीचन्द गेलडा
११३। श्री ईश्वरदास, तारकेश्वर छल्लानी
११४। श्री रामलाल गणेशमल चिण्डालिया
११५। श्री वीरेन्द्रसिंह बाठिया
११६। श्री हेमराज, पुखराज बेताला
११७। श्री लाभचन्द रामपुरिया परिवार
११८। श्री भवरलाल जेठमल बाठिया
११९। श्रीमती मालादेवी बच्छावत धर्मपत्नी मूलचन्द बच्छावत

१२०। श्री गोपाल चन्द नारायणकुमार बोथरा
१२१। श्री कमलकुमार अशोककुमार जैन
१२२। श्री शिखरचन्द रामचन्द वैद
१२३। श्री चॉदमल, रिलिजियस ट्रस्ट बर्धमान
१२४। श्री मगलचन्द मोहनलाल
१२५। कस्तूरीदेवी बम्ब की पुण्य स्मृति मे आलोकचन्द सुशील कुमार बम्ब।
१२६। श्री पन्नालाल जसकरन लुनिया
१२७। श्री मोहनलाल, कमलसिह वैद
१२८। श्री डालचन्द बाठिया मीनासर
१२९। श्री शातिलाल खटेड
१३०। श्रीमती मधु जैन
१३१। श्रीमती पूनमचद शामसुखा
१३२। श्री मगनलाल कोठारी (बीकानेर)
१३३। श्री भीखमचन्द, मोहनलाल, कमलासिह, विमलसिह व राजकुमार भसाली
१३४। श्री दीपचन्द, बुलाकीचन्द, किशनलाल, शातिलाल डागा
१३५। श्रीमती सम्पतदेवी कोठारी व श्रीमती सोहनी देवी कोठारी (चुरू) की पुण्य स्मृति मे कमलासिंह कोठारी
१३६। श्री कमलचन्द, जगराज, कैलाशचन्द मुकीम
१३७। श्री शकुनमल जैन (जालोर) की पुण्य स्मृति मे श्री मनसुख लाल जैन
१३८। श्री रामलाल, राजरूप, डोसी
१३९। श्री सम्पतराज रतनलाल काकरिया
१४०। श्री इन्द्रचन्द्र, उगमचन्द्र ललवानी
१४१। श्री हनुमान लाल लुनावत

प्रीति लाडिया, सप्तम् अ

□ महोपाध्याय माणकचन्द रामपुरिया

वीणा वादिनी जय हे ।

वीणा वादिनी जय है ।

ज्ञान-प्रभा नव ज्योति समुज्ज्वल,
तिमिराचल-पट किरणे उज्ज्वल,
नव प्रकाश बन उतरो साज्ज्वल–

मधुर सुभासिनी जय हे ।
वीणावादिनी जय हे।।

नव-नव सुमन खिले अन्तर के,
बीत चले युग मनवन्तर के,
विकसे सरसिज दृग-प्रान्तर के–

सहज सुहासिनी जय हे ।
वीणावादिनी जय है ।।

मानवता की उन्नति के स्वर,
देव-तत्त्व के पोषक सत्वर,
जडता-कटुता, सकल विषम हर–

कण-कण लासिनी जय हे।
वीणावादिनी जय हे।।

झकृत कर दे तार ह्रदय के,
नवप्रकाश अब खिले उदय के,
गूँजे गीत पवन-किसलय के–

स्वर-निनादिनी जय हे।
वीणा वादिनी जय हे।।

रुके रुकावट कही न कोई,
परम भावना रहे न सोई,
दृष्टि-दृष्टि से लगकर रोई–

कष्ट-नाशिनी जय हे ।
वीणावादिनी जय हे ।।

जन-जन हार बने शुचि कविता,
मेरे भाव-कुटिल की भविता,
चमके नभ मे पावन सविता–

भाव-विलासिनी जय हे ।
वीणावादिनी जय हे ।।

सकल सृष्टि नव-नव उद्भासित,
रन्ध्र-रन्ध्र निर्बन्ध सुवासित,
तृण-तृण-तरु-तरु त्वरित प्रकाशित

विश्व-रूपिनी जय हे ।
वीणावादिनी जय हे ।।

जय गणेश

सिद्धि-विनायक, हे गणनायक, तेरी जय-जय गाऊँ ।
तू ही मगल-दाता तेरे पद मे शीश नवाऊँ ।।
एकदन्त औ वक्रतुण्ड तू तेरी महिमा न्यारी–
कृपा करो सौभाग्य-विधाता दृष्टि खुले रतनारी ।

तडप रहा जग बडी व्यथा है, शान्ति-सुधा बरसाओ,
सर्वभूत जय मगलदाता ! जल्दी भू पर आओ,
घिरा चतुर्दिक अन्धकार है, गूँज रहा है क्रन्दन–
ज्ञान विभा फैलाओ भू पर जयति भवानीनन्दन ।

सम्मुख कष्ट अपार खडे है जागो हे वरदानी,
रूद्ध हुई जाती है सत्वर खोल मुखर कर वाणी,
खिले प्रकाश धरा पर नूतन मिटे सकल अँधियारी–
रजकण महिमावान बना है मूसक अतुल सवारी ।

विघ्न हरे, सब कष्ट कटे, यह धरती बने सुहावन,
शुभारम्भ तू शुभ प्रयत्न के तेरी गाथा पावन,
रोग-व्याधि सव मिटे, करे सव तेरा प्रतिपल वन्दन–
जय गणेश, जय सुख के दाता । जय-जय शकर नन्दन ।।

□ सरदारमल कांकरिया

श्री जैन विद्यालय, हावड़ा के बढ़ते कदम

नेताजी इन्डोर स्टेडियम कोलकाता मे दिनाक १५ जनवरी, १९८४ को आयोजित श्री जैन विद्यालय के स्वर्ण जयन्ती समारोह मे अतिथि पद से सबोधित करते हुए विश्वमित्र के सपादक श्री कृष्णचन्द्र अग्रवाल ने एक साहस भरी चुनौती दी थी कि श्री जैन विद्यालय, कलकत्ता तो आप लोगो के बुजुर्गो द्वारा बनाई गई सस्था है, आप लोग खुद कुछ करे तो जाने। बात बहुत पते की कही श्री अग्रवालजी ने। मीठी चुभन भी हुई। इससे कार्यकर्ताओ के मन मे एक लगन जगी कि कुछ नया किया जाये। आखिर हावडा मे स्कूल के निर्माण का निर्णय हुआ। जमीन क्रय से लेकर मकान बनाने के कठिन कार्य मे श्री रतन चौधरी एव श्री सुन्दरलाल दुगड का जबरदस्त सहयोग मिला। ८ महीने के अल्प समय मे ही भवन तैयार कराकर मई ९२ मे स्कूल चालू कर दिया गया। पहले साल ही १६०० छात्र-छात्राओ ने दाखिला लेकर हम लोगो पर जबरदस्त विश्वास प्रगट किया। इससे हम लोगो पर एक विशेष जिम्मेदारी आ गई। सुयोग्य अध्यापको की नियुक्ति करके स्कूल प्रारभ कर दिया। अध्यापको की कठोर मेहनत एव विद्यार्थियो की लगन के कारण परीक्षाफल प्रशसनीय रहने लगा। ३ वर्ष बाद जब विद्यार्थी बोर्ड की परीक्षा मे सम्मिलित हुए तो १०० प्रतिशत परिणाम आया। फिर हायर सेकेण्डरी की मान्यता भी मिल गई और हर वर्ष परीक्षाफल १०० प्रतिशत आने से मन मे अपार सन्तोष हुआ।

आज हावडा के लोकप्रिय स्कूलो मे श्री जैन विद्यालय की गणना प्रथम रूप मे होती है। लगभग १०० सुयोग्य शिक्षको की देखरेख मे इस समय ४२०० छात्र-छात्राएँ अध्ययनरत है। सभी धर्म के विद्यार्थी प्रेमपूर्वक शिक्षा प्राप्त कर रहे है। बहुत कम फीस मे अच्छी शिक्षा इस विद्यालय मे विद्यार्थी को दी जाती है। करीबन २०० विद्यार्थी बिना शुल्क के भी शिक्षा पाते है। स्कूल मे एक शानदार अतिआधुनिक कम्प्यूटर कक्ष है, १५००० पुस्तको की विशाल लाइब्रेरी है, मल्टीमीडिया कम्प्यूटर के द्वारा प्राइमरी के छात्र-छात्राओ को शिक्षा दी जाती है। स्काउट्स बैण्ड के अलावा कराटे की भी शिक्षा दी जाती है। लडकियो को नृत्य सिखाने की व्यवस्था भी है। स्कूल का अपना एक विशाल ऑडिटोरियम है। अध्ययन अध्यापन मे बिजली के अभाव मे किसी प्रकार की बाधा न आये एतदर्थ जेनरेटर की व्यवस्था है। एक लिफ्ट भी स्कूल मे है।

आज दस साल व्यतीत होने जा रहे है। इस अल्प समय मे स्कूल ने हावडा मे विशेष स्थान बनाया है। शिक्षा के क्षेत्र मे आगे हमारी योजना कॉलेज बनाने की भी है। श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा द्वारा सचालित यह विद्या मदिर अल्प समय मे अत्यन्त लोकप्रिय हो गया है। विद्यालय द्वारा अन्य जरूरतमद विद्यालयो को फर्नीचर एव पखे हर वर्ष प्रचुरता से दिये जाते है। पिछले २ वर्षो मे ४ कम्प्यूटर सेन्टर भी विद्यालय द्वारा स्थापित किये गये है। देवरिया गर्ल्स स्कूल मे २ कमरो का एक विंग भी विद्यालय के सहयोग से निर्मित किया जा चुका है। हरिराम हाई स्कूल देवरिया मे साइस की लेब्रोटरी एव कम्प्यूटर कक्ष, जिसमे ८ कम्प्यूटर, एक प्रिन्टर तथा एक वोल्टेज स्टेबलाइजर है, इस स्कूल की ओर से चालू होकर वहाँ के छात्रो को शिक्षित करने मे सहयोग दे रहा है। सागर माधोपुर (सुन्दरवन) मे एक प्राइमरी स्कूल का निर्माण भी कराकर स्कूल चालू कर दिया है तारादेवी कांकरिया जैन विद्यालय के नाम से। हमारा यह अनूठा प्रयास है। इस सफलता का श्रेय विद्यार्थियो की लगन, सुयोग्य शिक्षको के द्वारा सुन्दर ढग से अध्यापन एव मेहनत तथा प्रधानाध्यापिका एव हेडमास्टर की देखरेख एव कार्यसमिति की उचित सलाह एव सभा के अपूर्व सहयोग से ही यह सम्भव हो सका है। जमीन मिलने से इस स्कूल को और बढाने की हार्दिक भावना एव कामना है।

एक दशक की सम्पूर्ति के अवसर पर मै सबको बधाई देता हूँ एव विश्वास करता हूँ कि यह विद्यालय भविष्य मे कीर्तिमान स्थापित करने मे सफल होगा।

मानद मत्री
श्री जैन विद्यालय, हावडा

□ सुन्दरलाल दुगड़

जहाँ चाह वहाँ राह

२५/१, बोन बिहारी बोस की जो भूमि मैंने व श्री रतनजी चौधरी ने क्रय की थी, उसी को श्री जैन विद्यालय स्थापित करने के लिए उचित स्थान समझकर श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा के पदाधिकारियो ने पसन्द कर लिया एव हमने भी सहर्ष यह भूमि विद्यालय निर्माण के लिए समर्पित कर दी। उस समय यह स्वप्न मे भी नही सोचा था कि इतना शीघ्र इस पर भवन निर्मित हो जायेगा एव एक विशाल विद्या मदिर की स्थापना हो जाएगी। सभा के कर्मठ कार्यकर्ताओ एव पदाधिकारियो के दृढ सकल्प, कठोर परिश्रम तथा अथक अध्यवसाय ने श्री जैन विद्यालय हावडा को मूर्त रूप प्रदान किया एवं सन् १९९२ मे यह विद्या केन्द्र छात्र-छात्राओ को शिक्षा प्रदान करने के लिए तत्पर हो गया।

कहावत है–'जहाँ चाह वहाँ राह'। श्री जैन विद्यालय, हावडा के निर्माण ने इस कहावत को चरितार्थ किया है। प्रयत्न और परिश्रम से असभव भी सभव हो जाता है। पॉच तल्ले का विशाल श्री जैन विद्यालय प्रयत्न और परिश्रम का ही सुफल है। आज श्री जैन विद्यालय मे ४२०० छात्र-छात्राएँ अध्ययनरत है एव यह अपनी शैक्षणिक यात्रा के दस वर्ष पूर्ण कर रहा है, यह अपने आप मे महत्वपूर्ण है। मेरा सौभाग्य है कि मुझे इस विद्यालय की प्रबन्ध समिति का अध्यक्ष वनाया गया। शायद इसके निर्माण मे मेरी रुचि एव प्रयत्न का ही यह सुफल है। मैने तो अपने दायित्व के निर्वाह का प्रयत्न किया है।

इस विद्यालय ने हावडा मे एक बहुत बडे अभाव की पूर्ति की है। एक अच्छे शिक्षण सस्थान की कमी को इसने पूरा ही नही किया अपितु हावडावासियो को एक उच्च शिक्षण सस्थान प्राप्त हो गया। अच्छे परीक्षा परिणाम, अनुशासन एव उच्च शिक्षण स्तर ने न केवल हावडा मे अपितु कोलकाता के अच्छे शिक्षण सस्थानो मे इसने अपना स्थान बना लिया है। अध्यापको की लगन, मेहनत एव अध्यापन के प्रति समर्पण भावना का ही यह परिणाम है।

विद्यालय मे कक्षा एक से अध्यायन अध्यापन होता है। हमारी इच्छा है कि यहाँ नर्सरी की कक्षाएँ भी प्रारभ हो इसके लिए जमीन और भवन की सख्त आवश्यकता है। यदि हावडा म्युनिसिपल कार्पोरेशन अपनी वह जमीन जहाँ मुर्दों को जलाकर वायुमडल को प्रदूषित किया जाता है, विद्यालय को पार्क बनाने के लिए प्रदान कर दे ताकि उसका उपयोग हो सके तदर्थ हम प्रयत्नशील है एव अधिकारियो से अनुरोध है कि शिक्षण सस्थान के आस-पास का वातावरण शुद्ध, स्वच्छ एव प्रदूषण रहित बनाने के लिए स्वेच्छा से हमे भूमि प्रदान कर दे ताकि एक बहुत अभाव की पूर्ति हो सके। अन्य जमीन मिलने पर वहाँ नर्सरी की कक्षाओ के लिए भवन बनाने का विचार है जिससे यह सुविधा भी हावडावासियो को प्राप्त हो सके।

हावडा मे एक अच्छे कॉलेज की भी अत्यन्त आवश्यकता है ताकि हावड़ावासियो को उच्च शिक्षण के लिए कोलकाता के कॉलेजो का चक्कर न काटना पडे। सभा के पदाधिकारीगण एव कार्यकर्ताओ का यह चिन्तन निरन्तर चल रहा है। मुझे विश्वास है कि हमारे ये स्वप्न भी शीघ्र साकार होंगे एव हावडावासियो के बच्चो को प्रारम्भिक से लेकर उच्च शिक्षा यही प्राप्त हो जायेगी।

श्री जैन विद्यालय, हावडा ने अपनी एक दशकीय शैक्षणिक यात्रा पूर्ण की है एव शिक्षा एक यशस्वी दशक समारोह का आयोजन हो रहा है। इस अवसर पर स्मारिका भी प्रकाशित हो रही है, इसकी पूर्ण सफलता की हार्दिक कामना करता हूँ। छात्र, शिक्षक, अभिभावक एव प्रबन्धन इसके महत्वपूर्ण अग है। मै सबको हार्दिक बधाई देता हूँ तथा अपनी अशेष शुभकामनाएँ समर्पित करता हूँ। इसी समारोह से श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा के कौस्तुभ जयन्ती के वर्ष व्यापी कार्यक्रमो का शुभारभ भी हो रहा है, यह सोने मे सुहागा एव मणिकाचन सयोग है।

अध्यक्ष
श्री जैन विद्यालय फॉर ब्वायज, हावडा

□ पन्नालाल कोचर

स्त्री-शिक्षा : अनिवार्यता

श्री जैन विद्यालय, हावडा अपनी शैक्षणिक यात्रा के दस वर्ष पूर्ण कर चुका है एव अपनी इस सफल यात्रा के उपलक्ष्य मे 'शिक्षा एक यशस्वी दशक' समारोह का आयोजन कर रहा है, यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है। मै इस समारोह की सफलता की कामना करता हूँ एव उन पदाधिकारियो, कार्यकर्ताओ, शिक्षको एव छात्रो को हार्दिक बधाई देता हूँ जिनके अथक परिश्रम, अध्यवसाय, लगन का यह सुखद परिणाम है।

कुछ समय पूर्व ही मुझे श्री जैन विद्यालय हावडा फॉर गर्ल्स की प्रवन्ध समिति का अध्यक्ष भार दिया गया है। शिक्षा के क्षेत्र मे मेरी बहुत गति न होने पर भी मुझे यह दायित्व दिया गया है, इस दायित्व के सम्यक् निर्वाह का मै प्रयत्न करूँगा।

भारतवर्ष मे स्वतत्रता के बाद शिक्षा के क्षेत्र मे गुणात्मक परिवर्तन अवश्य हुआ है। तकनीकि एव अन्य सकायो का भी काफी प्रचार-प्रसार हुआ है लेकिन भारतीय सस्कृति, सभ्यता एव वातावरण के अनुसार जो स्वरूप एव स्तर होना चाहिए था, वह नही हो पाया है। राजनीति एव क्षुद्रस्वार्थो ने इस पावन क्षेत्र को गदा कर दिया है या यो कहे कि मैकाले ने जिस उद्देश्य से शिक्षा का जो स्वरूप प्रचलित किया था, उसमे वह आजादी के बाद और अधिक प्रभावी हो गया। अनेक आयोगो का गठन किया गया एव उन्होंने अपने सुझाव भी दिये किन्तु उनके अनुरूप कोई परिवर्तन अभी तक नही हुआ।

हमारे यहाॅ एक कहावत थी कि माॅ की गोद ही बालक की प्रथम पाठशाला है। किन्तु आज बिल्कुल इसके विपरीत हो रहा है। दूध मुँहे बच्चे को गोद से अलग कर किंडरगार्टेन स्कूलो मे भेज दिया जाता है। इसको आज रोकने की आवश्यकता है। जो माँ की गोद से बालक सीख सकता है, वह अन्यत्र अति दुर्लभ है। अत स्त्री शिक्षा को प्राथमिकता देना आवश्यक है। If you educate a girl, you educate a family बच्चा राष्ट्र का भावी निर्माता है, यह तभी चरितार्थ हो सकता है जब माॅ पूर्णतया शिक्षित हो और अपने बच्चो को वह भारतीय परिवेश के अनुसार ढाल सके। श्री जैन विद्यालय, हावडा फॉर गर्ल्स के द्वारा जो शिक्षा प्रदान की जा रही है, वह उसी उद्देश्य की पूर्ति मे सफल हो, यही हमारा प्रयत्न है। स्त्री शिक्षा का स्तर काफी ऊँचा उठा है पर इसे सतोषजनक नही कहा जा सकता है। उच्च एव तकनीकी शिक्षा मे लडकियाॅ अभी भी लडको से काफी पीछे है। इसमे उनके अभिभावको या माता-पिता की मानसिकता बाधक है। लडकियो के माता-पिता या अभिभावक उसके विवाह की शीघ्रता करने लगते है। यो भी कह सकते है कि लडकी विवाह योग्य हो गई है अत इसका विवाह कर देना उचित है ताकि वे अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो सके। इसी मानसिकता के चलते अभी भी हमारी लडकियाँ तकनीकी क्षेत्र मे आगे नही बढ पा रही है अत अभिभावको को इस मानसिकता से मुक्त होने की आवश्यकता है।

आज लॉरेटो एव अन्य मिशनरी स्कूल की तरह से हमारे यहाँ भी व्यवस्था होनी चाहिए ताकि छात्राएँ अध्ययन के साथ-साथ अपनी अन्य रुचियो का विकास कर सके एव जीवन के हर क्षेत्र मे गति कर सके, किसी से पिछडी न रहे।

प्रसन्नता है कि श्री जैन विद्यालय, हावडा हर प्रकार के वर्तमान एव अधुनातन साधनो से सम्पन्न एव युक्त है। एक अच्छी लाइब्रेरी, कम्प्यूटर, मल्टीमीडिया, इण्टरनेट आदि की पूर्ण सुविधाएँ है एव छात्र-छात्राओ को इसका लाभ भी मिल रहा है।

मै पुन उन कार्यकर्ताओ एव पदाधिकारियो को बधाई देता हूँ जिन्होंने हावडावासियो को यह सौगात दी है।

यह एक सुखद सयोग है कि सन् १९२८ मे सस्थापित श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा के कौस्तुभ जयन्ती वर्ष का प्रारभ श्री जैन विद्यालय, हावडा के शिक्षा एक यशस्वी दशक समारोह से हो रहा है।

अध्यक्ष–
श्री जैन विद्यालय फॉर गर्ल्स, हावडा

❑ सुरेन्द्रकुमार बांठिया

चरित्र निर्माण का केन्द्र :: श्री जैन विद्यालय

गर्व एव गौरव का बोध हो रहा है यह जानकर कि जैन विद्यालय हावडा अपनी स्थापना के दस वर्ष पूर्ण कर रहा है। एक सस्था के इतिहास मे दस वर्ष का समय कुछ अधिक नही होता, किन्तु इस अल्पकाल मे इस विद्यालय ने शिक्षा के क्षेत्र मे इतना सम्मान अर्जन कर लिया है कि हावडा के अच्छे विद्यालयो मे ही नही अपितु हावडा अचल मे हिन्दी भाषी समाज द्वारा सचालित विद्यालयो मे इसकी गणना सर्वश्रेष्ठ विद्यालयो मे की जाती है। कोलकाता मे स्थानाभाव के कारण बहुत से परिवार हावडा मे आकर बस गए। उनके बच्चो की अच्छी शिक्षा के लिए इस अचल मे एक ऐसे विद्यालय की आवश्यकता थी जहॉ उनके बच्चो को शिक्षा दी जा सके। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए स्थानकवासी जैन सभा के समर्थ सदस्यो ने एक विद्यालय स्थापित करने का सकल्प लिया। माननीय श्री सरदारमलजी काकरिया की देख-रेख मे छ महीने के अन्दर भवन बनकर तैयार हो गया और शिक्षा-दीक्षा का कार्य भी आरम्भ हो गया। अपनी स्थापना से आज तक विद्यालय का परीक्षाफल शत-प्रतिशत रहा। उच्च माध्यमिक शिक्षा विभाग द्वारा अच्छे प्रशिक्षण के लिए विद्यालय के दोनो विभागो (ब्वायज एव गर्ल्स) को 'ए' श्रेणी का प्रमाण पत्र मिला है।

हमारा समाज सम्यक् चारित्र, सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान मे विश्वास करता है, इसीलिए इस विद्यालय मे शिक्षा के साथ-साथ चरित्र निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। कक्षाओ मे शिक्षक एव शिक्षिकाएँ भी प्रयत्नशील है कि बच्चो का चरित्र-निर्माण उचित रूप से हो। अच्छे स्वास्थ्य के लिए नियमित व्यायाम की व्यवस्था है। माध्यमिक के पाठ्यक्रम मे योगासन आदि की व्यवस्था की गई है। छात्र-छात्राऍ स्वय अपनी सुरक्षा कर सके इसलिए प्रशिक्षित प्रशिक्षको द्वारा कराटे की ट्रेनिंग दी जाती है। इनमे से कई छात्र-छात्राऍ ब्ल्यू बेल्ट भी पा चुके है। शिक्षा शुल्क भी कम है। इससे हावडा के धनी-गरीब, सभी वर्ग के अभिभावक अपने बच्चो को पढने के लिए भेज पा रहे है।

समय-समय पर विशेष विषयो के विद्वानो को बुलाकर उनका व्याख्यान कराया जाता है। व्यावसायिक शिक्षा के लिए कम्पनी सेक्रेटरी और कम्प्यूटर के लिए विभिन्न सस्थाएँ व्याख्यान तथा प्रायोगिक शिक्षा देते है। समय की माग देखते हुए विद्यालय मे कम्प्यूटर, इण्टरनेट तथा मल्टीमीडिया की व्यवस्था भी की गई है। छात्र-छात्राओ की उच्च शिक्षा की व्यवस्था के लिए एक कॉलेज की आवश्यकता महसूस की जा रही है। हमलोग जमीन खोज रहे है।

अन्त मे मै विद्यालय के शिक्षक-शिक्षिकाओ तथा प्रधानाध्यापिका तथा रेक्टर को धन्यवाद देता हूँ जिनके अथक परिश्रम से विद्यालय इतना शीघ्र उन्नति के शिखर पर चढता जा रहा है।

उपाध्यक्ष

श्री जैन विद्यालय फॉर ब्वायज, हावडा

एकता अग्रवाल, ११-बी

□ महेन्द्र कर्णावट

हावड़ावासियों के लिए वरदान

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि श्री जैन विद्यालय हावडा अपनी दस वर्षीय शैक्षणिक यात्रा की सम्पूर्ति के उपलक्ष्य मे 'शिक्षा एक यशस्वी दशक समारोह' का आयोजन नेताजी इनडोर स्टेडियम मे कर रहा है एव इस अवसर पर 'शिक्षा एक यशस्वी दशक' स्मारिका का लोकार्पण भी हो रहा है।

किसी भी शैक्षणिक सस्थान के लिए दस वर्ष एक अल्प अवधि है। इस अल्प अवधि मे भी श्री जैन विद्यालय हावडा ने हावडा की शिक्षण सस्थाओ मे महत्वपूर्ण एव अग्रणी स्थान वनाया है। यह छात्र, अध्यापक, अभिभावक एव प्रवन्धन के समन्वय का महत्त्वपूर्ण प्रतीक है। इस चतुष्कोण के ऐक्य एव सामजस्य के कारण यह विद्यालय निरन्तर प्रगति की ओर उन्मुख है।

इस निर्माण मे श्री सरदारमलजी सा काकरिया श्री रिखवदासजी भसाली, श्री रिधकरणजी वोथरा आदि के साथ मेरे स्व० पिता श्री भँवरलालजी कर्णावट का भी विशेष योगदान रहा है। उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि यह विद्यालय अपने नाम के अनुरूप यशस्वी एव गौरवशाली बने।

विगत अनेक वर्षो से इस विद्यालय की माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक कक्षाओ का परिणाम केवल शतप्रतिशत ही नही रहा है वल्कि कई विषयो मे उच्च अक प्राप्त कर छात्र-छात्राओ ने इस विद्यालय को गौरवान्वित किया है। वस्तुत शिक्षक शिक्षिकाओ के अथक अध्यवसाय, कठोर परिश्रम एव लगन का यह परिणाम है। हावडावासियो के लिए तो यह विद्यालय एक वरदान है।

शिक्षा का उद्देश्य केवल शिक्षित होना ही नही है अपितु एक सभ्य नागरिक भी वनना है। इस विद्यालय से निकलनेवाले छात्र-छात्राए निश्चित ही शिष्ट नागरिक बनकर इस विद्यालय, समाज एव राष्ट्र को गौरवान्वित करेगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

किसी भी शिक्षण सस्थान का द्रुत विकास छात्र, अध्यापक, अभिभावक एव प्रवन्धन के सामजस्य पर निर्भर करता है एव यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि इस चतुष्कोण के समन्वय के कारण यह विद्यालय दिनोदिन आगे बढ रहा है। उच्च शिक्षण स्तर, अनुशासन एव शतप्रतिशत परीक्षा परिणाम ने इस विद्यालय को इतना लोकप्रिय वना दिया है कि छात्र छात्राओ की सख्या निरन्तर बढ रही है एव यह स्थान छोटा पडने लगा है।

इस क्षेत्र मे एक कॉलेज की भी नितान्त आवश्यकता है यदि पदाधिकारी गण कॉलेज का निर्माण कर सके तो वह सोने मे सुहागा होगा। मै समारोह की पूर्ण सफलता तथा विद्यालय के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

उपाध्यक्ष
श्री जैन विद्यालय फॉर गर्ल्स, हावडा

श्वेता पारख, सप्तम् म

❑ Dr G J Dubey
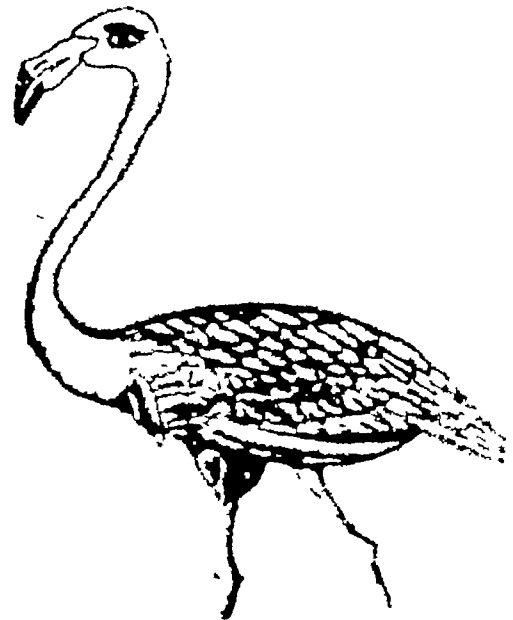
Value Education

In 1947, we became an independent country We got the freedom, but largely we had to depend on others So much so, that in framing our constitution, we had to depend on the constitutions of many countries in general and on the British constitution in particular We also depended on the British system of education to some extent During the struggle for freedom almost in all the annual sessions of Indian National Congress, the congress president declared that in our country colonial system of education was prevailing It was worthless and they would have change that lock, stock and barrel, but we could not change it even now We generally followed the system of education as recommended by Wood despatch in 1854 After independence several commissions and committees recommended more or less within the limit of the same structure Sometimes some changes were brought but they remained on papers only In the last four decades because of the idea of globalisation and progress in Information Technology, the world came closer But there was no assimilation of cultures Most of the countries forgot their old culture but could not put on the garb of new culture properly Thus there is a cultural crisis in the world India is not an exception to it, Indian society has changed at a very fast rate but education could not change at that rate Today's social changes and value changes have challenged the educational system to develop forms of teaching, learning and ways to use free time which will help young people become effective in a democracy

In our present society, there are several hurdles which we have to cross In our schools we have been experimenting to make our pupils free and fearless In this context I shall like to share with my readers one of many experiences which I came across in our schools

One day a boy came to me and said " Sir, will you not allow me to sit for my final examination tomorrow ?"

"Why?"

"Because my mother could not clear the last quarter fee dues within the stipulated date " feeling guilty the boy replied

This was a dialogue between a six years old boy reading in class I B and me

I allowed him to sit for the examination He looked into my eyes and said, "Thank you, Sir"

The mother was also accompanying her son, But she was standing behind the door She came out to express her gratitude She promised to pay the fee before the publication of the result of or son

I started thinking about the plight of the boy I admired his boldness but was sorry to think that at this tender age of 5-6 we are making him aware of the stark reality of the world

The experience gained by the boy is due to his need but this experience or education becomes a quality in democracy In a democratic society it becomes necessary to express one's point of view properly and frankly

This is not the lone example There are many pupils in several schools They have to discontinue their education as they are not able to afford to pay the tuition fees The pupils and the guardians both are afraid of meeting the administrator This is cowardice No principal would deprive any pupil from appearing in the examination for not paying the tuition fee He or she may withhold the result In expressing truth a pupil should not be afraid

To develop this trait of personality there is a need of special type of administration in education Now the question is whether it should be lenient, or, it should be strict In my opinion both of the above two types are not desirable It should be sympathetic There should be rapport between an administrator and pupils

Now the question is why do these pupils not go to Government schools or government aided schools ? These schools are free Reason is clear First, they do not get admission in government schools as there is no vacancy The Government schools are few and far between Yes, there are government aided schools There are vacancies also But many of these schools are in a pathetic condition There is no required number of teachers Infrastructure is either absent or needs proper maintenance or repair Teaching is neglected There are no proper administration and supervision

It is said that we prepare students for their alround development We have to make all possible efforts to see for the proper development of pupils Besides, the knowledge and skill, there should be inculcation of right type of attitude, interest and values also in students But

how ? A boy stays with us about 5 to 6 hours on each working day There are good number of holidays which create so often a gap between the teaching works A study indicates that there are hardly 200 working days Thus we get a little time to work for good behaviour A student spends a considerable amount of time in his home Whatever time the school gets, it has to spend in preparing students for the examination Creditability of the school depends on the final examination result Thus in this short span of teaching periods we have to prepare the students for the stereo type of examinations only

Naturally this defective system of examination forces teachers to encourage the students for rote memorisation What ever students prepare for their examinations become obsolete and irrelevant when they come in the real society to earn their livelihood

It is said that knowledge doubles in ten years time Thus the knowledge is increasing in geometrical progression But the time to gain it, is limited After certain age they have to join the chorus of life, with this irrelevant and outdated knowledge

Thus, it should be the endeavour of teachers to see that the students are prepared in such a way that they themselves could read, write and understand the new knowledge which is published in the form of books Thus students should be capable of reading and understanding the subject matter in various capacity The home, the peer groups, parents, media may be of great help in educating a boy A student who does not get proper atmosphere cannot develop properly He is very much a product of his family atmosphere There may be scarcity of fund in the family The father may be fully busy, having no time to meet his children Mother not having any education worth name Or, father's inability to keep the family with him In cases where the child is living with his parents (both father and mother) the child sees, in some cases parents quarreling, Sometimes father beating the mother for no fault of her, Father might be an addict, but he wants that his child should get good education A smoker never wants that his ward should smoke A person who drinks does not want that his son should drink Therefore, parents for the proper up bringing of their children should sacrifice their momentary pleasure We want equality in educational opportunity but there is no equality in economic and social status This is the saddest part of our educational system that earning and learning do not go hand in hand When we learn, do not earn and when we earn do not learn

We want that each and every boy should be honest To fulfil this aim we ourselves should also have an ideal character We should not harass the boy for taking private turion The difficulty today is that the consumerism had made us so much materialistic that we are always involved in earning by hook and crook - not thinking what is right and what is wrong

In last four decades there had been rapid and pervasive social change It is one of the major changes in values But the only values which did not change are so inclusive that they are vaguely defined For instance, the value of honesty was always important, but in actual practice, they are greatly changed Again, justice is an abstract word for a value, as is democracy

These values are as important now as they were a long time ago, but their operational meaning is different today

Home and society both set a very bad example of honesty This aspect of honesty is the key word and is taught and preached in all religions and scriptures Most of the people do not bother about them This hypocrisy is largely prevalent in home and society The boys and girls are living in this atmosphere They find that a street fiddler becomes instant multimillionaire He is honoured After earning money nobody remembers his past It is rightly said "Whatever you do, if you come out successful, nobody is going to criticize you"

When a boy or girl comes across such atmosphere he is at a loss to decide what should he or she do Which is the right path ? In many cases they are convinced that the path of dishonesty is the right path

Politics has emerged as a new force in national life Diametically opposed points of view clash and ensuing clamour every shade of opinion can be heard shouted at fever pitch Welfare of the nation has taken a backseat Alleged Criminals are protected, sheltered and supported by our legislators A number of them have a criminal record also

In our legislatures sometimes we come across such type Of behaviour, which is awful, awkward and unbecoming of a legislator Free and fair election which is the basis of democracy is at a very low ebb In this atmosphere teachers have to play a very important role He should not accept the brief of any political party He should give free and unbiased opinion Alas ! we are not honest to our profession and opinion

There is a noticeable decrease in pupils abilities to control impulsive behaviours and the trend is increasing Both Psychological and social factors contribute to this situation In affluent homes also the condition remains the same parents do not care to devote sometime with their children, Once it so happened that a family consisting of wife, husband and two children aged 9 and 7 was taking tea and morning break fast together The gentleman was busy in reading News Paper The child of nine years was telling some thing and the father without paying attention to him was saying "han" "hun" to show that he was listening to the boy The young child understood that the father was not listening to him He snatched the paper from the father and quipped" "Dad please listen to us sometimes we also talk a useful thing" Really we have to listen to our children also, if we want their proper development I have met several affluent guardians who do not know the real name of their children Many of them do not know in which class their ward reads The child is getting every thing but not the proper care from his parents

Most of people criticize dishonesty, quarrelsome behaviour, laziness but they do not gather courage to come forward and oppose it Those who are tolerating such type of behaviour are also guilty If we want that our boys should develop good habits and become an honest and loyal citizens, we have to change the society Several times we come across such guardians who come to us and complain about their wards In most of the cases, they want that their wards should not know that they came to the school and made a complaint against their wards

In some cases how to persuade a boy or girl not to repeat the ugly and irresponsible behaviour become so painful to them that they leave home and do not return again Some of the guardians are extra-zealous to see that their wards should do very well in the examination This explosion of expectation of the parents sometimes, leads to an unsuccessful candidate to commit suicide Therefore, guardians are also to take precaution while punishing or rebuking their wards The trend of individualistic society and small family make a vacuum in the home There is nobody in the house to console the boy or girl, when a girl or boy becomes unsuccessful The weak boys should be looked after sympathetically This is the place where grand-parents could have been very helpful

Newspapers, television are trying to sell their commodity Therefore, to make the people interested in their news and materials give such things which can be categorized as nonsense Several times on television we see such a sexy exposure that we are startled to think how the censor board cleared such an objectionable picture and statement to be screened

To bring the reform in the country, the government, society and each individual have to create a will to see that our schools which are the foundation stone of the strong edifice of the democracy, are not neglected I am sorry to comment that a large number of teachers are callous and careless Of course, the air which is blowing in the country every where, one has to inhale Therefore, only the teachers art not to be blamed There is some defect in the whole system of organization The teachers, politicians, guardians, every one in the society are responsible for this defect, according to their shares in shouldering the responsibility for making the country really a great one There would be disaster if we all do not play our role collectively and carefully We should not think of a great country, without playing our role effectively, wisely and whole-heartedly Let us unite and make all efforts to bring peace, progress and prosperity in the country

Rector -
Shree Jain Vidyalaya, Howrah

□ ত্রিসিটা চটর্জী

শ্রাবণে

গগন ঢেকে মেঘ জমেছে
বাতাস বহে বেগে,
শ্যামল কিশলযেব সাথে
কদম ওঠে জেগে।
বৃষ্টি পড়ে টাপুব-টুপুব
কেযাব বনে বনে,
বাদল হাওযাব ভাবছে কী যে
খোকন মনে মনে
ভিজছে ওবা ঐ যে দেখি
অশথ গাছেব তলে,
কাগজ দিযে নৌকা গড়ে
ভাসায কাবা জলে।
ছোট্ট খোকাব ঘুম আসে বা,
শুনে মেঘেব ডাক।
শ্রাবণেবই ঘনঘটায খুকু যে নির্বাক।

प्रियन्का गुप्ता, १२-अ

❑ Mrs Olgha Ghosh

Peace - Where art thou?

What does the world need - particularly right now? The world's greatest need today is Peace and Peace alone The world is hungry for peace and its relentless search is futile because peace and happiness do not seem to exist longer in true sense of the term

This storm-tossed, war-weary, troubled world needs Peace-needs– it more than anything else Every person is in search of peace and happiness Peace is the motive behind everyone's quest Search for peace impels our activities infect it is the driving force

Hermits and sages have eternally sought peace and solitude to be far away from all petty meanness of humanity and everything else that could distract them from their high thinking Nothing is more conducive to deep and noble thought than to be alone, surrounded by forests, mountains, valleys, lakes and rivers

Where does Peace reign? With one it is power, with another riches, with a third social position, with many it is some insignificant thing like clothes, a piece of jewellery, a special kind of car

In the long run we realize that these cannot bring true happiness and peace Are politicians, who are in power, really happy and at peace? No they know they have made too many promises they cannot keep Once they are in power they forget commitments they made to the people The rich man you envy is looking at you envying your health and contentment While you envy his gold jewellery and automobiles, he is envying your energy, strength, courage and health These are treasures which the world's wealth cannot buy

Even the make-belief screen Life full of show and glamour is not a happy and peaceful– one It is a life full of tensions, struggles and cut-throat competitions where only the fittest survive

Sometimes peace and contentment is sought in drinking, gambling and taking drugs Such people find a temporary sedative, a marvellous relaxation, a happy oblivion by having recourse to alcohol, smoke, gamble or drugs Indulgence in such activities takes a person to the brink of existence and in most cases to a point of no return

Yet there are many who seek peace and happiness in dishonest means Today, dishonesty has crept into every system in the country It has eroded the very fabric of social life Honesty has become a rare virtue not found easily Unfortunately, in our pursuit for power and position, lucre and lust we have lost sight of peace and happiness

Another factor greatly responsible for driving out peace is terrorism Terrorism is a very familiar word today Religious intolerance and fanaticism have led to violence and terror It has torn the world apart and robbed every bit of peace from the face of the earth Man has taken up arms against man People are killing each other without any qualms or compunction In the turmoil of today, when there is so much of unrest do you often wonder just where the world is heading?

Does it mean life is meaningless and peace is nowhere to be found? It is elusive in life? No peace can be found in a clear conscience, true friendship, good health and character, we can discover peace in the beauty of Nature Sunrise and sunset, singing of birds and the music of wind in the trees, laughter and gaiety of children bring great deal of happiness and sunshine in our lives

If you make a conscientious effort to be thoughtful of those around you will experience an inner joy and peace that money cannot buy and the world cannot take away And more than that, you will begin to live in the thoughts of others because you have been thoughtful of them

Classes need to bury their dissensions and find the mutual path of understanding Hate and malice are detrimental to the growth of progress If the world is to be saved and peace is to be restored it can only be on a basis of mutual understanding trust and friendship

Let us all endeavour to build a better world, a peaceful world of co-operation, understanding and love "Arise! Awake and stop not till the goal is reached"

Principal
Shree Jain Vidyalaya Howrah

❑ **S C Pathak**

Pilgrim's Progress

Congratulations to Shree Jain Vidyalays, Howrah on the completion of a glorious decade in its academic journey I offer my best wishes to the vidyalaya hoping that it will scale greater heights of success in the coming decades

One thing unique about the said school is to cater to the need of the middle class people of the Howrah region Being no elite school it is completely dedicated to the service of the society It is really a challenge to run an educational institution these days Many elements try to take undue advantage Political leaders and anti-socials elements exercise undue pressure on the teachers and managing body at the time of admission and promotion It is hoping against hope to expect any protection from law-enforcing authorities which cannot protect themselves Inspite of these odds, Shree Jain Vidyalaya, has been rendering valuable services to Howrah for the last ten years and I have been a witness to this phenomenon

A few words of advice to my fellow teachers They must work hard to maintain and improve the reputation of the institution They should be guided by the sole principle of enlightened self-interest In the betterment of the institution lies the betterment of teachers Most of the students are lazy, careless and inattentive, we can quote the words of Christ which he used about his crucifers

"Forgive them, Rather, they do not know what they are doing" Inspite of all the blames students are innocent We should try to understand them Many of them hail from families which have no academic atmosphere at home What they see around them are the powers of money and muscle It is our duty to cultivate respect for human values like love, sympathy, mercy, forgiveness School is the place where they must be taught the art of give-and-take The biggest demand of the day is to create ecological awareness among students They must be made to realise that communal harmony is not an empty dream It is the most important thing which our country needs today Let us remember poet Iqbal

न समझोगे तो मिट जाओगे ऐ, हिन्दोस्तावालो ।
तुम्हारी दास्ता तक भी न होगी दास्तानो मे ।

Last word to students - your talent is not only yours It is national property also Develop it to the maximum possibility and use it for the betterment of the country alongwith your personal prosperity

Principal, Shree Jain Vidyalaya
Kolkata

▢ रामअधीन सिह

गरीबों का देश भारत

भारतवर्ष मे बढते पॉच सितारा होटलो की सख्या, बढते वायुयान यात्रियो की सख्या, प्रत्येक कस्बे और शहर मे बढती शराब की दुकानो की सख्या भारत की गरीबी का परिचय देती है। किसी भी शहर या कस्बे की सडको से गुजरने वाले वाहनो की सख्या भी भारत की गरीबी को प्रदर्शित करते है। शहरो की बहुमजिली इमारते और महल तथा सरकारी और गैर-सरकारी दफ्तरो के पास खुली कॉफी, चाय की दुकाने तथा फास्टफुड स्टालो से भी भारत की गरीबी परिलक्षित होती है। शादी विवाह के अवसर पर आयोजित भव्य समारोहो से भी भारत की निर्धनता को आँका जा सकता है। देश की सत्तर प्रतिशत जनता गाँवो मे रहती है जिसमे किसान, किसान मजदूर, धोबी, लोहार तथा अन्य पेशे से जुडे लोग रहते है जो शहरो मे निवास के लिए उत्सुक रहते है, उनकी गरीबी के बारे मे सोचा जाय तो स्पष्ट पता चलता है कि उनकी गरीबी का कारण प्रचलित कुरीतियाँ और प्राप्त साधनो का समुचित उपयोग न करना है। शादी-विवाह के अवसर पर खेत मजूदर अधिक से अधिक बारात बुलाता है, नाच-तमाशा तथा दिखावे पर अपनी सामर्थ्य से कई गुना अधिक धन खर्च करके अपने लिए गरीबी को सहज ओढ लेता है और भाग्य को कोसता है। वह बराबर भाग्य के सहारे अच्छे दिन आने की उम्मीद मे गरीबी रेखा के नीचे बडे चैन से जिन्दगी जीने के लिए विवश हो जाता है। शादी विवाह के अलावा अनेक पूजा-पाठ मे भी सामान्य आर्थिक स्थिति का ग्रामीण धन खर्च करने से नही चूकता है। गृहणियाँ किसी मन्दिर या देवस्थान पर पूजा करने के लिए ऑटोरिक्शा, जीप या भाडे की कार द्वारा पूरे बाल बच्चो के साथ जाती है और मनौती पर धन का दुरुपयोग करती है जिससे उस परिवार का बजट सामान्य से असामान्य हो जाता है और परिवार को कर्ज का छूत अवश्य छू लेता है।

"तेते पाँव पसारिये जेती लाम्बी सौर" यह कहावत इन ग्रामीणो को कभी नही सुहाती है। मुन्डन- प्राय प्रत्येक बच्चे की पहले बार बाल कटवाने की प्रक्रिया है जिस पर सामान्य ग्रामीण कई हजार रुपये खर्च कर देता है और बच्चे के अच्छे भाग्य की कल्पना के लिए उधार लेकर भी पैसा खर्च करने मे ग्रामीण जरा भी सकोच नही करता है। खेत मजदूरो की आर्थिक स्थिति वास्तव मे दयनीय है। उन्हे पूरे वर्ष खेती मे काम नही मिलता है। खाली समय किस प्रकार वे कुटीर उद्योगो मे लगाएँ कि उन्हे उनके श्रम का उचित मूल्य मिल सके, इसका ज्ञान न होने के कारण उनका जीवन स्तर और गिर जाता है।

मद्यपान उनकी बहुत बडी कमजोरी है जिससे सरकारी और गैर-सरकारी सस्थाओ के अनेक प्रयासो के बावजूद उनकी स्थिति नही सुधरती है और वे कर्ज से नही उबर पाते है। गॉव के किसानो की गरीबी का दूसरा कारण दहेज, अशिक्षा और उनकी नई पीढी का श्रम से परहेज करना है। अन्य सम्पन्न लोगो की बराबरी करने मे दहेज देने या लेने मे ग्रामीण गर्व का अनुभव करता है और कहता है कि शादी-विवाह रोज-रोज नही होते है इसलिए दिल खोल कर खर्च करो ताकि लोगो को लगे कि सामाजिक आदमी है। जिसको कई गाँवो के लोग जानते है। शिक्षा पर खर्च कभी भी कोई फिजूल खर्च नही मान सकता है लेकिन गाँवो और छोटे कस्बो मे खुलने वाले अग्रेजी स्कूल मे छात्रो को टाई बाँध कर जाना अनिवार्य है और पाँच साल के बच्चे के पीठ पर पाँच किलो का बस्ता और २००रु से २५०रु प्रति माह फीस मेरी समझ से फिजूल खर्च है। इन स्कूलो मे जाने वाले गरीब या सामान्य परिवार के बच्चो की शिक्षा अधूरी रह जाती है। ऐसे बालक ठीक ढग से न तो मातृभाषा सीख पाते है और न अग्रेजी भाषा का बोझ उठा पाते है। परिणाम यह होता है कि किसी प्रकार कक्षा ६-७ तक पढने के बाद स्कूल छोड देते है। यदि ये बच्चे मुफ्त शिक्षा देने वाले सरकारी या गैर-सरकारी सस्थानो मे गये होते तथा तनिक भी स्नेह के साथ इन्हे उत्साहित किया गया होता तो अवश्य शिक्षित हो जाते।

शिक्षा किस माध्यम से दी जाय, यह विवाद का विषय हमारे देश मे है। प्राय प्रत्येक सरकार अपनी आय का काफी हिस्सा शिक्षा पर खर्च करती है लेकिन उसका प्रतिफल बहुत ही नगण्य है। ऊँचे वेतनमान पर नियुक्त अधिकारी या अध्यापकगण अपने अधिकारो की रक्षा के लिए सगठन बना लेते है और राजनैतिक दलो के माध्यम से प्रान्तीय सरकारो को डाँवाडोल कर देने की क्षमता वाला सगठन बना कर उन्हे (इन सरकारो को) उनके विरुद्ध

कुछ न करने के लिए विवश कर देते है। शिक्षा की आवश्यकता केवल बच्चो की ही नही है बल्कि इसकी आवश्यकता खेत मजदूर, किसान, कारीगर, किरानी तथा अन्य पेशे से जुडे लोगो को भी है। उनको पुस्तकीय ज्ञान से अधिक परामर्श तथा मन्त्रणा की आवश्यकता है जिससे स्वस्थ परम्परा प्रतिपादित हो सके। सही दिशा मे लोग सोचे और अपने साथ-साथ देश के हितो के बारे मे विचार कर सके। धन का अपव्यय यदि रोका जा सके तो सभी बेकार लोगो को रोजगार दिलाया जा सकता है। प्रत्येक देशवासी गर्व के साथ सुन्दर ढग से जीवनयापन कर सकता है।

सरकार के अन्न भण्डारो मे अन्न सड रहा है। उन्हे कैसे बॉटा जाय, यह विकराल समस्या है। मुफ्त मे बाँटने पर मुफ्तखोरो की सख्या मे इजाफा होगा और अकर्मण्यता बढेगी। यदि कुछ मूल्य रखकर बेचा जाय तो एक वर्ग ऐसा है जो खरीदने की बिलकुल क्षमता नही रखता है। सर्वहारा वर्ग की पहचान करने के लिए प्रयुक्त माध्यम इमानदारीपूर्वक काम नही करता है जिससे कमजोर, सम्बलहीन, दीन की सही पहचान नही हो पाती है और प्राप्त लाभ कुछ पिछलगुओ को मिल जाता है। राजनैतिक दलो का योगदान देश मे अव्यवस्था फैलाने मे कम नही है। स्वयसेवी सस्थाओ को अस्पताल, विद्यालय, बूढो और लाचारो के लिए सेवा सस्थानो की स्थापना करना चाहिए। इन सगठनो को अपने सुन्दर कार्यों से स्नेह, प्रेम और सद्भाव का आदर्श स्थापित करना चाहिए जिससे मानव मात्र अपने को सुरक्षित अनुभव कर सके। जाति, भाषा, धर्म, प्रान्त के नाम पर फैलाए जाने वाला उन्माद सदैव निन्दनीय होता है। इससे घृणा, हिंसा और प्रतिशोध की भावना फैलती है। भारत के लोगो की गरीबी मे और वृद्धि न हो और आपसी एकता और भाईचारा बना रहे इसके लिए स्वार्थी लोगो को पहचाने। विभिन्न मुखौटे लगाकर शोषण करने वालो से बचने की शिक्षा अति आवश्यक है।

कर्तव्यपालन जीवन को सयमित और सुन्दर ढग से जीने की प्रेरणा देता है। आपस मे लडना और दूसरे के अधिकारो को छीनना नही सिखाता–''मजहब नही सिखाता आपस मे बैर रखना''। कहने का अर्थ यह है कि आज के साधनो का प्रयोग जीवन स्तर को सुधारने के लिए किया जाना चाहिए। विवेकपूर्ण जीया जीवन गरीबी को दूर रखता है। बहुत अधिक मात्रा मे भोजन करने वाला व्यक्ति अवश्य रोगी हो जाता है और उसे डॉक्टरो, अस्पतालो का चक्कर लगाते-लगाते जीवन का बहुमूल्य समय कष्ट के साथ जीना पडता है। यदि वह अपने को सयमित रखता, यदि भोजन का अधिक अश ग्रहण न करके जरुरतमद को देता तो अवश्य स्वस्थ एव सुन्दर जीवन जीता। अति सभ्रान्त और धनी वर्ग से समाज को कुछ अपेक्षाएँ है जो पूरी नही हो पा रही है। उन्हे धन के दान के साथ-साथ ऐसे सगठनो को सचालित करना चाहिए जो लोगो को सयमित जीवन जीने की कला के बारे मे मार्गदर्शन कराएँ। यह मार्गदर्शन किसी धर्म या मजहब से जुडा नही होना चाहिए बल्कि जीवन की कला पर आधारित जीवन मूल्यो को पहचानने पर बल देने वाला होना चाहिए। शिक्षा निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, जो स्कूलो, महाविद्यालयो के प्रागण तक ही सीमित नही है। अनुभवो से प्राप्त शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है जिसके द्वारा विशेष स्थिति मे उत्पन्न समस्या किस प्रकार हल की जाय, इसका ज्ञान प्राप्त होता है। अनुभवहीन किताबी ज्ञान रखते हुए भी प्राय समस्याओ का निदान नही ढूँढ पाते। सामाजिक विषमताओ को दूर करने के लिए अनुभवी परामर्शदाताओ की आवश्यकता है जो लोगो को उत्साहित करे और सही मार्गदर्शन दे ताकि पिछडे उपेक्षित निर्धन दृढ इच्छाशक्ति का सहारा लेते हुए अपने जीवनशैली को बदल सके। ये कार्यशालाएँ कैसी हो इसको जन सचेतना का स्वरूप कैसे दिया जाय, इस पर विचार की आवश्यकता है। इससे लोग अवश्य लाभान्वित होंगे और भारत गरीबो का देश है इस कलक को धो सकेगे। भारत के पास धन, ससाधन एव पुरुषार्थ किसी चीज की कमी नही है। कमी यदि है तो पुरुषार्थ को जगाने की। प्रत्येक व्यक्ति को अपने सत्व को पहचानने की आवश्यकता है जिससे वह अपने अन्दर की क्षमता का सदुपयोग कर अपने जीवन को कल्याणकारी एव सदुपयोगी बना सके। उचित मार्गदर्शन के कारण चीन ने जो पूजीवादी व्यवस्था का घोर विरोधी था आज पूँजीवाद को अपनाया और वहाँ के लोग रुढ मार्क्सवादी सामाजिक जीवनशैली से हटकर जीना आरम्भ कर दिए जिससे उन्हे अब अपने जीवन पर सन्तोष एव गर्व है। कहने का तात्पर्य यह है कि श्रम और ऊर्जा का सदुपयोग, कुरीतियो का परित्याग, धर्माडम्बर से दूर और राजनीतिज्ञो के कुचक्रो को समझने वाला सामाजिक सगठन गरीबो की गरीबी मिटा सकता है। इससे दुर्लभ मनुष्य जीवन धन्य हो सकता है और हम भारतीय कह सकते है कि हम गरीब नही है। विश्व के सामने अपने गौरवशाली अतीत के साथ सभ्रान्त वर्तमान को प्रतिस्थापित कर सकते है, ऐसे लोग जो समाज के विभिन्न वर्गो मे चेतना फैला कर उनको सन्मार्ग पर चलते हुए सुन्दर जीवन जीने की शैली को समझा सके। तभी हमारे देश और समाज का कल्याण हो सकता है। ऐसे ही लोगो की उम्मीदो पर प्रजातान्त्रिक देश की कल्पना की गई थी। विभिन्न स्तर से आये अनुभवी 'सादा जीवन उच्च विचार' रखने वाले समाज सुधारक समस्याओ को सुलझाने मे सहायक होंगे और हमारे देश का चतुर्दिक विकास होगा।

उपप्रधानाचार्य–
श्री जैन विद्यालय फॉर ब्वायज, हावडा

❑ अजय डागा

छोटी-छोटी पर आवश्यक बातें

* सबको सूर्योदय से पहले उठना चाहिये।
* उठते ही भगवान का स्मरण करना तथा त्वमेव माताच पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव, त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव, त्वमेव सर्व मम देव देव, इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये।
* अपने से बडो को प्रणाम करना चाहिये।
* शौच-स्नान करके दड-बैठक, दौड-कुश्ती आदि शारीरिक व्यायाम करना चाहिये।
* विद्यालय मे ठीक समय पर पहुँचना और भगवत् स्मरण पूर्वक मन लगाकर पढना चाहिये। किसी प्रकार उधम न करते हुए मौन रहकर भगवत के नाम का जप और स्वरूप की स्तुति करते हुए प्रतिदिन जाना-आना चाहिये।
* विद्यालय की स्तुति-प्रार्थना आदि मे अवश्य शामिल होना और उनको मन लगाकर प्रेमभावपूर्वक करना चाहिये क्योंकि मन न लगाने से समय तो खर्च हो ही जाता है और लाभ होता नही।
* पिछले पाठ को याद रखना और आगे पढाये जाने वाले पाठ को उसी दिन याद कर लेने से पढाई के लिए सदा उत्साह बना रहेगा।
* पढाई कभी कठिन नही मानना चाहिये।
* अपनी कक्षा मे सबसे अच्छा बनने की कोशिश करनी चाहिये।
* किसी विद्यार्थी को पढाई मे अपने से अग्रसर होते देख कर खुलकर प्रसन्न होना चाहिये और यह भाव रखना चाहिये कि यह उन्नति कर रहा है इससे मुझे भी पढकर उन्नति करने का प्रोत्साहन एव अवसर प्राप्त होगा।
* अपने किसी सहपाठी से डाह नही करनी चाहिए और न यही भाव रखना चाहिये कि वह पढाई मे कमजोर रह जाय जिससे उसकी अपेक्षा मुझे लोग अच्छा कहे।
* किसी भी विद्या अथवा कला को देखकर उसे दिलचस्पी के सात समझने की चेष्टा करनी चाहिये क्योंकि जानने और सीखने की उत्कण्ठा विद्यार्थियो का गुण है।
* अपने को उच्च विद्वान मानकर कभी अभिमान न करना चाहिये क्योंकि इससे आगे बढने मे बडी रुकावट होती है।
* नित्यप्रति बडो की तथा दीन-दु खी प्राणियो की कुछ न कुछ सेवा अवश्य करनी चाहिये।
* किसी भी अगहीन दु खी, बेसमझ गलती करने वाले को देखकर हँसना नही चाहिये।
* मिठाई, फल आदि दूसरो को बाँटकर खाना चाहिये।
* न्याय से प्राप्त हुई चीज को ही काम मे लेना चाहिये।
* दूसरे की चीज उसके देने पर भी न लेने की चेष्टा रखनी चाहिये।
* हर एक आदमी के द्वारा स्पर्श की हुई मिठाई आदि एव अन्न की बनी खाद्य वस्तुएँ नही खानी चाहिये। भूख से कुछ कम खाना चाहिये एव सदा प्रसन्नतापूर्वक भोजन करना चाहिये।
* भोजन के समय क्रोध, शोक, दीनता, द्वेष आदि भाव मन मे लाना उचित नही क्योंकि इनके रहने से भोजन ठीक से नही पचता।
* भोजन करने के पहले दोनो हाथ, दोनो पैर और मुँह, इन पाँचो को अवश्य धो लेना चाहिये।
* भोजन के बाद कुल्ले करके मुँह साफ करना उचित है, क्योंकि दाँतो मे अन्न रहने से पायरिया आदि रोग हो जाते है।
* चलते-फिरते और दौडते समय एव अशुद्ध अवस्था मे तथा अशुद्ध जगह मे खाना-पीना नही चाहिए क्योंकि खाते-पीते समय सम्पूर्ण रोम कूपो से शरीर आहार ग्रहण करता है।
* स्नान और ईश्वरोपासना किये बिना भोजन नही करना चाहिए।
* लहसुन, प्याज, अण्डा, माँस, शराब, ताड़ी आदि का सेवन कभी नही करना चाहिये।

* लैमनेड, सोडा और बर्फ का सेवन नही करना चाहिये क्योंकि इनसे ससर्गजन्य रोग आदि आने की बहुत सम्भावना है।
* उत्तेजक पदार्थो का सेवन कदापि न करे।
* मिठाई, नमकीन, बिस्कुट, दूध, दही, मलाई, चाट आदि बाजार की चीजो को नही खाना चाहिये क्योंकि दुकानदार लोभवश स्वास्थ्य और शुद्धि की ओर ध्यान नही देते जिससे बीमारियॉ होने की सम्भावना रहती है।
* बीडी, सिगरेट, भॉग, चाय आदि नशीली चीजो का सेवन कभी न करे।
* अन्न और जल के सिवा किसी और चीज की आदत नही डालनी चाहिये।
* दॉतो से नख नही काटना चाहिये। दातुन कुल्ले आदि करने के समय को छोडकर अन्य समय मुँह मे अॅगुली नही देनी चाहिये। प्रात काल उठते ही जल का सेवन अवश्य करे। यह अमृत के समान लाभकारी है।
* पुस्तक के पन्नो को अॅगुली पर थूक लगा कर नही उलटना चाहिये।
* किसी की भी जूठन खाना और किसी को खिलाना निषिद्ध है।
* रेल आदि के पाखाने के नल का अपवित्र जल मुँह धोने, कुल्ले करने या पीने आदि के काम मे कदापि न लेना चाहिये।
* कभी झूठ न कहे, सदा सत्य भाषण करे। कभी किसी की कोई भी चीज न चुरावे। परीक्षा मे नकल करना भी चोरी ही है तथा नकल मे मदद देना भी चोरी करना है। इससे सदा बचना चाहिये।
* माता-पिता-गुरु आदि बडो की आज्ञा का उत्साह पूर्वक पालन करे। बडो की आज्ञा पालन से उनका आशीर्वाद मिलता है जिससे लौकिक और पारमार्थिक उन्नति होती है।
* किसी से लडाई न करे, किसी को गाली न बके। अश्लील गदे शब्द उच्चारण न करे। किसी से भी मार-पीट न करे। कभी रूठे नही और जिद्द न करे।
* कभी क्रोध न करे। दूसरो की बुराई और चुगली न करे। अध्यापको एव अन्य गुरुजनो की कभी हॅसी दिल्लगी न उडाये प्रत्युत उनका आदर सत्कार करे और जब अध्यापक पढाने के लिए आये और जाये तब उनका खडे होकर नमस्कार करके सम्मान करे।
* सभा मे सभ्यता से आज्ञा लेकर नम्रतापूर्वक चले, किसी को लाघकर न जाये।
* सभा मे जाते समय अपने पैरो का किसी दूसरे से स्पर्श न हो जाये, इसका ध्यान रखे। अगर भूल से किसी के पैर लग जाये तो उससे हाथ जोडकर क्षमा माँगे।
* सभा मे बैठे हुए मनुष्यो के बीच मे जूते पहनकर न चले। सभा मे भाषण या प्रश्नोत्तर करना हो तो सभ्यतापूर्वक करे। सभा मे अथवा पढने के समय बातचीत न करे।
* सबको अपने प्रेम भरे व्यवहार से सतुष्ट करने की कला सीखे।
* कभी प्रमाद मे उद्दण्डता न करे।
* पैर, सिर और शरीर को बार-बार हिलाते रहना आदि आदते बुरी है, इससे बचे।
* कभी किसी का अपमान और तिरस्कार न करे। कभी किसी का जी न दुखाये।
* शौचाचार, सदाचार और सादगी पर विशेष ध्यान रखे।
* अपनी वेश-भूषा अपने देश और समाज के अनुकूल तथा सादा रखे। भडकीले फैशनदार और शौकीनी के कपडे न पहने।
* इत्र, फुलेल, पाउडर और चर्बी से बना साबुन, वैसलिन आदि न लगाये।
* जीवन खर्चीला न बनाये अर्थात् अपने रहन-सहन, खान-पान, पोशाक-पहनावे आदि मे कम से कम खर्च करे।
* शरीर के कपडो को साफ तथा शुद्ध रखे।
* शारीरिक और बौद्धिक बल बढानेवाले सात्विक खेल खेले।
* जूआ, ताश, चौपड, शतरज आदि प्रमादपूर्ण खेल न खेले। टोपी और घडी का, फीता, मनीबैग, हैडबैग, बिस्तरबद, कमरबद और जूता आदि चीजे यदि चमडे की बनी हो तो उन्हे काम मे न लेवे।
* बुरी पुस्तके और गदा साहित्य न पढे।
* अच्छी पुस्तको को पढे और धार्मिक सम्मेलनो मे जाये। गीता, रामायण आदि धार्मिक ग्रन्थो का अभ्यास अवश्य करे।
* पाठ्य ग्रन्थ अथवा धार्मिक पुस्तको को आदरपूर्वक ऊँचे आसन पर रखे। भूल से भी पैर लगने पर उन्हे नमस्कार करे।
* अपना ध्येय सदा उच्च रखे।
* अपने कर्तव्य पालन मे सदा उत्साह तथा तत्परता रखे। किसी भी काम को कभी असम्भव न माने, क्योंकि उत्साही मनुष्य के लिये कठिन काम भी सुगम हो जाते है।
* अपना प्रत्येक कार्य स्वय करे। यथासम्भव दूसरे से अपनी सेवा न कराये।

- सदा अपने से बडे और उत्तम आचरणवाले पुरुषो के साथ रहने की चेष्टा करे तथा उनके सद्‌गुणो का अनुकरण करे।
- प्रत्येक कार्य करते समय यह याद रखे कि भगवान हमारे सम्पूर्ण कार्यो को देख रहे है और वे हमारे हित के लिए हमारे अच्छे और बुरे कार्यो का यथायोग्य फल देते है।
- धर्म पालन करने मे होनेवाले कष्ट को तप समझे। अपने आप आकर प्राप्त हुए सकट को प्रकृति का कृपापूर्वक दिया हुआ पुरस्कार समझे।
- मन के विपरीत होने पर भी कभी घबराये नही, अपितु परम सतुष्ट और प्रसन्न रहे।
- अपने मे बडप्पन का अभिमान न करे।
- दूसरो को छोटा मानकर उनका तिरस्कार न करे। किसी से घृणा न करे।
- अपना बुरा करने वाले के प्रति भी उसे दु ख पहुँचाने का भाव न रखे।
- कभी किसी के साथ कपट, छल, धोखाबाजी और विश्वासघात न करे।
- इन्द्रियो का सयम करे। मन मे किसी भी बुरे विचार को आने न दे।
- अपने से छोटे बालक मे कोई दुर्व्यवहार या कुचेष्टा दीखे तो उसको समझाये अथवा उस बालक के हित के लिये अध्यापक अथवा अभिभावको को सूचित करे।
- अपने से बडे मे कोई दुर्व्यवहार या कुचेष्टा दीखे तो उसके हितैषी बडे पुरुषो को नम्रतापूर्वक सूचित करे।
- अपनी दिनचर्या बनाकर तत्परता से उसका पालन करे।
- सदा दृढप्रतिज्ञ बने। प्रत्येक वस्तु को नियत स्थान पर रखे तथा उसकी सभाल करे।
- अपने मे से दुर्गुण-दुराचार हट जाये और सद्‌गुण सदाचार आये, इसके लिए भगवान से सच्चे हृदय से प्रार्थना करे और भगवान के बल पर सदा निर्भय रहे।

स्वाति जोशी, अष्टम् ब

* लैमनेड, सोडा और बर्फ का सेवन नही करना चाहिये क्योंकि इनसे ससर्गजन्य रोग आदि आने की बहुत सम्भावना है।
* उत्तेजक पदार्थो का सेवन कदापि न करे।
* मिठाई, नमकीन, बिस्कुट, दूध, दही, मलाई, चाट आदि बाजार की चीजो को नही खाना चाहिये क्योंकि दुकानदार लोभवश स्वास्थ्य और शुद्धि की ओर ध्यान नही देते जिससे बीमारियाँ होने की सम्भावना रहती है।
* बीडी, सिगरेट, भाँग, चाय आदि नशीली चीजो का सेवन कभी न करे।
* अन्न और जल के सिवा किसी और चीज की आदत नही डालनी चाहिये।
* दाँतो से नख नही काटना चाहिये। दातुन कुल्ले आदि करने के समय को छोडकर अन्य समय मुँह मे अँगुली नही देनी चाहिये। प्रात काल उठते ही जल का सेवन अवश्य करे। यह अमृत के समान लाभकारी है।
* पुस्तक के पन्नो को अँगुली पर थूक लगा कर नही उलटना चाहिये।
* किसी की भी जूठन खाना और किसी को खिलाना निषिद्ध है।
* रेल आदि के पाखाने के नल का अपवित्र जल मुँह धोने, कुल्ले करने या पीने आदि के काम मे कदापि न लेना चाहिये।
* कभी झूठ न कहे, सदा सत्य भाषण करे। कभी किसी की कोई भी चीज न चुरावे। परीक्षा मे नकल करना भी चोरी ही है तथा नकल मे मदद देना भी चोरी करना है। इससे सदा बचना चाहिये।
* माता-पिता-गुरु आदि बडो की आज्ञा का उत्साह पूर्वक पालन करे। बडो की आज्ञा पालन से उनका आशीर्वाद मिलता है जिससे लौकिक और पारमार्थिक उन्नति होती है।
* किसी से लडाई न करे, किसी को गाली न बके। अश्लील गदे शब्द उच्चारण न करे। किसी से भी मार-पीट न करे। कभी रूठे नही और जिद्द न करे।
* कभी क्रोध न करे। दूसरो की बुराई और चुगली न करे। अध्यापको एव अन्य गुरुजनो की कभी हँसी दिल्लगी न उडाये प्रत्युत उनका आदर सत्कार करे और जव अध्यापक पढाने के लिए आये और जाये तब उनका खडे होकर नमस्कार करके सम्मान करे।
* सभा मे सभ्यता से आज्ञा लेकर नम्रतापूर्वक चले, किसी को लाघकर न जाये।
* सभा मे जाते समय अपने पैरो का किसी दूसरे से स्पर्श न हो जाये, इसका ध्यान रखे। अगर भूल से किसी के पैर लग जाये तो उससे हाथ जोडकर क्षमा माँगे।
* सभा मे बैठे हुए मनुष्यो के बीच मे जूते पहनकर न चले। सभा मे भाषण या प्रश्नोत्तर करना हो तो सभ्यतापूर्वक करे। सभा मे अथवा पढने के समय बातचीत न करे।
* सबको अपने प्रेम भरे व्यवहार से सतुष्ट करने की कला सीखे।
* कभी प्रमाद मे उद्दण्डता न करे।
* पैर, सिर और शरीर को बार-बार हिलाते रहना आदि आदते बुरी है, इससे बचे।
* कभी किसी का अपमान और तिरस्कार न करे। कभी किसी का जी न दुखाये।
* शौचाचार, सदाचार और सादगी पर विशेष ध्यान रखे।
* अपनी वेश-भूषा अपने देश और समाज के अनुकूल तथा सादा रखे। भडकीले फैशनदार और शौकीनी के कपडे न पहने।
* इत्र, फुलेल, पाउडर और चर्बी से बना साबुन, वैसलिन आदि न लगाये।
* जीवन खर्चीला न बनाये अर्थात् अपने रहन-सहन, खान-पान, पोशाक-पहनावे आदि मे कम से कम खर्च करे।
* शरीर के कपडो को साफ तथा शुद्ध रखे।
* शारीरिक और बौद्धिक बल बढानेवाले सात्विक खेल खेले।
* जूआ, ताश, चौपड, शतरज आदि प्रमादपूर्ण खेल न खेले। टोपी और घडी का, फीता, मनीबैग, हैडबैग, बिस्तरबद, कमरबद और जूता आदि चीजे यदि चमडे की बनी हो तो उन्हे काम मे न लेवे।
* बुरी पुस्तके और गदा साहित्य न पढे।
* अच्छी पुस्तको को पढे और धार्मिक सम्मेलनो मे जाये। गीता, रामायण आदि धार्मिक ग्रन्थो का अभ्यास अवश्य करे।
* पाठ्य ग्रन्थ अथवा धार्मिक पुस्तको को आदरपूर्वक ऊँचे आसन पर रखे। भूल से भी पैर लगने पर उन्हे नमस्कार करे।
* अपना ध्येय सदा उच्च रखे।
* अपने कर्तव्य पालन मे सदा उत्साह तथा तत्परता रखे। किसी भी काम को कभी असम्भव न माने, क्योंकि उत्साही मनुष्य के लिये कठिन काम भी सुगम हो जाते है।
* अपना प्रत्येक कार्य स्वय करे। यथासम्भव दूसरे से अपनी सेवा न कराये।

* सदा अपने से बडे और उत्तम आचरणवाले पुरुषो के साथ रहने की चेष्टा करे तथा उनके सद्गुणो का अनुकरण करे।
* प्रत्येक कार्य करते समय यह याद रखे कि भगवान हमारे सम्पूर्ण कार्यों को देख रहे है और वे हमारे हित के लिए हमारे अच्छे और बुरे कार्यों का यथायोग्य फल देते है।
* धर्म पालन करने मे होनेवाले कष्ट को तप समझे। अपने आप आकर प्राप्त हुए सकट को प्रकृति का कृपापूर्वक दिया हुआ पुरस्कार समझे।
* मन के विपरीत होने पर भी कभी घबराये नही, अपितु परम सतुष्ट और प्रसन्न रहे।
* अपने मे बडप्पन का अभिमान न करे।
* दूसरो को छोटा मानकर उनका तिरस्कार न करे। किसी से घृणा न करे।
* अपना बुरा करने वाले के प्रति भी उसे दु ख पहुँचाने का भाव न रखे।
* कभी किसी के साथ कपट, छल, धोखाबाजी और विश्वासघात न करे।
* इन्द्रियो का सयम करे। मन मे किसी भी बुरे विचार को आने न दे।
* अपने से छोटे बालक मे कोई दुर्व्यवहार या कुचेष्टा दीखे तो उसको समझाये अथवा उस बालक के हित के लिये अध्यापक अथवा अभिभावको को सूचित करे।
* अपने से बडे मे कोई दुर्व्यवहार या कुचेष्टा दीखे तो उसके हितैषी बडे पुरुषो को नम्रतापूर्वक सूचित करे।
* अपनी दिनचर्या बनाकर तत्परता से उसका पालन करे।
* सदा दृढप्रतिज्ञ बने। प्रत्येक वस्तु को नियत स्थान पर रखे तथा उसकी सभाल करे।
* अपने मे से दुर्गुण-दुराचार हट जाये और सद्गुण सदाचार आये, इसके लिए भगवान से सच्चे हृदय से प्रार्थना करे और भगवान के बल पर सदा निर्भय रहे।

स्वाति जोशी, अष्टम् ब

❒ Mousumi Ghosal

The Value of Education

What has man made of man? Does he dwell in that same world that William Shakespeare had visualized in his immortal plays or John Milton had idealized in his 'Paradise Regained' or William Wordsworth had spiritualised in his romantic poems Perhaps not Today the world has became highly mechanical Men are not only assisted but rather dominated by machines devoid of feelings They are gauged not by their academic feats but by their social status and material possessions Money is the order of the day

But then the world is not only governed by the so-called muscle power, it is master-minded by the intellectuals, the educated masses, the pillars of the society For instance a computer adorns the drawing room of a rich man but the technology that goes into its making and implementation is undoubtedly the contribution of a scientist If we probe a bit deeper, we find that whether it is a scientist ar a mathematician or any other scholar, they all have their origin in their education, their strong ties with their educational institutions

Welt, what is education – a topic most popularly discussed but the least effectively implemented and understood Is it merely a rich man's possession or a poor man's delight? Is it an inborn talent or a hereditary characteristic? certainly not Rather it is an acquired knowledge or an enhancement of knowledge catering to the needs of both the rich and the poor Education strives to overcome the arbitrary social and racial barriers, probing and exploring tho hearts of all – rich and poor, black and white alike Such a society of educated people will finally pave the way for that word which Rabindranath Tagore spoke of in his 'Where the Mind is Without Fear' 'Where, the world has not been broken up into fragments by narrow, domestic walls'

This noble mission of imparting education rests upon the shoulders of the teachers A child is like a mould of clay, who acquires the shape and form of his or her creator A child exposed to positive environment, healthy education develops into a balanced dynamic and successful individual Such a person is a boon to the society, enlightening the lives of the so-called less privileged, ignorant and innocent masses The life of an educated man is like a fast- flowing river, which at its origin is narrow and immature Similarly a child rattling off her nursery rhymes is ignorant and chaste With the lapse of time, the river enters into the plains and valleys gathering silt and finally emerging at its mouth often forming a delta So also a child under the apt guidance of his or her teacher enters into the summer or youth of life Accumulating and assimilating new perceptions through education finally proves beneficial both to himself or herself and the society Thus a teacher by the dint of her hard work weaves the chaplets of fame for the future A teacher through her flights of imagination transcends the physical barriers of a classroom, exposes the students to enjoy the pleasant experiences of either the African Safari or the Niagara Falls or enlightens their souls with the noble, chivalrous deeds of our past rulers Thus a child is made abreast with both the past and the present

It was with this noble mission of enriching the society that Shree Jain Vidyalaya was started in the year 1992 Situated close to the Ganges surrounded by factories and slums on all the sides, the elegant magnificent edifice stands like the mighty Himalayas, forcing the surroundings to pale into insignificance It has successfully completed its tenure of ten years and had achieved various milestones of success A famous Greek Critic, Longinus had said that 'Style is the man', Similarly 'Success is the name' is applicable to the school The students over the years have brought home laurels, be it in the sphere of academics or athletics or in the domain of co-curricular activities like debate, quiz or music We strongly believe that Victory is the motto and the sky is the limit

Success is a way of life It is a journey and not a destination Success does not necessarily mean the absence of failures it is rather the attainment of ultimate objectives It is a teacher who inculcates these positive trait of success, determination and positive attitude in his or her students A person with positivity has certain personality traits like they are compromising, caring, confident and

have high faith in themselves It is a teacher's duty to play the role model of a child guide and philosopher, to extract and strengthen the best in a child For a child is a gift of God and a blessing to a society It must be handled and moulded with care and dexterity to add to the pride of our nation It is only then that we, the teachers would feel that our lives have not gone in vain but have served the society in our own meager limited way Thus a teacher is a guiding star who leads the way through the undulations of life, traveling miles and miles and finally aiming for that idea utopian world where not violence but peace and harmony would prevail

Asst Teacher
Shree Jain Vidyalaya, Howrah

❑ गोपाल कृष्ण

मानवता और आतंकवाद

इस ससार की रचना प्रकृति की अनुपम कृति है। प्रकृति ने इस धरातल को बडे ही सतुलित ढग से सजाया और सॅवारा है। कही अथाह सागर तो कही उच्चतम् हिमाच्छादित पर्वत, कही सुन्दर हरियाली युक्त मैदान तो कही आकर्षक मनमोहक जल प्रपात। विभिन्न प्रकार के रग-बिरगे फूल-फल एव उन पर अठखेलियाँ करती तितलियाँ आदि। कही विशाल रेगिस्तान तो कही सपाट पठार, षट् ऋतुओ से युक्त विभिन्न प्रकार के मौसम और उनसे सबधित फसल-फल एव फूल आदि। इस प्रकार नाना प्रकार के जीव-जतुओ की सरचनाओ से भरी पडी यह धरती।

इन्ही सम्पूर्ण रचनाओ मे से एक विशिष्ट एव अमूल्य रचना है—मानव। इन्ही मानवो मे कुछ विशिष्ट मानव भी पैदा हुए जिन्होंने इन प्राकृतिक ससाधनो को एक नया आयाम देकर समस्त मानवो के लिए नैसर्गिक सुख प्रदान किया।

आधुनिक समय मे इस सुनहले, सुखमय और शातिमय जीवन को खोखला बनाने के लिए एक आसुरी शक्ति पैदा हो गई है जो 'आतकवाद' के नाम से जानी जाती है।

'मानवता' ही परोपकार का दूसरा नाम है। ससार के सभी जीवो के प्रति सम्मान का भाव रखनेवाला एकमात्र मानव ही तो है। इस मानव जाति के इतिहास मे हमारे देश के लोगो का योगदान 'विशिष्ट मानव' के रूप मे रहा है। जव-जव इस ससार मे विषम-परिस्थितियॉ पैदा हुई, भारतीय ऋषि-मुनियो तथा महान् मनीषियो ने विशेष रूप से सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया और मानवता की रक्षा की। हमारा देश सतुलित सृष्टि और सन्मार्ग का प्रमुख केन्द्र रहा है एव वैज्ञानिको ने भी मानव-जीवन को एक नई दिशा प्रदान करने मे सराहनीय कदम बढाया है।

मानव विवेकशील प्राणी है लेकिन कुछ विवेकशून्य मानवो ने अपने स्वार्थलिप्सा के लिए प्राकृतिक ससाधनो को विकृत किया। फलत इन दिनो कभी-कभी प्राकृतिक रूप से भी विषम परिस्थितियॉ उत्पन्न हो जाती है, अर्थात् अतिवृष्टि-अनावृष्टि, बाढ-सूखा एव भूकम्प आदि का सामना कर मानव जीवन विषम स्थिति को झेलता हुआ अभावग्रस्त हो जाता है। आधुनिक काल 'वैज्ञानिक युग' के नाम से जाना जा रहा है। इसमे कुछ अनेक अत्याधुनिक आविष्कार करके मानव जीवनशैली को एक नया मोड दिया। यह एक विशिष्ट योगदान माना जाता है। दुनिया का प्रत्येक भूभाग बहुत निकट प्रतीत हो रहा है क्योंकि क्षणमात्र मे हम अपने परिजनो से वार्तालाप कर सकते है तथा कुछ ही घटो मे एक-दूसरे का साक्षात्कार भी कर लेने मे सक्षम है। दूसरे शब्दो मे यह कहे कि *''मानव का जीवन स्तर काफी उन्नतशील हो गया है''* तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी।

इन सभी कृत्रिम ससाधनो के साथ-साथ हमारे वैज्ञानिको ने कुछ विध्वसक सामग्री का भी आविष्कार किया। आज इन्ही 'विस्फोटको' का दुरुपयोग 'आधुनिक असुर-आतकवादी' ने करके मानव जीवन को नारकीय बना डाला है। इन दिनो आतकवादी गतिविधियॉ इस प्रकार बढ गई है कि मानव जीवन अस्त-व्यस्त हो रहा है। फलत सम्पूर्ण प्राकृतिक सृष्टि ही खतरे मे नजर आने लगी है। हम यह कहने के लिए बाध्य हो रहे है कि–''मानवता का लोप हो रहा है तथा दानवी प्रवृत्ति का विकास हो रहा है और शायद दानवी प्रवृति का ही दूसरा नाम 'आतकवाद' है। जो वर्तमान को अपने चगुल मे समेटे हुए है।''

कभी-कभी ऐसा एहसास होता है कि क्या मानवीय आवश्यकताओ का विकल्प 'आतकवाद' ही है? शायद नही। *'यदि यही विकल्प होता तो आतकवाद ही आदर्श होता।'* लेकिन *कुछ कुत्सित भावनाओ से ग्रसित लोगो ने ऐसा आदर्श बनाया है* और प्रकृति की इस सुन्दरतम् रचनाओ को खोखला बनाने पर तुला हुआ है।

शायद इन आतकवादी असुरो का मानना है कि सर्वत्र भय और दहशत का वातावरण उपस्थित कर वे लोग अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते है। लेकिन प्राचीन इतिहास साक्षी है कि

असुर कभी भी अपने उद्देश्य मे सफल नही हो पाये है। अत इस ससार मे हमेशा 'सत्यमेव जयते' की परम्परा रही है।

आधुनिक काल मे भी अभी-अभी इस 'धरा' पर उथल-पुथल का माहौल उपस्थित हो गया है। सम्पूर्ण सभ्य समाज अपने अस्तित्व को बचाने और कायम रखने मे कठिनाई अनुभव कर रहा है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि सभ्यता समाप्ति की ओर है अथवा शब्दकोष का एक 'शब्द-मात्र' बनकर रह गया है। शायद नही। यदि ऐसी बात होती तो इतने व्यापक रूप से आतकवाद का विरोध नही होता। हालाकि विरोध का स्वर धीमा और स्वार्थपूर्ण रहा है अर्थात् विरोध अन्तर्मन से नही हो रहा है। वास्तव मे यदि विश्व समुदाय के सभी सभ्य लोगो के विरोध का स्वर एक हो जाय तो एक बार फिर ससार 'आतकमुक्त' हो जाय अथवा आतकमुक्त ससार की कल्पना साकार हो जाय।

लोगो मे एक नया विश्वास जागृत हो सकता है। भय और दहशत का माहौल सदा-सदा के लिए समाप्त हो सकता है। इस धरती पर एक बार फिर स्वर्गिक वातावरण उपस्थित हो सकता है। देवगण एक बार फिर पृथ्वी पर जन्म लेने को लालायित हो सकते है।

इस वसुन्धरा पर पुन सूर्योदय और सूर्यास्त के समय पक्षियो का कलरव सुनाई दे सकता है। एक बार फिर ब्रजवासियो को सायकालीन गोधूलि-बेला का दृश्यावलोकन हो सकता है। हिमालय एक बार फिर देवालय और शिवालय का स्थल बन सकता है।

हिमाच्छादित पर्वत पर प्रात कालीन स्वर्णिम दृश्य के अवलोकनार्थ पुन जनमानव का सैलाब उमड सकता है। कश्मीर की हरीतिमा और केशर की खुशबू एक बार फिर इन वादियो की ओर सैलानियो को आकर्षित करने मे सक्षम हो सकती है।

अनुपम वादियो के बीच डलझील का तरण-ताल पुन आकर्षण का केन्द्र बन सकता है। कितना अच्छा होता कि ससार के सभी मानव अपने निजी स्वार्थ, जाति, धर्म के सीमाकन से ऊपर उठकर मानवता के विकास एव प्रकृति की इस अनुपम सृष्टि का सदुपयोग करने मे तल्लीन होते।

कभी-कभी ऐसा आभास होता है कि प्रकृति द्वारा हमे मानव जीवन शायद इसी सत्कार्य के लिए ही मिला है। लेकिन दुर्भावनाओ से ग्रसित व्यक्ति ही इस अनमोल जीवन का सम्भवत दुरुपयोग कर रहे है, अर्थात् भयाक्रान्त होकर पाशविक जीवन-यापन कर रहे है। क्या इस जीवन का उद्देश्य यही है कि सभी एक-दूसरे से सहृदयता पूर्वक बात भी नही कर सके, एक-दूसरे से मिलते हुए भी अपनी पहचान स्पष्ट नही करे अर्थात् अपनी ही मानव-जाति से भयाक्रान्त हों। व्यक्ति अपने भावनात्मक उद्वेग को विचलित करते रहे या अपनी मन स्थिति को झूठी सान्त्वना देते हुए अपने-पराये मे उलझते हुए अपने बहुमूल्य जीवन को समाप्त कर ले ? शायद नही। क्योंकि आज हमारे वैज्ञानिको ने मानव सभ्यता को गुफाओ से निकालकर जीवन जीने की विचाधारा को बदल दिया है। मानव सिर्फ धरातल पर ही नही बल्कि अतरिक्ष और चन्द्रमा तक का सफर कर चुका है। इस प्रकार विवेकशील समाज ने सृष्टि की सुन्दरता मे चार चाँद लगाए है और इस दिशा मे अभी भी प्रयत्नशील है।

इन दिनो मानव अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति क्षणमात्र मे ही कर सकता है। इतने अधिक ससाधन शायद कल्पित स्वर्ग मे भी उपलब्ध नही हो सकते, अर्थात् मानव की सारी कल्पनाएँ साकार होती जा रही है। लेकिन कही न कही इन्ही वैज्ञानिको की देन है कि आज हम भयाक्रान्त और त्रस्त भी है। विवेकशील मानव इन वैज्ञानिक उपलब्धियो का सदुपयोग कर मानवता के विकास एव सत्कार्य से जुडे है, वही विवेकशून्य मानव इन ससाधनो का दुरुपयोग कर इस सृष्टि को विनाश का रूप दे रहे है।

वास्तव मे मानवता यही है कि लोग समरसता का भाव अपनाएँ एव अपने-पराये का फर्क भूलकर सर्वत्र खुशियो का-सा वातावरण उपस्थित कर 'सरगम' स्थापित करे, तभी 'अपार' और 'अभाव' का भेद मिट सकता है। धर्म और मजहब की दीवार को तोडकर प्रेम और भाई-चारा स्थापित हो, शायद यही मानवजीवन की सार्थकता है। इसीलिए कहा गया है कि—

''मजहब नही सिखाता आपस मे बैर रखना''

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि 'विवेकपूर्ण कार्य ही मानवता का पर्याय है' अर्थात् जो स्वार्थलिप्सा से ऊपर उठकर परोपकार एव सत्कार्य के लिए हमेशा तत्पर रहे सच्चे अर्थ मे वही मानव है। ऐसा प्रतीत होता है कि आतकवाद से जुडे लोग हमेशा अमानवीय कार्य करते है अर्थात् वे लोग मानव कहलाने के अधिकारी भी नही रह जाते है।

'युद्ध' कभी भी शाति का विकल्प नही बन सका अर्थात् शाति के प्रसार के लिए प्रेम और सद्भावना का मार्ग ही श्रेष्ठतर है जिसे अपनाना होगा। परम शाति के लिए 'आतकवाद' नही अध्यात्म की आवश्यकता है। अत प्रकृति, धरती और सस्कृति की रक्षा करना ही मानवता तथा मानव-जीवन का उद्देश्य है।

सहशिक्षक, श्री जैन विद्यालय, हावडा

▢ रामपुकार शर्मा

अमरकंटक : परिदर्शन

धर्म और निसर्ग का समन्वय तथा परिष्कृत-भाव से परिपूर्ण 'अमरकटक' एक अद्भुत एव सुरम्यपूर्ण स्थान है— तीर्थ यात्रियो, पर्यटको तथा साधारण यात्रियो से परिपूर्ण। फिर भी सब कुछ खुला-खुला। चारो ओर उन्मुक्त वातावरण मे भटकते जलद-खण्डो का ही साम्राज्य है। जनसमागम होने पर भी अमरकटक शान्ति का पर्याय है। पेड-पौधो की घनी छाया एव दूर-दूर तक बिखरी हुई पहाडियो का झुण्ड वैदिककालीन तपस्वियो की स्थिति का आभास कराते है और उन पर खडे लम्बे-लम्बे शाल के वृक्ष एक पैर पर खडे तपस्यारत वैदिक तपस्वियो की परम्परा को उद्घोषित करते प्रतीत होते है। हमारा देश भारतवर्ष प्राचीनकाल से ही नदियो का देश रहा है, इसलिए नही कि देश मे नदियो की अधिकता है बल्कि इसलिए कि इस देश मे नदियो का विशेष सम्मान हुआ है। वे हमारे जीवन मे बहुत अधिक महत्व रखती है। उनसे हमारा आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक जीवन समृद्ध हुआ है।

नर्मदा नदी का उद्गम ही 'अमरकटक' की प्रसिद्धि का कारण है। एक ही पर्वत के भिन्न-भिन्न छोरो से उत्पन्न हुआ है एक नदी और एक नद। प्रचलित कथाओ के आधार पर श्री माँ नर्मदाजी सभी नदियो मे श्रेष्ठ है क्योंकि वे साक्षात् देवाधिदेव भगवान महादेव के शरीर से उत्पन्न हुई है तथा स्थावर और जगम सभी प्राणियो की उद्धारक है। श्री अमरकटक को प्राचीनकाल मे मेकाल पर्वत भी कहा गया है। अत श्री नर्मदाजी को 'मेकाल-कन्या' भी कहा जाता है। किम्वदन्ती है कि जब नर्मदा अपनी पूर्ण लावण्यावस्था पर पहुँची, तब उनका विवाह सोणभद्र (सोन) से होना निश्चित हुआ, परन्तु दुर्भाग्यवश नाई कुमारी जिस पर नर्मदा की रूप-सज्जा की जिम्मेवारी सौपी गई थी, वह स्वय नर्मदा का रूप धारण कर विवाह-मण्डप मे जा बैठी। झूठ के पैर नही होते है, फलस्वरूप बात खुल गई। इधर नर्मदा विवाह-हेतु बुलावा न आने के कारण पश्चिम की ओर मुडकर खडी हो गयी। यह खबर पाकर कपिल मुनि ने नर्मदा को मनाना चाहा, परन्तु क्रोधातुर मानिनी पल भर भी न ठहरी और तेज कदमो से पश्चिमगामी हो गई। उधर सोणभद्र यह सब जानकर अत्यन्त दु खी हुए और बिन ब्याहे पूर्व की ओर चल पडे। फलत आज तक नर्मदा चिर कुमारी और सोणभद्र भी चिर कुमार रहे। इसी भॉति एक नही कई लोक-कथाएँ नर्मदा सोन से जुडी हुई है।

नर्मदा और सोन की उद्गम के अतिरिक्त और कई छोटी-छोटी जलधाराओ का भी उद्गम-स्थल है 'अमरकटक'। सभी किसी न किसी जलकुण्ड के मुख से ही आगे बढी, चली है। जहॉ नर्मदा का उद्गम-स्थल है, वहॉ एक जलकुण्ड बना दिया गया है। इस जलकुण्ड के चतुर्दिक विख्यात श्री माँ नर्मदा मदिर स्थापित है। जलकुण्ड मे स्नान कर उसकी चतुर्दिक परिक्रमा कर नर्मदा मइया की अर्चना की जाती है। ऐसा माना जाता है कि ई० नवमी शताब्दी मे रेवा के महाराज गुलाबसिंह ने नर्मदा मदिर का निर्माण करवाया था और उस काल के निर्मित कई अन्य मदिर भी इसके चारो ओर खडे है। सभी मदिरो का निर्माण लगभग एक ही स्थापत्य कला का नमूना है। परन्तु नर्मदा से सोनमुण्डा के रास्ते मे एक नये ढग का मदिर बनाया जा रहा है। पूछने पर पता चला कि उसी स्थान का कोई तात्रिक सम्प्रदाय उसे बनवा रहा है, जिसका सिंह-द्वार अद्भुत है, जिस पर चारो तरफ त्रिपुरेश्वरी के चार भव्य मुख निर्मित है। यह दक्षिण भारतीय स्थापत्य कला (मदुराई कला) से अत्यधिक प्रभावित है।

नर्मदा मइया के मदिर के सामने ही काले-पत्थर का बना हुआ एक छोटा-सा हाथी, जिसे बादल का हाथी कहा जाता है और उस पर भग्न सवार 'बादल' भी मौजूद है। ठीक इसके पास ही बॉयी ओर भग्नावस्था मे एक घोडा और उस पर सवार भी है, जिसे रुदल और उसका घोडा कहा जाता है। बादल के हाथी के चारो पैरो के मध्य लगभग सवा वर्गफुट जगह है। धरती पर साष्टाग होकर यदि कोई व्यक्ति उससे पार हो जाता है तो यह प्रमाणित होता है कि उसने कोई पाप नही किया है, परन्तु इसके विपरीत जो उसमे अटका रह जायेगा वह पापी कहलाएगा। यह कथा प्रचलित है,

परन्तु यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि एक स्वस्थ मोटी महिला अनायास ही उससे होकर निकल गई, मानो वह कोई गुल्म-लता हो, जबकि कई दुर्बल व्यक्ति अपना सिर ही घुसा पाये और या तो अटक कर या साहस खोकर वापस उसी रास्ते निकल आये।

'अमरकटक' के पश्चिमी भाग मे नर्मदा कल-कल प्रवाह के साथ लगभग ६ कि०मी० की दूरी पर एक प्रपात बनाती है, जिसे कपिलधारा कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि इसी स्थान पर कलिपमुनिजी ने नर्मदा को रोकना चाहा था। नर्मदा तो आजतक किसी भी बाधा या बन्धन को मानने के लिए बिल्कुल ही तैयार नही है। नर्मदा मदिर से कपिल-धारा तक एक पक्की सडक जाती है। कई स्थानो पर सडक और राहगीरो के साथ-साथ नर्मदा कल-कल, छल-छल करती हुई पत्थरो पर चढती-उतरती अपने रूप मे मदमाती चल रही होती है। जल धारा और सडक के दोनो ओर दूर-दूर तक पहाडियो और घाटियो मे फैली हरियाली दिखाई पडती है। शाल-कौल आदि के वृक्ष प्रहरियो की भाँति उन्नत सिर किए पक्ति-बद्ध खडे है। अगल-बगल के छोटे-छोटे पौधे हवा के मद झोको से हिल-हिल कर छोटे-छोटे बच्चो की भाँति तालियाँ बजाते हुए प्रसन्नतापूर्वक हमारा स्वागत कर रहे दिखते है। धूप की तेजस्विता इन लघु तृण-गुल्मो की वात्सल्यता से कुछ कम हो जाती है मानो वे इनके सम्मुख पराजित हो गये हो।

नर्मदा शिलाखण्डो पर से सरकती हुई अचानक १५० फुट का प्रपात बहाती हुई नीचे के शिलाखण्डो पर जा गिरती है और अजीब-सी विजय हर्ष ध्वनि करती है, परन्तु ग्रीष्मकाल के दिनो मे जलराशि की कमी के कारण इससे झर-झर कर धारा गिरती है। वर्षाकाल मे इस प्रपात का सौन्दर्य फूलकर द्विगुणित ही नही कई गुणा अधिक हो जाता है। शिलाखण्डो से टकराकर जलराशि के फुहारे सूर्य-किरणो को सतरगी बना देते है। इस गिरती जलधारा के नीचे थके यात्रीगण स्नान कर माता नर्मदा से आशीर्वाद प्राप्त कर थकान मिटाते नजर आते है। इस प्रपात के ऊपरी भाग की अपेक्षा निचली गहरी छाती काफी रमणीय है। दूर-दूर तक फैले छोटे-बडे शिलाखण्ड और उसके इर्द-गिर्द छोटी-छोटी कुटियाँ है, जिनमे साधुगण या योगीजन रहते है और साथ मे विविध रग के पक्षी और बन्दर ही इस प्रशान्त वनस्थली की सजीवता को बनाए हुए है।

कपिलधारा से पश्चिम की ओर लगभग एक फर्लांग की दूरी पर एक छोटी-सी गुफा है। यही पर नर्मदा तीन पतली धाराओ मे बँट जाती है। कुछ दूर तक प्रवाहित होने के पश्चात् पुन वह एकाकार होकर लगभग २० फुट का प्रपात बनाती हुई पुन नीचे की ओर गिरती है। इस छोटे प्रपात का नाम दूधधारा है। जलधारा फिर चौडी होकर आगे बढती है, जो काफी सुहावनी लगती है। इसी स्थान पर एक जलकुण्ड बन गया है, जो बहुत ही रमणीय है। अगल-बगल का क्षेत्र गहन गम्भीर वनो का है, इसमे सर्वाधिक शाल वृक्ष ही है।

नर्मदा मदिर से पूर्व-दक्षिण के कोने मे एक मील की दूरी पर स्थित है, सोनमुण्डा। यहॉ जाने के लिए एक पक्की सडक है। सडक पहाडी है। शाल, शीशम, महुआ तथा आम वृक्षो के सघन जगल से होकर जाती है। सोननद का उद्‌गम यही के पाँच पेडो के मूल से हुआ माना जाता है। वही पर ईंटो का एक छोटा-सा हौज बना हुआ है जिसमे सोनजल इकट्ठा होकर फिर कल-कल निनाद से पत्थरो पर से होता हुआ आगे बढता है। थोडी ही दूर आगे जाकर वह लघु जलधारा लगभग ३५० फुट नीचे गिर कर एक विशाल प्रपात बनाती है। जलधारा मे जल की न्यूनता अथवा बाहुल्यता पर इस प्रपात का आकार निर्मित होता है, परन्तु इस स्थान से दूर तक फैली पर्वत मालाएँ और घने हरे-भरे वन से आच्छादित धरती की सुरम्य छ्टा देखते ही बनती है। सायकाल तो यहॉ की छवि निराली हो जाती है। 'निराला' के शब्दो मे कहे तो –

सौन्दर्य-गर्वित सरिता के अतिविस्तृत वक्ष स्थल मे–
धीर वीर गम्भीर शिखर पर हिमगिरि-अटल अचल मे–
उत्ताल तरगाघात प्रलय-घन गर्जन जलधि प्रबल मे–
क्षिति मे - जल मे - नभ मे - अनिल-अनल मे–
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा 'चुप, चुप, चुप,'
है गूज रहा सब कही– ।

आस-पास शाल और आम के घने वृक्षो पर लँगूरो (हनुमान) का ही राज्य है। अत कुछ फल या खाद्य-पदार्थ आदि लेकर आगे बढना बडा ही दुष्कर हो जाता है, वे जबरदस्ती छीन कर ले जाते है। ये वन्य-प्राणी इस सुनसान वन्य-प्रान्त को सजीवता प्रदान करते है।

नर्मदा मदिर से पूर्व की ओर लगभग एक मील की दूरी पर 'माइ की बगिया' नामक स्थान है। यही से नर्मदा मदिर मे श्री नर्मदा माँ पर चढाने के लिए फूल आया करते है। 'बगिया' का प्राकृतिक दृश्य अद्‌भुत एव मनोहर है। इसी 'माइ की बगिया' की परिक्रमा कर कुछ तो लौकिक जगत मे लौट आते है और कुछ अलौकिकता की खोज मे ससारिकता का त्याग कर आगे बढ जाते है। यहॉ की भीगी मिट्टी मे एक विशेष प्रकार का पौधा पाया जाता है, जिसके पत्ते बडे-बडे होते है। वृक्ष ३' से ४' ऊँचे दिखते है। एक अन्य प्रकार का तृण या गुल्म जिसे स्थानीय भाषा मे 'गुलबकावली' कहा जाता है। इसके फूल से अर्क निकाल कर एक साधु प्रवृति व्यक्ति आँखो का इलाज करता है। कहा जाता है कि दूर-दूर से ऑखो के रोगी यहाँ आते है और अपने चक्षु की सफल चिकित्सा प्राप्त कर सतुष्ट हो जाते है।

'अमरकटक' से लगभग ६ कि०मी० उत्तर की ओर शहडोल जाने वाली सडक के दाहिनी ओर श्री ज्वालेश्वर महादेव नामक स्थान स्थित है। यही जुरिला (ज्वाला) नामक एक छोटी नदी का उद्‌गम स्थल है। यही भगवान ज्वालेश्वर महादेवजी का मदिर है। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार, "जो व्यक्ति ज्वालेश्वर महादेव पर जलाभिषेक करता है, वह जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है।"

श्री ज्वालेश्वर मदिर से दक्षिण की ओर ढाई मील की दूरी पर स्थित है–'भृगुकमण्डल'। यहाॅ तक का मार्ग सघन जगल के मध्य से होकर जाता है। इसे भृगु ऋषि की साधना स्थली के रूप मे जाना जाता है। भृगु ऋषि ने भगवान विष्णु के वक्षस्थल पर पाद-प्रहार के उपरान्त अशान्त मन को शान्त करने के लिए इस निर्जन-स्थल को चुना था। चिन्ह के रूप मे उन्होंने अपना कमण्डल यही छोड दिया। बारहो महीने इस पत्थर के कमण्डल से अमृत-जल गिरता रहता है।

नर्मदा मदिर के पश्चिम मे लगभग १० कि०मी० की दूरी पर स्थित है–'कबीर चौरा' या 'कबीर चबूतरा'। यहाॅ जाने के लिए एक पक्की सडक जगल-पहाडो से होकर जाती है। फलत मार्ग काफी चित्ताकर्षक है। बीच-बीच मे पर्यटक या वन विभाग की ओर से सडक के किनारे लगा हुआ बोर्ड "पहले जानवरो को पार होने दे, फिर वाहन बढाएॅ"– हम शहरी लोगो के लिए काफी कौतूहल का विषय रहा और सचमुच एक स्थान पर लगूरो (हनुमान) की टोली सडक पार कर रही थी, सरकारी-बस चालक ने बस को बीच सडक मे ही रोक दिया। बडा ही आनन्ददायक दृश्य था। लॅगूरो का सरदार पहले पार होकर एक ऊॅचे शिलाखण्ड पर बैठकर अन्य साथियो को सडक पार करता देखता रहा और जब सभी सडक पार कर गये, तब वह भी उनके पीछे होता हुआ जगल मे गायब हो गया। अपूर्व अनुशासन, कर्तव्यनिष्ठा और सतर्कता का उदाहरण दृष्टिगत हुआ। काश, लोग इन जानवरो से कुछ सीख पाते।

इन सघन जगलो से होकर कबीर-चौरा पहुॅचा जाता है। कबीर पथियो का मानना है कि सन्त कबीरदास इसी चबूतरे पर बैठकर अपने शिष्यो को उपदेश दिया करते थे। यहाॅ पर भी वही 'गुलबकावली' के पौधे और अगल-बगल कई छोटे-छोटे जलकुण्ड और आश्रम-कुटी दिखाई दिये। गम्भीर नीरवता का राज था परन्तु हृदय मे कबीर की निर्गुणी 'साखी'-'सबद'-'रमैनी' गूॅज उठती है–

एक डाल पर पछी रे बैठा,
कौन गुरु कौन चेला,
तू उड जा हस अकेला ।

मध्य 'अमरकटक' मे नागरिक निवास के अतिरिक्त पुलिस-थाना, वस-स्टैण्ड, यात्रियो के लिए होटल, ट्यूरिज्म-हाउस, वैक, टेलीफोन केन्द्र, अतिथिशाला, बाजार आदि सबकुछ है। यही एक बडा खुला मैदान है, जिसमे मकर सक्रान्ति, शिवरात्रि, वैशाखी-पूर्णिमा आदि समयो पर काफी बडा मेला लगता है। जिसमे स्थानीय निर्मित वस्तुओ की अधिकता रहती है, परन्तु बाहरी पर्यटको की अधिकता इनमे शहरीपन का भाव पैदा कर देते है। बाकी समय सर्वत्र शान्त वातावरण। उसी मैदान के दक्षिणात मे नर्मदा की जलधारा को रोक कर एक जलाशय का रूप दे दिया गया है जिसमे कई पैडेल-बोट अक्सर दिन-भर पर्यटको को लेकर जल पर तैरते रहते है। उस जल मे आकाश के तैरते बादल कुछ समय के लिए तैरते नजर आते है। इस जलाशय के एक ओर असख्य सफेद-सफेद बगुले दूर से सफेद खिले कमल का भ्रम पैदा करते है। कभी-कभी ये सफेद बगुले पैडल-बोट पर आकर बैठकर यात्रियो का 'अमरकटक' मे स्वागत करते हुए प्रतीत होते है।

'अमरकटक' की सन्ध्याकालीन प्राकृतिक छटा निराली है। पर्वत-श्रेष्ठ 'अमरकटक' परम् सुन्दर पुष्प-लताओ से परिपूर्ण है। यहाँ के गगनचुम्बी विशालकाय वृक्ष सभी ऋतुओ मे हरे-भरे रहते है। यहाँ पर अधिकाश धार्मिक सम्प्रदायो के मदिर, पूजा-स्थल, मठ या फिर आश्रम है। जिनमे मार्कण्डेय आश्रम, गायत्री शक्ति पीठ, कल्याण आश्रम, रामकृष्ण कुटीर, गुरुद्वारा, श्री राम-कृष्ण विवेकानन्द सेवाश्रम आदि विशेष प्रमुख है। सध्याकाल मे यहाँ की सम्पूर्ण दिशाएॅ घण्टे-शखनाद, आरती, भजन-कीर्तन आदि की मधुर ध्वनि से गूज उठती है।

और यहाँ की चाँदनी रात, अपने-आप मे एक सुखद अनुभव का आभास देती है। ऐसा लगता है मानो पृथ्वी मण्डल को किसी ने दुग्ध-स्नान करा दिया हो या उस पर किसी ने श्वेत चादर बिछा दी हो। चारो ओर निस्तब्धता छाई हुई, पेड-पौधे चुपचाप खडे किसी चित्रकार के अनुपम चित्रकारी की शोभा प्रदान करते है। पवन प्रवाहित होने से उस छवि की छटा द्विगुणित हो जाती है। वृक्षो के झूमने से प्रकाश निर्मित बेल-बूटे इधर-उधर हिलने लगते है और नेत्रो को बडे ही सुहावने लगने लगते है। मानो कि प्रकृति-पटल पर चलचित्र प्रदर्शित किये जा रहे हो।

ऐसे प्राकृतिक सौन्दर्य-सम्पदा से परिपूर्ण क्षेत्र से वापसी या प्राकृति-सौन्दर्य से विछोह अत्यन्त ही कष्टदायक लगता है और मन मे स्वत ही गूँज उठता है –

नर्मदायै नम प्रात , नर्मदायै नमो निशि ।
नमस्ते नर्मदे देवी त्राहिमाम् भवसागरत् ।

सहशिक्षक, श्री जैन विद्यालय, हावडा

□ रजन राठी, सप्तम् 'स'

खीर खाता है कि डंडा

एक सेठ व्यजनो के बडे शौकीन थे। एक दिन उन्होंने अपने नौकर को खीर बनाने के लिये केसर, पिस्ता, काजू, बादाम आदि देते हुए कहा "बढिया खीर बनाकर रखना। मै अभी घूमकर आता हूँ।"

यह कहकर सेठ घूमने के लिये निकल पडा। रास्ते मे उन्हे एक मित्र मिल गये। सेठ ने पूछा–"कहाँ जा रहे हो ?" मित्र के यह कहने पर कि वह शादी की दावत मे जा रहा है। चलना हो तो तुम भी चलो। व्यजनो का शौकीन सेठ उसके साथ चल दिया। सेठ गले तक भोजन चढा कर घर वापस आया। घर पर स्वादिष्ट खीर तैयार थी किन्तु पेट मे जब जगह हो तब तो खाये।

सेठ ने सोचा यदि नौकर से बता दूँगा कि भरपेट दावत खाकर आया हूँ तो सारी खीर वही चट कर जायेगा। सेठ ने युक्ति लगाई और कहा "अभी खीर खाने की इच्छा नही है। चलो, अभी सो जाते है। रात मे जिसका स्वप्न सुन्दर होगा, वह सुबह खीर खायेगा।"

सुबह हुई। दोनो उठे। सेठ ने कहा, "लाओ खीर।" नौकर के यह कहने पर कि पहले अपना स्वप्न तो सुनाइये। सेठ ने कहा कि खीर तो मुझे ही मिलेगी क्योंकि मुझसे सुन्दर स्वप्न तू देख ही नही सकता। इसलिये खीर ले आ और मुझे खाने दे। नौकर के फिर से कहने पर सेठ ने कहा "मै सपने मे भारत का सम्राट बन गया था। इन्द्र को जैसे ही इस बात का पता चला तो वे मुझे इन्द्रपुरी का मेहमान बनाकर ले गये। वहॉ उसने मुझे सुन्दर भोजन करवाया। इन्द्राणी स्वय पखा झल रही थी एव इन्द्र मेरे मुँह मे कौर डाल रहे थे। इतनी ही नही, जब विष्णु को इस बात का पता चला तो वे भी मेहमानवाजी के लिये मुझे बैकुण्ठ ले गये। फिर शकरजी मुझे कैलाश ले गये। ऐसा स्वप्न तू क्या, तेरे बाप-दादा व तेरी इक्कीस पीढी के लोग भी नही देख सकते। लाओ, खीर।" नौकर ने कहा सेठजी मेरा भी स्वप्न सुनिये। रात्रि को सपने मे मेरे गुरुजी आये। बडी-बडी दाढी, बडी-बडी आँखे, डडा दिखाते हुए उन्होने कहा "बेवकूफ कही के। खीर वहाँ खराब हो रही है और तू यहॉ खर्राटे भर रहा है। चल उठ और खीर खा।"

मै कुछ देर चुप रहा। फिर गुरुजी ने लाल-लाल आँखे दिखाते हुए कहा "मूर्ख कही के। खीर खाता है कि डडा ?"

मैने डर के मारे खीर खाना कबूल कर लिया। मै तुरन्त गया रसोईघर मे और खीर खाने लगा मजेदार, स्वादिष्ट खीर ऐसी खीर मैंने जिंदगी मे पहली बार खायी थी अहाहा। फिर पतीली माज धोकर रख दी। वह देखिये पतीली, चम-चम चमक रही है।

तब सेठजी ने कहा "यह तुम्हारा स्वप्न था कि हकीकत ?"

"स्वप्न नही हकीकत ही थी।"

"यह कैसे सभव हुआ"

"मैने गुरु बना रखे है। उन्होने ही मुझे ऐसा करने के लिये कहा"

"उस वक्त मुझे क्यो नही बुलाया ?"

"उस वक्त आप तो सम्राट बने हुए थे। मै बुलाने गया किन्तु वहाँ मुझ गरीब को कोई आने नही दिया क्योंकि आपकी सुरक्षा कडी थी, और बाद मे आप इन्द्रपुरी मे, बैकुण्ठ मे और कैलाश मे मेहमानवाजी मना रहे थे। मै गरीब नौकर भला वहाँ कैसे पहुँचता ? आपको इन्द्रपुरी मे इन्द्र की मेहमानवाजी मुबारक हो ? विष्णु और शिवजी की मेहमानवाजी मुबारक हो। मैंने तो यही पर खीर खाकर अपनी भूख मिटा ली।"

■

❑ राहुल अग्रवाल, १० ब

गज़ की जगह थान हार गया

एक कार्यालय मे काम करने वाले कर्मचारियो ने आपस मे विचार करना शुरू कर दिया। उस कार्यालय के सबसे अनुभवी कर्मचारी के रूप मे अनुभवानद मशहूर थे। कार्यालय के सभी कर्मचारी उन्हे बडे भाई जैसा सम्मान देते थे। अनुभवानद को अनुभव के आधार पर अपने कार्यालय के भाई-बहनो के लाभ-हानि का पता था। अत उन्होने अपने सफेद बालो की दुहाई देते हुए कहा भाइयो एव बहनो! हमे थोडा धीरज के साथ कोई भी कदम उठाना चाहिए। अनुभवानद की इस सलाह पर कई कम उम्र के कर्मचारियो ने आपत्ति की और लोहा गर्म होने पर चोट करने की सलाह दी, परन्तु उन्हे यह पता नही था कि एकाएक सफलता हाथ लगनी आसान नही है। उन्होंने बहुत खुशामद करके कार्यालय के कर्मचारियो को धैर्य धारण करने के लिए राजी कर लिया।

दूसरे दिन अपनी भावना को अनुभवानद ने उस कार्यालय के प्रधान अधिकारी के साथ सलाह करते हुए कहा–महाशय! कार्यालय मे अब त्याग और बलिदान करने वाले कर्मचारियो की कमी हो गयी है। नई पीढी के लोग हमलोगो की तरह से सहनशील नही है। अत उनमे उत्तेजना बढ रही है। आप कृपया मालिक को यह सूचना दे दे कि उनकी वेतनवृद्धि से सम्बन्धित इच्छा जानकर कुछ ऐसा करे कि साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।

अधिकारी महाशय ने यह आश्वासन दिया कि मै साहब से अवश्य कहूँगा। कई बार इसकी बाते अधिकारी और अनुभवानद के बीच हुईं, परन्तु कोई लाभ दिखाई नही दे रहा था। आखिर मे सभी कर्मचारियो के साथ स्थानीय ख्याति प्राप्त जनसेवको से मिलना उचित समझकर उन्होंने अपनी समस्या के समाधान के लिए प्रयास किया। उनमे से एक प्रतिष्ठित एव ख्याति प्राप्त जननेता ने उसका साथ दिया। बार-बार मिलकर इतनी सफलता पा ली कि कर्मचारियो की इच्छा के अनुकूल वेतन वृद्धि कराने मे सफल हो गये।

अनुभवानद के अनुभव एव युवासाथियो के उत्साह के कारण कार्यालय के कार्यक्रम मे एक नवीनता आ गई। सभी कर्मचारियो के कार्य करने के ढग को देखकर सेठ धनपतिजी को भी सतोष हुआ कि कम से कम सभी प्रसन्न होकर कम्पनी के उत्थान मे लग गये है। खर्च जितना बढा है, उससे दुगुनी आमदनी होने लगी है। परन्तु जिस जगह अच्छे एव कर्मठ लोग रहते है वही पर कुछ अकर्मण्य एव चापलूस लोग भी रहते है। उनकी दृष्टि मे अनुभवानद खटकने लगे। उन लोगो ने सेठजी से उनकी तरह-तरह से निन्दा करनी प्रारम्भ कर दी। इसी बीच सेठजी का एक नई कम्पनी खोलने के लिए इमारत बनाने के लिए जगह की आवश्यकता आ पडी। सयोगवश अनुभवानदजी के सहयोग से स्थानीय जननेता ने सेठजी के उस कार्य मे भी काफी योगदान किया और सेठजी अपने घर आने-जाने के समय अनुभवानद को भी साथ रखने लगे। अनुभवानदजी ने सेठजी को सुझाव दिया कि नेताजी के बडे लडके को अपने कार्यालय मे किसी उच्चपद पर नियुक्त कर दीजिए, भविष्य मे इससे बहुत बडा लाभ आपको हो सकता है। सेठ धनपतिजी ने अनुभवानदजी की भावना को समझा और उस नौजवान को बडी चतुराई से अपनी कम्पनी का ऑफिस इन्चार्ज बना दिया।

कमलनाथ एक सुन्दर, स्वस्थ, आकर्षक एव तेज नौजवान था। जब से वह कार्यालय मे आया तब से एक नयी जान आ गयी। उसने अपने व्यवहार से सबका मन जीत लिया। कार्यालय के सभी कर्मचारी उसे अपने छोटे भाई की तरह प्यार करने लगे। अनुभवानद से मिलकर उसने कार्यालय के कर्मचारियो का एक सगठनात्मक स्वरूप बनाया और सेठजी का मन कर्मचारियो की ओर मोडने मे सफल हो गया। अभी दो वर्ष भी नही बीते थे कि सरकारी वेतन की माग को लेकर सभी बाते करने लगे। अनुभवानद ने सेठजी को सचेत किया। उन्होंने सलाह दी कि अगर फिर से सभी कर्मचारियो को तीन इन्क्रीमेन्ट एक साथ दे दिये जाएँ तो सभी मान सकते है, परन्तु इस बार सेठजी ने ठान लिया था कि एक पैसा भी नही बढायेंगे। कमलनाथ ने अपनी योग्यता का परिचय दिया एव स्थानीय

प्रभाव के कारण सेठजी को बाध्य होना पडा और वे इस बात के लिए राजी हो गये कि सभी कर्मचारियो को सरकारी वेतन के बराबर वेतन देगे, परन्तु कम्पनी के लाभ के लिए आप लोगो को जी-जान लगाकर काम करना पडेगा। इस बार सभी कर्मचारियो पर कम्पनी का पाँच लाख रुपये प्रतिमास खर्च बढ गया। कमलनाथ की जय-जयकार होने लगी। इस बार अनुभवानद के अनुभव को सेठजी ने नही अपनाया था। उन्होने जो कार्य एक लाख मासिक खर्च बढाकर सपन्न करना चाहा था, वही खर्च सेठजी को पॉच गुना करना पडा। इसके बावजूद भी सेठजी का झुकाव कमलनाथ की ओर होने लगा क्योंकि उनकी समझ मे आ गया था कि इसी के कारण मै गज की जगह थान हार गया हूँ। अगर इसे अपने अनुकूल बना लूँ तो भविष्य मे कम्पनी मे कोई भी सिर उठाने योग्य नही रहेगा।

■

❑ सन्तोषकुमार तिवारी

चाणक्य : तप व सेवा की सजीव मूर्ति

भारत मे चन्द्रगुप्त मौर्य का शासनकाल था। राष्ट्र का यश-वैभव चरम सीमा पर था। वह काल भारत का स्वर्ण-युग माना जाता है। जब चन्द्रगुप्त बालक ही था, चाणक्य ने उसकी प्रतिभा को परखा था और उससे प्रभावित होकर अपने बुद्धि-कौशल से उसे सम्राट बनाया था। चाणक्य अपनी धुन का पक्का था – जो बात मन मे एक बार ठान लेता, उसे हर कीमत पर सफलतापूर्वक पूरी अवश्य कर लेता। महान् तपस्वी तो वह था ही, देश सेवा का भाव भी उसमे कूट-कूट कर भरा था। देश की निरन्तर सेवा करते रहने के लिए वह स्वय सम्राट चन्द्रगुप्त का महामात्य (महामत्री) बना।

भारत की यशोकीर्ति देश-देशान्तर तक फैली हुई थी। उसी समय युनानी दूत मेगास्थनीज भारत आया। राज्य का उत्तम सचालन तथा प्रजा की सुख-समृद्धि देखकर वह अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने सम्राट चन्द्रगुप्त से कई बार भेट की। महामात्य चाणक्य की प्रशसा उसने बहुत सुनी थी, लेकिन उनसे भेट नही हो पायी ती। उनसे मिलने के लिए उसने सम्राट से निवेदन किया। अद्भुत ही है कि किसी राष्ट्र के मन्त्री या प्रधानमत्री से मिलने के लिए निवेदन उस राष्ट्र के अध्यक्ष से किया जाय।

एक दिन सम्राट चन्द्रगुप्त मेगास्थनीज को साथ लेकर रथ से चला। एक साधारण आश्रम मे पहुँचा। द्वार पर जूते उतार कर अन्दर प्रवेश किया। सामने चटाई पर एक व्यक्ति बैठा था–अपने मे खोया हुआ, हाथ मे कलम और सामने कागज रखे हुए थे। उसका रग काला था, सिर पर एक बडी-सी चोटी के अतिरिक्त सिर का शेष भाग मुडित था, कमर से नीचे का भाग एक मोटी धोती मे लिपटा हुआ था तथा शरीर का ऊपरी भाग नगा था, जिस पर केवल एक मोटा जनेऊ लटक रहा था। हाँ, उसके चेहरे के हाव-भाव से साफ दिखाई पड रहा था कि यह व्यक्ति सकल्पशक्ति का धनी और अपनी लगन का पक्का है।

सम्राट ने झुककर उसे प्रणाम किया, फिर स्वय व मेगास्थनीज, दोनो उसके सामने चटाई पर बैठ गये। उसने आँख उठाकर एक बार आगन्तुको की ओर गम्भीरतापूर्वक देखा फिर बिना कुछ कहे या सुने पहले की तरह अपने काम मे जुट गया। थोडी देर बाद मेगास्थनीज को लेकर सम्राट वहाँ से वापस आया। महल मे वापस पहुँचने पर मेगास्थनीज बोला, "महाराज! आज तो आप मुझे अपने महामत्री से मिलाने वाले थे?"

सम्राट हँसे और बोले, "वे महामत्री ही तो थे, जहाँ हम आपके साथ आश्रम मे गये थे।"

मेगास्थनीज आँखे व मुँह फैलाए बेवकुफ बना खडा था। सम्राट की बात उसकी समझ मे नही आई थी। विस्मय से बोला, "लेकिन महाराज! इतने विशाल और वैभवशाली राष्ट्र का महामत्री एक झोपडी मे रह रहा है! और महाराज! महामत्री तो आपके मातहत है, उन्होंने तो आपके अभिवादन भी नही किया। उल्टे आपने उन्हे प्रणाम किया और वे बोले तक नही। लगते भी एक साधारण देहाती किसान मजदूर जैसे थे। मै तो इन सारी पहेलियो मे उलझ कर रह गया हूँ।"

सम्राट ने फिर कहा, "वे हमारे महामत्री है और हमारे गुरु भी, अत उन्हे प्रणाम करना मेरा धर्म है। मै और मेरा राष्ट्र उनकी ही कृपा और आशीर्वाद का प्रसाद है। राष्ट्र-सचालन की सारी नीतियाँ उन्ही की बुद्धि का परिणाम है तथा सारे समाज के सुख-दु ख की हलचले उनकी अपने दिल की धडकने है। उन्होंने अपना सारा जीवन ही राष्ट्र की जीवनधारा मे विलीन कर दिया है। रही उनके न बोलने की बात, सो वे राष्ट्र-कल्याण के प्रति चिन्तन और राष्ट्र-सचालन के लिए नियम-कानून बनाने मे रात-दिन लगे रहते है। उनसे बात करने के लिए हमे भी पहले से समय लेना पडता है। आज हम उनसे समय लिए बिना ही केवल उनका आशीर्वाद लेने उनके पास गये थे।"

मेगास्थनीज का आश्चर्य और भी अधिक बढा तथा चाणक्य जैसे महान् तपस्वी राष्ट्रभक्त से बात करने के लिए उसका मन छटपटाने लगा।

चाणक्य ने मेगास्थनीज को वार्ता का समय दिया। वह निश्चित समय पर वहाँ पहुँचा। महामत्री नित्य की भाँति राष्ट्र के कार्यों मे व्यस्त थे। मेगास्थनीज के पहुँचने पर महामत्री ने जलते हुए दीपक को बुझा दिया तथा दूसरा दीपक जला दिया और बोले "क्या सेवा करूँ?"

मेगास्थनीज का विस्मय बढा। कहा, "जिज्ञासाये तो आपसे बात करने की बहुत सी है, लेकिन एक नई जिज्ञासा उत्पन्न कर दी है आपने। आपने दीपक बुझाकर दूसरा दीपक क्यो जला दिया?"

चाणक्य ने सरलता से उत्तर दिया, "अभी तक मै महामत्री की हैसियत से राष्ट्र का कार्य कर रहा था, अत राष्ट्र की सम्पत्ति का तेल जल रहा था। अब मै चाणक्य की हैसियत से आपसे निजी बातचीत कर रहा हूँ, अत मेरे परिश्रम से उपार्जित आय से यह दीपक जल रहा है। निजी कार्य के लिए राष्ट्रीय सम्पत्ति का उपयोग करना तो एक घोर अपराध है। नियम कानून बनाने वाले ही जब उन नियमो को तोडेंगे, तब उनके पालन के लिए अधिकारियो एव जनता को कैसे प्रेरित किया जा सकेगा। व्यक्ति की बातो और उसके आदेशो या उपदेशो का असर दूसरो पर नही पडता, असर पडता है केवल उसके व्यवहार का, उसके व्यक्तित्व का।"

मेगास्थनीज भाव-विह्वल था। उसका रोम-रोम उस महान् तपस्वी को प्रणाम कर रहा था। उसका मस्तक झुक गया और मुख से निकला, "धन्य है वह देश, जहाँ आप जैसा महामत्री है। सम्राट से आपके विषय मे सुना था और अब जान गया हूँ कि आपके देश की उन्नति मे आप ही के चरित्र के सच्चे सौन्दर्य का प्रकाश चमक रहा है। इस एक ही प्रश्न के उत्तर से हमारी सारी जिज्ञासाएँ शात हो गई है। हमे अब आगे कुछ नही पूछना है।"

■

स्नेहा सुरेका, अष्टम् ब

❑ अमीत यादव, कक्षा : ७ 'अ'

लालची भाई

एक गाँव मे दो भाई रहते थे। बडे भाई का नाम रतन और छोटे भाई का नाम श्याम था। रतन एक विद्यालय मे पढाया करता था जबकि छोटा भाई सारा दिन खेती करने मे ही गुजार देता था। लेकिन रतन को खाना अच्छा मिलता था और उसके छोटे भाई को रूखा-सूखा मिलता था। इस बात पर दोनो की पत्नी एक-दूसरे से हमेशा झगडती रहती थी। बडी बहू बहुत चालाक थी। उसने दोनो भाइयो को अलग करवा दिया। रतन ने छोटे भाई के हिस्से की भी सारी दौलत हडप ली। श्याम की पत्नी ने उसे शहर जाकर कुछ पैसे कमाने की सलाह दी। वह जगल की राह से शहर जाने लगा। चलते-चलते शाम हो गई। उसने एक बरगद के पेड के ऊपर विश्राम करना उचित समझा। रात के समय उस पेड के नीचे जगल के सभी पशु आये। उनमे से लोमडी ने भालू से कहा कि "उसने अपने घर मे सोने की मुद्राएँ छिपा रखी है।" भालू ने कहा, "मैंने तो अपना धन दूर की एक झाडी मे छिपा कर रखा है।" इसी तरह सारे पशु अपने-अपने धन के बारे मे बाते कर रहे थे। तालाब के पास कुछ छोटे-छोटे पेड भी थे। उनमे से एक ने कहा कि 'इस वन के राजा का बेटा अन्धा है। अगर कोई मेरे पत्ते का रस उसकी आँखो मे लगा दे तो वह देख सकेगा।' यह सब बात श्याम सुन रहा था। प्रात काल होने पर उसने उस पेड के कुछ पत्तो को तोड लिया और राजदरवार मे चला गया। उसने उस पत्ते का रस निकाल कर राजकुमार की आँखो मे लगा दिया। राजकुमार सबको देखने लगा। राजा ने खुश होकर श्याम को कुछ माँगने के लिये कहा तो श्याम ने उस वन को माँगा। राजा ने वह वन उसे दे दिया। श्याम ने जगल मे जाकर मिट्टी के अदर गडी सोने की सारी मुद्राएँ निकाल ली और झाडी के नीचे सोने के घडे मे जो गहने थे वे भी ले लिये। वह अब खूब धनी हो गया। रतन को जब यह मालूम हुआ तब वह भी जगल के बरगद के पेड पर चढ गया। रात को सब जानवरो ने कहा कि उनका सब धन गायब हो गया, तभी रतन बोल पडा कि वह मेरा भाई था। जानवरो ने मिलकर रतन को पेड पर चढकर इतना पीटा कि वह मर ही गया।

■

❑ विशालप्रसाद जायसवाल, एकादश ब

गुरु का महत्व

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुदेवो महेश्वर ।
गुरु साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नम ।।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज मे ही जन्म लेता है, बढता है और अन्त मे समाज मे रहकर मृत्यु को प्राप्त होता है। लेकिन इस जन्म और मृत्यु के बीच जो जीवन है उसे सुखमय बनाने के लिए ज्ञान का होना अति आवश्यक है और वह ज्ञान हम अपने गुरुजनो से ही प्राप्त करते है।

शिष्य की सफलता मे प्रथम स्थान गुरुदेव तथा गुरुमाता का होता है। सदियो पहले जब हमारे पूर्वज आश्रम मे शिक्षा प्राप्त करने जाते थे, उन्हे गुरुदेव तथा गुरुमाता से जो दिव्य ज्ञान प्राप्त होता था, वे उन्ही के सहारे जीवन की जटिल से जटिल समस्याओ को सुलझा देते थे। गुरु अपने शिष्यो को उच्च से उच्च कोटि की शिक्षा प्रदान करते थे। वे सभी नैतिक, व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान करते थे जिससे उनका जीवन धन्य हो जाता था। शिष्य अपने माता-पिता तथा गुरु की आज्ञाओ का पालन करने मे अपने प्राणो को भी दाव पर लगा देते थे।

'गुरु बिनु होइ न ज्ञाना' का विश्वास भारतीयो की अपनी विशेषता है। गोस्वामी तुलसीदास ने गुरु के सम्बन्ध मे कहा है–

''बँदउँ - गुरु - पद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।''

तब और आज मे कितना अन्तर हो गया है। आज तो कलियुग की छाया सभी को ग्रस रही है। माया के प्रभाव मे सभी मोहित होते जा रहे है। इससे तो कोई सच्चा मार्गदर्शक ही बचा सकता है। गुरु से बडा मार्गदर्शक कौन हो सकता है? बुराई की ओर बढते हुए कदम को गुरु के सिवा और कौन रोक सकता है? मलिक मुहम्मद जायसी कहते है–

'बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।'

आज तो ऐसा हो गया है कि हम क्रोध मे अपने गुरुजनो का भी अपमान कर देते है। हम अपने आप पर नियत्रण नही रख पाते है। कभी-कभी तो मूर्खतावश अपने आप को गुरु से भी बडा ज्ञानी समझने लगते है और फलस्वरूप पतन की ओर बढते चले जाते है। हमे गुरु निन्दा नही सुननी चाहिए पर हम भूल से गुरु की निंदा ही कर बैठते है। हमारे पूर्वजो तथा हमारे गुरुओ ने हमारे लिये जो नियम बनाये है हमे उसी के अन्तर्गत रहकर कार्य करना चाहिए। किसी कवि ने कहा है–

''गुरु की निन्दा सुनहि जे काना,
हो पातक गौ घात समाना।''

गुरु अपने शिष्य की गलतियो को सुधारते है। वे हमे अपने पुत्र के समान ही स्नेह प्रदान करते है और हर स्थिति से अवगत कराते है। कभी-कभी हम इतने नीचे गिर जाते है कि जिसका ध्यान ही नही रहता। उस समय गुरु हमारे मार्गदर्शक बनकर आते है और हर तरह से हमारे सुधार की कोशिश करते है। उन्ही के प्रयास से हमारा जीवन सुखमय होता है। ईश्वर की अपेक्षा गुरु को प्रथम पद दिया गया है। कबीरदासजी भी गुरु को प्रथम पूज्य मानते है–

''गुरु गोविन्द दोऊ खडे, काके लागू पॉय
बलिहारी गुरु आपकी, गोविन्द दियो बताय।''

विधाता द्वारा रचित इस सुन्दर सृष्टि मे मानव सबसे सुन्दर कृति है। विधाता ने उसके लिए कुछ विशेष गुणो की रचना की है। जिसे हम अपने गुरु से प्राप्त कर उसका सदुपयोग करना सीखते है। उसके ये गुण मानवतत्व या मनुष्यता कहलाते है। मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म जीव मात्र के प्रति प्रेम है।

वस्तुत गुरु ही ईश्वर तत्व का दूसरा रूप है जो हमारे सभी दुर्गुणो को सँवारते है और हमे हर समस्या से लडने का मार्ग दिखलाते है। अगर गुरु न हो तो अज्ञानान्धकार मे हम खो जाएँ।

जब मनुष्य मे अहकार बढता है और वह खुद को अपने जीवन का मूल निर्देशक मान लेता है तब भी ईश्वर गुरुजनो के माध्यम से हमे सुधारने की चेष्टा करते है। अत हमे अपने गुरुजनो का आदर करना चाहिए क्योंकि उनके द्वारा ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। ■

❑ अभिषेककुमार उपाध्याय, ६ ग

भिखारी

बहुत दिन पहले की बात है। दिल्ली मे एक फकीर रहता था। अल्लाह की बदगी के अलावा उसको दूसरा कोई काम नही था। उसके पास कुछ भी नही था, फिर भी वह हमेशा खुश रहता था। एक बार राज्य मे अकाल पड गया जिससे लोगो को बहुत कष्ट हुआ। उसने सोचा कि बादशाह से कुछ धन माँगकर जलाशयो का निर्माण कराया जाय। धन के लिए फकीर बादशाह के महल की ओर चला। महल मे जाने पर उसे पता चला कि बादशाह मस्जिद मे नमाज पढने गए है। फकीर मस्जिद की ओर चल दिया। वहाँ पहुॅचने पर फकीर ने देखा कि बादशाह नमाज समाप्त करते हुए अल्लाह से हाथ जोडकर कह रहे है–"हे अल्लाह! मुझे इतना धन और साम्राज्य दो कि मै और ज्यादा शक्तिशाली बन जाऊँ।" फकीर ने बादशाह को इस प्रकार अल्लाह से दुआ माॅगते देखा तो वहाॅ से चले जाना ही ठीक समझा। बादशाह ने फकीर को जाते देखकर कहा, "फकीर साहब! आप इतनी जल्दी क्यो चल दिए? मुझसे कोई काम था क्या?" फकीर ने जवाब दिया, "हाॅ हुजूर! काम तो था, लेकिन अब नही है।" बादशाह बोला, "ये आप क्या अजीब बात कर रहे है?" "हुजूर!" फिर फकीर ने उत्तर दिया "मै आपको बादशाह समझकर कुछ धन माॅगने आया था मगर आपको खुद अल्लाह से भीख माॅगते देखा, तो मैंने सोचा कि जो आदमी खुद अल्लाह से भीख माॅग रहा हो वह भला दूसरो को क्या देगा। आप तो मेरी ही तरह भिखारी है। इसलिए मै भी उसी अल्लाह से माॅगूॅगा जिससे आप माँग रहे थे।" ■

नेहा मालू, नवम् अ

□ काशीप्रसाद मिश्र, एम०ए०बी०एड०

गंगा

मेरे शहर के पश्चिम मे,
मेरे जन्म के बहुत पहले से,
शान्त निर्मल धारा मे बहती एक नदी है,
सलिल समृद्ध है,
जल प्रवाह लम्बा है,
नाम उसका गगा है ।

गगा का किनारा युक्त सिकता की राशि से,
नौकाएँ डोलती है, मृदु मद मथर गति से,
सूर्य उदय होते ही आते है भोलू नाथ,
भैसो को हाँकते हुए गायो के साथ-साथ,
हर गगे बोलते है, पशुओ को नहलाते है,
प्रदूषण फैलाते है ।
थोडी ही दूर पर बैठे है जुम्मन शेख–
हाथ मे लिए है एक बशी व कुछ चारा,
वाह! क्या भारा ।
चमक उठी ऑखे, खिल उठी बाहे,
भोजन की व्यवस्था है नाम जिसका गगा है।

सूर्य जब अस्त हुआ,
फैल गया राज्य-रजनी नरेश का,
विश्राम बेला है,
पर – क्या गगा भी सोएगी ?
और–
रात अब जागेगी,
हॉ–
रात भी जागेगी और गगा को जगाएगी ।

धीवरो की नौकाऍ दीपो से प्रदीप्त हुईं,
गगा के काले घने पाटो पर जालियाँ सुदीर्घ हुईं,
रात का उपक्रम है – काल का नियोजन है।
प्रात काल होते ही जाल जब सिमटेगे,
उलझे होगे उनमे झीगे, रोहू तथा और भी अनेक
क्या जीवन बस इतना ही ?
काल की व्यवस्था है, नाम जिसका गगा है।

गगा के तट पर,
बैठे-बैठे इन दृश्यो को देखता हूँ–सोचता हूँ ।
श्रेष्ठ जनो की वाणी मे,
गगा! पतित-पावनी है ।
पाप विनाशिनी है,
मोक्ष दायिनी है ।

पर दृश्य कुछ और है,
गगा का उपयोग – अनेक है–
सोच से परे है,
क्योंकि–
नाम इसका गगा है ।

शैली वर्मा, ११-बी

□ दिग्विजयप्रताप सिह, ९ अ

□ अमर शाही, १० ब

प्यार करते हैं

लालच और नफरत की ऑधी है,
फोटो मे गॉधी है ।

ऐसे मे एक दिन आता है,
जब युद्ध जरूरी हो जाता है ।
नजरे बचाते हुए कहते है,
युद्ध अब जरूरी है ।

वह दिन आता है,
जब एक जड इबारत,
भावनाओ की जगह उमडती है–
और घेर लेती है,
एक निनादित नाम ।
और सामूहिक अहकार होता है ।

जब अच्छाइयाँ,
बिना लडे हारती है ।
जब कोई किसी को कुचलता–
चला जाता है,
और कोई ध्यान नही देता है,
तब एक दिन आता है,
जब सेना के मार्च का इन्तजार करते है ।
वत्तियाँ बुझा लेते है,
और कहते है ‘प्यार करते है’ ।

मॉ! तुम तो हो महान

वीणावादिनी माँ तू शारदे,
नित्य करूँ तेरा गुणगान,
चरणो मे निज मस्तक रखकर,
करता रहूँ सदा मै ध्यान,
मॉ तुम ऐसा दो वरदान ।
मॉ तुम तो हो महान् ।

सबको देती तू ही विद्या,
सबको देती तू ही ज्ञान,
जो भी शरण तुम्हारे आया,
बना वही विद्वान ।
माँ तुम तो हो महान् ।

इसीलिए माँ शरण मे आया ।
और न ठौर कोई भी पाया ।
मुझको दे आशीष तू इतना,
बना रहे जो दिया है मान ।
माँ तुम तो हो महान् ।

जीवन अपना राष्ट्र निमित्त हो ।
चचल अपना कभी न चित्त हो ।
आये कठिनाई की बेला,
पाऊँ शीघ्र ही सुगम निदान ।
मॉ तुम ऐसा दो वरदान ।
माँ तुम तो हो महान् ।

❑ प्रतीक रतावा, ९ ग

❑ गौरव पाठक, ६ अ

आ गई परीक्षा

लो सिर पर आ गई परीक्षा,
मस्ती सब खा गई परीक्षा ।
जैसे कोई भूत आ गया,
रूखे सूखे बालो वाला ।
काली-काली ऑख दिखाता,
पिचके-पिचके गालो वाला ।
डर बनकर आ गयी परीक्षा,
लो सिर पर आ गई परीक्षा ।
झुक गई गर्दन, कमर भी टेढी,
पैरो पर चढ गयी चीटियॉ ।
अकल थक गयी दौड भागकर,
कानो मे बज रही सीटियाँ ।
बन्द रेडियो, बन्द सिनेमा,
खेल-कूद को जेल हो गई ।
अक्षर की पटरी पर चलती,
ऑखे विद्युत मेल हो गई ।
कमजोरी ला गयी परीक्षा,
लो सिर पर आ गयी परीक्षा ।

मेरी नजर में

१	कब्रिस्तान	–	दुनिया का अतिम स्टेशन ।
२	चाय	–	कलियुग का अमृत ।
३	पेन	–	कागज की सडक पर दौडने वाला इजन ।
४	सर्प	–	भगवान शकर का नेकलेस ।
५	पश्चाताप	–	अपराध धोने का साबुन ।
६	चिंता	–	मोटापा कम करने की दवा ।
७	चोर	–	रात का शरीफ व्यापारी ।
८	पाकेटमार	–	जेब का भार कम करने वाला ।

जरा सोचिये

क्रोध	बुद्धि को खा जाता है ।
घमड	ज्ञान को खा जाता है ।
प्रायश्चित	पाप को खा जाता है ।
लालच	ईमान को खा जाता है ।
रिश्वत	इन्साफ को खा जाती है ।
चिता	आयु को खा जाती है ।

❐ प्रियका दुगड़, ८ ब

दाँतों का सेट एक

बिहार की राजधानी पटना है ।
वही के होटल की घटना है ।
बूढा-बूढी का एक Pair,
निकाल के बैठ गए Chair,
बूँढे ने बैरे को बुलाया,
खाने का आर्डर दिया ।
पहले बूढे ने खाना खाया,
बुढिया ने पखा हिलाया ।
बुढिया ने खाना खाया,
और बूढे ने पखा् हिलाया ।
यह देखकर बैरे का माथा चकराया,
उसने पूछा–"ऐ लैला मजनू के माँ बाप,
तुम दोनो मे इतना ही प्रेम है तो–
साथ मे क्यो नही खा लेते ?"
बूढे ने कहा, "बेटा तुम्हारी बाते तो नेक है
पर हमारे पास दॉतो का सेट एक है"

❐ नेहा अग्रवाल, ८ ब

मुझको फेल न करना

ईश्वर मुझको फेल न करना,
एक साल की जेल न करना ।
ऐसा मुझसे खेल न करना,
ईश्वर मुझको फेल न करना ।

पास-पडोसी बुरा कहेंगे,
नही पिताजी प्यार करेंगे ।
ऐसा मुझसे खेल न करना,
ईश्वर मुझको फेल न करना ।

दीदी से डॉट पडेगी,
दोस्तो से आँख न मिलेगी ।
ऐसा मुझसे खेल न करना,
ईश्वर मुझको फेल न करना ।

☐ Shibani Mitra

My Dear Friends

(This article is conceived from a letter written by one of the most respected Presidents of the USA)

My dear friends, or the nation builders, you are in the most noble profession and entrusted a very responsible duty by the almighty Like responsible followers of the almighty, teach your children that the world is nothing but a stage where they are actors who have to play their part well and leave the stage for others to perform Time is limited like the setting sun whch fades away pretty fast There is no time to stand and stare but to act swift and collect as many pebbles of knowledge as possible Teach them how to inculcate the best virtues, ideals and qualities but not to get swayed by success Teach them that all men are not true but for every wicked person there is a hero, that for every selfish politician, there is a dedicated leader Teach them that for every enemy there is a friend Teach them to learn to lose and also to enjoy winning Steer them away from envy, if you can Teach them the secret of quiet laughter Teach them, if you can, the wonder of books but also give them time to ponder over the eternal mystery of nature Allow them to leisurely wander lonely like the clouds in the lap of nature In school, teach them it is far more honourable to fail than to cheat Remind them that failure is never final and success is never permanent Teach them to have faith in their own ideas, even if everyone tells them, they are wrong Teach them to be gentle with gentle people and tough with the tough Teach them to forgive people, if they can, because forgiveness is a quality possessed by the strong and not by the weak. Teach them to follow the sermon– Speech is silver, silence is golden' Let them be good listeners but at the same time be able to filter all that they hear on a screen of truth and store the ones that are worthy and invaluable Teach them, if you can, how to laugh when they are sad as there is no shame in tears Teach them to scoff at Cynics and to beware of too much sweetness Teach them to sell their brain to the highest bidders but never to put a price tag on their heart and soul Teach them to acknowledge the help and support they get from their fellowbeings because gratitude is the most exquisite form of courtesy Treat them gently, my friends, but donot cuddle them because only test of fire makes fine steel Teach them to learn the hard way to success which never comes easy Teach them to be honest and sincere in whatever they do as only earnestness pays dividend Teach them to have sublime faith in themselves because then only they will have sublime faith in mankind I know it is a tough job to enlighten them, but they are such fine, innocent little fellows, my friends

Asst Teacher,
Shree Jain Vidyalaya, Howrah

मनीषा शर्मा, सप्तम् ब

❒ Srabanı Chakrabortı

Some Aspects of Pastoral Adaptation

Pastoralısm represents an off-shoot of the early mıxed agrıculture and herdıng complexes ın adaptatıon to dry grasslands Pastoralısm was the characterıstıc traıt of Neolıthıc Perıod Neolıthıc cultıvatıon enabled human create mınıature envıronments where plant domestıcates could thrıve, herdıng of domestıc anımals allowed no such control It was humans who had to confırm to the patterns of raınfall and natural vegetatıon and to substantıal degree to the anımal they herded Often thıs requıres seasonal mıgratıon or transhumance

In thıs artıcle, some traıts of Pastoralısm are beıng focussed ın the context of two Nomadıc trıbes, namely Basserı Nomads of Southern Iran and Karmojong of Uganda

The Basserı of Southern Iran are Pastoral, tent-dwellıng nomads numberıng some 16,000 They mıgrate seasonally through a strıp of land some 300 mıles long, an area of about 2000 square mıles The seasonal mıgratıon pattern is shaped by the physıcal envıronment There ıs wınter snow ın the Northern mountaıns, a well-watered mıddle regıon around 5000 feet elevatıon (where most of the agrıculturısts are settled), and lower pasture land to the south that becomes and ın summer Each of the nomadıc trıbes of South Iran has ıts own tradıtıonal mıgratıon pattern The Basserı Economy rests squarely on theır herds of sheep and goats Mılk, meat, wool and hıdes come from these herbs and can be traded wıth vıllagers to meet other needs Transportatıon ıs provıded by horses, donkeys, camels Durıng the summer, when pastures are rıch, the Basserı remaın temporarıly settled Food surpluses are buılt up, ın the form of cheese and meat on the hoof, that provıde subsıstence ın the leaner wınter months The Basserı also eat agrıcultural produces Most are obtaıned by trade, but the Basserı grows some wheat at theır summer camps The mobılıty of the Basserı ıs reflected ın the realm of socıal organısatıon Famıly groups, conceıved as tent' are the maın unıts of productıon and consumptıon These tent groups, represented by theır male heads, hold full rıghts over property and sometımes act as ındependent polıtıcal unıts All of the property of a tent group – tents, beddıng, cookıng equıpment – must be moved, alongwıth the herds, when the group mıgrates The rest of the year, larger camps of 10-40 tents move together Members of these camps comprıse solıdary communıty

The Afrıcan complex of Pastoralısm ıs based on Cattle herdıng The symbolısıs between hılmans and Cattle, and the symbolıc elaboratıons of the cattle complex' have long attracted ecologıcal ınterest These elaboratıons are carrıed to most remarkable lengths of East Afrıca The Karımojong of Uganda provıde a vıvıd ıllustratıon The Karımojong comprıse some 60,000 Pastoralısts occupyıng about 4000 square mıles of semıarıd plaın ın north-eastern Uganda Cattle are property and accordıngly they represent varıable degrees of wealth, of socıal status and of communıty ınfluence First and foremost cattle provıde subsıstence, by transformıng the energy stored ın the grasses, herbs and shrubs of a dıffıcult envıronment Blood and mılk products, not meat, provıde the prımary subsıstence Cattle are bled once every three to fıve months Cows are mılked mornıng and nıght, ghee (butter and curdled mılk) can be stored and ıs centrally ımportant in the dıet Mılk, often mıxed wıth blood, provıdes the maın dıet, especıally for the men who move wıth herbs Cultıvatıon of Sorghum provıdes secondary subsıstence Women, based ın the permanent settlements ın the centre of Karımojong land, do the cultıvatıon Cattle are slaughtered rearly, maınly for ınıtıatıons and sacrıfices and those are maınly performed when drought forces reductıons ın the herbs Wıth lımıted technology they preclude brıngıng food and water to theır herbs or storıng most foods, the Karımojong must follow strategıes that mınımıse rısk ın a harsh and unpredıctable envıronment as well as maxımıse subsıstence productıon Rather than modıfyıng theır envıronment, the Karımojongs must adapt theır lıves to eat

Asst Teacher
Shree Jaın Vıdyalaya, Howrah

❐ Shampa Ghosh

An experience with a `Natural Extravaganza'

September 14, 1989, at about 05 00 hrs, we were standing and shivering at `Zero Point' when there was very little clairty all around The name `Zero Point' very rightly describes the position It is at an abrupt end of a very narrow ridge, whose three sides slope down with a very steep gradient into the valley Straight in front of us was the Chhanguch Peak bathed in milk white snow and standing above her attentant peaks Nandakhat, Panwalidwar and Baljouri on the left, whose foot being separated from our ridge by River Pindari, which is more a trickle of water than a river In between Chhanguch and Nandakhat crawled up the Pindari Glacier capped above by Trail's Pass

It was most probably a few minutes past five – The Sun God was rising behind Chhanguch that had a halo around its peak and streaks of rays struck the tip of Baljouri first and created a dazzling saffron effect which gradually changed colour and size with the tick of very second Few minutes elapsed and Baljouri was a proud onwer of a resplendent golden crown Next was Panwalidwar and ultimately Nandakhat had the identical effect Finally all the three peaks glared at us as if molten gold was being poured on them, which slowly and proportionately engulfed the respective peaks It was a drama and the most dramatic part was that the sun was not yet in sight This drama or a drastically dramatic change every minute, as one may like to emphasize, proves rightly Shakespeare's saying, "this world is a stage" Ofcourse the very next line says, "where every man has got a part to play and mine is a sad one," and out here, right now it was Sun God's and Nature God's role and theirs is a spiritually spectacular and stupendous one All of us stood dumb – I felt breathless, may be skipped a beat, the shiver in the cold did not have any effect, eyes were wide open without a single flip – the surrounding was incredibly pretty and Nature played havoc with colours – the mountain tops were the play grounds – they were being bathed with golden, saffron, red, white, yellow, pink colours which were changing now and then like a chameleon All were quite and the term noise' was applicable to the trickle of the River Pindari, the fiercely blowing cold wind, clicking of cameras and at times of sudden sigh due to haevy breath Right at the end of the ridge, on which we were standing was a board with the inscription, "Zero Point aagae khatra hai" and two small triangular saffron flags were fluttering wildly – whispering messages of peace into the serene wilderness On the whole it was an inexpressible perception To believe it or to sense the magnificiant touch, the tenderness, the emotion, one has to confront the very environment Photographs and mere words are never sufficient enough to depict the Divine display

On my return to this more materialistic world, I automatically recall the words of Eric Shipton – "He is lucky who, in full tide of life, has experienced a measure of the active environment that he most desires In these days of upheaval and violent change when the basic values of to-day are in vain and shattered dreams of tomorrow, there is much to be said for a philosophy which aims at a full life while the opportunity offers These are few treasures of more lasting worth than the experience of a way of life that is in itself more satisfying Such, after all, are the only possessions of which no fate, no cosmic catastrophe can deprive us, nothing can alter the fact if for one moment in eternity we have really lived "

With this lifetime experience of mine I would tell everyone "go out on the Himalaya and listen You will hear much The wind will hold for you something more than sound, the streams will not be merely babbling of hurrying water The trees and flowers are not so separate from you as they are at other times, but very near; the same substance, the same song binds you to them Alone amidst Nature, a person learns to be one with all and all with one "

Asst. Teacher
Shree Jain Vidyalaya, Howrah

□ बी के. हर्ष

संघर्षमय दशक की उपलब्धि

किसी भी शैक्षणिक सस्था का प्रथम दशक सघर्ष से भरा होता है। यह सघर्ष अगर सम्पूर्ण प्रतिबद्धता के साथ होता है तब ''एक यशस्वी दशक'' का प्रकाशन होता है। मेरी आतरिक शुभकामना है कि विद्यालय अगणित दशक की सफलतापूर्ण यात्रा करे और शिक्षा क्षेत्र मे अपना नाम सबसे ऊपर रखे।

हमारी शिक्षा पद्धति इस समय एक विचित्र विरोधाभास के दौर से गुजर रही है। बाजार व्यवस्था ने हमारे सभी मूल्यो को झकझोरना आरम्भ कर दिया है। शिक्षा के क्षेत्र मे भाषा को लेकर जिस महीन तरीके से हमला आरम्भ हुआ है, वह एक बनी बनाई योजना है। आज सम्पूर्ण भारतीय भाषाओ के समक्ष अग्रेजी एक चुनौती के रूप मे आकर खडी हो गई है। अग्रेजी व्यापार की भाषा हो सकती है लेकिन भारतीय समाज के लिए वह आत्मा की भाषा नही हो सकती। जिनकी रगो मे माँ का दूध दौडता है वे अपनी मातृजुबान कभी भी छोड नही सकते। मै बोतल से दूध पीने वाले के बारे मे नही जानता। किसी भी देश की शिक्षा-सस्कृति उसकी अपनी भाषा पर विकसित होती है। लेकिन हमारे यहाँ शिक्षा के कई स्तर है। शिक्षण सस्थाये जो सामाजिक जीवन को नया रूप देती है वे भी इन दिनो बाजार की गिरफ्त मे फँस गई है। कुछ अपवादो को छोडकर जिसमे श्री जैन विद्यालय भी एक है। अनेक शिक्षा सस्थाये इन दिनो पाँच सितारा होटलो जैसा रूप ले चुकी है जो शिक्षा की दृष्टि मे एक खतरनाक रूप है। यह स्थिति विभेद पैदा करती है जो हिंसा की प्रवृत्ति मे परिणत होती है। वैसे भी देश के सामने अनेक समस्याएँ है। अगर शिक्षण सस्थाये इन्हे रोकने मे सहायक नही हो सकती तो प्रोत्साहित तो न करे। शिक्षण सस्थाओ मे जिन मूल्यो, आदर्शों को दिया जाता था और एक स्वस्थ नागरिक तैयार होता था, आज उसका अभाव होने लगा है। जो शिक्षण सस्थाये आज भी मूल्यो को लेकर चलती है उनका दायित्व दिन-प्रतिदिन बढता ही जा रहा है। सामान्य आदर्श और मूल्य किसी विद्यार्थी को एक ऐसा नागरिक बना सकते है जिसकी आज घर, परिवार, समाज और देश को जरूरत है। शिक्षा मनुष्य मे तीसरा नेत्र खोलती है जिसे विवेक का नेत्र कह सकते है। शिक्षा अज्ञान रूपी अन्धकार से लडने का शक्तिशाली प्रकाशमय हथियार है। शिक्षा अध विश्वास के खिलाफ आदमी मे चेतना जागृत करती है। शिक्षण सस्थाये आज भी चाहे तो यह कार्य फिर आरम्भ कर सकती है। मुझे विश्वास है यह कार्य भविष्य मे आरम्भ होगा।

प्रधानाचार्य

हरकचद काकरिया श्री जैन विद्यालय, जगतदल

निकिता अग्रवाल, अष्टम् ब

☐ A K Tiwari

Home and Education

The mother is the first teacher of the child and home is the primary informal educational institution Childhood or infancy is the most impressionable age, just like a clean slate on which anything can be written If negative impressions are provided to the child at home, it would be very difficult to remove these during the years of schooling of the child If the child is reared in an open, affectionate and free environment with due care and attention, later development of the child would be healthy Home, therefore, plays the most significant role in laying the foundation of a child's personality

In today's complex society and the family have the greatest influence on growth and development of child's personality His attitudes and values are dependent on how he is nurtured by parents The child's intellectual abilities, aspiration and commitments are first acquired in the family For proper development of child it is of paramount importance that parents are accordingly educated A good parent may be one who understands and accepts the growing child with his needs and aspirations He provides due freedom to child and avoids imposition of his views and attitudes on him A good parent has a caring but never possessive attitude towards the child They believe in autonomous growth of the child This blossoms child's personality

Home not only influences the socialization and aculisation of the child, but it also plays a significant role in determining the educability of the child The differentiated achievements of child are partly due to genetic factors lik intelligence and partly by the nurturance at home

The way the child is treated at home influences hi motivation and interests, not only before he starts going t school but throughout school life It is the parents who ca supplement and support the activities of teachers Attitude and actions of the parents are as important as those o teachers for proper education of children

Vice Principal
Shree Jain Vidyalaya, Kolkat

❑ अमर कुमार शाही, १०-ब

पैसों की माया

शर्म का मोल नही,
ईमान का मोल नही,
सच्चाई का मोल नही,
सिर्फ   सिर्फ पैसे का मोल है ।

यह पैसे की माया है,
आदमी न सोचता है,
न समझता है,
सिर्फ पैसे की ओर भागता है,
दौलत की आकाक्षा रखता है ।

पैसे की खातिर,
हत्या, डकैती व चोरी करता है ।

माँ-बाप व परिवार का त्याग करता है,
रिश्ते नातो का परित्याग करता है ।

यह पैसे की माया है,
दोस्त दुश्मन बन जाते है ।

प्यार शत्रु हो जाता है,
सिर्फ पैसे की खातिर ।

यह दुनिया बदल जाती है
यह पैसे की माया है ।

❑ गोविन्द सिंघी, सप्तम ग

जंगल में वन डे

जगल मे वन डे क्रिकेट का,
आयोजन था भारी ।
सभी जानवरो ने की जमकर,
मैचो की तैयारी ।

कप्तानी का भार शेर ने,
पहले पहल उठाया ।
उद्घाटन का मैच जीत कर,
उसने नाम कमाया ।

शतक जमाकर बडी शान से,
हाथी जी मुस्काये ।
चीते की इक तेज गेद ने,
तीनो विकेट उडाये ।

पुरस्कार बल्लेबाजी का,
कगारू ने पाया ।
छक्के चौके से ही उसने,
दोहरा शतक बनाया ।

आँखो देखा हाल, रेडियो
से भी गया सुनाया ।
जगल टी वी ने भी सारे,
मैचो को दिखलाया ।

□ आशुतोष शुक्ला, पचम ख

साक्षरता

किसी देश की अशिक्षा उसकी उन्नति मे एक महान् रुकावट है। जब तक कोई देश पूर्ण शिक्षित नही हो जाता तब तक उसकी सम्यक् उन्नति नही हो सकती। ससार मे शिक्षित होने के उपरान्त ही किसी देश ने पूर्ण उन्नति की है। भारत के पिछडे रहने का एक प्रमुख कारण यहाँ की अशिक्षा है। विदेशी शासन के कारण यहाँ की जनता को शिक्षित करने का अत्यल्प प्रयास किया गया। यह एक अत्यन्त आश्चर्यजनक विषय है कि १९५१ की जन-गणना के अनुसार भारत मे साक्षरो की सख्या लगभग साढे सोलह प्रतिशत थी। इनमे से कुछ व्यक्ति ऐसे है जो किसी प्रकार हस्ताक्षर कर सकते है। अवशिष्ट तीस करोड व्यक्ति अशिक्षित है।

निरक्षरता—एक महान् अभिशाप · यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि भारत मे प्राचीनकाल मे भी साक्षरता कुछ व्यक्तियो तक ही सीमित थी। शिक्षा पर ब्राह्मणो का आधिपत्य था तथा उन्होंने शुद्रो को–जो बहुत बडी सख्या मे थे–शिक्षा के अधिकार से वचित रखा था। उन पर तो यहाँ तक प्रतिबन्ध लगाया था कि यदि वे वेद-मन्त्र को सुन ले तो उनके कान गे शीशा पिघला कर डाल दिया जाय।

प्राचीन भारत शिक्षा के क्षेत्र मे उन्नत था, पर सभी लोग लाभान्वित नही हो पाते थे। मध्यकाल मे मुस्लिम शासको ने भी शिक्षा के प्रचार पर ध्यान नही दिया। अग्रेजो के युग मे भारतवर्ष मे साक्षरो की सख्या ५ से ७ प्रतिशत तक थी। इधर साक्षरो की सख्या मे जो वृद्धि हुई है, उसका प्रमुख कारण देश की स्वतन्त्रता के उपरान्त राष्ट्रीय सरकार द्वारा शिक्षा का प्रचार-प्रसार है। इस प्रकार भारतवर्ष मे निरक्षरता एक महान् अभिशाप बनकर यहाँ की प्रगति मे बाधक रही है। जनता जब तक साक्षर नही हो जाती वह अपने अधिकार एव कर्तव्य को नही समझ सकती। किसी भी देश के नागरिको का अज्ञानान्धकार मे पडे रहने का अर्थ देश को प्रगति के पथ से वचित करना है।

साक्षरता का प्रचार · विगत् १९३७ई० मे जब देश के कई प्रान्तो मे प्रथम बार राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई तो निरक्षरता को दूर करने के लिए प्रौढ-शिक्षा की व्यवस्था की गयी, जिसका प्रमुख लक्ष्य देश से निरक्षरता को दूर भगाना था। यह साक्षरता-आन्दोलन उन दिनो जोर-शोर से चल पडा था और प्राय प्रत्येक गॉव मे सायकाल के समय प्रौढो को साक्षर बनाने का कार्य होता था। सरकार ने इसके लिए काफी रुपये भी खर्च किये और प्रत्येक शिक्षक का मासिक वेतन देने के अतिरिक्त प्रौढो के लिए पुस्तकालय खोलने की भी व्यवस्था की। इन पुस्तकालयो मे प्रौढो के उपयोग के लिए विशेष प्रकार की पुस्तके प्रकाशित की गयी।

साक्षरता– देशोन्नति का साधन इस प्रकार रात्रि पाठशालाओ के द्वारा कई लाख व्यक्ति साक्षर बनाये गये और इस कार्य मे देश के छात्र-छात्राओ ने भी सेवा की भावना से सहयोग किया। जिस क्रम मे साक्षरता-आन्दोलन प्रारम्भ किया था, यदि वह क्रम अब तक बना रहता तो देश के शत्-प्रतिशत लोग साक्षर हो गये होते। अभी भारतवर्ष मे साक्षरो की सख्या ६२ प्रतिशत है।

साक्षरता शिक्षा का प्रथम सोपान है। अविद्यान्धकार मे पडे रहने से कोई भी देश उन्नति नही कर सकता। शिक्षा के द्वारा ज्ञान-वृद्धि होती है तथा वे स्वय अपनी उन्नति का मार्ग परिष्कृत करते है। अत देश की भलाई को दृष्टिगत रखते हुए सभी लोगो को साक्षर बनाने की चेष्टा अवश्य करनी चाहिए। हम स्वतत्र भारत के नागरिको का कर्तव्य है कि हर प्रकार से निरक्षरता को दूर करने मे सहयोग दे। □

रीतिका बलसारिया, ११-वी

❐ ज्योति श्रीमाल, नवम् अ

अहंकार का परिणाम

बेटे ने पूछा—मॉ क्यो नही चलती हो चाचा-चाची के पास, याद बहुत आती है दादा दादी की।

माँ की ऑखे बरसने लगी, बीती बाते याद आने लगी।
उत्तर दिया—बेटा थोडा और वक्त निकल जाने दे।
तेरा सालाना रिजल्ट तो आने दे।
बेटे का चेहरा कुम्हला गया, बैट बॉल उठाया और चला गया।
मॉ को याद आने लगा अपना वह सुखी ससार।
हॉ, कभी था उसका भी हँसता खेलता सयुक्त परिवार,
बीती घडियाँ याद आने लगी,
अँखियॉ भर के बहने लगी।
उसके गृहप्रवेश पर जेठानी ने बढकर गले लगाया था,
देवरानी के आगमन पर स्वय उसने इस रस्म को निभाया था,
जेठानी मे बडी बहन का रूप समाया था।
देवरानी मे अपनी सखी को पाया था।
कैसे मिलकर मनाते थे दीवाली,
रगो की फुहार लेकर आती थी होली,
पुत्र जन्म पर सारा परिवार खिलखिलाया था।
सास ससुर का मानो बचपन लौट आया था।
पहले जेठानी ने ही तो इसके मुँह से 'मॉ' सुना था।
देवरानी ने भी कितना सुदर सपना बुना था।
गोद मे लेकर भाभी बोली थी—
भई इसे तो इजिनियर वनायेंगे,
देवरानी झट बोली—
नही, सचिन-सा क्रिकेटर बनायेंगे।
धीरे-धीरे वक्त बीतने लगा,
पडने लगी फिर सबधो मे दरार,
जब आ गया मन मे अहकार,
पहली कक्षा का परिणाम आया था।
जेठानी का पुत्र प्रथम आया था।
देवरानी की बेटी ने करिश्मा दिखलाया,
तीनो सेक्शनो मे सबसे ऊँचा स्थान पाया।
परन्तु निज सुत कक्षा मे पचम था,
क्योंकि वह क्रिकेट टीम का कैप्टन था।
जेठानी ने रसगुल्लो का पैकेट मॅगवाया था,
सग रसगुल्लो के टॉफी का रौब दिखाया था,
देवरानी ने समोसो का भोज दिया था,
समोसो के सग बेटी का रिजल्ट भेज दिया था।
उसके बेटे का कप स्कूल ने रख लिया था।
सिर्फ रिजल्ट और एक तोहफा भेज दिया था।
फिर नियति बन गयी थी दिल ही दिल मे घुलना,
क्योंकि होने लगी थी बात-बात मे तुलना।
भाइयो मे भी पड गयी दरार,
कारण था पत्नियो का अहकार,
दरार का हुआ यह परिणाम—
एक परिवार के हो गये तीन मकान।
बेटा इस वर्ष सारे स्कूल मे प्रथम था।
यदि न पडी होती रिश्तो मे दरार,
तो आज मिलता उसे सबका प्यार।
छीन लिया अहकार ने—
बडो का दैव दुर्लभ आशीर्वाद ।।

▢ अमर चौधरी, नवम् अ

इतिहास के आइने में– भगवान महावीर

भगवान महावीर वर्तमान युग मे भी उतने ही समीचीन है जितना वे उस समय थे। भगवान महावीर के जीवन का अध्ययन करने पर हम देखेगे कि उनका समस्त जीवन सत्य की खोज और उसके प्रतिस्थापन मे ही व्यतीत हुआ। साधना के इतिहास मे भगवान जैसे महान् तपस्वी विरले ही मिलेंगे। महावीर के सिद्धान्तो मे विश्व की समस्त विचारधाराओ के समन्वय की क्षमता है। भगवान महावीर ने राजकुमार होते हुए भी सामान्य जाति के दु खो को नजदीक से समझा था। उनका जीवन सादगी भरा था। आज वर्तमान मे हमलोग व्यवहार के स्तर पर सोचते है और प्रवृत्ति तथा निवृत्ति को विभक्त कर देते है। महावीर के जीवन का अध्ययन करने से पता चलता है कि भारतीय जीवन मे पुरुषार्थ की प्रेरणा देने वालो मे भगवान महावीर अग्रणी है।

भगवान महावीर को इतिहास के आइने मे देखने के लिए हमे वर्तमान की स्थितियो और महावीरजी के जीवनकाल की स्थितियो का तुलनात्मक अध्ययन करना होगा। परिवर्तन जगत् की नियति है, ऐसी नियति कि जिसे कोई टाल नही सकता है। जहाँ परिवर्तन है वहाँ उन्नति और अवनति भी आवश्यक है। अर्थात्, उतार-चढाव भी अनिवार्य है। इस नियति चक्र मे कोई भी एकरूप नही रह सकता।

महावीर का काल धर्म की प्रधानता का युग था। राजा और प्रजा सब धर्म मे विश्वास करते थे। धर्म की सत्ता राज्य की सत्ता से ऊपर थी। धर्म को अस्वीकार करने वाले व्यक्ति भी थे। पर उनकी सख्या बहुत कम थी। समाज मे उन्हे प्रतिष्ठा नही मिलती थी। इस परिप्रेक्ष्य मे धर्म और धार्मिकता को बहुत महत्व दिया जाता था। सभी परम्पराओ मे साधुओ की बहुलता थी। शक्ति के उपासक वीतरागता को अनिवार्य नही मानते थे। आध्यात्मिक धारा मे वीतराग का होना अनिवार्य समझा जाता था।

महावीर भगवान ने उपदेश दिया है कि जीवन की सफलता के दो विशाल स्तम्भ है– ज्ञान और शक्ति। आज के वर्तमान युग मे यह उपदेश चरितार्थ होता है। आज के युग मे वही व्यक्ति सफल होता है जो ज्ञानी होने के साथ-साथ शक्तिशाली भी हो। शक्तिहीन ज्ञान, दयनीय और ज्ञानहीन शक्ति भयकर होती है। दोनो का योग होने पर दोनो समर्थ और अभय बन जाते है। ज्ञान भी पराक्रम का एक अग है। पराक्रम-शून्य व्यक्ति ज्ञान अर्जित नही कर सकता और पराक्रम का उचित उपयोग अज्ञानी व्यक्ति नही कर सकता। दोनो की सार्थकता दोनो के समन्वय मे है।

इस दुनिया मे कुछ बाते ऐसी होती है, जिन पर हम सहसा विश्वास नही करते। हम उन्ही बातो पर विश्वास करते है जिनसे परिचित है। भगवान् महावीर ने कहा है कि 'स्थूल जगत् के साथ स्थूल व्यवहार ही अच्छा है।' जो वर्तमान के लिए सटीक है। यहाँ जो जैसा करता है उसके साथ भी वैसा ही हो, वो यही चाहता है।

चेतना की ज्योति न हो तो कोई व्यक्ति ज्योतिष्मान् नही हो सकता। चेतना की ज्योति के साथ-साथ ध्यान एव सयम की भावना का होना भी अनिवार्य है। इन दोनो के बिना वह प्रकट नही होती।

भगवान महावीर की भाषा मे जहाँ अहिंसा है वहाँ अपरिग्रह जुडा हुआ है। जहाँ अपरिग्रह है वहाँ अहिंसा जुडी हुई है। आज सत्ता और धन के सग्रह से प्रतिहिंसा होती है तब हम सोचते है कि हिंसा बढ रही है। भगवान की भाषा मे यह बढी हुई हिंसा के प्रति हिंसा है। आज का चिन्तन महावीर की उस भाषा को दोहरा रहा है कि हिंसा की वृद्धि को रोकने के लिए सत्ता और धन के एकाधिकार को रोकना आवश्यक है। महावीर ने इसे रोकने का उपाय बताया था, 'हृदय परिवर्तन'। आज के राजनीतिक दार्शनिको ने इसका उपाय बताया है, 'दड-शक्ति'। किन्तु दड-शक्ति का प्रयोग होने के बाद अब यह विचार बीज अकुरित हो रहा है कि जनता का विचार बदले बिना दड-शक्ति सफल नही हो सकती। इसलिए इतिहास के साथ वर्तमान के लिए भी महावीर का उपदेश बिल्कुल सत्य है।

महावीर मनुष्य की स्वतन्त्रता का अपहरण नही चाहते थे। स्वतत्रता का अपहरण हिंसा है और जहाँ हिंसा है वहाँ समस्या है, दु ख है। ऐसा महावीर का मानना था। इस दु ख से छुटकारा पाने के लिए महावीर ने आत्मानुशासन का सूत्र दिया है। उन्होंने कहा–

अपने आपको अनुशासित करो। अपने आपको अनुशासित करना सबसे कठिन है। अपने आपको अनुशासित करने वाला वर्तमान और भविष्य मे जीवन की दोनो धाराओ मे सुखी रहता है।

भगवान महावीर ने सत्य का साक्षात्कार किया है। उन्होंने प्रजा हित के लिए कुछ सत्यो का प्रतिपादन किया। उनकी वाणी को उस युग की जनता ने अपनाया। किन्तु कोई भी नया विचार उस समय एकसाथ समाज-मान्य नही होता। भगवान महावीर ने अहिंसा और संयम की जो धारा प्रवाहित की थी, वह उनके निर्वाण की दो शताब्दियाँ बीतते-बीतते शिथिल होने लगी।

भगवान महावीर ने कर्म की शक्ति को स्वीकार किया, पर उसे सर्वोच्च शक्ति के रूप मे मान्यता नही दी। कर्म का उदय समय पर ही नही होता, उससे पहले भी हो सकता है। यदि उसका उदय नियत समय पर ही हो तो, कर्मवाद एक प्रकार का नियतिवाद ही हो जाता है। नियतिवाद मे पुरुषार्थ की सार्थकता नही होती। महावीर ने बताया की मनुष्य अपने आतरिक प्रयत्न से बधे हुए कर्म की अवधि को घटा भी सकता है और बढा भी सकता है। कर्म के इस सिद्धात ने मनुष्य को निराशा, अकर्मण्यता और पराधीनता की मनोवृति से बचाया। यदि वर्तमान का पुरुषार्थ सत् हो तो अतीत के अशुभ कर्म-सस्कारो को क्षीण कर या शुभ मे बदलकर मनुष्य अन्धकार मे प्रकाश ला सकता है। भगवान महावीर ने यह आभास कराया कि मनुष्य कर्म के अधीन नही है, कर्म उसकी अधीनता का निमित्त है।

भगवान महावीर ने अध्यात्म की भूमिका पर कहा था–''मै संयम और तप के द्वारा अपने आप पर शासन करूँ, यह मेरे लिए अच्छा है, कोई दूसरा डडे के द्वारा मुझ पर शासन करे, यह मेरे लिए शर्मनाक बात है।''

स्वतन्त्रता का यह विचार व्यवहार की भूमिका पर विकसित हुआ। उपनिवेशवाद के विरुद्ध क्राति हुई। प्रत्येक देश स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलित हो उठा और वर्तमान विश्व का बडा भाग आज स्वतत्र है। आज विषमता भी समता के आचरण मे ही पल सकती है। वर्तमान मे इन विचारो के साथ किसी का नाम जुडा नही है। ये या इसी कोटि के विचार विश्व के अन्य महापुरुषो ने भी दिये है। पर अनुसधान करने पर पता चलेगा कि इन विचारो के पीछे भगवान महावीर के अनुभवो और वाणी का कितना बडा बल है।

जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर अधकार दूर भाग जाता है और चारो तरफ प्रकाश फैल जाता है। उसी तरह महावीर का जन्म भी ईसा पूर्व ८७७ मे सूर्य की तरह हुआ। उन्होंने अपने किरणरूपी उपदेशो से सारी दुनिया को प्रकाशित किया। भगवान् महावीर रूपी सूर्य के ईसा पूर्व ७७७ मे अस्त हो जाने के वाद भी उनके उपदेश इस समय मानव समाज को प्रकाशित करते रहे, कर रहे है और करते रहेंगे। भगवान महावीर ने अपनी साधना के द्वारा धर्म और सयमता की ऐसी ज्योति जलाई जो आज भी सत्य तथा कर्म के ईंधन से लगातार जल रही है।

भगवान के जीवन दर्शन मे शाश्वत् और सामयिक दोनो सत्य व्यक्त हुए है। आज का यथार्थवादी युग उनके द्वारा अभिव्यक्त यथार्थ की क्रियान्वित का उपयुक्त समय है। स्वतत्रता, सापेक्षता, सहअस्तित्व, समन्वय, समत्वानुभूति जैसे तत्व आज जाने अनजाने लोकप्रिय बनते जा रहे है। इस सहज धारा मे हम एक धारा और मिलाये जिससे वह महाप्रवाह बन मानव जीवन की उर्वरा भूमि को अहिसा और अनेकात का सिंचन दे सके। वह सिंचन हम सबके लिए, समूचे विश्व के लिए कल्याणकारी होगा। ■

□ सच्चिदानन्द दूबे, नवम् ग

□ अंकुर धानुका, षष्टम् ब

गुरू (शिक्षक)

मै पहले हमारे देश के महान् कवि कबीरदासजी की एक पक्ति प्रस्तुत करना चाहूँगा–

गुरू गोविन्द दोऊ खडे, काके लागूँ पाय ।
बलिहारी गुरू आपने, गोविन्द दियो बताय ।

गुरू पानी की तरह निर्मल और स्वच्छ होता है। गुरू ज्ञान से परिपूर्ण होता है। ये हमे भी ज्ञान के मार्ग पर चलाना चाहते है और अपने सभी छात्रो को अपने से बडा बनाने की उम्मीद रखते है।

नदी जिस तरह से अपने लिए जल सचयन न कर प्यासो को पानी पिलाती है, उसी तरह गुरू अपने छात्रो को अपना सारा ज्ञान प्रदान कर देना चाहता है।

जैसे पेड अपने लिए कुछ नही रखता। रास्ते के निवासियो को छाया प्रदान करता है, जीने के लिए आक्सीजन देता है और हमे खाने के लिए फल देता है, वैसे ही गुरू हमे बडा बनाने के लिए ज्ञान देता है।

गुरू स्वार्थी नही होता। इसलिए गुरू को भगवान् से भी बडी मान्यता दी गई है। कबीर ने तो यह कहा है–

धरती सब कागज करू, लेखनी सब बनराय,
सात समुद्र मसि करू, गुरु गुण लिखा न जाय ।

बच्चों देशभक्त बन जाना

बच्चो! देश भक्त बन जाना,
भारत माँ की लाज बचाना,
जिसका देश बडा होता है,
तन कर वही खडा होता है,
रोटी-रोटी मत चिल्लाना ।
रोटी तो है मात्र बहाना,
पहले देश बाद मे सब कुछ,
यही पाठ तुम पढते जाना।
बच्चो! देश भक्त बन जाना,
तुम ही हो राणा प्रताप,
तुम ही हो इस बाग के माली ।
इसकी रक्षा ही जीवन है,
यही अपना तन-मन-धन है ।
कभी न पीछे तुम मुड जाना
बच्चो! देश भक्त बन जाना,
भारत माँ की लाज बचाना।

▢ सन्दीप शर्मा, दशम् ब

चुटकुले

नौकरानी–खाना बनाने के बाद मेहमानो से क्या कहूँ, खाना तैयार है या खाना खा लीजिए।

मालकिन–यदि कल जैसा खाना बना हो, तो कहना कि खाना बेकार है।

रमेश– समझ मे नही आ रहा कि चित्रकार ने यह दृश्य सूर्योदय का बनाया है या सूर्यास्त का।

सुरेश–सूर्यास्त का ही होगा। इसका चित्रकार दस बजे से पहले सोकर नही उठता।

रेखा– आज के पेपर मे मुझे कुछ नही आता था। मैंने कोरा कागज ही जमा कर दिया।

नेहा– हे भगवान्, सभी समझेगे, तूने मेरी नकल की है।

अजय– क्या तुम्हारे पापा पापड बेलते है।

विजय– हॉ, शायद। कल पापा मम्मी से कह तो रहे थे कि घर को चलाने के लिए मुझे बहुत पापड बेलने पडते है।

मॉ–पप्पू, तुम्हे ऐसा कोई काम नही करना चाहिए कि पिटना पडे।

पप्पू– ठीक है, माँ आज मै स्कूल नही जाऊँगा। वहाँ मास्टरजी पिटाई करते है।

अध्यापक– प्रकाश की किरण का वाक्य मे प्रयोग करो।

छात्रा– मेरे पडोसी प्रकाश की किरण से शादी होने वाली है।

▢ आशीष, अंकित, षष्टम ब

चुटकुले

रेलगाडी के टिकट चेकर ने एक यात्री से कहा, भाई आपका टिकट तो कोलकाता का है पर यह गाडी तो मुबई जा रही है।

यात्री– गाडी मुबई जाए या दिल्ली, इससे मुझे क्या, इसमे तो गाडी चलाने वाले की गलती है।

एक पत्नी ने अपने पति से कहा जाओ और एक-एक रुपये के आलू और प्याज लेकर आओ।

पत्नी– आलू प्याज लाए।

पति– नही।

पत्नी– क्यो ?

पति– क्योंकि तुमने यह नही कहा था कि किस रुपये का आलू लाऊँ और किस रुपये का प्याज।

शिक्षक छात्र को मारते है।

छात्र कहता है कि शिक्षक महोदय आपको मालूम नही है कि मुझे जोर का झटका धीरे से लगता है।

▢ मिन्की अग्रवाल, पचम् ब

दु:ख
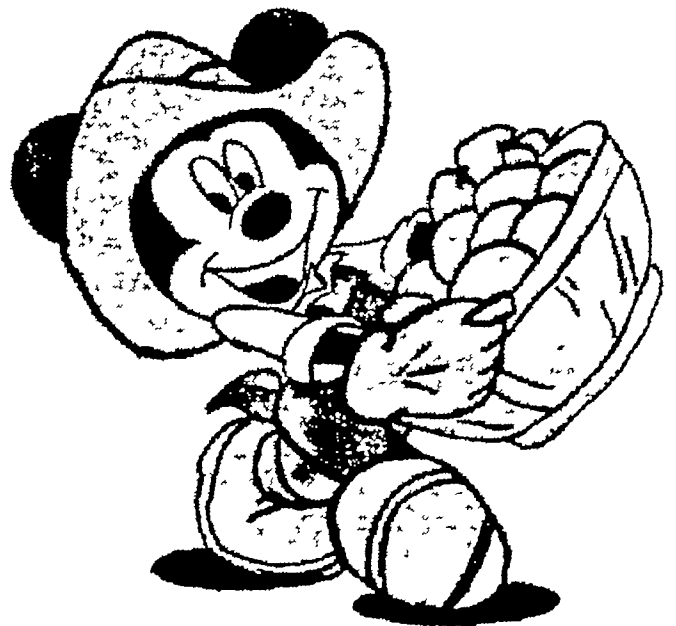
इसान की जिन्दगी मे दु ख का सैलाब आता है,
तब वह अपनी वास्तविकता से बेखबर हो जाता है ।
दिन मे तारे नजर आते है,
रात को सूर्य दिखता है ।
अपनो की बाते जहर लगती है,
खुद पर कहर बन बरसती है ।
दु खो का क्या है निदान,
बता दे ओ, भगवान ।
ताकि कर दूँ मै,
जगत् से दु खो का निदान ।

पंद्रह अगस्त

पद्रह अगस्त आया है,
वीरो की याद दिलाया है।
आओ मिलकर खुशी मनाएँ,
खुद हँसे औरो को भी हँसाएँ ।
सबको प्रेम का पाठ पढाएँ,
हम सब मिलकर नाचे गाएँ ।
नाटक खेले नृत्य करे,
भाषण दे और कविता करे ।
देश रक्षा की शपथ ले,
निरतर आगे बढते चले।

❑ प्रणवेश मिश्र

अनसुइया की ओर

मानस प्रणेता सन्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास की साधनास्थली चित्रकूट जाने और देखने की मेरी प्रबल कामना बचपन से थी। पर, ऐसे सुयोग जीवन मे बडे दुर्लभ होते है। तमाम कोशिशो के बावजूद ऐसे सुयोग सुलभ नही हो पाते। मेरी इच्छा कब पूर्ण होगी यह मै नही जानता था। वहाँ जाने की मेरी इच्छा और भी बलवती होती जा रही थी।

सन् २००१ के शीतावकाश दिसम्बर महीने मे अपने पैतृक निवास पर पहुँचने का अवसर मिला। वहाँ पहुँचने पर परिवार वालो के साथ अचानक चित्रकूट होते हुए अनसुइया आश्रम जाने की योजना बन गयी। २९ दिसम्बर को वहाँ जाने का दिन निश्चित हुआ। चिर प्रतिक्षित कामना मूर्त रूप प्राप्त करने जा रही थी। सचित पुण्य-पूजी का भण्डार अपने प्राप्य का सयोग पा रहा था। मेरे लिये यह विशेष गर्व का विषय था, क्योंकि यह मेरी पहली यात्रा थी, जबकि परिवार के सभी सदस्य वहॉ जाने का सुअवसर प्राप्त कर चुके थे।

२९ दिसम्बर को प्रात काल हर्षोल्लास के साथ निजी वाहन के द्वारा हमने वहॉ के लिए प्रस्थान किया। रास्ते मे पडने वाले धार्मिक-स्थल अपने ऐतिहासिक महत्व के लिए प्रसिद्ध है। सर्वप्रथम तीर्थराज प्रयाग मे पडाव था, जो मेरे लिए विशेष महत्व का स्थान है, क्योंकि मेरी शिक्षा का आधार यही नगर है। इसी नगर के विश्वविद्यालय का मै स्नातक हूँ। जब कभी इस नगर के इर्द-गिर्द होता हूँ अध्ययन काल के विताये हुए दिन अनायास ही स्मृति पटल पर उभर जाते है। इसी बहाने तीर्थराज एव शिक्षा की प्राचीन नगरी को प्रणाम कर लेता हूँ। नगर मे प्रवेश से पहले गगा माता के दर्शन होते है, जिन्हे देखने मात्र से मन के सारे मैल धुल जाते है एव शरीर ऊर्जा-स्फूर्त हो उठता है।

गगा, यमुना और अदृश्य सरस्वती का सगम पौराणिक काल से अपने धार्मिक महत्व के लिए प्रसिद्ध है। प्रत्येक वर्ष माघ मास मे कुम्भ स्नान मे शरीक होने अनगिनत श्रद्धालु यहाँ आते है। हाड कँपा देने वाली ठण्ड मे भी श्रद्धालुओ की श्रद्धा-भक्ति देखते बनती है। गगा जल के स्पर्श मात्र से समस्त मानसिक और शारीरिक व्याधि से मुक्ति पाने की कामना लिए धर्मानुरागी अपनी अटूट आस्था का परिचय इस मेले मे देते है। नये और अपरिचित श्रद्धालु इस स्थान पर पहुँच कर अपना जीवन सार्थक समझते है। सगम तट पर अवस्थित अकबर का किला भी अपने मुगलकालीन ऐतिहासिक महत्व की याद दिलाता है।

प्रयाग दर्शन के पश्चात् हम सभी अपने गन्तव्य की ओर अग्रसर हुए। इलाहाबाद से चित्रकूट जाने के दो मार्ग है। एक इलाहाबाद से रीवाँ होते हुए सतना के पास से जिसकी दूरी १९० कि मी है। दूसरा मार्ग इलाहाबाद से सीधे चित्रकूट के लिए है जिसकी दूरी १०० कि मी के करीब है। इलाहाबाद से चित्रकूट का पहाडी मार्ग प्राकृतिक सम्पदा से सम्पन्न है। बीच-बीच मे पर्वतखण्ड दिखाई पड जा रहे थे एव सडक के अगल-बगल बहने वाली नदियाँ और नाले भी बडे मोहक लग रहे थे। जिन्हे सडक के एक किनारे से दूसरी ओर पार करने की दृष्टि से सामान्य धरातल से गहरे पुल बने हुए थे। स्थानीय बोलचाल की भाषा मे वहाँ के लोग ऐसे पुल को रपट्टा कहते है। इलाहाबाद से तीस-चालीस कि मी दक्षिण पश्चिम मे जाने के बाद बहुत दूर-दूर पर गाँव दिखाई पडते है, इसलिए दिन मे भी सडक वीरान, सुनसान रहती है। कुछ-कुछ देर बाद कुछेक गाडियाँ दिखाई पड जाती है। खेतिहर और मजदूर भी बहुत कम नजर आते है। कही-कही छोटी पहाडियो के बीच से सडक गुजरती है तो मन शान्त हो उठता है। तरह-तरह के प्रश्न मन मे पैदा होने लगते है। इसी तरह मन मे तरह-तरह की जिज्ञासा लिए हम सभी आगे बढते जा रहे थे, गन्तव्य निकट आ रहा था।

चित्रकूट महत्वपूर्ण जगह होने के कारण जिला बना दिया गया है पर छोटी और अविकसित जगह होने के कारण उसका जिला मुख्यालय कर्वी बनाया गया है जो चित्रकूट से करीब १५ कि मी की दूरी पर है। इलाहाबाद से जाने पर पहले कर्वी पडता है, इसके बाद चित्रकूट आता है। कर्वी भी दूसरी जगहो की तुलना मे छोटा शहर है, पर उस इलाके का बडा शहर होने के कारण जिला मुख्यालय बनने का गौरव प्राप्त कर सका है। कर्वी शहर से जैसे-

जैसे आगे बढ रहे थे, मानस रचयिता गोस्वामीजी की याद मन मे थिरकने लगी थी, उनका चेहरा, उनकी साधना जैसे सब ऑखो के सामने नाचने लग गये थे। हम चित्रकूट पहुँच गये। निस्तब्ध नीरव नगरी जैसे गोस्वामीजी की साधना मे व्यवधान के भय से शान्त हो गयी हो। लगता ही नही कि यहॉ जनमानस का कोलाहल होता हो। जन-कोलाहल से दूर होने के कारण गोस्वामीजी ने अपनी भक्ति-भावना को साकार करने के लिए तपस्यास्थली के रूप मे इसे चुना होगा, जो उनकी ईश्वर अनुरक्त भावना को पोषण देती रही होगी।

चित्रकूट नगर मन्दाकिनी गगा के उभय किनारे पर बसा हुआ है। मन्दाकिनी के तट पर रामघाट अत्यन्त मोहक स्थान है। चित्रकूट चौरासी कोस मे फैला हुआ प्राकृतिक सुषमा सम्पन्न स्थल है। रामघाट, जानकी कुड, हनुमान धारा, स्फटिक शिला आदि ऐसे और दृश्य है जो चित्रकूट की पौराणिक महत्ता का परिचय देते है। चित्रकूट के चतुर्दिक पचक्रोशी स्थान है, जो साठ-सत्तर किलोमीटर के क्षेत्रफल मे फैला हुआ है। मन्दाकिनी के तट पर प्राय सभी स्थान एक के बाद एक बसे हुए है, जो चित्रकूट जाने वाले धर्मानुरागियो की श्रद्धा को उद्दीप्त करते है एव उस सन्त शिरोमणि की, राम भक्ति की सगुण मार्गी धारा को सर्वोच्च आसनासीन करती है। हर मानस अनुरागी इस स्थान पर पहुँच कर अपना जीवन सार्थक समझता है।

यात्रा का दूसरा पर्व शुरु होता है चित्रकूट से अनसुइया के लिए। सती अनसुइया आश्रम पौराणिक काल से महत्वपूर्ण है। ऋषि अत्रि तथा उनकी पत्नी अनसुइया की साधना स्थली यही स्थान है। उनके समकालीन अन्य ऋषि मुनियो ने भी अपनी साधना एव भक्ति के बल पर इस स्थान को पवित्र बनाया है। अपनी पौराणिक महत्ता के अतिरिक्त सती अनसुइया आश्रम आज धर्मानुयायियो के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान बन गया है। इसकी महत्ता कई रूपो मे दिखाई पडती है। अनसुइया आश्रम की वर्तमान मर्यादा परमहस आश्रम के साथ जुडी है, जो आज वन्य प्रान्तर के बीच चहल-पहल का केन्द्र बना हुआ है। आज से कुछ वर्ष पहले तक अनसुइया स्थान जगली जन्तुओ का अड्डा मात्र था। पर जन कोलाहल होने के कारण पशु-समाज वहाँ से अपनी सत्ता समेटता हुआ अन्यत्र चला गया।

मन्दाकिनी तट पर विन्ध्य पर्वत की तलहटी मे अवस्थित परमहस आश्रम आज विशेष रूप से भक्तो के लिए तीर्थस्थल बना हुआ है। पौराणिक महत्व के साथ-साथ इस स्थान की साम्प्रतिक महत्ता भक्तो के लिए आकर्षण का केन्द्र है। ''सन्त महात्मा जिस स्थान पर पहुँचते है, वह स्थान स्वत तीर्थ स्थल बन जाता है।'' अपनी जीवन लीला व्यतीत करते हुए देश परिभ्रमण करते हुए स्वामी परमहसजी महाराज ने अपनी लीला और साधना स्थली के रूप मे इसी स्थान को अधिक उपयुक्त समझकर यही रहना उचित समझा था।

उत्तर प्रदेश के पूर्वाञ्चल स्थित गोरखपुर जिले के विभाजित देवरिया जिले के छोटे से गाँव रामकोला मे जन्मे परमश्रद्धेय स्वामी परमानन्दजी महाराज बचपन से ही अपने क्रिया कलापो के कारण लोगो मे अद्वितीय बन गये थे। उनकी श्रद्धा-भक्ति जन-मानस से दूर थी। कोई उनके ईश्वर-प्रेम को समझ नही पाता था। उसी गाँव मे एक लगडू बाबा थे जो बालक की दैवीय सत्ता को समझते थे, जिनकी प्रेरणा से बालक परवर्ती दिनो मे गृहस्थ आश्रम छोडकर सन्यास ग्रहण कर सका।

बचपन से ईश्वर भक्ति मे लीन होने के कारण किसी पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता तो उन्हे थी नही, प्रेरणास्वरूप लगडू बाबा मिल ही गए थे। बालक गृहस्थ आश्रम मे रहते हुए भी साधना के लिए आतुर रहता था। अन्तत एक दिन ऐसा आया जब गृहस्थी के सम्पूर्ण दायित्व से निवृत्त होकर, सन्यास धर्म ग्रहण कर बालक ने परिभ्रमण आरम्भ कर दिया।

परिभ्रमण काल मे उन्हे किसी नियत स्थान की कामना तो थी नही, जिधर आदेश होता उधर चले जाते। इसी क्रम मे विचरण करते उन्होंने समस्त भारत का भ्रमण किया। सर्वप्रथम उन्होंने अपनी यात्रा अयोध्या से आरम्भ की, इसके बाद जो भी स्थान रास्ते मे पडा उससे होते हुए वे आगे बढते गए। परिभ्रमण काल मे उन्होने गोरखपुर, जौनपुर, काशी, प्रयाग, अयोध्या, कलकत्ता, बम्बई, जम्मू कश्मीर से होते हुए हिमालय के बर्फीले प्रदेश मे समय बिताया और अनासक्त भाव से ईश्वर की सत्ता से साक्षात्कार करने के लिए वे सतत् आगे बढते रहे।

इसी यात्रा क्रम मे स्वामीजी ने अन्त करण की प्रेरणा से स्फूर्त होकर अयोध्या मे पदार्पण किया और वहाँ से चित्रकूट होते हुए अनसुइया पर्वत पर अपना स्थायी आश्रम बनाकर रहने का विचार किया। हर्षित मन से स्वामीजी ने चित्रकूट से अनसुइया आश्रम तक की यात्रा की थी। उन्होंनें सोचा था भगवद्भक्ति का सबसे शान्त स्थान यही हो सकता है।

चित्रकूट से अनसुइया जाने का पथ जगली बीहड पथ से था, कँटीले रास्ते बडे दुर्गम थे। उसी दुर्गम पथ से होते हुए स्वामीजी ने अपनी कामना पूर्ति के लिए अनसुइया स्थल को चुना था, जो उस समय केवल हिंसक पशुओ का केन्द्र था। ''भौतिक मोह-माया के जाल से निवृत्त होकर मनुष्य जब समरस जीवन यापन करता है, तब पशु समाज मे भी मानवता झलकती है।'' इसी दृष्टिकोण से उन्होंने उस जगल मे मगल की कामना से अपना आसन जमाया था।

अनसुइया आश्रम मे पहुँचने से पहले भी स्वामीजी निष्णात हो चुके थे और अपने शुद्ध सात्विक सन्तन्त्व के वल पर विभिन्न स्थानो पर पाखण्ड के दर्प से दीप्त तमाम वगुला-भगतो को परास्त कर

❒ प्रणवेश मिश्र

अनसुइया की ओर

मानस प्रणेता सन्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास की साधनास्थली चित्रकूट जाने और देखने की मेरी प्रबल कामना बचपन से थी। पर, ऐसे सुयोग जीवन मे बडे दुर्लभ होते है। तमाम कोशिशो के बावजूद ऐसे सुयोग सुलभ नही हो पाते। मेरी इच्छा कब पूर्ण होगी यह मै नही जानता था। वहॉ जाने की मेरी इच्छा और भी बलवती होती जा रही थी।

सन् २००१ के शीतावकाश दिसम्बर महीने मे अपने पैतृक निवास पर पहुँचने का अवसर मिला। वहॉ पहुँचने पर परिवार वालो के साथ अचानक चित्रकूट होते हुए अनसुइया आश्रम जाने की योजना बन गयी। २९ दिसम्बर को वहॉ जाने का दिन निश्चित हुआ। चिर प्रतिक्षित कामना मूर्त रूप प्राप्त करने जा रही थी। सचित पुण्य-पूजी का भण्डार अपने प्राप्य का सयोग पा रहा था। मेरे लिये यह विशेष गर्व का विषय था, क्योंकि यह मेरी पहली यात्रा थी, जबकि परिवार के सभी सदस्य वहॉ जाने का सुअवसर प्राप्त कर चुके थे।

२९ दिसम्बर को प्रात काल हर्षोल्लास के साथ निजी वाहन के द्वारा हमने वहाँ के लिए प्रस्थान किया। रास्ते मे पडने वाले धार्मिक-स्थल अपने ऐतिहासिक महत्व के लिए प्रसिद्ध है। सर्वप्रथम तीर्थराज प्रयाग मे पडाव था, जो मेरे लिए विशेष महत्व का स्थान है, क्योंकि मेरी शिक्षा का आधार यही नगर है। इसी नगर के विश्वविद्यालय का मै स्नातक हूँ। जब कभी इस नगर के इर्द-गिर्द होता हूँ अध्ययन काल के बिताये हुए दिन अनायास ही स्मृति पटल पर उभर जाते है। इसी बहाने तीर्थराज एव शिक्षा की प्राचीन नगरी को प्रणाम कर लेता हूँ। नगर मे प्रवेश से पहले गगा माता के दर्शन होते है, जिन्हे देखने मात्र से मन के सारे मैल धुल जाते है एव शरीर ऊर्जा-स्फूर्त हो उठता है।

गगा, यमुना और अदृश्य सरस्वती का सगम पौराणिक काल से अपने धार्मिक महत्व के लिए प्रसिद्ध है। प्रत्येक वर्ष माघ मास मे कुम्भ स्नान मे शरीक होने अनगिनत श्रद्धालु यहाँ आते है। हाड कँपा देने वाली ठण्ड मे भी श्रद्धालुओ की श्रद्धा-भक्ति देखते बनती है। गगा जल के स्पर्श मात्र से समस्त मानसिक और शारीरिक व्याधि से मुक्ति पाने की कामना लिए धर्मानुरागी अपनी अटूट आस्था का परिचय इस मेले मे देते है। नये और अपरिचित श्रद्धालु इस स्थान पर पहुँच कर अपना जीवन सार्थक समझते है। सगम तट पर अवस्थित अकबर का किला भी अपने मुगलकालीन ऐतिहासिक महत्व की याद दिलाता है।

प्रयाग दर्शन के पश्चात् हम सभी अपने गन्तव्य की ओर अग्रसर हुए। इलाहाबाद से चित्रकूट जाने के दो मार्ग है। एक इलाहाबाद से रीवाँ होते हुए सतना के पास से जिसकी दूरी १९० कि मी है। दूसरा मार्ग इलाहाबाद से सीधे चित्रकूट के लिए है जिसकी दूरी १०० कि मी के करीब है। इलाहाबाद से चित्रकूट का पहाडी मार्ग प्राकृतिक सम्पदा से सम्पन्न है। बीच-बीच मे पर्वतखण्ड दिखाई पड जा रहे थे एव सडक के अगल-बगल बहने वाली नदियाँ और नाले भी बडे मोहक लग रहे थे। जिन्हे सडक के एक किनारे से दूसरी ओर पार करने की दृष्टि से सामान्य धरातल से गहरे पुल बने हुए थे। स्थानीय बोलचाल की भाषा मे वहाँ के लोग ऐसे पुल को रपट्टा कहते है। इलाहाबाद से तीस-चालीस कि मी दक्षिण पश्चिम मे जाने के बाद बहुत दूर-दूर पर गॉव दिखाई पडते है, इसलिए दिन मे भी सडक वीरान, सुनसान रहती है। कुछ-कुछ देर बाद कुछेक गाडियाँ दिखाई पड जाती है। खेतिहर और मजदूर भी बहुत कम नजर आते है। कही-कही छोटी पहाडियो के बीच से सडक गुजरती है तो मन शान्त हो उठता है। तरह-तरह के प्रश्न मन मे पैदा होने लगते है। इसी तरह मन मे तरह-तरह की जिज्ञासा लिए हम सभी आगे बढते जा रहे थे, गन्तव्य निकट आ रहा था।

चित्रकूट महत्वपूर्ण जगह होने के कारण जिला बना दिया गया है पर छोटी और अविकसित जगह होने के कारण उसका जिला मुख्यालय कर्वी बनाया गया है जो चित्रकूट से करीब १५ कि मी की दूरी पर है। इलाहबाद से जाने पर पहले कर्वी पडता है, इसके बाद चित्रकूट आता है। कर्वी भी दूसरी जगहो की तुलना मे छोटा शहर है, पर उस इलाके का बडा शहर होने के कारण जिला मुख्यालय बनने का गौरव प्राप्त कर सका है। कर्वी शहर से जैसे-

जैसे आगे बढ रहे थे, मानस रचयिता गोस्वामीजी की याद मन मे थिरकने लगी थी, उनका चेहरा, उनकी साधना जैसे सब ऑखो के सामने नाचने लग गये थे। हम चित्रकूट पहुँच गये। निस्तब्ध नीरव नगरी जैसे गोस्वामीजी की साधना मे व्यवधान के भय से शान्त हो गयी हो। लगता ही नही कि यहाँ जनमानस का कोलाहल होता हो। जन-कोलाहल से दूर होने के कारण गोस्वामीजी ने अपनी भक्ति-भावना को साकार करने के लिए तपस्यास्थली के रूप मे इसे चुना होगा, जो उनकी ईश्वर अनुरक्त भावना को पोषण देती रही होगी।

चित्रकूट नगर मन्दाकिनी गगा के उभय किनारे पर बसा हुआ है। मन्दाकिनी के तट पर रामघाट अत्यन्त मोहक स्थान है। चित्रकूट चौरासी कोस मे फैला हुआ प्राकृतिक सुषमा सम्पन्न स्थल है। रामघाट, जानकी कुड, हनुमान धारा, स्फटिक शिला आदि ऐसे और दृश्य है जो चित्रकूट की पौराणिक महत्ता का परिचय देते है। चित्रकूट के चतुर्दिक पचक्रोशी स्थान है, जो साठ-सत्तर किलोमीटर के क्षेत्रफल मे फैला हुआ है। मन्दाकिनी के तट पर प्राय सभी स्थान एक के बाद एक बसे हुए है, जो चित्रकूट जाने वाले धर्मानुरागियो की श्रद्धा को उद्दीप्त करते है एव उस सन्त शिरोमणि की, राम भक्ति की सगुण मार्गी धारा को सर्वोच्च आसनासीन करती है। हर मानस अनुरागी इस स्थान पर पहुँच कर अपना जीवन सार्थक समझता है।

यात्रा का दूसरा पर्व शुरु होता है चित्रकूट से अनसुइया के लिए। सती अनसुइया आश्रम पौराणिक काल से महत्वपूर्ण है। ऋषि अत्रि तथा उनकी पत्नी अनसुइया की साधना स्थली यही स्थान है। उनके समकालीन अन्य ऋषि मुनियो ने भी अपनी साधना एव भक्ति के बल पर इस स्थान को पवित्र बनाया है। अपनी पौराणिक महत्ता के अतिरिक्त सती अनसुइया आश्रम आज धर्मानुयायियो के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान बन गया है। इसकी महत्ता कई रूपो मे दिखाई पडती है। अनसुइया आश्रम की वर्तमान मर्यादा परमहस आश्रम के साथ जुडी है, जो आज वन्य प्रान्तर के बीच चहल-पहल का केन्द्र बना हुआ है। आज से कुछ वर्ष पहले तक अनसुइया स्थान जगली जन्तुओ का अड्डा मात्र था। पर जन कोलाहल होने के कारण पशु-समाज वहाँ से अपनी सत्ता समेटता हुआ अन्यत्र चला गया।

मन्दाकिनी तट पर विन्ध्य पर्वत की तलहटी मे अवस्थित परमहस आश्रम आज विशेष रूप से भक्तो के लिए तीर्थस्थल बना हुआ है। पौराणिक महत्व के साथ-साथ इस स्थान की साम्प्रतिक महत्ता भक्तो के लिए आकर्षण का केन्द्र है। ''सन्त महात्मा जिस स्थान पर पहुँचते है, वह स्थान स्वत तीर्थ स्थल बन जाता है।'' अपनी जीवन लीला व्यतीत करते हुए देश परिभ्रमण करते हुए स्वामी परमहसजी महाराज ने अपनी लीला और साधना स्थली के रूप मे इसी स्थान को अधिक उपयुक्त समझकर यही रहना उचित समझा था।

उत्तर प्रदेश के पूर्वाञ्चल स्थित गोरखपुर जिले के विभाजित देवरिया जिले के छोटे से गाँव रामकोला मे जन्मे परमश्रद्धेय स्वामी परमानन्दजी महाराज बचपन से ही अपने क्रिया कलापो के कारण लोगो मे अद्वितीय बन गये थे। उनकी श्रद्धा-भक्ति जन-मानस से दूर थी। कोई उनके ईश्वर-प्रेम को समझ नही पाता था। उसी गॉव मे एक लगडू बाबा थे जो बालक की दैवीय सत्ता को समझते थे, जिनकी प्रेरणा से बालक परवर्ती दिनो मे गृहस्थ आश्रम छोडकर सन्यास ग्रहण कर सका।

बचपन से ईश्वर भक्ति मे लीन होने के कारण किसी पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता तो उन्हे थी नही, प्रेरणास्वरूप लगडू बाबा मिल ही गए थे। बालक गृहस्थ आश्रम मे रहते हुए भी साधना के लिए आतुर रहता था। अन्तत एक दिन ऐसा आया जब गृहस्थी के सम्पूर्ण दायित्व से निवृत्त होकर, सन्यास धर्म ग्रहण कर बालक ने परिभ्रमण आरम्भ कर दिया।

परिभ्रमण काल मे उन्हे किसी नियत स्थान की कामना तो थी नही, जिधर आदेश होता उधर चले जाते। इसी क्रम मे विचरण करते उन्होंने समस्त भारत का भ्रमण किया। सर्वप्रथम उन्होंने अपनी यात्रा अयोध्या से आरम्भ की, इसके बाद जो भी स्थान रास्ते मे पडा उससे होते हुए वे आगे बढते गए। परिभ्रमण काल मे उन्होने गोरखपुर, जौनपुर, काशी, प्रयाग, अयोध्या, कलकत्ता, बम्बई, जम्मू कश्मीर से होते हुए हिमालय के बर्फीले प्रदेश मे समय बिताया और अनासक्त भाव से ईश्वर की सत्ता से साक्षात्कार करने के लिए वे सतत् आगे बढते रहे।

इसी यात्रा क्रम मे स्वामीजी ने अन्त करण की प्रेरणा से स्फूर्त होकर अयोध्या मे पदार्पण किया और वहाँ से चित्रकूट होते हुए अनसुइया पर्वत पर अपना स्थायी आश्रम बनाकर रहने का विचार किया। हर्षित मन से स्वामीजी ने चित्रकूट से अनसुइया आश्रम तक की यात्रा की थी। उन्होंने सोचा था भगवद्भक्ति का सबसे शान्त स्थान यही हो सकता है।

चित्रकूट से अनसुइया जाने का पथ जगली बीहड पथ से था, कॅटीले रास्ते बडे दुर्गम थे। उसी दुर्गम पथ से होते हुए स्वामीजी ने अपनी कामना पूर्ति के लिए अनसुइया स्थल को चुना था, जो उस समय केवल हिंसक पशुओ का केन्द्र था। ''भौतिक मोह-माया के जाल से निवृत्त होकर मनुष्य जब समरस जीवन यापन करता है, तब पशु समाज मे भी मानवता झलकती है।'' इसी दृष्टिकोण से उन्होंने उस जगल मे मगल की कामना से अपना आसन जमाया था।

अनसुइया आश्रम मे पहुँचने से पहले भी स्वामीजी निष्णात हो चुके थे और अपने शुद्ध सात्विक सन्तन्त्व के वल पर विभिन्न स्थानो पर पाखण्ड के दर्प से दीप्त तमाम वगुला-भगतो को परास्त कर

चुके थे। पर वे किसी जाति या सम्प्रदाय के साथ अपने को जोडना नही चाहते थे। अनसुइया आश्रम मे जब वे स्थायी निवास करने लगे और अपनी भक्ति-साधना के बल पर जनमानस मे पूजे जाने लगे तो देश के समस्त भूभाग से श्रद्धालु आपकी चरण-रज के लिए यहॉ आने लगे।

अपनी तेजस्वी प्रकृति के बल पर आपने जगल को स्वर्ग बना दिया और अनायास ही उनकी भक्ति साधना से प्रभावित होकर सुदूरवर्ती गाँवो के लोग उनकी ओर आकर्षित हो गये। बडे-से-बडे साधु महात्मा आपके सम्पर्क मे आकर 'ब्रह्म' की खोज मे लीन हो गये। आपके द्वारा बसाया गया अनसुइया परमहस आश्रम आज समस्त देश के श्रद्धालुओ और दर्शनार्थियो के लिए पूजनीय स्थान है।

स्वामी परमहसजी के सुयोग्य शिष्यो ने उनके आशीर्वचन को मर्यादा मञ्जरी के रूप मे समस्त देश मे फैलाना शुरू कर दिया था। स्वामीजी के वर्तमान आश्रम सचालक परम श्रद्धेय स्वामी भगवानन्दजी महाराज समस्त भारत मे व्याप्त सैकडो आश्रमो की व्यवस्था देख रहे है और अपनी साधना भक्ति के बल पर शिष्यो को अपने आशीर्वाद से समृद्ध कर रहे है। स्वामीजी के दर्शन के लिए ही हम लोगो ने अनसुइया की यात्रा का निश्चय किया था।

यात्रा के अन्तिम दौर मे चित्रकूट से अत्यधिक सँकरे मार्ग से होते हुए हम लोग अपने वाहन से अनसुइया पहुँच गए। माघ महीने की ठण्ड, दिन के तीन बजे ही सन्ध्या का स्वरूप दिखाई पड रहा था। विन्ध्य पर्वत की प्राकृतिक सुषमा सावन की-सी हरियाली से लदी हुई थी। पर्वत खण्ड के नीचे मन्दाकिनी तट पर बना हुआ परमहस आश्रम जिस नैसर्गिक सुषमा की आनन्द दे रहा था उसका वर्णन कल्पनातीत है। आश्रम का समृद्ध-ससार अपनी पूर्णता का परिचय दे रहा था। बन प्रान्तर की नीरवता से आभास हो रहा था कि स्वामीजी ने इसी कारण इस स्थान को चुना होगा।

आश्रम मे पहुॅचने पर नये समाज की झलक मिलने लगी। आश्रम चारो तरफ पर्वत से घिरा हुआ तलहटी मे बसा हुआ है। आज अनगिनत लोग उसी आश्रम मे रहकर अपनी भक्ति साधना कर रहे है और दर्शनार्थियो के लिए प्रेरक हो रहे है।

आश्रम से दो तीन मील की दूरी पर पर्वत की तलहटी मे सन्तो की सारस्वत सत्ता को साकार स्वरूप देते स्वामी भगवानन्दजी महाराज अपनी साधना मे तल्लीन थे। माघ महीने मे कँपाने वाली ठण्ड मे भी साधारण-सा वस्त्र धारण कर महल जैसे राजसिक सुख का परित्याग कर स्वामीजी साधनारत थे। दूर से ही उनके दर्शन से हम सव कृत-कृत्य हो उठे। जीवन की सचित पुण्य-पूॅजी से ही ऐसे सन्त महात्मा के दर्शन होते है।

पर्वत प्रदेश के उस भूखण्ड मे हमलोगो की उपस्थिति से उन्होंने अपनी साधना को विराम देते हुए हमलोगो का कुशल क्षेम पूछा और प्रसाद देते हुए पुन सुबह मिलने के ध्येय से आश्रम मे रात बिताने का आदेश दिया। उनके ही एक शिष्य को छोडकर वहाँ अन्य किसी को रहने का अवसर नही मिलता।

सायकाल स्वामीजी के दर्शन के पश्चात् हम सभी आश्रम की ओर लौट रहे थे। जगल से चर कर वापस लौटती हुई रँभाती हुई गायो का अनुशासन देखकर स्वामीजी के नैष्ठिक सस्कार का परिचय मिल रहा था, लगता था मनुष्यो से ज्यादा पशुओ को उन्होंने अधिक स्नेह सिंचित किया है। आश्रम मे रात भर ठहरने की व्यवस्था हुई। माघ मास की पूर्णिमा की रजनी मे चॉदनी समस्त वन प्रान्तर को आलोकित कर रही थी। दूर-दूर तक दिखाई पडने वाले वृक्ष जैसे अपनी मादकता मे विश्राम कर रहे हो।

आश्रम के अनुशासन स्वरूप प्रसाद ग्रहण कर रात्रिशयन किया गया। निस्तब्ध नीरव रजनी ने समस्त वन प्रान्तर की ध्वनि को अपने अक मे समाहित कर लिया था। ब्राह्म वेला मे ही चतुर्दिक ध्वनि सचार होने लगा। हमने भी अपने-अपने नित्यकर्म से निवृत्त होकर प्रभात वेला मे मन्दाकिनी के उष्णोदक मे स्नान किया। प्रकृति माता ने जैसे अपने भक्तो की चिन्ता कामना से मन्दाकिनी के उदक को शीत का प्रहार सहने के लिए उष्ण बना दिया है। प्रात काल आश्रम की आरती मे सबने भाग लिया। सूर्योदय हो जाने पर भी चारो तरफ से घिरा होने के कारण अधेरा छाया था। धीरे-धीरे भगवान भास्कर की किरणे वृक्षो के झुरमुट को चीरती हुई पृथ्वी पर पडने लगी जिनकी उपस्थिति से दिन होने का आभास होने लगा।

सुबह हम सभी दर्शनार्थी अपनी मगल कामना से प्रेरित होकर स्वामीजी के दर्शनार्थ गए। वहाँ उन्होने हम सभी को अपने स्नेहोपहार द्वारा सिंचित कर दिया, रोम-रोम मे उनका आशीर्वाद समाहित हो गया। वापस लौटते समय उन्होंने ही हम लोगो को गुप्त गोदावरी के दर्शन की आज्ञा दी। उन्ही की आज्ञा से हम सभी गुप्त गोदावरी के दर्शनार्थ गए जो वहॉ से बारह किलोमीटर की दूरी पर है। पर्वत की गुफा के बीच यह स्थान बहुत मनोरम है। पौराणिक काल से, राम के वनवास गमन से ही यह स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गुप्त गोदावरी के दर्शन करते हुए हम सब पुन अनसुइया आश्रम के दर्शन की लालसा मन मे लिए अपने निवास वापस हो गए। अन्त मे यही बात मन मे आती रही, बडे शुभ मुहूर्त मे यात्रा आरम्भ की गई थी।

सह-शिक्षक
श्री जैन विद्यालय, हावडा

❑ Sunbeam Manuel

Beautiful One Liner

1 Give God what's right - not what's left
2 Man's way leads to a hopeless end - God's way leads to an endless hope
3 A lot of kneeling will keep you in good standing
4 He who kneels before God - can stand before anyone
5 Don't put a question mark - where God puts a period
6 Are you wrinkled with burden? Come and seek His help
7 When praying, don't give God instructions - just report on duty
8 Don't wait for six strong men - help you on your eternal journey –
9 We don't change God's message - His message changes us
10 When God ordains, He sustains
11 Plan ahead - It wasn't raining when Noah built the ark.
12 Most people want to serve God - but only in an advisory position
13 Exercise daily - Walk with God
14 Never give the devil a ride - he will always want to drive
15 Nothing else ruins the truth - like stretching it
16 He who angers you, controls you
17 Worry is the dark room in which negatives can develop
18 Give Satan an inch & he'll be a ruler
19 God doesn't call the qualified, He qualifies the Called

Asst Teacher
Shri Jain Vidyalaya, Howrah

शिखा तुलस्यान, अष्टम् ब

□ रुचि मिश्र, १०

पानी : एक चमत्कारिक औषधि

मगल भवन अमगलहारी, द्रवहु सो दशरथ अजिर विहारी।
दीनदयाल विरुदविहारी, हरहु नाथ मम सकट भारी।।

कई एक जानलेवा बीमारियो को दूर करने के लिए 'जापानीज सिकनेज एसोसिएसन' ने पानी द्वारा अत्यन्त सरल पद्धति की खोज की है। इस पद्धति से पानी पीने का प्रयोग करने से कई एक पुरानी जानलेवा बीमारियो को दूर किया जा सकता है –

- ✧ सरदर्द, ब्लडप्रेसर, एनीमिया (खून की कमी) गठिया, लकवा, हृदय की धडकन एव बेहोशी।
- ✧ कफ खाँसी, दमा एव टी०बी०।
- ✧ हाईपरएसिडिटी (अम्ल पित्त) गैस से सम्बन्धित, पेचिस, कब्जियत, अर्स, डायबिटिज (मधुमेह) लीवर से सम्बन्धित बीमारिया।

पानी पीने की विधि –

रोजाना सुवह जल्दी उठकर बिना मुह धोये, बैठ कर १ २६० लिटर (चार बडे ग्लास) पानी एक साथ पी जाना है। पानी पीने के बाद आप मुह धो अथवा ब्रश कर सकते है। यह प्रयोग करने के ४५ मिनट बाद आप नाश्ता कर सकते है लेकिन २ घण्टे बाद ही अपनी इच्छानुसार पानी पी सकते है। इसी तरह दोपहर एव रात के भोजन के २ घण्टे बाद पानी पी सकते है।

बीमार एव नाजुक स्वास्थ्यवाले व्यक्ति यदि एक साथ चार ग्लास पानी न पी सके तो पहले एक या दो ग्लास पानी से प्रयोग शुरु करे, फिर धीरे-धीरे बढाकर एक से चार ग्लास पी जाये। इसके बाद चार ग्लास पानी नियमित रूप से पीना जारी रखे। जिन्हे वातरोग या गठिया रोग (जोडो की बीमारियॉ) की तकलीफ हो, उन्हे इस प्रयोग को प्रथम एक सप्ताह तक दिन मे तीन बार करना चाहिए। उसके बाद दिन मे एक बार ही प्रयोग करे।

पानी का यह प्रयोग अत्यन्त ही सरल एव साधारण है। चार ग्लास पानी एक साथ पीने से शरीर पर कोई कुप्रभाव (Side effect) नही पडता है। शुरूआत के कुछ दिनो तक पानी पीने के बाद थोडी देर के बाद २, ३ बार पेशाब अवश्य आएगा लेकिन बाद मे नियमित हो जाएगा।

सच तो यह है कि इस प्रयोग की बीमार एव तन्दुरुस्त व्यक्ति दोनो ही नियमित रूप से कर सकते है। बीमार इसलिए कि उसे तन्दुरुस्ती मिले एव तन्दुरुस्त इसलिए कि कभी बीमार न पडे।

अनुभवो एव परीक्षणो के पश्चात् यह देखा गया है कि इस प्रयोग से अलग-अलग बीमारियो को निम्न अवधि मे फायदा हुआ है –

हाईपरटेनेसन (ब्लड प्रेसर)	१ महीना मे
डायबिटीज (मधुमेह)	५ महीना मे
गैस की तकलीफ	१० दिनो मे
कैन्सर	६ महीना मे
कब्जियत	१० दिनो मे
टी बी	३ महीना मे

इस प्रयोग से लाभ उठाकर सभी तन्दुरुस्त हो सकते है।

सिया राममय सब जग जानी। करउ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

नोट · पानी रात मे ताबे के बर्तन मे रखा जावे और प्रात काल उसी को पीने से अधिक लाभदायक होगा।

■

❑ सत्येन्द्र मिश्र, बी.इ आई टी. (प्रथम वर्ष)

काम का बँटवारा

जो मनुष्य अपने कार्य को, ठीक तरह से समझ कर योग्यतापूर्वक सपादित करता है, प्राप्त दायित्वो का यथोचित सरक्षण एव विकास करता है, वह सब जगह सफलता एव सम्मान प्राप्त करता है।

राजगृह मे एक धन्ना सार्थवाह रहता था। वह वैभवशाली भी था और बुद्धिमान भी। उसकी भद्रा नाम की पत्नी बडी सुशील और गृहकार्य मे निपुण थी। धन्ना सेठ के चार पुत्र थे– धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित। चारो पुत्रो की चार पत्नियाँ थी– उज्झिका, भोगवती, रक्षिका और रोहिणी। यह भरा पूरा परिवार बहुत ही सम्पन्न और सुखी था।

एक दिन सार्थवाह के मन मे विचार उठा–''मेरा शरीर जर्जर होने लग गया है, न जाने किस दिन यह साँस दगा दे जाए! परिवार और घर की जिम्मेदारियाँ बहुत है, इधर कर्त्तव्य-शक्ति क्षीण हो रही है, अत मै अपने जीवनकाल मे ही जिम्मेदारियो का कुछ बँटवारा कर दूँ, तो अच्छा हो। इससे मेरी मृत्यु के बाद भी परिवार की सब व्यवस्था ठीक बनी रहेगी। सब मिल-जुलकर आनन्द से रहेंगे।''

कुटुम्ब एव परिवार की सुन्दर व्यवस्था का मूलाधार गृह-लक्ष्मियो पर है। अत सार्थवाह ने सबसे पहले घर की जिम्मेदारी पुत्रवधुओ को सौपने का निश्चय किया। किन्तु, कौन किस कार्य के योग्य है, यह देख लेना भी जरूरी थी। अतएव सार्थवाह ने उनकी रुचि और योग्यता की परीक्षा का एक मनोवैज्ञानिक तरीका अपनाया।

एक दिन सार्थवाह ने अपने समस्त परिजनो को एक विशाल प्रीतिभोज दिया। भोज के बाद परिजनो के समक्ष उसने अपनी पुत्रवधुओ को बुलाया। चारो पुत्रवधुएँ ससुर के समक्ष उपस्थित हुई और उनके चरण छूकर विनम्रतापूर्वक एक ओर खडी हो गई। सार्थवाह ने पुत्रवधुओ को न कोई मूल्यवान आभूषण दिया और न कोई सुन्दर वस्त्र ही। उसने उनको दिये धान (चावल) के पॉच-पॉच दाने और कहा–''इन्हे सँभाल कर रखना, जब माँगू तब मुझे वापिस ला कर देना।''

पुत्रवधुओ ने दाने लिये और अपने-अपने स्थान पर जाकर विचार करने लगी।

पहली पुत्रवधू उज्झिका का मन वृद्ध ससुर के इस व्यवहार और आदेश पर हँस पडा। विचार किया कि ''इस समृद्ध घर मे चावलो का दुष्काल तो पडा नही है! धान के अनेक कोष्ठागार भरे पडे है। फिर क्या जरूरत है, इन्हे सभाल कर रखने की? ससुर के मॉगने पर पाँच क्या, हजार दाने भी दिये जा सकते है।'' अत उसने दाने फेक दिये।

दूसरी पुत्रवधू ने सोचा–''ससुरजी ने जब इतने समारोह के साथ ये दाने दिये है, तो जरूर इनमे कुछ करामात होनी चाहिए। हो सकता है, किसी सिद्ध-पुरुष का प्रसाद ही हो, अत खा लेने चाहिए।'' उसने धान छीलकर चावल के दाने खा लिए।

तीसरी का मन भी कुछ इसी प्रकार के विचारो मे लग गया कि–''ससुर ने जब इन्हे सुरक्षित रखने को कहा है, तो अवश्य ही ये चमत्कारी दाने होंगे।'' वह कुछ अधिक समझदार थी, उसने धान के दाने एक सुन्दर वस्त्र मे बाँध कर अपनी रत्नकरण्डिका (रत्नो की मजूषा) मे सॅभाल कर रख दिए, ताकि मॉगने पर उन्हे तुरन्त दिए जा सके।

चौथी बहू इस उपक्रम की गहराई मे उतरने लगी–''ससुरजी हजारो मे एक बुद्धिमान है। उन्होने पॉच दाने देने के लिए इतना बडा समारोह निरर्थक तो किया नही होगा? अवश्य ही दानो के पीछे कोई विशेष प्रयोजन होना चाहिए। अत इन पॉच दानो के बदले मे पॉच लाख या पाँच करोड दाने दिये जा सके, ऐसा उपाय करना चाहिए। ज्यो के त्यो पॉच के पॉच ही दाने लौटाए, तो क्या लौटाए?'' रोहिणी का प्रबुद्ध मानस घटना की सूक्ष्मता को पकड रहा था। उसने धान के पाँचो दाने अपने पिता के घर पर भेज दिये और विशेष ढग से उन पाँच दानो की खेती कराने के लिए स्वतत्र व्यवस्था करने के लिए भी कहला दिया।

पूरे चार वर्ष बीत गए, पॉचवॉ चल रहा था। वृद्ध सार्थवाह को ‌॰नी बात याद हो आई। अब उसने परीक्षा का परिणाम जानना च हा। पुन उसी प्रकार परिजनो एव ज्ञातिजनो को प्रीतिभोज के ॰ निमन्त्रित किया। सबको भोजन आदि से सन्तुष्ट करके चारो पुत्रवधुओ को बुलाया और चार वर्ष पूर्व दिये गए धान के पॉच-पॉच ॰ की उन्हे याद दिलाते हुए, उनसे पॉचो दानो को वापिस मॉगा।

बडी पुत्रवधू उज्झिका भीतर गई और भडार मे से धान के पॉच दाने लाकर सेठ के हाथ मे रख दिये। सेठ ने दाने हाथ मे लेकर पूछा– "पुत्री! क्या सचमुच ये दाने वे ही है, जो मैने तुम्हे दिये थे?"

उज्जिका ने हाथ जोडकर कहा–"तात! नही वे दाने तो मैने ॰ दिये थे, ये तो नए दाने है।"

अब भोगवती से दाने मॉगे गए, तो उसने भी भडार से लाकर ॰च दाने सौप दिए। सेठ के पूछने पर अपने मन की सही स्थिति ॰ करते हुए कहा–"वे दाने तो मैने खा लिए।"

रक्षिका की ओर सेठ ने देखा, तो उसने रत्न-करण्डक से नका॰ कर दाने ससुर के सम्मुख रखते हुए कहा–"ये वे ही दाने , जो आपने चार वर्ष पूर्व मुझे दिए थे।"

अब सबसे छोटी बहू रोहिणी से दाने मॉगे गए, तो उसने विनय ॰ कहा–"तात! दाने तैयार है, पर उन्हे लाने के लिए बहुत- ॰ गाडियाँ चाहिएँ।"

रोहिणी की बात पर सब लोग चकित थे। सार्थवाह के चेहरे पर आश्चर्य-मिश्रित प्रसन्नता की स्वर्ण-रेखा चमक उठी। उसने ॰ा–"पुत्री, इसका क्या मतलब है? पॉच दानो के लिए गाडियो ॰ क्या आवश्यकता है?"

रोहिणी ने बतलाया कि किस प्रकार उसने पिता के यहॉ खेत अपनी एक अलग क्यारी बनवाकर पॉच दानो की खेती करवाई ॰ धीरे-धीरे चार वर्ष मे वे इतने हो गए है कि उन्हे ढोकर यहॉ ॰ लाने के लिए एक क्या, कई गाडियॉ चाहिए।

सार्थवाह ने अपने परिजनो की ओर देखा। सभी के मुँह पर ॰हिणी की प्रशसा थी। सबको सम्बोधित करते हुए सार्थवाह ने ॰ा– "मैने आप सबको इसीलिए कष्ट दिया है कि मै अपनी ॰त्रवधुओ को उनकी योग्यतानुसार काम की जिम्मेदारियॉ सौप दूँ। ॰नका कुशलता और कार्यक्षमता का अनुमान आप लोग कर पाए ॰। मैने जो उनकी योग्यता की परीक्षा की है, उसके अनुसार ॰नके काम का वँटवारा किए देता हूँ।" सार्थवाह के धीर-गभीर ॰ को सुनने के लिए सब उत्सुक हो रहे थे। काम का वँटवारा ॰रते हुए उसने कहा– "सबसे छोटी वहू रोहिणी है, उसे गृह ॰ालन की पूर्ण जिम्मेदारी देता हूँ। इस गृह की वह स्वामिनी होगी। इस वश-वृक्ष को पल्लवित तथा पुष्पित करने की कला मे वह निपुण है। वह सचमुच सवर्धन की देवी है।"

"आज से रक्षिका को घर की चल-अचल सम्पत्ति की रक्षा का दायित्व सौपता हूँ। वह घर की हर चीज को सँभालती रहेगी, वह सरक्षण मे कुशल है।"

"भोगवती को परिवार के खान-पान, रसोई आदि व्यवस्था का पूरा दायित्व दिया जाता है। खाद्य विभाग उसी के जिम्मे रहेगा।"

"सबसे बडी बहू अज्झिका को घर की सफाई और स्वच्छता का काम सौपा जाता है। वह घर की सफाई का ध्यान रखेगी। वह फेकने की कला मे होशियार है।"

सभी परिजन एक नया विचार, एक नया अनुभव लिए लौट गए। "जिसमे जितनी योग्यता है, वह उतना ही अपना विकास कर सकता है।" सेठ ने काम का बँटवारा अवस्था मे छोटे-बडे के आधार पर नही, बल्कि उनकी बुद्धि एव योग्यता के आधार पर किया।

पूर्व छात्र, श्री जैन विद्यालय, कोलकाता

ब्रह्मचर्यसंबंधी सुभाषित

(दोहे)

नीरखीने नवयौवना, लेश न विषयनिदान,
गणे काष्ठनी पूतळी, ते भगवान समान । १

आ सघळा ससारनी, रमणी नायकरूप,
ए त्यागी, त्याग्यु बधु, केवळ शोकस्वरूप । २

एक विषयने जीतता, जीत्यो सौ ससार,
नृपति जीतता जीतिये, दळ, पुर ने अधिकार । ३

भावार्थ– नवयौवना को देखकर जिसके मन मे विषय-विकार का लेश भी उदय नही होता और जो उसे काठ की पुतली समझता है, वह भगवान के समान है ।।१।।

इस सारे ससार की नायकरूप रमणी सर्वथा दु ख-स्वरूप है, जिसने इसका त्याग कर दिया उसने सब कुछ त्याग दिया ।।२।।

जैसे एक नृपति को जीतने से उसका सैन्य, नगर और अधिकार जीते जाते है, वैसे एक विषय को जीतने से सारा ससार जीता जाता है ।।३।।

■

मन व कर्म

राजर्षि प्रसन्नचन्द्र ध्यान मे बैठे हुए थे। वे ऊपर से तो ऐसे दीखते थे मानो आत्मा या परमात्मा मे चित्त को लगाए हुए है लेकिन वास्तविक बात कुछ और ही थी। राजा श्रेणिक ने प्रसन्नचन्द्र ऋषि को इस प्रकार ध्यान मे बैठे देखा। उसे आश्चर्य हुआ कि इस ऋषि का ऐसा प्रगाढ ध्यान है! इस प्रकार उनके ध्यान से प्रभावित होकर राजा ने भगवान् से पूछा–प्रभो! प्रसन्नचन्द्र ऋषि का जैसा ध्यान मैने देखा है वैसा ध्यान किसी दूसरे का नही देखा। अगर वे इस समय शरीर का त्याग करे तो किस गति को प्राप्त हो?

राजा श्रेणिक के प्रश्न के उत्तर मे भगवान् ने कहा–अगर वे इस समय काल करे तो सातवे नरक मे जाएँ।

यह उत्तर सुनकर श्रेणिक के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने पूछा–भगवान् ऐसा क्यो? और जब ऐसे ध्यानी महात्मा सातवे नरक मे जाएँगे तो मुझ जैसे पापी की क्या गति होगी? प्रभो! स्पष्ट रूप से समझाइए कि सब से अधिक वेदना वाले सातवे नरक मे वे महात्मा क्यो जाएँगे?

भगवान् ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया–राजन्! अब उनकी भाव-स्थिति बदली है। अतएव इस समय काल करे तो सर्वार्थसिद्ध विमान मे उत्पन्न हो।

भगवान् की वाणी पर अटल श्रद्धा रखता हुआ भी श्रेणिक राजा गडबड मे पड गया। उसने सोचा–कहाँ सर्वार्थसिद्ध विमान और कहाँ सातवाँ नरक। दोनो परस्पर विरोधी दो सिरो पर है। एक सासारिक सुख का सर्वोत्तम ध्यान है और दूसरा दु ख का निकृष्ट स्थान है। एक का जीवन अगले भव मे मोक्ष जाना ही है और दूसरे से निकलने वाला अगले भव मे मोक्ष जा ही नही सकता। क्षण भर मे इतना बडा भारी परिवर्तन। यह कैसे सभव है? इस प्रकार सोचकर श्रेणिक ने फिर प्रश्न किया–प्रभो! अभी-अभी तो आपने सातवे नरक के लिए कहा था और अब आप सर्वार्थसिद्ध विमान मे उत्पन्न होने की बात कहते है, आखिर इसका कारण क्या है?

राजा श्रेणिक इस प्रकार प्रश्न कर ही रहा था कि उसी समय देवदुदुभी का श्रुतिमधुर निर्घोष राजा के कानो मे सुनाई दिया। राजा ने पूछा–प्रभो! यह दुदुभी कहाँ और क्यो बजी है?

भगवान् ने कहा–प्रसन्नचन्द्र ऋषि सर्वज्ञ हो गये है।

राजा श्रेणिक चकित रह गया। उसने कहा–देवाधिदेव! कुछ समझ मे नही आया। अभी आपने कहा था कि अभी काल करे तो सातवे नरक मे जाएँ, फिर कहा कि सर्वार्थसिद्ध विमान मे जाएँ और अब आप कहते है कि वे सर्वज्ञ हो गए है। मै इसका अर्थ समझना चाहता हूँ और उनका चरित सुनने की इच्छा करता हूँ। मुझ अज्ञ प्राणी पर अनुग्रह कीजिए।

भगवान् ने कहा–राजन्! प्रसन्नचन्द्र ऋषि पोतनपुर के राजा थे। उन्हे ससार से वैराग्य हो गया और वे सयम ग्रहण करने के लिए उद्यत हुए। मगर उनके सामने एक समस्या खडी हुई कि लडका अभी छोटा है। इसे किसके सहारे छोडा जाये? इस विचार के कारण सयम ग्रहण करने मे विलम्ब हो रहा था। परन्तु उनके किसी हितैषी ने अथवा उनके अन्तरात्मा ने कहा कि धर्मकार्य मे ढील नही करना चाहिए। 'शुभस्य शीघ्रम्' होना चाहिए।

प्रसन्नचन्द्र ने कहा–तुम्हारा कहना ठीक है। मुझे ससार से विरक्ति हो गई है और वह विरक्ति ऊपरी नही, भीतरी है, क्षणिक नही, स्थायी है, मगर विलम्ब का कारण यह है कि पुत्र छोटा है। उसे किसके भरोसे छोडा जाये?

प्रसन्नचन्द्र के इस कथन का उन्हे उत्तर मिला–अगर आज ही तुम्हे मृत्यु आ घेरे तो छोटे बालक की रक्षा कौन करेगा? वैराग्य के साथ मोह-ममता के यह विचार शोभा नही देते। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को यह कथन ठीक मालूम हुआ और उन्होंने सयम लेने की तैयारी की। सयम लेने से पहले उन्होंने अपने पाँच सौ कार्यकर्ताओ को बुलाकर उनसे कहा–यह बालक छोटा है। यह तुम्हारे सहारे है। जब तक यह बडा न हो जाये, इसको सँभाल कर रखना। कर्मचारियो ने आश्वासन देते हुए कहा आपकी आज्ञा प्रमाण है। हम राजकुमार की सँभाल करेगे और प्राण भले ही दे देगे मगर इन्हे किसी प्रकार का कष्ट नही देंगे।

प्रसन्नचन्द्र ने पूर्ण वैराग्य के साथ सयम ग्रहण किया। मगर ऐसे उत्कट वैरागी की भावना मे भी दूषण लग गया था। अतएव तुम्हारे पूछने पर मैंने यह कहा था कि यदि वे इस समय काल करे तो सातवे नरक मे जावे।

राजा श्रेणिक ने फिर प्रश्न किया—प्रभो! उनकी भावना किस प्रकार दूषित हुई?

भगवान्—जिस समय तुम सेना लेकर यहाँ आ रहे थे, उस समय प्रसन्नचन्द्र ऋषि ध्यान मे बैठे थे। तुम अपनी सेना के आगे-आगे दो आदमियो को इसलिए चला रहे थे कि वे भूमि देखते रहे और कोई जीव कुचल न जाये। दोनो आदमी मार्ग साफ करते जाते थे। उन दोनो ने भी प्रसन्नचन्द्र ऋषि को देखा। उनमे से एक ने कहा—यह महात्मा कितने त्यागी और कैसे तपस्वी है। देखो, किस तरह ध्यान मे डूबे हुए है। इनके लिए जगत की सम्पदा तुच्छ है।

एक आदमी के इस प्रकार कहने पर दूसरे ने कहा—तू भूल रहा है। यह महान् पापी और ढोगी है। इसके समान पापी और ढोगी शायद ही कोई दूसरा होगा।

पहले आदमी ने आश्चर्य से पूछा—क्यो? यह पापी क्यो है?

दूसरा आदमी बोला—अपने नादान बालक को अपने कर्मचारियो के भरोसे छोड कर साधु हुआ है। मगर उन कर्मचारियो की नियत बिगड गई है। वे सब आपस मे मिल गये है और राजपुत्र की घात करने की फिराक मे है। जब वे लोग उसे मार डालेगे तो यह निपूता मरेगा। यह इसका पापीपन नही है? इसने कैसी भयानक भूल की है। दूध की रक्षा के लिए बिल्ली को नियत करना जैसे मूर्खता है, उसी प्रकार राजकुमार को कर्मचारियो के भरोसे छोडना मूर्खता है। इसकी मूर्खता के कारण ही अज्ञानी बालक को अपने प्राणो की आहुति देनी पडेगी और यह मरकर नरक मे जायेगा।

श्रेणिक, तुम्हारे दोनो आदमियो की आपस की बात ऋषि प्रसन्नचन्द्र ने सुनी। यह बाते सुनकर उनके वैराग्य की भावना बदल गई। वह सोचने लगे—दुष्ट, कृतघ्न लोग मेरे पुत्र की हत्या करना चाहते है। मै ऐसा कदापि नही होने दूँगा। मुझमे बल की कमी नही है। अब तक मुझे राज्यबल ही प्राप्त था, पर अब मै योगबल का भी अधिकारी हूँ। इन दोनो बलो द्वारा उन दुष्टो को बुरी तरह कुचल दूँगा।

प्रसन्नचन्द्र ऋषि के चित्त मे इस प्रकार अहकार का उदय हुआ और प्रतिशोध की भावना भी उत्पन्न हुई। वे अपने मन मे अनेक प्रकार के सकल्प-विकल्प करने लगे। यहाँ तक कि वे मन ही मन घोर युद्ध करने लगे और अपने शत्रुओ का सहार करने लगे। जब वे ऐसा कर रहे थे तभी तुमने प्रश्न किया कि वे काल करे तो कहाँ जावे? तुम उन्हे ध्यान मे समझते थे और मै देखता था कि वे घोर युद्ध मे प्रवृत्त है। इसी कारण मैंने कहा था कि अगर वे इस समय काल करे तो सातवे नरक मे जावे।

राजा श्रेणिक की उत्कठा और बढी। उसने प्रश्न किया—भगवन्! फिर आपने सर्वार्थसिद्ध विमान मे जाने के लिए कैसे कहा?

भगवान् ने उत्तर दिया—प्रसन्नचन्द्र ध्यान—मुद्रा मे बैठे-बैठे भी क्रोध के आवेश मे आकर युद्ध करने मे लगे थे। उसी क्रोधावेश मे उनका हाथ अपने मस्तक पर जा पहुँचा। उन्होंने अपने सिर पर हाथ फेरा तो उन्हे विदित हुआ कि मेरे सिर पर केश नही है। यह सोचते ही उन्हे सुध आई कि—अरे! मै तो त्यागी हूँ। फिर भी ऐसे प्रपच मे पडा हूँ। मैंने जिसे त्याग दिया है, उसी के लिए फिर ससार मे जाने की या चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है? जिसे वमन कर दिया है उसे फिर अपनाने का विचार ही अशोभनीय है।

भगवान् ने जो कुछ कहा है और मैंने आपको जो सुनाया है, वह सिर्फ प्रसचन्नचन्द्र ऋषि के सबध मे ही न समझिए, इस कथन का सबध अगर उन्ही के साथ होता और आपके साथ न होता तो आपके समक्ष यह कथा रखी ही क्यो जाती? इस कथा के आधार पर आपको अपने सबध मे विचार करने की आवश्यकता है। आज अपने मन की गति पर विचार कीजिए। आप यहाँ बैठे है पर आपका मन कहाँ जा रहा है? प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ध्यान मे बैठे थे, परन्तु उनका मन कहाँ से कहाँ चला गया था। और उसका परिणाम क्या हुआ? इसी प्रकार आप बैठे तो यहाँ है मगर आपका मन अन्यत्र चला गया तो उसका परिणाम क्या होगा? आपका मन स्वतत्र है। क्या आप उपयोग करने मे भी स्वतत्र है? जैसा आप चाहे अपने मन का उपयोग कर सकते है। जब यह सत्य है तो आप ऐसी जगह बैठकर भी अपने मन को बुरी जगह क्यो जाने देते है? आपको सोचना चाहिए कि आप क्या लेने के लिए यहाँ आये है? जो कुछ आप लेने आये है, वह वस्तु मन को एकाग्र करके आत्मा का स्वरूप देखने से और इस प्रकार आत्मबल प्राप्त करने से ही मिल सकती है।

श्री जैन विद्यालय, कोलकाता

□ राजन मिश्र, प्रथम वर्ष बी कॉम

कामदेव श्रावक

महावीर भगवान के समय मे द्वादश व्रत को विमल भाव से धारण करनेवाला, विवेकी और निर्ग्रंथवचनानुरक्त कामदेव नाम का एक श्रावक उनका शिष्य था। एक समय इन्द्र ने सुधर्मासभा मे कामदेव की धर्म-अचलता की प्रशसा की। उस समय वहाँ एक तुच्छ बुद्धिमान देव बैठा हुआ था। वह बोला–''यह तो समझ मे आया, जब तक नारी न मिले तब तक ब्रह्मचारी तथा जब तक परिषह न पडे हो तब तक सभी सहनशील और धर्मदृढ। यह मेरी बात मै उसे चलायमान करके सत्य कर दिखाऊँ।'' धर्मदृढ कामदेव उस समय कायोत्सर्ग मे लीन था। देवता ने विक्रिया से हाथी का रूप धारण किया, और फिर कामदेव को खूब रौदा, तो भी वह अचल रहा, फिर मूसल जैसा अग बनाकर काले वर्ण का सर्प होकर भयकर फुँकार किये, तो भी कामदेव कायोत्सर्ग से लेशमात्र चलित नही हुआ। फिर अट्टहास्य करते हुए राक्षस की देह धारण करके अनेक प्रकार के परिषह किये, तो भी कामदेव कायोत्सर्ग से डिगा नही। सिंह आदि के अनेक भयकर रूप किये, तो भी कामदेव ने कायोत्सर्ग मे लेश हीनता नही आने दी। इस प्रकार देवता रात्रि के चारो प्रहर उपद्रव करता रहा, परतु वह अपनी धारणा मे सफल नही हुआ। फिर उसने उपयोग से देखा तो कामदेव को मेरु के शिखर की भाँति अडोल पाया। कामदेव की अद्‌भुत निश्चलता जानकर उसे विनयभाव से प्रणाम करके अपने दोषो की क्षमा माँगकर वह देवता स्वस्थान को चला गया।

'कामदेव श्रावक की धर्मदृढता हमे क्या बोध देती है, यह बिना कहे भी समझ मे आ गया होगा। इसमे से यह तत्त्वविचार लेना है कि निर्ग्रथ-प्रवचन मे प्रवेश करके दृढ रहना। कायोत्सर्ग इत्यादि जो ध्यान करना है, उसे यथासभव एकाग्रचित्त से और दृढता से निर्दोष करना।' चलविचल भाव से कायोत्सर्ग बहुत दोषयुक्त होता है। 'पाई के लिए धर्म की सौगन्ध खानेवाले धर्म मे दृढता कहाँ से रखे ? और रखे तो कैसी रखे ?' यह विचारते हुए खेद होता है।

प्रत्याख्यान

'पच्चक्खान' शब्द बारबार तुम्हारे सुनने मे आया है। इसका मूल शब्द 'प्रत्याख्यान' है, और यह अमुक वस्तु की ओर चित्त न जाने देने का जो नियम करना उसके लिये प्रयुक्त होता है। प्रत्याख्यान करने का हेतु अति उत्तम तथा सूक्ष्म है। प्रत्याख्यान न करने से चाहे किसी वस्तु को न खाओ अथवा उसका भोग न करो तो भी उससे सवर नही होता, क्योंकि तत्त्वरूप से इच्छा का निरोध नही किया है। रात मे हम भोजन न करते हो, परतु उसका यदि प्रत्याख्यानरूप से नियम न किया हो तो वह फल नही देता, क्योंकि अपनी इच्छा के द्वार खुले रहते है। जैसा घर का द्वार खुला हो और श्वान आदि प्राणी या मनुष्य भीतर चले आते है वैसे ही इच्छा के द्वार खुले हो तो उनमे कर्म प्रवेश करते है। अर्थात् उस ओर अपने विचार यथेच्छरूप से जाते है, यह कर्मबधन का कारण है। और यदि प्रत्याख्यान हो तो फिर उस ओर दृष्टि करने की इच्छा नही होती। जैसे हम जानते है कि पीठ के मध्य भाग को हम देख नही सकते, इसलिये उस ओर हम दृष्टि भी नही करते, वैसे ही प्रत्याख्यान करने से अमुक वस्तु खायी या भोगी नही जा सकती, इसलिये उस ओर अपना ध्यान स्वाभाविकरूप से नही जाता। यह कर्मों को रोकने के लिये बीच मे दुर्ग-रूप हो जाता है। प्रत्याख्यान करने के बाद विस्मृति आदि के कारण कोई दोष लग जाये तो उसके निवारण के लिये महात्माओ ने प्रायश्चित भी बताये है।

प्रत्याख्यान से एक दूसरा भी बडा लाभ है, वह यह कि अमुक वस्तुओ मे ही हमारा ध्यान रहता है, बाकी सब वस्तुओ का त्याग हो जाता है। जिस-जिस वस्तु का त्याग किया है, उस-उस वस्तु के सबध मे फिर विशेष विचार, उसका ग्रहण करना, रखना अथवा ऐसी कोई उपाधि नही रहती। इससे मन बहुत विशालता को पाकर नियमरूपी सडक पर चला जाता है। अश्व यदि लगाम मे आ जाता है तो फिर चाहे जैसा प्रबल होने पर भी उसे इच्छित रास्ते से ले जाया जाता है, वैसे ही मन इस नियमरूपी लगाम मे आने के बाद चाहे जैसी शुभ राह मे ले जाया जाता है, और उसमे बारबार पर्यटन कराने से वह एकाग्र, विचारशील और विवेकी हो जाता है। मन का आनद शरीर को भी निरोग बनाता है। और अभक्ष्य, अनतकाय परस्त्री आदि का नियम करने से भी शरीर निरोग रह सकता है। मादक पदार्थ मन को उलटे रास्ते पर ले जाते है, परतु प्रत्याख्यान से मन वहाँ जाता हुआ रुकता है, इससे वह विमल होता है।

प्रत्याख्यान यह कैसी उत्तम नियम पालने की प्रतिज्ञा है, यह बात इस परचे से तुम समझे होगे। विशेष सद्‌गुरु के मुख से और शास्त्रावलोकन से समझने का मै बोध करता हूँ।

पूर्व छात्र श्री जैन विद्यालय, हावडा

❑ दीपक कौर, नवम ब

सत्य

सामान्य कथन मे भी कहा जाता है कि सत्य इस 'सृष्टि का आधार' है, अथवा सत्य के आधार पर यह 'सृष्टि टिकी है।' इस कथन से यह शिक्षा मिलती है कि धर्म, नीति, राज और व्यवहार ये सब सत्य द्वारा चल रहे है, और ये चार न हो तो जगत का रूप कैसा भयकर हो ? इसलिए सत्य 'सृष्टि का आधार' है, यह कहना कुछ अतिशयोक्ति जैसा या न मानने योग्य नही है।

वसुराजा का एक शब्द असत्य बोलना कितना दु खदायक हुआ था, उसे तत्त्वविचार करने के लिए मै यहाँ कहता हूँ।

वसुराजा, नारद और पर्वत ये तीनो एक गुरु के पास विद्या पढे थे। पर्वत अध्यापक का पुत्र था। अध्यापक चल बसा। इसलिए पर्वत अपनी माँ के साथ वसुराजा के राज्य मे आकर रह रहा था। एक रात उसकी माँ पास मे बैठी थी, और पर्वत तथा नारद शास्त्राभ्यास कर रहे थे। इस दौरान मे पर्वत ने 'अजैर्यष्टव्यम्' ऐसा एक वाक्य कहा। तब नारद ने कहा, ''अज का अर्थ क्या है, पर्वत ?'' पर्वत ने कहा, ''अज अर्थात् बकरा।'' नारद बोला, ''हम तीनो जब तेरे पिता के पास पढते थे तब तेरे पिता ने तो 'अज' का अर्थ तीन वर्ष का 'व्रीहि' बताया था, और तू उलटा अर्थ क्यो करता है ?'' इस प्रकार परस्पर वचन-विवाद बढा। तब पर्वत ने कहा, ''वसुराजा हमे जो कहे वह सही।'' यह वात नारद ने भी मान ली और जो जीते उसके लिए अमुक शर्त की। पर्वत की माँ जो पास मे बैठी थी उसने यह सब सुना। 'अज' अर्थात् 'व्रीहि' ऐसा उसे भी याद था। शर्त मे अपना पुत्र हार जायेगा इस भय से पर्वत की माँ रात को राजा के पास गयी और पूछा, ''राजन्। 'अज' का क्या अर्थ है ?'' वसुराजा ने सबधपूर्वक कहा, ''अज का अर्थ 'व्रीहि' है।'' तब पर्वत की माँ ने राजा से कहा, ''मेरे पुत्र ने अज का अर्थ बकरा कह दिया है, इसलिए आपको उसका पक्ष लेना पडेगा। आपसे पूछने के लिए वे आयेगे।'' वसुराजा बोले, ''मै असत्य कैसे कहूँ ? मुझसे यह नही हो सकेगा।'' पर्वत की माता ने कहा, ''परतु यदि आप मेरे पुत्र का पक्ष नही लेंगे, तो मै आपको हत्या का पाप दूँगा।'' राजा विचार मे पड गया–''सत्य के कारण मै मणिमय सिंहासन पर अधर मे बैठता हूँ। लोकसमुदाय का न्याय करता हूँ। लोग भी यह जानते है कि राजा सत्य गुण के कारण सिंहासन पर अतरिक्ष मे बैठता है। अब क्या करूँ ? यदि पर्वत का पक्ष न लूँ तो ब्राह्मणी मरती है, और यह तो मेरे गुरु की स्त्री है।'' लाचार होकर अत मे राजा ने ब्राह्मणी से कहा, ''आप खुशी से जाइये। मै पर्वत का पक्ष लूँगा।'' ऐसा निश्चय कराकर पर्वत की माता घर आयी। प्रभात नारद, पर्वत और उसकी माता विवाद करते हुए राजा के पास आये। राजा अनजान होकर पूछने लगा–''पर्वत, क्या है ?'' पर्वत ने कहा, ''राजाधिराज। अज का अर्थ क्या है ? यह बताइये।'' राजा ने नारद से पूछा–''आप क्या कहते है ?'' नारद ने कहा–'' 'अज' अर्थात् तीन वर्ष के 'व्रीहि', आपको क्या याद नही है ?'' वसुराजा ने कहा– ''अज का अर्थ है बकरा, व्रीहि नही।'' उसी समय देवता ने उसे सिंहासन से उछालकर नीचे पटक दिया, वसु कालपरिणाम को प्राप्त हुआ।

इस पर से यह मुख्य बोध मिलता है कि हम सबको सत्य और राजा को सत्य एव न्याय दोनो ग्रहण करने योग्य है।

श्री जैन विद्यालय, कोलकाता

□ धीरज शुक्ला, १० ब

विनय से तत्त्व की सिद्धि है

राजगृही नगरी के राज्यासन पर जब श्रेणिक राजा विराजमान था तब उस नगरी मे एक चाडाल रहता था। एक बार उस चाडाल की स्त्री को गर्भ रहा तब उसे आम खाने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसने आम ला देने के लिये चाडाल से कहा। चाडाल ने कहा, ''यह आम का मौसम नही है, इसलिये मै निरुपाय हूँ, नही तो मै आम चाहे जितने ऊँचे स्थान पर हो वहाँ से अपनी विद्या के बल से लाकर तेरी इच्छा पूर्ण करूँ।'' चाडाली ने कहा, ''राजा की महारानी के बाग मे एक असमय मे आम देनेवाला आम्रवृक्ष है, उस पर अभी आम लचक रहे होगे, इसलिये वहाँ जाकर आम ले आओ।'' अपनी स्त्री की इच्छा पूरी करने के लिये चाडाल उस बाग मे गया। गुप्त रूप से आम्रवृक्ष के पास जाकर मन्त्र पढकर उसे झुकाया और आम तोड लिये। दूसरे मत्र से उसे जैसा का तैसा कर दिया। बाद मे वह घर आया और अपनी स्त्री की इच्छापूर्ति के लिये निरतर वह चाडाल विद्या के बल से वहाँ से आम लाने लगा। एक दिन फिरते-फिरते माली की दृष्टि आम्रवृक्ष की ओर गयी। आमो की चोरी हुई देखकर उसने जाकर श्रेणिक राजा के सामने नम्रतापूर्वक कहा। श्रेणिक की आज्ञा से अभयकुमार नाम के बुद्धिशाली मत्री ने युक्ति से उस चाडाल को खोज निकाला। चाडाल को अपने सामने बुलाकर पूछा, ''इतने सारे मनुष्य बाग मे रहते है, फिर भी तू किस तरह चढकर आम ले गया कि यह बात किसी के भाँपने मे भी न आयी ? सो कह।'' चाडाल ने कहा, ''आप मेरा अपराध क्षमा करे। मै सच कह देता हूँ कि मेरे पास एक विद्या है, उसके प्रभाव से मै उन आमो को ले सका।'' अभयकुमार ने कहा, ''मुझसे तो क्षमा नही दी जा सकती, परन्तु महाराजा श्रेणिक को तू यह विद्या दे तो उन्हे ऐसी विद्या लेने की अभिलाषा होने से तेरे उपकार के बदले मे मै अपराध क्षमा करा सकता हूँ।'' चाडाल ने वैसा करना स्वीकार किया। फिर अभयकुमार ने चाडाल को जहाँ श्रेणिक राजा सिंहासन पर बैठा था वहाँ लाकर सामने खडा रखा, और सारी बात राजा को कह सुनायी। इस बात को राजा ने स्वीकार किया। फिर चाडाल सामने खडे रहकर थरथराते पैरो से श्रेणिक को उस विद्या का बोध देने लगा, परतु वह बोध लगा नही। तुरन्त खडे होकर अभयकुमार बोले, ''महाराज! आपको यदि यह विद्या अवश्य सीखनी हो तो सामने आकर खडे रहे, और इसे सिंहासन दे।'' राजा ने विद्या लेने के लिये वैसा किया तो तत्काल विद्या सिद्ध हो गयी।

यह बात केवल बोध लेने के लिये है। एक चाडाल की भी विनय किये बिना श्रेणिक जैसे राजा को विद्या सिद्ध न हुई, तो इसमे से यह तत्त्व ग्रहण करना है कि, सद्विद्या को सिद्ध करने के लिये विनय करनी चाहिये। आत्मविद्या पाने के लिये यदि हम निर्ग्रथ गुरु की विनय करे तो कैसे मगलदायक हो।

विनय यह उत्तम वशीकरण है। भगवान ने उत्तराध्ययन मे विनय को धर्म का मूल कहकर वर्णित किया है। गुरु की, मुनि की, विद्वान की, माता-पिता की और अपने से वडो की विनय करनी यह अपनी उत्तमता का कारण है।

■

यत्ना

जैसे विवेक धर्म का मूल तत्त्व है, वैसे ही यत्ना धर्म का उपतत्त्व है। विवेक से धर्मतत्त्व को ग्रहण किया जाता है और यत्ना से वह तत्त्व शुद्ध रखा जा सकता है, उसके अनुसार आचरण किया जा सकता है। पॉच समितिरूप यत्ना तो बहुत श्रेष्ठ है, परतु गृहस्थाश्रमी से वह सर्व भाव से पाली नही जा सकती, फिर भी जितने भावाश मे पाली जा सके उतने भावाश मे भी असावधानी से वे पाल नही सकते। जिनेश्वर भगवान द्वारा बोधित स्थूल और सूक्ष्म दया के प्रति जहॉ बेपरवाही है वहॉ बहुत दोष से पाली जा सकती है। इसका कारण यत्ना की न्यूनता है। उतावली और वेगभरी चाल, पानी छानकर उसकी जीवानी रखने की अपूर्ण विधि, काष्ठादि ईधन का बिना झाडे, बिना देखे उपयोग, अनाज मे रहे हुए सूक्ष्म जन्तुओ की अपूर्ण देखभाल, पोछे-माँजे बिना रहने दिए हुए बरतन, अस्वच्छ रखे हुए कमरे, आँगन मे पानी का गिराना, जूठन का रख छोडना, पटरे के बिना खूब गरम थाली का नीचे रखना, इनसे अपने को अस्वच्छता, असुविधा, अनारोग्य इत्यादि फल मिलते है, और ये महापाप के कारण भी हो जाते है। इसलिये कहने का आशय यह है कि चलने मे, बैठने मे, उठने मे, जीमने मे और दूसरी प्रत्येक क्रिया मे यत्ना का उपयोग करना चाहिए। इससे द्रव्य एव भाव दोनो प्रकार से लाभ है। चाल धीमी और गभीर रखनी, घर स्वच्छ रखना, पानी विधिसहित छनवाना, काष्ठादि ईधन झाडकर डालना, ये कुछ हमारे लिये असुविधाजनक कार्य नही है और इनमे विशेष वक्त भी नही जाता। ऐसे नियम दाखिल कर देने के बाद पालने मुश्किल नही है। इनसे बिचारे असख्यात निरपराधी जन्तु वचते है।

प्रत्येक कार्य यत्नापूर्वक ही करना यह विवेकी श्रावक का कर्तव्य है।

सुदर्शन सेठ

प्राचीन काल मे शुद्ध एकपत्नी व्रत को पालने वाले असख्य पुरुष हो गये है, उनमे से सकट सहन करके प्रसिद्ध होनेवाला सुदर्शन नाम का एक सत्पुरुष भी है। वह धनाढ्य, सुन्दर मुखाकृतिवाला, कातिमान् और युवावस्था मे था। जिस नगर मे वह रहता था, उस नगर के राजदरबार के सामने से किसी कार्यप्रसग के कारण उसे निकलना पडा। वह जब वहॉ से निकला तब राजा की अभया नाम की रानी अपने आवास से झरोखे मे बैठी थी। वहॉ से सुदर्शन की ओर उसकी दृष्टि गयी। उसका उत्तम रूप और काया देखकर उसका मन ललचाया। एक अनुचरी को भेजकर कपट भाव से निर्मल कारण बताकर सुदर्शन को ऊपर बुलाया। अनेक प्रकार की बातचीत करने के बाद अभया ने सुदर्शन को भोग भोगने का आमत्रण दिया। सुदर्शन ने बहुत-सा उपदेश दिया तो भी उसका मन शात नही हुआ। आखिर तग आकर सुदर्शन ने युक्ति से कहा, "बहिन! मै पुरुषत्वहीन हूँ!" तो भी रानी ने अनेक प्रकार के हावभाव किये। परतु उन सारी कामचेष्टाओ से सुदर्शन विचलित नही हुआ, इससे तग आगर रानी ने उसे जाने दिया।

एक बार उस नगर मे उत्सव था, इसलिये नगर के बाहर नगरजन आनद से इधर-उधर घूमते थे। धूमधाम मची हुई थी। सुदर्शन सेठ के छ देवकुमार जैसे पुत्र भी वहॉ आये थे। अभया रानी कपिला नाम की दासी के साथ ठाठवाट से वहॉ आयी थी। सुदर्शन के देवपुतले जैसे छ पुत्र उसके देखने मे आये। उसने कपिला से पूछा, "ऐसे रम्य पुत्र किसके है?" कपिला ने सुदर्शन सेठ का नाम लिया। यह नाम सुनते ही रानी की छाती मे मानो कटार भोकी गयी, उसे घातक चोट लगी। सारी धूमधाम बीत जाने के बाद माया-कथन गढकर अभया और उसकी दासी ने मिलकर राजा से कहा—"'आप मानते होगे कि मेरे राज्य मे न्याय और नीति का प्रवर्तन है, दुर्जनो से मेरी प्रजा दु खी नही है, परन्तु यह सब मिथ्या है। अत पुर मे भी दुर्जन प्रवेश करे यहाँ तक अभी अधेर है। तो फिर दूसरे स्थानो के लिये तो पूछना ही क्या? आपके नगर के सुदर्शन नाम के सेठ ने मुझे भोग का आमत्रण दिया, न कहने योग्य कथन मुझे सुनने पडे, परतु मैने उसका तिरस्कार किया। इससे विशेष अधेर कौन सा कहा जाय!" राजा मूलत कान के कच्चे होते है, यह बात तो यद्यपि सर्वमान्य ही है, उसमे फिर स्त्री के मायावी मधुर वचन क्या असर नही करेगे? तत्ते तेल मे ठडे जल जैसे वचनो से राजा क्रोधायमान हुआ। उसने सुदर्शन को शूली पर चढा देने की तत्काल आज्ञा कर दी, और तदनुसार सब कुछ हो भी गया। मात्र सुदर्शन के शूली पर चढने की देर थी।

चाहे जो हो परतु सृष्टि के दिव्य भडार मे उजाला है। सत्य का प्रभाव ढका नही रहता। सुदर्शन को शूली पर बिठाया कि शूली मिट कर जगमगाता हुआ सोने का सिंहासन हो गया, और देवदुदुभि का नाद हुआ, सर्वत्र आनद छा गया। सुदर्शन का सत्य शील विश्वमडल मे झलक उठा। सत्य शील की सदा जय है। शील और सुदर्शन की उत्तम दृढता ये दोनो आत्मा को पवित्र श्रेणि पर चढाते है। ■

❒ *Salkat Ghosh*

Communication & Computer

As we know human being has three basic needs - Food, Clothing and Shelter But at this starting of twenty first century we can easily add one more need to the list of basic needs It is communication Can you imagine that you are alone in an island with all other facilities excepting communications? Yes! It is really tough to imagine even Communication is an inevitable part of our life now

The process of communication started on that very day when human being discovered how to talk Then they discovered how to write and started communicating with others by talking and writing Probably the Post system was the first way of distant communication and gradually we have invented Telegraph, Telephone, Fax and other tools But we are not quite satisfied We have a tendency to extend our abilities Like to extend the ability of eyes we have invented television, to extend our hearing ability we have invented telephones As a continuation of this process now we have started using computers in communication

Internet is the part of computer technology, which helps us to communicate with people It is basically a network of computers like cable TV or telephone network Here we can connect one computer to another without any real connection and this virtual network has opened a new way to communicate people This Internet technology offers a service named E-mail It allows sending letters to a virtual mailbox and the person to whom the letter being sent can read from any part of the world and at anytime It is like someone is opening mailbox from anywhere and reading the letters in it And this most efficient service costs a maximum of Rs 2 only for sending or receiving single message Just imagine you are sending a message to your friend at London at cost of Rs 2 with the help of this cheapest and fastest mailing service Another service available on Internet is Chat Although people misuse it for gossiping but it is really another useful way of communication In chat there is a concept of room Like in a room we can talk to any person as well as hear anyone present in that room talking In chat room also we can send some words and get the replies from others present in that room immediately So it is something like talking by writing Just think how amazing it is to talk to five persons seating in five different countries at a local telephone call charge And now this chat service even allows you to talk to others through a microphone connected with computer

All these are the means of communicating people directly But communication is something more It is sharing thoughts, ideas or touching ones heart That is why medias are so important these days Print media deals with printing matters like some text or images We can see the print media applications in books, magazines, brochures, hording and write-ups and elsewhere Audio-Visual media deals with audio or visual or a combination of both Like Radio and TV programmes, cassettes, films are audio-visual applications All these media based applications touche our mind more effectively And computer is an essential part of making of these applications

Now another media is entering our life 'On-screen media', we can say it multimedia also Here elements or applications are produced in computer and demonstrated in computer Presentations, Slide shows, Animations, Movies, Sounds are the elements of this media The most important feature of this media is interactivity In real world most of the things are interactive, living things react whenever some action takes place and even a push button comes to depressed status while pressing it This way onscreen media lets you feel the real world experience with its interactive nature Industries and organisations are using it for training employees, campaigning for its' newer products or displaying important things in business meetings, Institutions are using it as assistance to the teacher, explaining lessons And lot more Days are coming when a man can learn a lot by seating in front of a computer communicating in an interactive manner

But how all these new technologies can help in education field? In several ways Internet can help a teacher to gather knowledge about worldwide advancement on any topic Web pages of star universities contain a lot of information Teachers as well as students can get help from a research organisation or a scholar person by contacting through

e-mails A student can find the solution of his problems by talking to the teacher through chat and so on

Educational institution may include multimedia as a tool for teaching It would be very easy for a teacher to explain and a student to understand the complicated topics like planetary motion or the blood circulation through human body Topics like Interactive nature of plants would be much more easy to understand for a student who never experienced this in practical life Developed countries have already incorporated multimedia as a way of education In our country also some organisations have started to facilitate this advantage but yet we have to go a long way ahead

Few days before, I was talking to one of my friend My friend is basically a confused guy I was asking him to reach particular address and giving him the root direction I told him "from here to go straight, take a left turn, then again turning right you will see a white building Besides that building there is a narrow lane Enter that lane and again turn right" He stopped me and told very clearly that he would not be able to reach there Then I have drawn the root map in a piece of white paper and my friend got the location easily The computer technology is also like this root map that helps you to make yourself much more communicable and acceptable to others

Centre Manager Scope
Shree Jain Vidyalaya

श्वेता पारख, सप्तम् स

☐ लक्ष्मीशकर मिश्र

अमरता का भार

आचार्य नागार्जुन चिरायु नामक राजा के मत्री, मित्र, राजवैद्य, आयुर्वेदज्ञ, रसायन शास्त्र और विख्यात अनुसधानकर्ता थे। उनका एक पुत्र था। अचानक एक दिन वह बीमार पडा और कुछ ही दिनो मे अपने पिता के उपचार के बावजूद उसकी मृत्यु हो गयी। नागार्जुन बहुत दुखी हुए और सोचने लगे कि अपने उपचार से कितनो को मैने बचाया, किन्तु एक साधारण रोग से अपने पुत्र को न बचा सका और अतत वह धरती से उठ गया। मेरा समस्त आयुर्वेद, रसायन शास्त्र, अनुसधान, जडी बूटी, पद, सत्ता की निकटता, नाम, यश आदि सभी व्यर्थ है। दुख के भार को ढोते-ढोते व चिन्तन करते-करते उन्होने मृत्यु पर विजय पाने का सकल्प लिया और अमृत निर्माण करने की ठानी।

उनके इस सकल्प और धरती पर अमृत निर्माण के प्रण का समाचार सुनकर राजा चिरायु बडा आनन्दित हुआ। राजा ने अपने मित्र के घर जाकर उनका उत्साहवर्धन किया और बोला कि इस अन्वेषण मे जो भी व्यय भार आयेगा, जो परेशानी होगी, जो प्रबध होगा, उन सबका दायित्व राज्य की ओर से उठा लिया जायेगा। राजा की कृपा से विह्वल होकर नागार्जुन ने तत्क्षण वही घोषणा की कि मेरे द्वारा जो अमृत की खोज की जायेगी, उसके प्रथम उपयोगकर्ता राजा चिरायु ही होगे और मेरे द्वारा निर्मित अमृत की पहली धार का पान मेरे मित्र नृप चिरायु ही करेगे।

अमृत-अन्वेषण व निर्माण कार्य प्रारम्भ हो गया। अनुसधान कार्य के समस्त प्रबध को राज्य ने सुव्यवस्थित कर दिया। तत्कालीन अनेक राजवैद्यो, रसायन शास्त्रियो, आयुर्वेदज्ञो व अन्वेषको ने आचार्य नागार्जुन को समझाया कि ''आप अपने इस प्रण को विस्मृत कर दे और इस अन्वेषण कार्य को रोक दे। मृत्यु लोक मे अमृत का निर्माण हो ही नही सकता। यह व्यर्थ का उन्माद है। इस व्यर्थ के कार्यभार से स्वय को मुक्त कर जो सम्भाव्य नर-कल्याण हेत अनुसधान है, उसमे लगे। मृगतृष्णा के पीछे दौडना सिर्फ थकना ही होता है।'' तत्कालीन अनेक राजाओ ने राजा चिरायु को भी चेताया कि ''राज्य कोष का आप दुरुपयोग न करे और एक उन्मादी, प्रतापी, पागल व पुत्र शोक से अर्धविक्षिप्त राजवैद्य की मिथ्या कल्पना की उडान मे प्रजा के गाढे पैसो को यू न बहाये। मृत्यु लोक मे अमृत उत्पन्न हो ही नही सकता, यह आप निश्चित समझे। क्योंकि अपने विवेक को एक कल्पनाजीवी राजवैद्य के पास गिरवी रखकर आप मूर्ख बन रहे है?''

किन्तु अनुसधान कार्य शुरू हुआ और चलता रहा। कोई चेतावनी, बाधा या परेशानी न आचार्य नागार्जुन को डिगा सकी और न किसी व्यवधान व बहकावे से राजा चिरायु ही विचलित हुए। कोई नौ वर्ष के गहन अन्वेषण व कठिन श्रम के बाद आचार्य नागार्जुन एक ऐसे रस की खोज व निर्माण करने मे सफल हो गये, जो किसी भी जीव को न केवल चिरायु, बल्कि अमर तक करने मे सफल सिद्ध होता। इसके लिए किसी भी जीवित प्राणी को एक-एक वर्ष के अन्तराल पर लगातार तीन वर्ष तक इस रस का केवल एक-एक बार सेवन करना पडता। यह रस जब अनुभूत व परीक्षित हुआ तथा प्रयोग मे सफल उतरा, तो राजा चिरायु को सूचना दी गयी। इस सुसवाद को सुनकर राजा चिरायु ने आचार्य को छाती से लगा लिया और इसके अगले ही दिन प्रात काल राजा चिरायु को आचार्य नागार्जुन ने अपने हाथ से इस अद्भुत रस की पहली खुराक का पान कराया।

दिन बीतते गये। कालातर मे राजा चिरायु ने अपने पुत्र को युवराज बना दिया। युवराज प्रसन्नता से अपनी पत्नी के पास पहुँचा और बोला, ''प्रिये एक शुभ समाचार है। पिताजी ने मुझे युवराज घोषित किया है।''

पति के भोलेपन पर पत्नी हस पडी। बोली, ''प्रिय, तुम बहुत भोले हो। क्या तुम सोचते हो कि युवराज बनने के बाद तुम कभी सिंहासन पर बैठ पाओगे। ऐसा कभी नही हो सकेगा।''

''क्या?''

''इसलिए कि तुम्हारे पिता, आचार्य नागार्जुन द्वारा निर्मित रस का पान कर अमर होने वाले है। वे इस रस की दो खुराक पी भी

चुके है, सिर्फ एक खुराक और पीनी है। अगले वर्ष उसे भी पीकर वे अमर हो जायेंगे। वे कभी सिहासन खाली नही करेंगे।''

''फिर। क्या कोई उपाय नही ?''

पत्नी ने कुछ क्षण विचार करने के बाद कहा, ''हाँ, एक उपाय है।''

फिर उसने पति को बताया कि वह बिना एक क्षण विलम्ब किये, बिना कोई घडी गवाये औचक आचार्य नागार्जुन को गायब करवा दे और उनके रस को तहस-नहस कर दे। यह कार्य इतनी तेजी से करना होगा कि राजा को कुछ पता भी न लगे, उन्हे आप पर सदेह भी न हो और वे इस अद्भुत रस की तीसरी खुराक पी भी न सके। अन्यथा एक राजा के अमर हो जाने के बाद राज्य परम्परा ही समाप्त हो जायेगी।

इस बातचीत के ठीक अगले माह युवराज ने पत्नी की सलाह के अनुसार अपने कुछ विश्वस्त साथियो, ससुराल के सबधियो व अपने कुछ विशेष अनुचरो के सहयोग से छल प्रपच का सहारा लेकर, गुपचुप ही, अचानक आचार्य नागार्जुन को गायब करा दिया और उस अद्भुत रस के निर्माण प्रबध को तहस-नहस कर दिया। इसी क्रम मे उसने तैयार रस से भरी एक छोटी शीशी को भी नष्ट कर दिया और आचार्य को अपने ससुराल राज्य की एक अनाम कोठरी मे बद करवा दिया। इस कार्य मे युवराज को अपने ससुराल पक्ष से तो सहायता मिली ही, कुछ अन्य राजाओ व दो चार राज्यवैद्यो की भी मदद प्राप्त हुई।

राजा चिरायु इस समाचार को सुनकर शोक से मूर्छित हो गये। उन्हे अपने परम प्रिय मित्र से अलग रहना असह्य जान पडा और उन्होने आचार्य नागार्जुन का पता लगाने के अनेक उपाय किये। निर्माण प्रबध के तहस-नहस का सवाद सुनकर राजा को इस षडयत्र मे किसी शत्रु नृप का हाथ जान पडा। भूलकर भी उनके मस्तिष्क मे इस काड मे अपने हृदय प्रिय राजकुमार का हाथ होने का विचार नही आया। वे पीडा से छटपटाते रहे और आचार्य के पता लगाने के सभी उपायो पर राजकुमार से विचार-विमर्श करते रहे। परन्तु कोई सफलता नही मिली। अतत आचार्य नागार्जुन का पता लगाने का बीडा उन्होंने अपने प्रिय राजकुमार को सौप दिया। किन्तु क्या यह सभव था कि जिस राजकुमार ने स्वय आचार्य को गायब करवा कर दूर देश की एक अनाम कोठरी मे कैद करवाया हो वही उन्हे मुक्त कर राजा के समक्ष उपस्थित कर देता।

दिन बीत गये। कालातर मे राजा चिरायु काल के ग्रास बने और युवराज राजा बना। सब कुछ वैसे ही चलता रहा। नया राजा भी अपने पिता राजा चिरायु की भाति ही प्रजा मे लोकप्रिय हुआ। किन्तु आचार्य नागार्जुन को कैद की कोठरी से मुक्ति नही मिली। उनकी सुख-सुविधा की सारी व्यवस्था थी, परन्तु प्रजा से उन्हे दूर रखा जाता था।

राज करते-करते जब नये राजा को दशक बीत गये, तो एक दिन उनकी रानी (पत्नी) ने अपने पति से आचार्य नागार्जुन के बार मे पूछा और उनका हालचाल जाना। बाद मे रानी ने अपने पति को सलाह दी कि वह आचार्य को यहाँ बुला ले और पुन उस अद्भुत रस के निर्माण प्रबध की राज्य द्वारा व्यवस्था करवा कर उसकी तीनो खुराक पीकर अमर हो जाये।

रानी की इस सलाह को सुनकर राजा मूक हो गया, फिर घडी भर गम्भीर बना रहा और अत मे इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इस सदर्भ मे रानी के बार-बार के आग्रह को भी उसने ठुकरा दिया और कहा, ''प्रिये, अमरता भी एक प्रकार का भार ही है। यह भार भी उठाये नही उठेगा। अभी की प्रिय सततिया भी तब स्नेह, श्रद्धा व लालित्य भूलकर रुक्ष हो जायेगी और कुटुम्बी जनो को ही नही, माता व पिता को भी भार समझने लगेगी। मृत्यु भला करती है कि वह धरती के लोगो मे प्रेम बनाये रखती है। स्मृति व सस्मरणो की दुनिया को सजीव रखती है और बिछडने के दु ख की कल्पना से मिलन को मीठा किये रखती है। यह तो अच्छा हुआ कि पृथ्वी पर न तो अमृत की पैदाइश सम्भव है और न ही ईश्वर ने मनुष्य को कोई ऐसी मेधा दी है, जो अमरता का वर्चस्व कामय रखे। मेरी समझ से तो आचार्य को भी अपनी स्वाभाविक मृत्यु से मरना चाहिए और ऐसा कोई अन्वेषण भी इस धरती के लिए कल्याणकारी नही होगा, जो अमरता को सबल दे। अमरता का भार जीवन के भार से दुर्वह सिद्ध होगा। अतएव अच्छा है कि मनुष्य स्वाभाविक जीवन जीये और स्वाभाविक मृत्यु मरे।''

■

विद्युत खण्ड

मंगल मंत्र णमोकार

Devnagari Script

णमो अरिहंताणं

णमो सिद्धाणं

णमो आयरियाण

णमो उवज्झायाण

णमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पच णमुक्कारो, सव्व पाव पणासणो

मगलाणं च सव्वेसि, पढम हवइ मगल

English Script

NAMO ARIHANTANAM

NAMO SIDDHANAM

NAMO AYARIYANAM

NAMO UVAJJHAYANAM

NAMO LOE SAVVASAHUNAM

ESO PANCH NAMUKKARO, SAVVA PAVA PANASANO

MANGALANAM CH SAVVESIM, PADHAMAM HAVAI MANGALAM

English Translation

Homages to Arihantas (Saviours)

Homages to Siddhas
(Liberated souls, From the Cycle of Birth-death and rebirth)

Homages to Acharyas (Chief of the Cults)

Homages to Upadhyayas (Preceptors)

Homages to all monks

Homages being paid to these five `Parmesthis' (Great Personalities), Destroy all the sins

Among all Mangalas (Holy Hymns), It is fundamental and most holy hymn

Those, who recite it regularly, achieve every sort of welfare

□ डॉ० नेमिचन्द शास्त्री

मंगलमंत्र णमोकार : एक चिन्तन

यो तो इस महामन्त्र का प्रचार सर्वत्र है, समाज का बच्चा-बच्चा इसे कण्ठस्थ किये हुए है, किन्तु इसके प्रति दृढ विश्वास और अटूट श्रद्धा कम ही व्यक्तियो की है। यदि सच्ची श्रद्धा के साथ इसका प्रयोग किया जाये तो सभी प्रकार के कठिन कार्य भी सुसाध्य हो सकते है। एक बार की मै अपनी निजी घटना का भी उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ। घटना मेरे विद्यार्थी जीवन की है। मै उन दिनो वाराणसी मे अध्ययन करता था। एक बार ग्रीष्मावकाश मे मुझे अपनी मौसी के गॉव जाना पडा। वहॉ एक व्यक्ति को बिच्छू ने डॅस लिया। बिच्छू विषैला था, अत उस व्यक्ति को भयकर वेदना हुई। कई मान्त्रिको ने उस व्यक्ति के बिच्छू के विष को मन्त्र द्वारा उतारा, पर्याप्त झाड-फूॅक की गयी, पर वह विष उतरा नही। मेरे पास भी उस व्यक्ति को लाया गया और लोगो ने कहा–''आप काशी मे रहते है, अवश्य मन्त्र जानते होगे, कृपया इस बिच्छू के विष को उतार दीजिए।'' मैने अपनी लाचारी अनेक प्रकार से प्रकट की पर मेरे ज्योतिषी होने के कारण लोगो को मेरी अन्य विषयक अज्ञानता पर विश्वास नही हुआ और सभी लोग विच्छू का विष उतार देने के लिए सिर हो गये। मेरे मौसाजी ने भी अधिकार के स्वर मे आदेश दिया। अव लाचार हो णमोकार मन्त्र का स्मरण कर मुझे ओझागिरी करनी पडी। नीम की एक टहनी मॅगवायी गयी और इक्कीस वार णमोकार मन्त्र पढकर विच्छू को झाडा। मन मे अटूट विश्वास था कि विष अवश्य उतर जायेगा। आश्चर्यजनक चमत्कार यह हुआ कि इस महामन्त्र के प्रभाव से बिच्छू का विष बिल्कुल उतर गया। व्यथा-पीडित व्यक्ति हँसने लगा और बोला–''आपने इतनी देरी झाडने मे क्यो की। क्या मुझसे किसी जन्म का वैर था? मान्त्रिक को मन्त्र को छिपाना नही चाहिए।'' अन्य उपस्थित व्यक्ति भी प्रशसा के स्वर मे विलम्व करने के कारण उलाहना देने लगे। मेरी प्रशसा की गन्ध सारे गाँव मे फैल गयी। भगवती भागीरथी से प्रक्षालित वाराणसी का प्रभाव भी लोग स्मरण करने लगे तथा तरह-तरह की मनगढन्त कथाएँ कहकर कई महानुभाव अपने ज्ञान की गरिमा प्रकट करने लगे। मेरे दर्शन के लिये लोगो की भीड लग गयी तथा अनेक तरह के प्रश्न मुझसे पूछने लगे। मै भी णमोकार मन्त्र का आशातीत फल देखकर आश्चर्यचकित था। यो तो जीवन-देहली पर कदम रखते ही णमोकार मन्त्र कण्ठस्थ कर लिया था, पर यह पहला दिन था, जिस दिन इस महामन्त्र का चमत्कार प्रत्यक्ष गोचर हुआ। अत इस सत्य से कोई भी आस्तिक व्यक्ति इनकार नही कर सकता है कि णमोकार मन्त्र मे अपूर्व प्रभाव है। इसी कारण कवि दौलत ने कहा है

''प्रात काल मन्त्र जपो णमोकार भाई ।
अक्षर पैंतीस शुद्ध हृदय मे धराई ।।
नर भव तेरो सुफल होत पातक टर जाई ।
विघन जासो दूर हो सकट मे सहाई ।।१ ।।
कल्पवृक्ष कामधेनु चिन्तामणि जाई ।
ऋद्धि सिद्धि पारस तेरो प्रकटाई ।।२ ।।
मन्त्र जन्त्र तन्त्र सब जाही से बनाई ।
सम्पति भण्डार भरे अक्षय निधि आई ।।३ ।।
तीन लोक माहि, सार वेदन मे गाई ।
जग मे प्रसिद्ध धन्य मगलीक भाई ।।४।।''

मन्त्र शब्द 'मन्' धातु (दिवादि ज्ञाने) से ष्ट्रन् (त्र) प्रत्यय लगाकर बनाया जाता है, इसका व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ होता है, 'मन्यते ज्ञायते आत्मादेशोऽनेन इति मन्त्र ' अर्थात् जिसके द्वारा आत्मा का आदेश – निजानुभव जाना जाये, वह मन्त्र है। दूसरी तरह से तनादिगणीय मन् धातु से (तनादि अवबोधे) ष्ट्रन प्रत्यय लगाकर मन्त्र शब्द बनता है, इसकी व्युत्पत्ति के अनुसार– 'मन्यते विचार्यते आत्मादेशो येन स मन्त्र ' अर्थात् जिसके द्वारा आत्मादेश पर विचार किया जाये, वह मन्त्र है। तीसरे प्रकार से सम्मानार्थक मन धातु से 'ष्ट्रन' प्रत्यय करने पर मन्त्र शब्द बनता है। इसका व्युत्पत्ति-अर्थ है– *'मन्यन्ते सत्क्रियन्ते परमपदे स्थिता आत्मान वा यक्षादिशासनदेवता अनेन इति मन्त्र '* अर्थात् जिसके द्वारा परमपद मे

स्थित पच उच्च आत्माओ का अथवा यक्षादि शासन देवो का सत्कार किया जाये, वह मन्त्र है। इन तीनो व्युत्पत्तियो के द्वारा मन्त्र शब्द का अर्थ अवगत किया जा सकता है। णमोकार मन्त्र–यह नमस्कार मन्त्र है, इसमे समस्त पाप, मल और दुष्कर्मो को भस्म करने की शक्ति है। बात यह है कि णमोकार मन्त्र मे उच्चरित ध्वनियो से आत्मा मे धन और ऋणात्मक दोनो प्रकार की विद्युत् शक्तियॉ उत्पन्न होती है, जिससे कर्मकलक भस्म हो जाता है। यही कारण है कि तीर्थकर भगवान भी विरक्त होते समय सर्वप्रथम इसी महामन्त्र का उच्चारण करते है तथा वैराग्यभाव की वृद्धि के लिए आये हुए लोकान्तिक देव भी इसी महामन्त्र का उच्चारण करते है। यह अनादि मन्त्र है, प्रत्येक तीर्थकर के कल्पकाल मे इसका अस्तित्व रहता है। कालदोष से लुप्त हो जाने पर अन्य लोगो को तीर्थकर की दिव्यध्वनि-द्वारा यह अवगत हो जाता है।

इस अनुचिन्तन मे यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि णमोकार मन्त्र ही समस्त द्वादशाग जिनवाणी का सार है, इसमे समस्त श्रुतज्ञान की अक्षर सख्या निहित है। जैन दर्शन के तत्त्व, पदार्थ, द्रव्य, गुण, पर्याय, नय, निक्षेप, आस्रव, बन्ध आदि इस मन्त्र मे विद्यमान है। समस्त मन्त्रशास्त्र की उत्पत्ति इसी महामन्त्र से हुई है। समस्त मन्त्रो की मूलभूत मातृकाएँ इस महामन्त्र मे निम्नप्रकार वर्तमान है। मन्त्र पाठ

> *"णमो अरिहताण, णमो सिद्धाण, णमो आइरियाण ।*
> *णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्व-साहूण ।।"*

विश्लेषण

ण् + अ + म् + ओ + अ + र् + इ + ह् + अ + त् + आ + ण् + अ + ण् + अ + म् + ओ + स् + इ + द् + ध् + आ + ण् + अ + ण् + अ + म् + ओ + आ + इ + र् + इ + य् + आ + ण् + अ + ण् + अ + म् + ओ + उ + व् + अ + ज् + झ् + आ + य् + आ + ण् + अ + ण् + अ + म् + ओ + ल् + ओ + ल् + ओ + ए + स् + अ + व् + व् + अ + स् + आ + ह् + ऊ + ण् + अ ।

इस विश्लेषण मे से स्वरो को पृथक् किया तो–

अ + <u>ओ</u> + अ + <u>इ</u> + <u>अ</u> + आ ± अ + अ + <u>ओ</u> + इ + अ + अ + अ +

ओ + आ + इ + इ + अ + अ+ अ + ओ + <u>उ</u> + अ + आ
(ऐ) (ई) (ओ)

+ आ + अ + अ + ओ + ओ + ए + अ + अ + आ + ऊ
(अ + अ।)

पुनरुक्त स्वरो को निकाल देने के पश्चात् रेखाकित स्वरो को ग्रहण किया तो–

अ आ इ ई उ ऊ (र्) ऋ ॠ (ल) ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अ अ ।

व्यजन–

ण् + म् + र् + ह् + त् + ण् + ण् + म् + स् + द् + ध् + ण् + ण् + म् + य् + ण् + ण् + म् + व् + ज् + <u>श्</u> + य् + ण् + ण् + म् + ल् + स् + व् + व् + स् + ह + ण् ।
(घ)

पुनरुक्त व्यजनो के निकाल देने के पश्चात्–

ण + म् + र् + ह् + ध् + स् + य् + र + ल् + व् + ज् + घ + ह् ।

ध्वनिसिद्धान्त के आधार पर वर्गाक्षर वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। अत घ् = कवर्ग, झ् = चवर्ग, ण् = टवर्ग, ध् = तवर्ग, म् = पवर्ग, य र ल व, स् = श ष स, ह् ।

अत इस महामन्त्र की समस्त मातृका ध्वनियाँ निम्न प्रकार हुई।

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अ अ क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज् झ् ञ् ट् ठ् ड् ढ् ण् त् थ् द् ध् न् प् फ् ब् भ् म् य् र् ल् व् श् ष् स् ह्

उपर्युक्त ध्वनियॉ ही मातृका कहलाती है। जयसेन प्रतिष्ठापाठ मे बतलाया गया है

> *"अकारादिक्षकारान्ता वर्णा प्रोक्तास्तु मातृका ।*
> *सृष्टिन्यास-स्थितिन्यास-सहतिन्यासतस्त्रिधा ।।३७६ ।।"*

– अकार से लेकर क्षकार (क् + ष् + अ) पर्यन्त मातृकावर्ण कहलाते है। इनका तीन प्रकार का क्रम है – सृष्टिक्रम, स्थितिक्रम और सहारक्रम।

णमोकार मन्त्र मे मातृका ध्वनियो का तीनो प्रकार का क्रम सन्निविष्ट है। इसी कारण यह मन्त्र आत्मकल्याण के साथ लौकिक अभ्युदयो को देनेवाला है। अष्टकर्मो के विनाश करने की भूमिका इसी मन्त्र के द्वारा उत्पन्न की जा सकती है। सहारक्रम कर्मविनाश को प्रकट करता है तथा सृष्टिक्रम और स्थितिक्रम आत्मानुभूति के साथ लौकिक अभ्युदयो की प्राप्ति मे भी सहायक है। इस मन्त्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इसमे मातृका-ध्वनियो का तीनो प्रकार का क्रम सन्निहित है, इसलिए इस मन्त्र से मारण, मोहन और उच्चाटन तीनो प्रकार के मन्त्रो की उत्पत्ति हुई है। बीजाक्षरो की निष्पत्ति के सम्बन्ध मे बताया गया है

> *"हलो बीजानि चोक्तानि स्वरा शक्तय ईरिता "* ।।३७७।।

– ककार से लेकर हकार पर्यन्त व्यजन बीजसज्ञक है और अकारादि स्वर शक्तिरूप है। मन्त्रबीजो की निष्पत्ति बीज और शक्ति के सयोग से होती है।

सारस्वतबीज, मायाबीज, शुभनेश्वरीबीज, पृथिवीबीज, अग्नि बीज, प्रणवबीज, मारुतबीज, जलबीज, आकाशबीज आदि की उत्पत्ति उक्त हल् और अचो के सयोग से हुई है। यो तो बीजाक्षरो का अर्थ बीजकोश एव बीज व्याकरण द्वारा ही ज्ञात किया जाता है, परन्तु यहॉ पर सामान्य जानकारी के लिए ध्वनियो की शक्ति पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

अ = अव्यय, व्यापक, आत्मा के एकत्व का सूचक, शुद्ध-बुद्ध ज्ञानरूप, शक्तिद्योतक, प्रणव बीज का जनक।

आ = अव्यय, शक्ति और बुद्धि का परिचायक, सारस्वतबीज का जनक, मायाबीज के साथ कीर्ति, धन और आशा का पूरक।

इ = गत्यर्थक, लक्ष्मी-प्राप्ति का साधक, कोमल कार्यसाधक, कठोर कर्मो का बाधक, वह्निबीज का जनक।

ई = अमृतबीज का मूल, कार्यसाधक, अल्पशक्तिद्योतक, ज्ञानवर्द्धक, स्तम्भक, मोहक, जृम्भक।

उ = उच्चाटन बीजो का मूल, अद्भुत शक्तिशाली, श्वासनलिका द्वारा जोर का धक्का देने पर मारक।

ऊ = उच्चाटक और मोहक बीजो का मूल, विशेष शक्ति का परिचायक, कार्यध्वस के लिए शक्तिदायक।

ऋ = ऋद्धिबीज, सिद्धिदायक, शुभ कार्यसम्बन्धी बीजो का मूल, कार्यसिद्धि का सूचक।

लृ = सत्य का सचारक, वाणी का ध्वसक, लक्ष्मीबीज की उत्पत्ति का कारण, आत्मसिद्धि मे कारण।

ए = निश्चल, पूर्ण, गतिसूचक, अरिष्ट निवारण बीजो का जनक, पोषक और सवर्द्धक।

ऐ = उदात्त, उच्चस्वर का प्रयोग करने पर वशीकरण बीजो का जनक, पोषक और सवर्द्धक। जलबीज की उत्पत्ति का कारण, सिद्धप्रद कार्यो का उत्पादकबीज, शासन देवताओ का आह्वान करने मे सहायक, क्लिष्ट और कठोर कार्यो के लिए प्रयुक्त बीजो का मूल, ऋण विद्युत् का उत्पादक।

ओ = अनुदात्त, निम्न स्वर की अवस्था मे मायाबीज का उत्पादक, लक्ष्मी और श्री का पोषक, उदात्त, उच्च स्वर की अवस्था मे कठोर कार्यो का उत्पादक बीज, कार्यसाधक, निर्जरा का हेतु, रमणीय पदार्थो की प्राप्ति के लिए प्रयुक्त होनेवाले बीजो मे अग्रणी, अनुस्वारान्त बीजो का सहयोगी।

औ = मारण और उच्चाटन सम्वन्धी वीजो मे प्रधान, शीघ्र कार्यसाधक, निरपेक्षी, अनेक वीजो का मूल।

अ = स्वतन्त्र शक्तिरहित, कर्माभाव के लिए प्रयुक्त ध्यानमन्त्रो मे प्रमुख, शून्य या अभाव का सूचक, आकाश बीजो का जनक, अनेक मृदुल शक्तियो का उद्घाटक, लक्ष्मी बीजो का मूल।

अ = शान्तिबीजो मे प्रधान, निरपेक्षावस्था मे कार्य असाधक, सहयोगी का अपेक्षक।

क = शक्तिबीज, प्रभावशाली, सुखोत्पादक, सन्तानप्राप्ति की कामना का पूरक, कामबीज का जनक।

ख = आकाशबीज, अभावकार्यो की सिद्धि के लिए कल्पवृक्ष, उच्चाटन बीजो का जनक।

ग = पृथक् करनेवाले कार्यो का साधक, प्रणव और माया वीज के साथ कार्य सहायक।

घ = स्तम्भक बीज, स्तम्भन कार्यो का साधक, विघ्नविघातक, मारण और मोहक बीजो का जनक।

ड = शत्रु का विध्वसक, स्वर मातृका बीजो के सहयोगानुसार फलोत्पादक, विध्वसक बीज जनक।

च = अगहीन, खण्डशक्ति द्योतक, स्वरमातृकाबीजो के अनुसार फलोत्पादक, उच्चाटन बीज का जनक।

छ = छाया सूचक, माया बीज का सहयोगी, बन्धनकारक, आपबीज का जनक, शक्ति का विध्वसक, पर मृदु कार्यो का साधक।

ज = नूतन कार्यो का साधक, शक्ति का वर्द्धक, आधि-व्याधि का शामक, आकर्षक बीजो का जनक।

झ = रेफयुक्त होने पर कार्यसाधक, आधि-व्याधि विनाशक, शक्ति का सचारक, श्रीबीजो का जनक।

ञ = स्तम्भक और मोहक बीजो का जनक, कार्यसाधक, साधन का अवरोधक, माया बीज का जनक।

ट = वह्निबीज, आग्नेय कार्यो का प्रसारक और निस्तारक, अग्नितत्व युक्त, विध्वसक कार्यो का साधक।

ठ = अशुभ सूचक बीजो का जनक, क्लिष्ट और कठोर कार्यो का साधक, मृदुल कार्यो का विनाशक, रोदन-कर्ता, अशान्ति का जनक, सापेक्ष होने पर द्विगुणित शक्ति का विकासक, वह्निबीज।

ड = शासन देवताओ की शक्ति का प्रस्फोटक, निकृष्ट कार्यो की सिद्धि के लिए अमोघ, सयोग से पचतत्वरूप बीजो का जनक, निकृष्ट आचार-विचार द्वारा साफल्योत्पादक, अचेतन क्रिया साधन।

ढ = निश्चल, मायाबीज का जनक, मारण बीजो मे प्रधान, शान्ति का विरोधी, शक्तिवर्धक।

ण = शान्ति सूचक, आकाश बीजो मे प्रधान, ध्वसक वीजो का जनक, शक्ति का स्फोटक।

त = आकर्षकबीज, शक्ति का आविष्कारक, कार्यसाधक, सारस्वतबीज के साथ सर्वसिद्धिदायक।

थ = मगलसाधक, लक्ष्मीबीज का सहयोगी, स्वरमातृकाओ के साथ मिलने पर मोहक।

द = कर्मनाश के लिए प्रधान बीज, आत्मशक्ति का प्रस्फोटक, वशीकरण बीजो का जनक।

ध = श्री और क्ली बीजो का सहायक, सहयोगी के समान फलदाता, माया बीजो का जनक।

न = आत्मसिद्धि का सूचक, जलतत्त्व का स्रष्टा, मृदुतर कार्यो का साधक, हितैषी, आत्मनियन्ता।

प = परमात्मा का दर्शक, जलतत्व के प्राधान्य से युक्त, समस्त कार्यो की सिद्धि के लिए ग्राह्य।

फ = वायु और जलतत्व युक्त, महत्वपूर्ण कार्यो की सिद्धि के लिए ग्राह्य, स्वर और रेफ युक्त होने पर विध्वसक, विघ्नविघातक, 'फट्' की ध्वनि से युक्त होने पर उच्चाटक, कठोरकार्यसाधक।

ब = अनुस्वार युक्त होने पर समस्त प्रकार के विघ्नो का विघातक और निरोधक, सिद्धि का सूचक।

भ = साधक, विशेषत मारण और उच्चाटन के लिए उपयोगी, सात्त्विक कार्यो का निरोधक, परिणत कार्यो का तत्काल साधक, साधना मे नाना प्रकार से विघ्नोत्पादक, कल्याण से दूर, कटु मधु वर्णो से मिश्रित होने पर अनेक प्रकार के कार्यो का साधक, लक्ष्मी बीजो का विरोधी।

म = सिद्धिदायक, लौकिक और पारलौकिक सिद्धियो का प्रदाता, सन्तान की प्राप्ति मे सहायक।

य = शान्ति का साधक, सात्त्विक साधना की सिद्धि का कारण, महत्वपूर्ण कार्यो की सिद्धि के लिए उपयोगी, मित्रप्राप्ति या किसी अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए अत्यन्त उपयोगी, ध्यान का साधक।

र = अग्निबीज, कार्यसाधक, समस्त प्रधान बीजो का जनक, शक्ति का प्रस्फोटक और वर्द्धक।

ल = लक्ष्मीप्राप्ति मे सहायक। श्रीबीज का निकटतम सहयोगी और सगोत्री, कल्याणसूचक।

व = सिद्धिदायक, आकर्षक, ह्, र् और अनुस्वार के सयोग से चमत्कारो का उत्पादक, सारस्वतबीज, भूत-पिशाच-शाकिनी-डाकिनी आदि की बाधा का विनाशक, रोगहर्ता, लौकिक कामनाओ की पूर्ति के लिए अनुस्वार मातृका का सहयोगापेक्षी, मगलसाधक, विपत्तियो का रोधक और स्तम्भक।

श = निरर्थक, सामान्यबीजो का जनक या हेतु, उपेक्षाधर्मयुक्त, शान्ति का पोषक।

ष = आह्वानबीजो का जनक, सिद्धिदायक, अग्निस्तम्भक, जलस्तम्भक, सापेक्षध्वनि ग्राहक, सहयोग या सयोग द्वारा विलक्षण कार्यसाधक, आत्मोन्नति से शून्य, रुद्रबीजो का जनक, भयकर और वीभत्स कार्यो के लिए प्रयुक्त होने पर कार्यसाधक।

स = सर्व समीहित साधक, सभी प्रकार के बीजो मे प्रयोग योग्य, शान्ति के लिए परम आवश्यक, पौष्टिक कार्यो के लिए परम उपयोगी, ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय आदि कर्मो का विनाशक, क्लीबीज का सहयोगी, कामबीज का उत्पादक, आत्मसूचक और दर्शक।

ह = शान्ति, पौष्टिक और मागलिक कार्यो का उत्पादक, साधना के लिए परमोपयोगी, स्वतन्त्र और सहयोगापेक्षी, लक्ष्मी की उत्पत्ति मे साधक, सन्तान प्राप्ति के लिए अनुस्वार युक्त होने पर जाप्य मे सहायक, आकाशतत्त्व युक्त, कर्मनाशक, सभी प्रकार के बीजो का जनक।

उपर्युक्त ध्वनियो के विश्लेषण से स्पष्ट है कि मातृका मन्त्र ध्वनियो के स्वर और व्यजनो के सयोग से ही समस्त बीजाक्षरो की उत्पत्ति हुई है तथा इन मातृका ध्वनियो की शक्ति ही मन्त्रो मे आती है। णमोकार मन्त्र से मातृका ध्वनियाँ नि सृत है। अत समस्त मन्त्रशास्त्र इसी महामन्त्र से प्रादुर्भूत है। इस विषय पर अनुचिन्तन मे विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। अत यह युग विचार और तर्क का है, मात्र भावना से किसी भी बात की सिद्धि नही मानी जा सकती है। भावना का प्रादुर्भाव भी तर्क और विचार द्वारा श्रद्धा उत्पन्न होने पर होता है। अत णमोकार महामन्त्र पर श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए विचार आवश्यक है।

■

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य शब्द कैसे बना है और वह क्या वस्तु है? सर्वप्रथम इस बात पर विचार करना चाहिए। हमारे आर्यधर्म के साहित्य मे ब्रह्मचर्य शब्द का उल्लेख मिलता है। जिन दिनो अवशेष ससार यह भी नही जानता था कि वस्त्र क्या होते है और अन्न क्या चीज है तथा नङ्ग-धडग रहकर, कच्चा मॉस खाकर अपना पाशविक जीवन-यापन कर रहा था, उन दिनो भारत बहुत ऊँची सभ्यता का धनी था। उस समय भी उसकी अवस्था बहुत उन्नत थी। यहॉ के ऋषियो ने, जो सयम, योगाभ्यास, ध्यान, मौन आदि अनुष्ठानो मे लगे रहते थे, ससार मे ब्रह्मचर्य नाम को प्रसिद्ध किया। ब्रह्मचर्य का महत्व तभी से चला आता है—जब से धर्म की पुन प्रवृत्ति हुई। भगवान् ऋषभदेव ने धर्म मे ब्रह्मचर्य को भी अग्रस्थान प्रदान किया था। साहित्य की ओर दृष्टिपात कीजिए तो विदित होगा कि अत्यन्त प्राचीन साहित्य—आचाराग सूत्र तथा ऋग्वेद मे भी ब्रह्मचर्य की व्याख्या मिलती है। इस प्रकार आर्य प्रजा को अत्यन्त प्राचीन काल से ब्रह्मचर्य का ज्ञान मिल रहा है।

१– ब्रह्मचर्य की शक्ति

आजकल ब्रह्मचर्य शब्द का सर्वसाधारण मे कुछ सकुचित-सा अर्थ समझा जाता है। पर विचार करने से मालूम होता है कि वास्तव मे उसका अर्थ बहुत विस्तृत है। ब्रह्मचर्य का अर्थ बहुत उदार है अतएव उसकी महिमा भी बहुत अधिक है। हम ब्रह्मचर्य का महिमागान नही कर सकते। जो विस्तृत अर्थ को लक्ष्य मे रखकर ब्रह्मचारी बना है, उसे अखण्ड ब्रह्मचारी कहते है। अखण्ड ब्रह्मचारी का मिलना इस काल मे अत्यन्त कठिन है। आजकल तो अखड ब्रह्मचारी के दर्शन भी दुर्लभ है। अखड ब्रह्मचारी मे अद्भुत शक्ति होती है। उसके लिए क्या शक्य नही है? वह चाहे सो कर सकता है। अखड ब्रह्मचारी अकेला सारे ब्रह्माण्ड को हिला सकता है। अखड ब्रह्मचारी वह है जिसने अपनी समस्त इन्द्रियो को और मन को अपने अधीन बना लिया हो—जो इन्द्रियो और मन पर पूर्ण आधिपत्य रखता हो। इन्द्रियॉ जिसे फुसला नही सकती, मन जिसे विचलित नही कर सकता, ऐसा अखण्ड ब्रह्मचारी ब्रह्म का शीघ्र साक्षात्कार कर सकता है। अखड ब्रह्मचारी की शक्ति अजवगजब की होती है।

२–ब्रह्मचर्य का व्यापक अर्थ

परमात्मा के प्रति विश्वास स्थिर क्यो नही रहता? यह प्रश्न अनेको के मस्तिष्क मे उत्पन्न होता है। इसका उत्तर ज्ञानी यह देते है कि आन्तरिक निर्बलता ही परमात्मा के प्रति विश्वास को स्थायी नही रहने देती। परमात्मा के प्रति विश्वास न होने के जो कारण है, उनमे से एक कारण है ब्रह्मचर्य का अभाव। जीवन मे यदि ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा हुई तो निसन्देह ईश्वर के प्रति प्रगाढ श्रद्धाभाव स्थायी रह सकता है।

ज्ञानीजन कहते है—समस्त इन्द्रियो पर अकुश रखना और विषयभोग मे इन्द्रियो को प्रवृत्त न होने देना पूर्ण ब्रह्मचर्य है और वीर्य की रक्षा करना अपूर्ण ब्रह्मचर्य है। आज वीर्य रक्षा तक ही ब्रह्मचर्य की सीमा स्वीकार की जाती है। पर वास्तव मे सब इन्द्रियॉ और मन को विषयो की ओर प्रवृत्त न होने देना पूर्ण ब्रह्मचर्य है। केवल वीर्यरक्षा अपूर्ण ब्रह्मचर्य है। अलबत्ता अपूर्ण ब्रह्मचर्य की साधना के द्वारा पूर्ण ब्रह्मचर्य तक पहुँचा जा सकता है।

३–वीर्य का दुरुपयोग

देश मे आज जो रोग, शोक, दरिद्रता आदि जहॉ-तहॉ दृष्टिगोचर होते है उन सबका एकमात्र कारण वीर्यनाश है। आज बेकार वस्तु की तरह वीर्य का दुरुपयोग किया जा रहा है। लोग यह नही जानते कि वीर्य मे कितनी अधिक शक्ति विद्यमान है। इसी कारण विषय-भोग मे वीर्य का नाश किया जा रहा है। उसी मे आनन्द माना जा रहा है। ऐसा करने से जब अधिक सन्तान उत्पन्न होती है तो घबराहट पैदा होती है। पर उनसे मैथुन त्यागते नही बनता। भारतीयो को इस प्रश्न पर गहरा विचार करना चाहिये। विदेशी लोग ब्रह्मचर्य की महत्ता को भले ही न समझते हो या स्वीकार न करते हो परन्तु भारत मे तो ऐसे महान् ब्रह्मचारी हो गये है जिन्होंने ब्रह्मचर्य द्वारा महान् शक्ति लाभ कर जगत के समक्ष यह आदर्श उपस्थित कर दिया है कि ब्रह्मचर्य के प्रशस्त पथ पर चलने मे ही मानव समाज का कल्याण है। ब्रह्मचर्य ही कल्याण

का मार्ग है। यह समझते-बूझते हुए भी विषय-भोग मे सुख मानना और जब सतान उत्पन्न हो तो उसका निरोध करने के लिए कृत्रिम उपाय काम मे लाना घोर अन्याय है। वीर्य को वृथा बर्बाद करने के समान दूसरा कोई अन्याय नही है।

हमारे अन्दर जो शाति और साहस है, वह वीर्य के ही प्रताप से है। अगर शरीर मे वीर्य न हो तो मनुष्य हलन-चलन गमनागमन आदि क्रियाएँ करने मे भी समर्थ नही हो सकता।

४–ब्रह्मचर्य का महत्व

जो भाई-बहिन ब्रह्मचर्य का पालन करेगे वे ससार को अनमोल रत्न प्रदान करने मे समर्थ हो सकेगे। हनुमानजी का नाम कौन नही जानता ? आलकारिक भाषा मे कहा जाता है कि उन्होंने लक्ष्मणजी के लिए द्रोण पर्वत उठाया था। उसी पर्वत का एक टुकडा गिर पडा, जो गोवर्धन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अलकार का आवरण दूर कर दीजिए और विचार कीजिये तो इस कथन मे हनुमानजी का प्रचण्ड शक्ति का दिग्दर्शन आप पाएँगे। हनुमानजी मे इतनी शक्ति कहाँ से आई ? यह महारानी अजना और महाराज पवनजी का बारह वर्ष की अखण्ड ब्रह्मचर्य की साधना का प्रताप था। उनके ब्रह्मचर्य पालन ने ससार को एक ऐसा उपहार, ऐसा वरदान दिया, जो न केवल अपने समय मे ही अद्वितीय था, वरन् आज तक भी वह अद्वितीय समझा जाता है और शक्ति की साधना के लिए उसकी पूजा भी की जाती है।

बहिनो! अगर तुम्हारी हनुमान सरीखा शक्तिशाली पुत्र उत्पन्न करने की साध है तो अपने पति को कामुक बनाने वाले साज-सिगार और हावभाव त्याग कर स्वय ब्रह्मचर्य की साधना करो और पति को भी ब्रह्मचर्य पालन करने दो।

५–ब्रह्मचर्य ही जीवन है

अपूर्ण ब्रह्मचर्य केवल वीर्यरक्षा को कहते है। वीर्य वह वस्तु है जिसके सहारे सारा शरीर टीका हुआ है। यह शरीर वीर्य से बना भी है। अतएव ऑखे वीर्य है। कान वीर्य है। नासिका वीर्य है। हाथ पैर वीर्य है। सारे शरीर का निर्माण वीर्य से हुआ है, अतएव सारी शरीर वीर्य है। जिस वीर्य से सम्पूर्ण शरीर का निर्माण होता है उसकी शक्ति क्या साधारण कही जा सकती है ? किसी ने ठीक ही कहा है–

मरण बिन्दुपातेन, जीवन बिन्दुधारणात् ।

६–अपूर्ण ब्रह्मचर्य का प्रथम नियम

अपूर्ण ब्रह्मचर्य के दस नियमो मे पहिला नियम भावना है। माता-पिता को ऐसी भावना लानी चाहिए कि मेरा पुत्र वीर्यवान् और जगत् का कल्याण करने वाला बने। इस प्रकार की भावना से बहुत लाभ होता है। आप लोगो को अलग-अलग तरह के स्वप्न आते होगे। इसका कारण क्या है ? कारण यही है कि सब की भावना भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। यह बात प्राय सभी जानते है कि जैसी भावना होती है, वैसा स्वप्न आता है। इसी प्रकार सतान के विषय मे माता-पिता की भावना जैसी होती है, वैसी ही सन्तान बन जाती है। जिस प्रकार भावना से स्वप्न का निर्माण होता है, इसी प्रकार भावना से सतान के विचारो और कार्यो का निर्माण होता है। नीच विचार करने से खराब स्वप्न आता है और यही बात सतान के विषय मे भी समझनी चाहिये। सतान के विषय मे तुम जैसी भावना लाओगे, आगे चलकर सतान वैसी ही बन जायेगी। अतएव सन्तान के लिए और अपने लिए ब्रह्मचर्य की भावना निरन्तर करनी चाहिये।

७–दूसरा नियम

ब्रह्मचर्य का दूसरा नियम भोजन-सम्बन्धी विवेक है। कुछ लोग ऐसा समझते है कि जिस खानपान मे आनन्द आता है, वही भोजन अच्छा है, पर यह मान्यता भ्रमपूर्ण है। ब्रह्मचारी के भोजन मे और अब्रह्मचारी के भोजन मे बडा अन्तर होता है। गीता मे रजोगुणी, तमोगुणी और सतोगुणी का भोजन अलग-अलग बताया है। पर आज के लोग जिह्वा के वशवर्ती बनकर भोजन के गुलाम हो रहे है। यदि तुम अपनी जीभ पर भी अकुश नही रख सकते तो तुम आगे किस प्रकार बढ सकोगे ? विद्याभ्यास और शास्त्र श्रवण का फल यही है कि बुरे कामो की प्रवृत्ति न की जाय। आजकल खान-पान के सम्बन्ध मे बडी भयकर भूले हो रही है और हालत ऐसी जान पडती है मानो विद्याभ्यास का फल खानपान का भान भूल जाना ही हो।

८–विनाश के कारण

वीर्यनाश का एक कारण एक ही कमरे मे, एक ही बिछौने पर स्त्री पुरुष का शयन करना भी है। एक ही कमरे मे और एक शय्या पर सोने से वीर्य स्थिर नही रह सकता। शास्त्र मे जहाँ स्त्री और पुरुष के सोने का वर्णन मिलता है वहाँ ऐसा ही वर्णन मिलता है कि स्त्री और पुरुष अलग-अलग शयनागार मे सोते थे। पर आज इस विषय मे नियम का पालन होता नजर नही आता।

निष्क्रिय बैठे रहना भी वीर्यनाश का एक कारण है। जो लोग अपने शरीर और मन को किसी सत्कार्य मे सलग्न नही रखते, उन लोगो का वीर्य भी स्थिर नही रह सकता। यदि शरीर और मन को निष्क्रिय न रखा जाय तो वीर्य को हानि नही पहुँचती।

रात्रि मे देर तक जागरण करना, सूर्योदय के बाद भी सोते रहना और अश्लील साहित्य का पढना, ये सब भी वीर्यनाश के कारण है। अश्लील चित्र देखने से और अश्लील पुस्तके पढने से भी वीर्य स्थिर नही रहता। आज जहाँ-तहाँ अश्लील पुस्तके पढने और अश्लील चित्र देखने का प्रचार हो गया है। आजकल लोग महापुरुषो और महासतियो के जीवन चरित्र पढने के बदले अश्लीलतापूर्ण पुस्तक

पढने के शौकीन हो गये है। उन्हे यह विचार ही नही आता कि ऐसा करने से जीवन मे कितने विकार आ घुसे है। कहावत है–'जैसा वाचन वैसा विचार'। इस कहावत के अनुसार अश्लील पुस्तको के पठन से लोगो के विचार भी अश्लील बनते जा रहे है।

नाटक-सिनेमा देखना भी वीर्यनाश का कारण है। आजकल नाटक-सिनेमा की धूम मची हुई है। जहॉ देखो वहॉ गरीब से लेकर अमीर तक–सबको नाटक-सिनेमा मे फसाने का प्रयत्न किया जा रहा है और इस प्रकार सिनेमा वीर्यनाश के साधन बन रहे है।

९–सिनेमा और ग्रामोफोन

आजकल के सिनेमा तो नैतिकता से इतने पतित और निर्लज्जतापूर्ण होते सुने जाते है कि कोई भला मानुष अपने बालबच्चो के साथ उन्हे देख नही सकता। सिनेमा के कारण आज लाखो नवयुवक आचरणहीन बन रहे है। इन सिनेमाओ की बदौलत भारतीय नारी अपनी महत्ता का विस्मरण कर भारतीय सभ्यता के मूल मे कुठाराघात कर रही है। यह अत्यन्त खेद की बात है। इसी प्रकार ग्रामोफोन को भी आनन्द का साधन समझा जाता है पर उसके द्वारा सस्कारो मे कितनी बुराइयॉ घुस रही है, इस ओर कितने लोगो का ध्यान जाता है ?

१०–ब्रह्मचर्य साधन

ब्रह्मचर्य पालने वालो को अथवा जो ब्रह्मचर्य पालन चाहते है उन्हे विलासपूर्ण वस्त्रो से, आभूषणो से, आहार से सदैव बचते रहना चाहिये। मस्तिष्क मे कुविचारो का अकुर उत्पन्न करने वाले साहित्य को हाथ भी नही लगाना चाहिए। जो पुस्तके धर्म, देश-भक्ति की भावना जागृत करने वाली और चरित्र को सुधारने वाली होती है उनमे अग्रेज सरकार राजनीति की गध सूघती है और उन्हे जब्त कर लेती है। पर जो पुस्तके ऐसा गदा और घासलेटी साहित्य बढाती है, प्रजा का सर्वनाश कर रही है, उनकी ओर से वह सर्वथा उदासीन रहती है। यह कैसी भाग्यविडम्बना है ?

११–वीर्य की महिमा

स्वप्न मे भी वीर्य का नाश होता है। कुछ लोग कहा करते है कि वीर्य रक्षा से स्वप्नदोष होता है पर यह कथन भ्रमपूर्ण है। इस भ्रामक विचार का परित्याग करके स्वप्नदोष के असली कारण का पता लगाना चाहिये। फिर उस कारण से बचकर दोषनिवारण का प्रयत्न करना चाहिये। जब तुम सो रहे हो, तब तुम्हारी जेब मे से अगर कोई रत्न निकाल कर ले जाने लगे और उस समय तुम जाग उठो तो ऑखो देखते क्या रत्न ले जाने दोगे ? नही, तो फिर स्वप्नदोष के कारण जानबूझ कर वीर्य को नष्ट होने देना कहॉ तक उचित कहा जा सकता है ?

१२–ब्रह्मचर्य और रसनानिग्रह

ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए, साथ ही स्वास्थ्य की रक्षा के लिए जिह्वा पर अकुश रखने की आवश्यकता है। जिह्वा पर अकुश न रखने से अनेक प्रकार की हानियॉ होती है। इसके विपरीत जो मनुष्य अपनी जीभ पर काबू रखता है उसे प्राय वैद्यो और डॉक्टरो के द्वार पर भटकने की आवश्यकता नही रहती।

अनेक लोग ऐसे है जिनके लिए जीवन की अपेक्षा भोजन अधिक महत्व की वस्तु है। वे जीने के लिए नही खाने के लिए जीते है। भले ही कोई सीधी तरह इस बात को स्वीकार न करे मगर उसके भोजन-व्यवहार को देखने से यह सत्य साफ तौर से प्रगट हुए विना नही रहेगा। यही कारण है कि अधिकाश लोग जीवन के शुभ-अशुभ की कसौटी पर भोजन की परख नही करते। वे जिह्वा को कसौटी बनाकर भोजन की अच्छाई-बुराई की जॉच करते है। जो जीवन की दृष्टि से भोजन करता है वह स्वास्थ्य नाशक और जीवन को भ्रष्ट करने वाला भोजन कैसे कर सकता है ? कुशल मनुष्य अज्ञात व्यक्ति को सहसा अपने घर मे स्थान नही देता। तब जिस भोजन के गुण-दोष का पता न हो उसे पेट मे स्थान देना कहॉ तक उचित कहा जा सकता है ? जो ऐसे भोजन को पेट मे ठूस लेता है, उसके पेट को भोजन-पिटारे के सिवा और क्या कहा जा सकता है ?

एक विद्वान का कथन है कि दुनिया मे जितने आदमी खाने-पीने से मरते है, उतने खाने-पीने के अभाव से नही मरते। लोग पहले ठूस-ठूस कर खाते है, फिर डॉक्टर की शरण लेते है। आज जो आदमी जितनी अधिक चीजे अपने भोजन मे समाविष्ट करता है वह उतना ही बडा आदमी गिना जाता है, मगर शास्त्र का आदेश यह है कि जो जितना महान त्यागी है वह उतना ही महान् पुरुष है। शास्त्र मे आनन्द श्रावक का वर्णन करते हुए कहा गया है कि बारह करोड स्वर्ण मोहरो का और चालीस हजार गायो का धनी होने पर भी उसने अपने खाने-पीने के लिए कुछ गिनती की चीजो की ही मर्यादा कर ली थी। इस प्रकार खान-पान के विषय मे जो जितना सयम रखता है वह उतना ही महान् है। जिह्वासयम से स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। नागरिको को जितना और जैसा भोजन मिलता है, उतना और वैसा किसानो को नही। फिर भी अगर दोनो की कुश्ती हो तो किसान ही विजयी होगा। यह कौन नही जानता कि सभ्य और बडे कहलाने वाले लोगो की अपेक्षा किसान अधिक स्वस्थ और सबल होता है। इसका एक कारण सादा और सात्विक भोजन है।

इस तरह अधिक भोजन करने से स्वास्थ्य सुधरने की जगह बिगडता है। विकृत भोजन करने मे स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है और चरित्र को भी इसी कारण विकृत (विगय) भोजन करने का शास्त्र मे निषेध किया गया है।

ब्रह्मचर्य का भोजन के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। भोगी का भोजन और योगी का भोजन एक-सा नही हो सकता। ब्रह्मचर्य की साधना करने वालो को ऐसा और इतना ही भोजन करना चाहिये जिससे शरीर की रक्षा हो सके और जो ब्रह्मचर्य मे बाधक न होकर साधक हो। अधिक गरिष्ठ, तेज, मसालेदार और परिमाण से अधिक भोजन सर्वथा हानिकारक है।

१३–ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध मे लोगो की भ्रान्त धारणा

विषय-भोग की कामना का नियन्त्रण नही हो सकता, यह कामना अजेय है, इस प्रकार की दुर्भावना पुरुष-समाज मे एक बार पैठ पाई, तो भयकर अनर्थ होंगे और उन अनर्थो की परम्परा का सामना करना सहज नही होगा।

यद्यपि आजकल भी अनेक लोग है, जिनकी यह भ्रान्त धारणा हो गई है कि मनुष्य कामभोग की वासना पर विजय नही प्राप्त कर सकता। सभवत वे लोग मनुष्य को काम वासना का कीडा समझते है। पर प्राचीन आर्य-ऋषियो का अनुभव इस धारणा का विरोध करता है। कोई व्यक्ति विशेष ब्रह्मचर्य का पालन करने मे असमर्थ रहे, यह एक बात है और यह कहना कि ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करना सभव नही है, दूसरी बात है। किसी व्यक्ति की असमर्थता के आधार पर किसी व्यापक सिद्धान्त का निर्माण कर बैठना, सच्चाई के साथ अन्याय करना है। इस प्रकार असमर्थता की ओट मे विषयभोगो का विचार करना सर्वथा अनुचित है।

आज भी ससार मे ऐसे व्यक्तियो का मिलना असभव नही है जो बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए जन-सेवा कर रहे है। फिर भीष्म और भगवान् नेमिनाथ जैसे पवित्र ब्रह्मचारियो का उच्च आदर्श जिन्हे मार्ग-प्रदर्शन कर रहा हो, उन भारतवासियो के हृदय मे न जाने यह भूत कैसे घुस गया है कि विषय वासना पर काबू रखना शक्य नही है। साधु हुए बिना ब्रह्मचर्य का पालन हो ही नही सकता और गृहस्थ-जीवन मे ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान एकदम अशक्यानुष्ठान है। वास्तव मे यह धारणा सर्वथा भ्रमपूर्ण है। मनोबल दृढ होने पर पूर्ण या नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है। यही नही वरन् विवाहित जीवन व्यतीत करते हुए गृहस्थ जीवन मे भी ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है। ब्रह्मचर्य पालने से किसी भी प्रकार की हानि की सम्भावना नही है। यही नही किन्तु अनेक प्रकार के लाभ होते है। कहा भी है –

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभ ।

कुछ महानुभावो ने एक नये सिद्धान्त का आविष्कार किया है। उनकी अनोखी सी समझ यह है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने से शरीर मे रोग उत्पन्न होते है। पर न तो आज तक यह सुना गया है कि ब्रह्मचर्य पालन से किसी को किसी रोग का शिकार होना पडा है और न ऐसा कोई उदाहरण ही देखा गया है। हॉ, ठीक इससे उल्टे जो लोग विषयी होते है, वे ही रोगो द्वारा सताये जाते है। यह बात तो प्रत्यक्ष दिखाई देती है। अतएव अपने हृदय से इस भ्रान्ति को निकाल फेको कि ब्रह्मचर्य से रोग पैदा होते है। ब्रह्मचर्य जीवन है। उससे शक्ति का विकास होता है। जहॉ शक्ति है, वहॉ रोगो का आक्रमण नही होता। अशक्त और दुर्बल पुरुष ही रोगो द्वारा सताये जाते है।

खेद है कि लोगो के मन मे यह भ्रम उत्पन्न हो गया है कि विषय भोग की इच्छा का दमन करना अशक्य है। परन्तु जैसे नेपोलियन ने असम्भव शब्द कोश मे से निकाल डालने को कहा था उसी प्रकार तुम अपने हृदय मे से निकाल बाहर करो। ऐसा करने से तुम्हारा मनोबल सुदृढ बनेगा और तब विषय-भोग की कामना पर विजय प्राप्त करना तनिक भी कठिन न होगा।

त्रिविध ब्रह्मचर्य

१–ब्रह्मचर्य शब्द की प्रवृत्ति का निमित्त

'ब्रह्मचर्य' एक ही शब्द नही है, किन्तु 'ब्रह्म' शब्द मे 'चर्य' कृत प्रत्ययान् से बना हुआ सस्कृत शब्द है। ब्रह्म+चर्य=ब्रह्मचर्य। 'ब्रह्म' शब्द के वैसे तो कई अर्थ होते है, परन्तु यहॉ यह शब्द वीर्य, विद्या और आत्मा के अर्थ मे है। 'चर्य' का अर्थ, रक्षण, अध्ययन तथा चिन्तन है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ वीर्यरक्षा, विद्याध्ययन और आत्म-चिन्तन है। 'ब्रह्म' का अर्थ उत्तम काम या कुशलानुष्ठान भी होता है, इसलिये ब्रह्मचर्य का अर्थ उत्तम या कुशलानुष्ठान का आचरण भी है। ब्रह्मचर्य शब्द के इन अर्थो पर दृष्टिपात करने से हम इस निर्णय पर पहुॅचते है कि जिस आचरण द्वारा आतम-चिन्तन हो, आत्मा अपने आपको पहचान सके और अपने लिए वास्तविक सुख प्राप्त कर सके, उस आचरण का नाम 'ब्रह्मचर्य' है। इस अर्थ मे ब्रह्मचर्य शब्द के ऊपर कहे हुए सभी अर्थ आ जाते है।

२–ब्रह्मचर्य की परिभाषा

आत्मचिन्तन के लिए, इन्द्रियो और मन पर विजय पाना आवश्यक है। प्राकृतिक नियमो के अनुसार इन्द्रियॉ मन के, मन बुद्धि के और बुद्धि आत्मा के अधीन एव आत्मा की सहायिका होना चाहिये। ऐसा होने पर ही आत्मा अपने आपको जान सकता है, इन्द्रियॉ मन और बुद्धि का कर्तव्य, आत्मा को बलवान् तथा पुष्ट बनाना है। बलवान् आत्मा ही अपना स्वरूप जान सकता है, विद्याध्ययन मे समर्थ हो सकता है और उत्तम काम तथा कुशलानुष्ठान कर सकता है। इसलिये इन्द्रियां, मन और बुद्धि का काम आत्मा को बलवान् बनाना, आत्मा के हित को दृष्टि मे रखना आत्मा का अहित करने वाले कामो

से दूर रहना है। इन्द्रियो और मन का अपने इस कर्तव्य पर स्थिर रहने का नाम ही 'ब्रह्मचर्य' है।

आत्मा का हित अपना स्वरूप जानने मे है। आत्मा अपना स्वरूप तभी जान सकता है–जब उसके सहायक एव सेवक इन्द्रियाँ तथा मन, उसके आज्ञावर्ती और शुभचिन्तक हो। विपरीतावस्था मे आत्मा का अहित स्वाभाविक ही है। आत्मा के सहायक तथा सेवक वे ही इन्द्रियाँ और मन है, जो सुख की अभिलाषा से दुर्विषयो की ओर न दौडे। इन्द्रियो का सुख की अभिलाषा से दुर्विषयो की ओर दौडना तथा मन का इन्द्रियानुगामी होना आत्मा के लिए अहितकारक है। आत्मा का हित तभी है, जब न तो इन्द्रियाँ दुर्विषयो की ओर दौडे और न इन्द्रियो के साथ ही साथ मन भी आत्मा का अशुभ-चिन्तक वने। इन्द्रियाँ और मन का दुर्विषयो की ओर न दौडना, दुर्विषयो की चाह न करना और सुख की लालसा से उन्हे न भोगना ही 'ब्रह्मचर्य' है।

इन्द्रियाँ पाँच है–कान, आँख, नाक, जीभ और त्वचा। इन पाँचो इन्द्रियो के पाँच विषय है–शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श अर्थात् सुनना, देखना, सूघना, स्वाद लेना और छूना। यद्यपि ये इन्द्रियाँ है सुनने, देखने, सूँघने, स्वाद लेने और स्पर्श करने के लिए ही–इसी कारण इनका नाम ज्ञानेन्द्रियाँ भी है– लेकिन ये ज्ञानेन्द्रियाँ तभी होती है और तभी आत्मा का हित भी कर सकती है, जब दुर्विषयो मे लिप्त न हो, उनके भोग मे सुख न माने और अपने आप को दुर्विषय-भोग के लिए न समझे। इसी प्रकार मन भी आत्मा का हित करने वाला तभी है, जब वह अपने पद से भ्रष्ट होकर, इन्द्रियो का अनुगामी न बन जावे और न इन्द्रियो को ही दुर्विषयो की ओर जाने दे। मन का काम इन्द्रियो को सुख देना नही, किन्तु आत्मा को सुख देना है और इन्द्रियों को भी उन्ही कामो मे लगाना है, जिनसे आत्मा सुखी हो। इन्द्रियो और मन का, इस कर्तव्य को समझ कर इस पर स्थिर रहना ही 'ब्रह्मचर्य' है।

३–गाँधीजी कृत ब्रह्मचर्य की परिभाषा

गाँधीजी ने 'ब्रह्मचर्य' के अर्थ मे लिखा है– ''ब्रह्मचर्य का अर्थ है सभी इन्द्रियाँ और सम्पूर्ण विकारो पर पूर्ण अधिकार कर लेना। सभी इन्द्रियो को तन, मन और वचन से, सब समय और सब क्षेत्रो मे सयमित करने को 'ब्रह्मचर्य' कहते है।''

४–ब्रह्मचर्य की व्यावहारिक परिभाषा

यद्यपि सब इन्द्रियाँ और मन का दुर्विषयो की ओर न दौडने का नाम ब्रह्मचर्य है, लेकिन व्यवहार मे, ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल 'वीर्यरक्षा' ही लिया जाता है। इस व्यावहारिक अर्थ–अर्थात् पूर्ण रुपेण वीर्यरक्षा– से भी इन्द्रियो और मन का दुर्विषयो की ओर दौडना ही मतलव निकलेगा। पूर्णतया वीर्यरक्षा तभी हो सकती है, जब सभी इन्द्रियाँ और मन दुर्विषयो की ओर न दौडे। यदि एक भी इन्द्रिय दुर्विषय की ओर दौडती है–उसे चाहती है और उसमे सुख भी मानती है–तो सम्पूर्णतया वीर्यरक्षा कदापि नही हो सकती। इसलिये पूर्ण रीति से वीर्यरक्षा का अर्थ भी वही है, जो ऊपर कहा गया है अर्थात् सर्वप्रकार के असयम-परित्याग-रूप इन्द्रियो और मन का सयम।

५–ब्रह्मचर्य के तीन भेद और उनका सम्बन्ध

ब्रह्मचर्य मन, वचन और शरीर से होता है, इसलिये ब्रह्मचर्य के तीन भेद होते है अर्थात् मानसिक-ब्रह्मचर्य, वाचिक-ब्रह्मचर्य और शारीरिक-ब्रह्मचर्य। मन, वचन और काय इन तीनो द्वारा पालन किया गया ब्रह्मचर्य ही पूर्ण ब्रह्मचर्य है अर्थात् न मन मे ही अब्रह्मचर्य की भावना हो, न वचन द्वारा ही अब्रह्मचर्य प्रगट हो और न शरीर द्वारा ही अब्रह्मचर्य की क्रिया की गई हो इसका नाम पूर्ण ब्रह्मचर्य है। याज्ञवल्क्य स्मृति मे कहा है–

कायेन मनसा वाचा, सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनत्यागो, ब्रह्मचर्य प्रचक्षते ।।

शरीर, मन और वचन से, सभी अवस्थाओ मे सर्वदा और सर्वत्र मैथुन-त्याग को ब्रह्मचर्य कहा है।

कायिक ब्रह्मचर्य उसे कहते है, जिसके सद्भाव मे, शरीर द्वारा अब्रह्मचर्य की कोई क्रिया न की गई हो अर्थात् शरीर से अब्रह्मचर्य मे प्रवृत्ति न हुई हो। मानसिक ब्रह्मचर्य उसे कहते है जिसके सद्भाव मे दुर्विषयो का चिन्तन न किया जावे, अर्थात् मन मे अब्रह्मचर्य की भावना भी न हो। वाचिक-ब्रह्मचर्य उसे कहते है जिसके सद्भाव मे अब्रह्मचर्य के सद्भाव को पूर्ण ब्रह्मचर्य कहते है।

कायिक, मानसिक और वाचिक ब्रह्मचर्य का परस्पर कर्ता क्रिया और कर्म का सा सम्बन्ध है। पूर्ण ब्रह्मचर्य वही हो सकता है जहाँ उक्त प्रकार के तीनो ब्रह्मचर्य का सद्भाव हो। एक के अभाव मे दूसरे और तीसरे का–एकदम से नही तो शनै शनै अभाव स्वाभाविक है।

साराश यह कि इन्द्रियो का दुर्विषयो से निवृत्त होने, मन का दुर्विषयो की भावना न करने, दुर्विषयो से उदासीन रहने, मैथुनाङ्गो सहित सब प्रकार के मैथुन त्यागने और मानसिक शक्ति को आत्मचिन्तन, आत्महित-साधन तथा आत्मविद्याध्ययन मे लगा देने का ही नाम 'ब्रह्मचर्य' है।

लाभ और माहात्म्य

तवेसु वा उत्तम बभचेर ।

– सूत्रकृताग सूत्र

"ब्रह्मचर्य ही उत्तम तप है"।

ब्रह्मचर्य से क्या लाभ होता है और ब्रह्मचर्य का कैसा महात्म्य है, यह सक्षेप मे नीचे बताया जाता है।

१–शरीर और धर्म का सम्बन्ध

आत्मा का ध्येय, ससार के जन्म-मरण से छूट कर, मोक्ष प्राप्त करना है। आत्मा इस ध्येय को तभी प्राप्त कर सकता है, जब उसे शरीर की सहायता हो–अर्थात् शरीर स्वस्थ हो। बिना शरीर के धर्म नही हो सकता और बिना धर्म के आत्मा अपने उक्त ध्येय तक नही पहुँच सकता। काव्य ग्रथो मे कहा है–

शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम् ।

– कुमारसम्भव

'शरीर ही सब धर्मो का प्रथम और उत्तम साधन है'।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्य मूलमुत्तमम् ।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का आरोग्य ही मूल साधन है।

२–ब्रह्मचर्य से शारीरिक स्वस्थता

आत्मा को अपने ध्येय तक पहुँचने के लिए शरीर की आवश्यकता है और वह भी आरोग्यता के साथ। अस्वस्थ शरीर, धर्म-साधन मे असमर्थ रहता है। ब्रह्मचर्य से इस अग की पूर्ति होती है, अर्थात् शरीर स्वस्थ रहता है, कोई रोग पास भी नही फटकने पाता।

वैद्यक ग्रन्थो मे ब्रह्मचर्य से शारीरिक लाभ बताने के लिए कहा है–

मृत्युव्याधिजरानाशि, पीयूषपरमौषधम् ।
ब्रह्मचर्य महायत्न , सत्यमेव वदाम्यहम् ।।

'मै सत्य कहता हूँ कि मृत्यु, व्याधि और बुढापे का नाश करने वाली अमृत के समान औषध ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्य, मृत्यु रोग और बुढापे का नाश करने वाला महान् यज्ञ है।'

३–ब्रह्मचर्य से धर्म-रक्षा

तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचर्य से शरीर स्वस्थ रहता है, जिससे धर्म का पालन होता है। इतना ही नही कि[illegible]तु ब्रह्मचर्य का पालन करना भी धर्म ही है। यह धर्म का प्रधान अग एव [illegible]र्म का प्रधान रक्षक है। इसके लिए प्रश्नव्याकरण सूत्र मे कहा है–

पउमसरतलागपालिभूय, महासगढअरगतुबभूय, महानगरपागारक वाडफलिहभूय, रज्जु-पिणद्धो व्वइदकेऊ विसुद्धणेगगुण सपिणद्ध, जम्मि य भग्गम्मि होइ सहसा सव्व [illegible] [illegible]कुसल्लियपलट्टपडि-यखडियपरिसडियविणासिय [illegible]लवनियमगुण–समूह ।

'ब्रह्मचर्य, धर्म रूप पद्मसरोवर का पाल के समान रक्षक है। यह दया, क्षमा आदि गुणो का आधार-भूत एव धर्म की शाखाओ का आधार-स्तम्भ है। ब्रह्मचर्य चर्म रूप महानगर का कोट है और धर्म रूप महानगर का प्रधान रक्षक-द्वार है। ब्रह्मचर्य के खण्डित होने पर सभी प्रकार के धर्म, पहाड से गिरे हुए कच्चे घडे के समान चूर-चूर हो जाते है।'

ब्रह्मचर्य, धर्म का कैसा आवश्यक अग है, यह बताते हुए और ब्रह्मचर्य की प्रशसा करते हुए एक मुनि ने कहा है–

पच महव्वए-सुव्वयमूल, समणामणाइल साहुसुविण्ण ।
वेरविरामण पज्जवसाण, सव्वसमुद्द महोदहितित्थ ।।१।।
तित्थकरेहि सुदेसिय मग्ग, नरगतिरिच्छविवज्जियमग्ग ।
सव्वपवित्तसुनिम्मियसार, सिद्धिविमाण-अवगुयदार ।।२।।
देवनरिंदनमसियपूइय सव्वजगुत्तममगलमग्ग ।
दुद्धरिस गुणनायकमेक्क मोक्खपहरसवडिसगभूय ।।३।।

'ब्रह्मचर्य, पॉच महाव्रत का मूल है अत उत्तम व्रत है अथवा पच महाव्रत वाले साधुओ के उत्तम व्रतो का ब्रह्मचर्य मूल है। ऐसे ही श्रावको के सुव्रतो का भी ब्रह्मचर्य मूल है। ब्रह्मचर्य, दोष रहित है, साधुजनो द्वारा भलीभॉति पालन किया गया है, वैरानुबन्ध का अन्त करने वाला है और स्वयभूरमण महोदधि के समान दुस्तर ससार से तरने का उपाय है।'

ब्रह्मचर्य तीर्थकरो द्वारा सदुपदेशित है, उन्ही के द्वारा इसके पालन का मार्ग बताया गया है और इसके उपदेश द्वारा नरक गति तथा तिर्यक्-गति का मार्ग रोक कर सिद्ध-गति तथा विमानो के द्वार खोलने का पवित्र मार्ग बताया गया है।

यह ब्रह्मचर्य देवेन्द्र और नरेन्द्रो से पूजित लोगो के लिए भी पूजनीय है, समस्त लोको मे सर्वोत्तम मगल का मार्ग है। सब गुणो का अद्वितीय तथा सर्वश्रेष्ठ नायक है और मोक्ष-मार्ग का भूषण रूप है।

४–ब्रह्मचर्य ही तप है

मोक्ष के प्रधान साधन–तप मे भी ब्रह्मचर्य को पहला स्थान है। जैन-शास्त्रो मे ब्रह्मचर्य सब से उत्तम तप माना गया है। इसका एक प्रमाण इस प्रकरण के प्रारम्भ मे दिया जा चुका है। प्रश्नव्याकरण सूत्र मे भी कहा है–

जम्बू! एत्तो य बभचेर तव-नियम-नाण दसण-चरित्तसम्मत्तविणयमूल, यम-नियम-गुणमप्पहाणाजुत्त, हिमवन्तमहत तेयमत पसत्थगभीरथिमियमज्झ ।

हे जम्बू! यह ब्रह्मचर्य, उत्तम तप नियम, ज्ञान, दर्शन, चरित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल है। जिस प्रकार सब पर्वतो मे हिमालय महान् और तेजस्वी है, उसी प्रकार सब तपस्याओ मे ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है।

अन्य ग्रन्थो मे भी ब्रह्मचर्य को उत्तम तप माना गया है। वेद भी ब्रह्मचर्य को ही तप मानते है। जैसे–

तपो वै ब्रह्मचर्यम् ।

ब्रह्मचर्य ही तप है ।

गीता मे भी ब्रह्मचर्य को तप माना है। उसमे कहा है–

ब्रह्मचर्यमहिसा च, शारीर तप उच्यते ।

अर्थात् ब्रह्मचर्य और अहिसा शरीर का उत्तम तप है।

इसी प्रकार अन्य ग्रन्थकारो ने भी ब्रह्मचर्य को उत्तम तप माना है।

५–ब्रह्मचर्य से पारलौकिक लाभ

पारलौकिक लाभ का ब्रह्मचर्य एक प्रधान साधन है। ब्रह्मचर्य से आत्मा परलोक सम्बन्धी सभी सुखो को प्राप्त कर सकता है। प्रश्नव्याकरण सूत्र मे कहा गया है–

अज्जव साहुजणाचरिय मोक्खमग्ग विसुद्ध सिद्धि गइनिलय सासयवव्वावाह मपुणाब्भव पसत्थ सोम सुभ सिवममक्खयकर । जइवरसारक्खिय सुचरिय सुभासिय नवरिमुणिवरे हि महापुरिसधीरसूरधम्मियधिइमताणा य सया विसुद्ध भव्व भव्वजणाणुचिण्णा निस्सकिय निब्भय नित्तुस निरायास ।

'ब्रह्मचर्य' अन्त करण को पवित्र एव स्थिर रखने वाला है, साधुजनो से सेवित है, मोक्ष का मार्ग है और सिद्धगति का गृह है, शाश्वत है, बाधा-रहित है, पुनर्जन्म को नष्ट करने के कारण अपुनर्भव है, प्रशस्त है, रागादि का अभाव करने से सौम्य है, सुख-स्वरूप होने से शिव है, दु ख सुखादि द्वन्द्वो से रहित होने से अचल है, अक्षय तथा अक्षत है, मुनियो द्वारा सुरक्षित एव प्रचारित है, भव्य है, भव्यजनो द्वारा आचरित है, शङ्का-रहित है, निर्भयता का देने वाला, विशुद्ध तथा झझटो से दूर रखने वाला एव खेद और अभिमान को नष्ट करने वाला है।

प्रश्नव्याकरण सूत्र मे आगे कहा है–

जम्मि य आराहियम्मि आराहिय वयमिण सव्व । सील त्तवो य विणओ य सजमोय य खत्ती गुत्ती मुत्ति तहेव इहलोइय पारलोइय जसेय कित्ती य पच्चओ य ।

'ब्रह्मचर्य की आराधना से सभी व्रत आराधित होते है। तप, शील, विनय, सयम, क्षमा, गुप्ति और मुक्ति सिद्ध होती है तथा इस लोक और परलोक मे यश-कीर्ति की विजय-पताका फहराती है।'

अन्य ग्रन्थकार भी ब्रह्मचर्य से परलोक सम्बन्धी लाभ बताते हुए कहते है–

समुद्रतरणे यद्वत् उपायो नौ प्रकीर्तित ।
ससारतरणे यद्वत् ब्रह्मचर्य्य प्रकीर्तितम् ।।

–स्मृति ।

समुद्र से पार जाने के लिए, जिस प्रकार नौका श्रेष्ठ-साधन है, उसी प्रकार ससार से तरने के लिए ब्रह्मचर्य उत्कृष्ट साधन है।

ग्रन्थकारो ने यज्ञ भी ब्रह्मचर्य को ही माना है। जैसे–

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव ।

(छान्दोग्योपदनिशद्)

'जिसे यज्ञ कहते हे वह ब्रह्मचर्य ही है।'

ससार-बन्धन से छूटकर, मोक्ष-प्राप्ति के लिए चारित्र धर्म बताते हुए भगवान् ने जिन पॉच महाव्रतो का उपदेश दिया है उनमे ब्रह्मचर्य चौथा महाव्रत है। ब्रह्मचर्य के विना, चारित्र-धर्म का पूर्णरूपेण पालन नही हो सकता। आत्मा को ससार-वन्धन से छुडा कर, मोक्ष दिलाने वाले चारित्र-धर्म का ब्रह्मचर्य एक प्रधान और आवश्यक अग है। ब्रह्मचर्य के बिना न तो अव तक कोई मुक्त हुआ ही है, न हो ही सकता है। सिद्धात्माओ को सिद्ध गति प्राप्त कराने वाला यह ब्रह्मचर्य ही है। इस प्रकार पारलौकिक लाभ का ब्रह्मचर्य एक प्रधान साधन है।

६–ब्रह्मचर्य से इहलौकिक लाभ

ब्रह्मचर्य से पारलौकिक ही नही, इहलौकिक लाभ भी है। ऊपर बताया जा चुका है कि ब्रह्मचर्य से स्वास्थ्य अच्छा रहता है। स्वास्थ्य अच्छा रहने से ही इह-लौकिक कार्य सुचारु-रूप से सम्पादन हो सकते है।

सासारिक-जीवन मे, शरीर स्वस्थ, सुन्दर, बलवान् एव चिरायु रहने की, विद्या की, धन की, कर्त्तव्य-दृढता की और यशादि की अभिलाषाएँ पूर्ण होती है। प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि ने ब्रह्मचर्य की प्रशसा करते हुए कहा है–

चिरायुष सुसस्थाना दृढसहनना नरा ।
तेजस्विनो महावीर्या भवेयुर्ब्रह्मचर्यत ।।

ब्रह्मचर्य से शरीर चिरायु, सुन्दर, दृढ-कर्त्तव्य तेजपूर्ण और पराक्रमी होता है।

वैद्यक ग्रन्थो मे भी कहा गया है–

ब्रह्मचर्य पर ज्ञान ब्रह्मचर्य पर बल ।
ब्रह्मचर्यमयो ह्यात्मा ब्रह्मचर्येव तिहति ।।

'ब्रह्मचर्य ही सब से उत्तम ज्ञान है, अपरिमित बल है, यह आत्मा निश्चय रूप से ब्रह्मचर्यमय है और ब्रह्मचर्य से ही शरीर मे ठहरा हुआ है।'

इन प्रमाणो से यह बात भलीभॉति सिद्ध हो जाती है कि ब्रह्मचर्य से शरीर सुन्दर भी रहता है, बलवान् भी रहता है, दीर्घजीवी भी होता है और यश-कीर्ति भी प्राप्त होती है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य, इहलौकिक सुखो का भी साधन है। लौकिक वैभव, विद्या, धन आदि तभी प्राप्त होते है, जब शरीर स्वस्थ हो और उसमे वल तथा साहस हो। ब्रह्मचर्य से शरीर स्वस्थ रहता है और शरीर मे वल तथा साहस भी रहता है।

विद्वानो का मत है कि ब्रह्मचर्य के बिना विद्या प्राप्त नही होती। विद्या-प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य का होना आवश्यक है। अथर्ववेद मे कहा है–

ब्रह्मचर्येण विद्या ।

'ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्त होती है।'

विदुर नीति मे कहा है–

विद्यार्थ ब्रह्मचारी स्यात् ।

'यदि विद्या के इच्छुक हो तो ब्रह्मचारी बनो।'

तात्पर्य यह कि ब्रह्मचर्य, लौकिक और लोकोत्तर, दोनो ही सुखो का प्रधान साधन है। इसकी पूर्ण-रूपेण प्रशसा करना तो समुद्र को हाथो के सहारे तैरने का साहस करना है।

७–ब्रह्मचर्य पर अपवाद

कुछ लोगो का कथन है कि पूर्ण ब्रह्मचारी को मोक्ष या स्वर्ग प्राप्त नही होता क्योंकि पूर्ण ब्रह्मचारी नि सतान रहते है और–

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ।

'पुत्रहीन की गति नही होती और स्वर्ग तो कभी भी नही मिलता है।'

इस श्लोक से पूर्ण ब्रह्मचारी को स्वर्ग-मोक्ष प्राप्ति से वचित बताया जाता है, लेकिन इस श्लोक को खण्डन करने वाला दूसरा यह प्रमाण भी है–

स्वर्गे गच्छन्ति ते सर्वे ये केचिद् ब्रह्मचारिण ।

'जितने भी ब्रह्मचारी है, वे सब स्वर्ग को जाते है' और भी कहा है कि–

अनेकानि सहस्राणि, कुमारब्रह्मचारिणाम् ।
दिव गतानि राजेन्द्र, अकृत्वा कुलसन्ततिम् ।।

हे राजन्! हजारो मनुष्य ऐसे हुए है जो आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी रह कर कुल-सन्तति को न बढाते हुए भी दिव्य गति को प्राप्त हुए है।

जैन-शास्त्रानुसार स्वर्ग-प्राप्ति कोई बडी बात नही है, बडी बात तो मोक्ष प्राप्त करना है। ब्रह्मचर्य से ससार की सभी ऋद्धि मिल जाय, स्वर्ग का राज्य भी प्राप्त हो जाय, तब भी यदि इसके द्वारा मोक्ष प्राप्त न हो सकता होता तो जैन-शास्त्र इसे धर्म का अग न मानते, क्योंकि जैनशास्त्र उसी वस्तु को उपयोगी और महत्व की मानते है, जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त हो। लेकिन उक्त प्रमाण जिन ग्रन्थो के है, वे ग्रन्थ स्वर्ग को ही अन्तिम ध्येय मानते है। फिर भी ऊपर दिये हुए श्लोको मे से पहला श्लोक दूसरे श्लोक से अप्रामाणिक ठहरता है।

तपो वै ब्रह्मचर्यम् ।

ब्रह्मचर्य ही तप है ।

गीता मे भी ब्रह्मचर्य को तप माना है। उसमे कहा है–

ब्रह्मचर्यमहिसा च, शारीर तप उच्यते ।

अर्थात् ब्रह्मचर्य और अहिसा शरीर का उत्तम तप है।

इसी प्रकार अन्य ग्रन्थकारो ने भी ब्रह्मचर्य को उत्तम तप माना है।

५–ब्रह्मचर्य से पारलौकिक लाभ

पारलौकिक लाभ का ब्रह्मचर्य एक प्रधान साधन है। ब्रह्मचर्य से आत्मा परलोक सम्बन्धी सभी सुखो को प्राप्त कर सकता है। प्रश्नव्याकरण सूत्र मे कहा गया है–

अज्जव साहुजणाचरिय मोक्खमग्ग विसुद्ध सिद्धि गइनिलय सासयवव्वावाह मपुणाब्भव पसत्थ सोम सुभ सिवममक्खयकर । जइवरसारक्खिय सुचरिय सुभासिय नवरिमुणिवरे हि महापुरिसधीरसूरधम्मियधिइमताणा य सया विसुद्ध भव्व भव्वजणाणुचिण्णा निस्सकिय निब्भय नित्तुस निरायास ।

'ब्रह्मचर्य' अन्त करण को पवित्र एव स्थिर रखने वाला है, साधुजनो से सेवित है, मोक्ष का मार्ग है और सिद्धगति का गृह है, शाश्वत है, बाधा-रहित है, पुनर्जन्म को नष्ट करने के कारण अपुनर्भव है, प्रशस्त है, रागादि का अभाव करने से सौम्य है, सुख-स्वरूप होने से शिव है, दु ख सुखादि द्वन्द्वो से रहित होने से अचल है, अक्षय तथा अक्षत है, मुनियो द्वारा सुरक्षित एव प्रचारित है, भव्य है, भव्यजनो द्वारा आचरित है, शङ्का-रहित है, निर्भयता का देने वाला, विशुद्ध तथा झझटो से दूर रखने वाला एव खेद और अभिमान को नष्ट करने वाला है।

प्रश्नव्याकरण सूत्र मे आगे कहा है–

जम्मि य आराहियम्मि आराहिय वयमिण सव्व । सील त्तवो य विणओ य सजमोय य खत्ती गुत्ती मुत्ति तहेव इहलोइय पारलोइय जसेय कित्ती य पच्चओ य ।

'ब्रह्मचर्य की आराधना से सभी व्रत आराधित होते है। तप, शील, विनय, सयम, क्षमा, गुप्ति और मुक्ति सिद्ध होती है तथा इस लोक और परलोक मे यश-कीर्ति की विजय-पताका फहराती है।'

अन्य ग्रन्थकार भी ब्रह्मचर्य से परलोक सम्बन्धी लाभ बताते हुए कहते है–

समुद्रतरणे यद्वत् उपायो नौ प्रकीर्तित ।
ससारतरणे यद्वत् ब्रह्मचर्य्य प्रकीर्तितम् ।।

–स्मृति ।

समुद्र से पार जाने के लिए, जिस प्रकार नौका श्रेष्ठ-साधन है, उसी प्रकार ससार से तरने के लिए ब्रह्मचर्य उत्कृष्ट साधन है।

ग्रन्थकारो ने यज्ञ भी ब्रह्मचर्य को ही माना है। जैसे–

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव ।

(छान्दोग्योपदनिशद्)

'जिसे यज्ञ कहते है वह ब्रह्मचर्य ही है।'

ससार-बन्धन से छूटकर, मोक्ष-प्राप्ति के लिए चारित्र धर्म वताते हुए भगवान् ने जिन पाँच महाव्रतो का उपदेश दिया है उनमे ब्रह्मचर्य चौथा महाव्रत है। ब्रह्मचर्य के विना, चारित्र-धर्म का पूर्णरूपेण पालन नही हो सकता। आत्मा को ससार-बन्धन से छुडा कर, मोक्ष दिलाने वाले चारित्र-धर्म का ब्रह्मचर्य एक प्रधान और आवश्यक अग है। ब्रह्मचर्य के बिना न तो अब तक कोई मुक्त हुआ ही है, न हो ही सकता है। सिद्धात्माओ को सिद्ध गति प्राप्त कराने वाला यह ब्रह्मचर्य ही है। इस प्रकार पारलौकिक लाभ का ब्रह्मचर्य एक प्रधान साधन है।

६–ब्रह्मचर्य मे इहलौकिक लाभ

ब्रह्मचर्य से पारलौकिक ही नही, इहलौकिक लाभ भी है। ऊपर वताया जा चुका है कि ब्रह्मचर्य से स्वास्थ्य अच्छा रहता है। स्वास्थ्य अच्छा रहने से ही इह-लौकिक कार्य सुचारु-रूप से सम्पादन हो सकते है।

सासारिक-जीवन मे, शरीर स्वस्थ, सुन्दर, वलवान् एव चिरायु रहने की, विद्या की, धन की, कर्त्तव्य-दृढता की और यशादि की अभिलाषाएँ पूर्ण होती है। प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि ने ब्रह्मचर्य की प्रशसा करते हुए कहा है–

चिरायुष सुसस्थाना दृढसहनना नरा ।
तेजस्विनो महावीर्या भवेयुर्ब्रह्मचर्यत ।।

ब्रह्मचर्य से शरीर चिरायु, सुन्दर, दृढ-कर्त्तव्य तेजपूर्ण और पराक्रमी होता है।

वैद्यक ग्रन्थो मे भी कहा गया है–

ब्रह्मचर्य पर ज्ञान ब्रह्मचर्य पर बल ।
ब्रह्मचर्यमयो ह्यात्मा ब्रह्मचर्येव तिहति ।।

'ब्रह्मचर्य ही सब से उत्तम ज्ञान है, अपरिमित बल है, यह आत्मा निश्चय रूप से ब्रह्मचर्यमय है और ब्रह्मचर्य से ही शरीर मे ठहरा हुआ है।'

इन प्रमाणो से यह बात भलीभाँति सिद्ध हो जाती है कि ब्रह्मचर्य से शरीर सुन्दर भी रहता है, बलवान् भी रहता है, दीर्घजीवी भी होता है और यश-कीर्ति भी प्राप्त होती है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य, इहलौकिक सुखो का भी साधन है। लौकिक वैभव, विद्या, धन आदि तभी प्राप्त होते है, जब शरीर स्वस्थ हो और उसमे वल तथा साहस हो। ब्रह्मचर्य से शरीर स्वस्थ रहता है और शरीर मे वल तथा साहस भी रहता है।

विद्वानो का मत है कि ब्रह्मचर्य के बिना विद्या प्राप्त नही होती। विद्या-प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य का होना आवश्यक है। अथर्ववेद मे कहा है–

ब्रह्मचर्येण विद्या ।

'ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्त होती है।'

विदुर नीति मे कहा है–

विद्यार्थ ब्रह्मचारी स्यात् ।

'यदि विद्या के इच्छुक हो तो ब्रह्मचारी बनो।'

तात्पर्य यह कि ब्रह्मचर्य, लौकिक और लोकोत्तर, दोनो ही सुखो का प्रधान साधन है। इसकी पूर्ण-रूपेण प्रशसा करना तो समुद्र को हाथो के सहारे तैरने का साहस करना है।

७–ब्रह्मचर्य पर अपवाद

कुछ लोगो का कथन है कि पूर्ण ब्रह्मचारी को मोक्ष या स्वर्ग प्राप्त नही होता क्योंकि पूर्ण ब्रह्मचारी नि सतान रहते है और–

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ।

'पुत्रहीन की गति नही होती और स्वर्ग तो कभी भी नही मिलता है।'

इस श्लोक से पूर्ण ब्रह्मचारी को स्वर्ग-मोक्ष प्राप्ति रो वचित बताया जाता है, लेकिन इस श्लोक को खण्डन करने वाला दूसरा यह प्रमाण भी है–

स्वर्गे गच्छन्ति ते सर्वे ये केचिद् ब्रह्मचारिण ।

'जितने भी ब्रह्मचारी है, वे सब स्वर्ग को जाते है' और भी कहा है कि–

अनेकानि सहस्त्राणि, कुमारब्रह्मचारिणाम् ।
दिव गतानि राजेन्द्र, अकृत्वा कुलसन्ततिम् ।।

हे राजन्! हजारो मनुष्य ऐसे हुए है जो आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी रह कर कुल-सन्तति को न बढाते हुए भी दिव्य गति को प्राप्त हुए है।

जैन-शास्त्रानुसार स्वर्ग-प्राप्ति कोई बडी बात नही है, बडी बात तो मोक्ष प्राप्त करना है। ब्रह्मचर्य से ससार की सभी ऋद्धि मिल जाय, स्वर्ग का राज्य भी प्राप्त हो जाय, तब भी यदि इसके द्वारा मोक्ष प्राप्त न हो सकता होता तो जैन-शास्त्र इसे धर्म का अग न मानते, क्योंकि जैनशास्त्र उसी वस्तु को उपयोगी और महत्त्व की मानते है, जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त हो। लेकिन उक्त प्रमाण जिन ग्रन्थो के है, वे ग्रन्थ स्वर्ग को ही अन्तिम ध्येय मानते है। फिर भी ऊपर दिये हुए श्लोको मे से पहला श्लोक दूसरे श्लोक से अप्रामाणिक ठहरता है।

■

❏ उपाध्याय कविरत्न श्री अमर मुनि

धर्म का अन्तर्हृदय

मानव जीवन एक ऐसा जीवन है, जिसका कोई भौतिक मूल्य नही आका जा सकता। बाहर मे उसका एक रूप दिखाई देता है, उसके अनुसार वह हड्डी, मॉस और मज्जा आदि का एक ढाँचा है, गोरी या काली चमडी से ढँका है, कुछ विशिष्ट प्रकार का रग-रूप है, आकार-प्रकार है, किन्तु यही सब मनुष्य नही है। ऑखो से जो दिखाई दे रहा है, वह तो किवल मिट्टी का एक खिलौना है, एक ढॉचा है, आखिर कोई न कोई रूप तो इस भौतिक शरीर का होता ही। भौतिक तत्त्व मिलकर मनुष्य के रूप मे दृश्य हो गए। ऑखे क्या देखती है? वे मानव के शरीर से सम्बन्धित भौतिक रूप को ही देख पाती हैं। अन्तर की गहराई मे अदृश्य को देखने की क्षमता ऑखो मे नही है। ये चर्मचक्षु मनुष्य के आन्तरिक स्वरूप का दर्शन और परिचय नही करा सकते।

शास्त्र मे ज्ञान दो प्रकार के बताए गए है, एक ऐन्द्रिय और दूसरा अतीन्द्रिय। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि विषयो का ज्ञान चक्षु आदि इन्द्रियो के द्वारा होता है, जो भौतिक है, उसे भौतिक इन्द्रियॉ देख सकती है। पर, इस भौतिक देह के भीतर, जो चैतन्य का विराट रूप छिपा है, जो एक अखण्ड लौ जल रही है, जो परम देवता कण-कण मे समाया हुआ है, उस अतीन्द्रिय को देखने की शक्ति ऑखो मे कहॉ है? मनुष्य का जो सही रूप है, वह इतना ही नही है कि वह शरीर से सुन्दर है और सुगठित है। एक आकृति है, जो सजी-सँवरी है। यदि यही कुछ मनुष्य होता, तो रावण, दुर्योधन और जरासध भी मनुष्य थे। उनका शरीर भी वडा वलिष्ठ था, सुन्दर था। पर, ससार ने उन्हे वडे लोगो मे गिनकर भी सत्पुरुष नही माना, श्रेष्ठ मनुष्य नही कहा। पुराणो मे रावण को राक्षस बताया गया है। दुर्योधन और जरासध को भी उन्होने मानव के रूप मे नही गिना। ऐसा क्यो? इसका कारण है, उनमे आत्मिक सौन्दर्य का अभाव। देह कितनी ही सुन्दर हो, पर, जब तक उसके अन्दर सोयी हुई आत्मा नही जागती है, आत्मा का दिव्य रूप नही चमकता है, तब तक वह देह सिर्फ मिट्टी का घरौदा भर है, वह सूना मन्दिर मात्र है, जिसमे अब तक देवता की योग्य प्रतिष्ठा नही हुई है।

इस देह के भीतर आत्मा अँगडाई भर रही है या नही? जागृति की लहर उठ रही है या नही? यही हमारी इन्सानियत का पैमाना है। हमारे दर्शन की भाषा मे देवता वे ही नही हैं, जो स्वर्ग मे रहते है, वल्कि इस धरती पर भी देवता विचरण किया करते है, मनुष्य के रूप मे भी देव हमारे सामने घूमते रहते है। राक्षस और दैत्य वे ही नही है, जो जगलो, पहाडो मे रहते हैं और रात्रि के गहन अन्धकार मे इधर-उधर चक्कर लगाते फिरते है, बल्कि मनुष्य की सुन्दर देह मे भी वहुत से राक्षस और पिशाच छुपे बैठे है। नगरो और शहरो की सभ्यता एव एकाचौध मे रहने वाला ही इन्सान नही है, हमारी इन्सानियत की परिभाषा कुछ और है। तत्त्व की भाषा मे, इन्सान वह है, जो अन्दर की आत्मा को देखता है और उसकी पूजा करता है, उसकी आवाज सुनता है और उसकी बताई राह पर चलता है।

'जन' और 'जिन'

जिस हृदय मे करुणा है, प्रेम है परमार्थ के सकल्प है और परोपकार की भावनाएँ है, वही इन्सान का हृदय है। आप अपने स्वार्थो की सडक पर सरपट दौडे चले जा रहे है, पर चलते-चलते कही परमार्थ का चौराहा आ जाए, तो वहॉ रूक सकते है या नही? अपने भोग-विलास की काली घटाओ मे घिरे बैठे है, पर क्या कभी इन काले वादलो के बीच परोपकार और त्याग की बिजली भी चमक पाती है या नही? यदि आपकी इन्सानियत मरी नहीं है, तो वह ज्योति अवश्य ही जलती होगी।

आपको मालूम है कि हमारा ईश्वर कहा रहता है? वह कही आकाश के किसी वैकुण्ठ मे नही बैठा है, बल्कि वह आपके मन के सिहासन पर बैठा है, हृदय मन्दिर मे विराजमान है वह। जब बाहर की ऑख मूदकर अन्तर मे देखेगे, तो उसकी ज्योति जगमगाती हुई पाएँगे, ईश्वर को विराजमान हुआ देखेगे।

ईश्वर और मनुष्य अलग-अलग नही है। आत्मा और परमात्मा सर्वथा भिन्न दो तत्त्व नही है। नर और नारायण दो भिन्न शक्तियॉ नही है। जन और जिन मे कोई अन्तर नही है, कोई बहुत बडा भेद नही है। आध्यात्मिक दर्शन की भाषा मे कहा जाए, तो सोया हुआ ईश्वर जीव है, ससारी प्राणी है, और जागृत जीव ईश्वर है, परमात्मा है। मोहमाया की निद्रा मे मनुष्य जब तक अन्धा हो रहा हो, वह जन है, और जब जन की अनादि काल से समागत मोह-तन्द्रा टूट गई, जन प्रबुद्ध हो उठा, तो वही जिन बन गया। जीव और जिन मे, और क्या अन्तर है? जो कर्म-लिप्त दशा मे अशुद्ध जीव है, कर्म-मुक्त दशा मे वही शुद्ध जीव जिन है।

'कर्मबद्धो भवेज्जीव कर्ममुक्तस्तथा जिन '

बाहर मे बिन्दु की सीमाएँ है, एक छोटा-सा दायरा है। पर, अन्तर मे वही विराट् सिन्धु है, उसमे अनन्त सागर हिलोरे मार रहा है, उसकी कोई सीमा नही, कोई किनारा नही। एक आचार्य ने कहा है —

''दिक्कालाद्यनवच्छिन्नाऽनन्त-चिन्मात्रमूर्तये।
स्वानुभूत्येकमानाय, नम शान्ताय तेजसे।''

जब तक हमारी दृष्टि देश-काल की क्षुद्र सीमाओ मे बँधी हुई है, तब तक वह अनन्त सत्य के दर्शन नही कर पाती और जब वह देश-काल की सीमाओ को तोड देती है, तो उसे अन्दर मे अनन्त, अखण्ड, देशातीत एव कालातीत चैतन्य ज्योति के दर्शन होते है। एक दिव्य, शान्त, तेज का विराट् पुज परिलक्षित हो जाता है। आत्मा की अनन्त शक्तियॉ प्रकाशमान हो जाती है। हर साधक उसी शान्त तैजस रूप को देखना चाहता है, प्रकट करना चाहता है। साधक के लिए वही नमस्करणीय उपास्य है।

चैतन्य कैसे जगे?

हमे इस बात पर भी विचार करना है कि जिस विराट् चेतना को हम जगाने की बात कहते है, उस जागरण की प्रक्रिया क्या है? उस साधना का विशुद्ध मार्ग क्या है? हमारे जो ये क्रियाकाण्ड चल रहे है, बाह्य तपस्याएँ चल रही है, क्या उससे ही वह अन्तर का चैतन्य जाग उठेगा? केवल बाह्य साधना को पकड कर चलने से तो सिर्फ बाहर और बाहर ही घूमते रहना होता है, अन्दर मे पहुँचने का मार्ग एक दूसरा है और उसे अवश्य टटोलना चाहिए। आन्तरिक साधना के मार्ग से ही अन्तर के चैतन्य को जगाया जा सकता है। उसके लिए आन्तरिक तप और साधना की जरूरत है। हृदय मे कभी राग की मोहक लहरे उठती है, तो कभी द्वेष की ज्वाला दहक उठती है। वासना और विकार के ऑधी-तूफान भी आते है। इन सब द्वन्द्वो को शान्त करना हो अन्तर की साधना है। ऑधी और तूफान से अन्तर का महासागर क्षुब्ध न हो, समभाव की जो लौ जल रही है, वह बुझने नही पाए, बस यही चैतन्य देव को जगाने की साधना है। यही हमारा समत्व योग है। समता आत्मा की मूल स्थिति है, वास्तविक रूप है। जब यह वास्तविक रूप जग जाता है, तो जन मे जिनत्व प्रकट हो जाता है। नर से नारायण बनते फिर क्या देर लगती है? इसलिए अन्तर की साधना का मतलब हुआ समता की साधना। राग-द्वेष की विजय का अभियान।

क्या कर्म ने बॉध रखा है?

साधको के मुह से बहुधा एक बात सुनने मे आती है कि हम क्या करे? कर्मो ने इतना जकड रखा है कि उनसे छुटकारा नही हो पा रहा है। इसका अर्थ है कि कर्मो ने बेचारे साधक को बाँध रखा है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या कर्म कोई रस्सी है, सॉकल है, जिसने आपको बॉध लिया है? यह प्रश्न गहराई से विचार करने का है कि कर्मो ने आपको बॉध रखा है या आपने कर्मो को बॉध रखा है? यदि कर्मो ने आपको बॉध रखा है, तो फिर आपकी दासता का निर्णय कर्मो के हाथ मे होगा और तब मुक्ति की बात तो छोड ही देना चाहिए। ऐसी स्थिति मे जप, तप और आत्मशुद्धि की अन्य क्रियाएँ सब निरर्थक है। जब सत्ता कर्मो के हाथ मे सौप दी है, तो उनके ही भरोसे रहना चाहिए। कोई प्रयत्न करने की क्या आवश्यकता है? वे जब तक चाहेगे, आपको बॉधे रखेगे और जब मुक्त करना चाहेगे, आपको मुक्त कर देगे। आप उनके गुलाम है। आप का स्वतन्त्र कर्तृत्व कुछ अर्थ नही रखता। किन्तु, जव यह माना जाता है कि आपने कर्मो को बॉध रखा है, तो वात कुछ और तरह से विचारन की हो जाती हे। इस से यह तो सिद्ध हो जाता है कि कर्म की ताकत से आपकी ताकत ज्यादा है। वॅधने वाला गुलाम

होता है, बॉधने वाला मालिक। गुलाम से मालिक बडा होता है। तो, जब हमने कर्म को बॉधा है, तो फिर उन्हे छोडने की शक्ति किसके पास है, जिसने बॉधा है उसी के पास ही है न ? स्पष्ट है, कर्मो को छोडने की शक्ति आत्मा के पास ही है, चैतन्य के पास ही है, मतलब यह कि आपके अपने हाथ मे ही है। हमारा अज्ञान इस शक्ति को समझने नही देता है, अपने आपको पहचानने ही नही देता है, यही तो हमारी सबसे वडी दुर्बलता है।

अध्यात्म-दर्शन ने हमे स्पष्ट बतला दिया है कि जो भी कर्म है, वे सब तुमने बॉधे है, फलत तुम्ही उन्हे छोड भी सकते हो – *'बधपमोक्खो तुज्ज अज्झत्थेव'*– बधन और मुक्ति हर व्यक्ति के अपने अन्तर मे ही है।

बन्धन क्या है ?

कर्म के प्रसग मे हमे एक बात और विचार लेनी चाहिए कि कर्म क्या है और जो बन्धन होता है, वह क्यो होता है ?

अन्य पुद्‌गलो की तरह कर्म भी अचेतन जड-पुद्‌गल है, परमाणु पिण्ड है। कुछ पुद्‌गल अष्टस्पर्शी होते है, कुछ चतु स्पर्शी। कर्म चतु स्पर्शी पुद्‌गल है। आत्मा के साथ चिपकने या बॅधने की स्वतन्त्र शक्ति उनमे नही है, न वे किसी दूसरे को बॉध सकते है और न स्वय ही किसी के साथ बॅध सकते है।

हमारी मन, वचन आदि की क्रियाएँ प्रतिक्षण चलती रहती है। खाना-पीना, हिलना-डोलना, बोलना आदि कुछ क्रियाएँ तो महापुरुषो के जीवन मे भी चलती रही है। जीवन मे क्रियाएँ कभी बन्द नही होती। यदि हर क्रिया के साथ कर्म बन्ध होता हो, तब तो मानव की मुक्ति का कभी प्रश्न ही नही उठेगा। चूकि जब तक जीवन है, ससार है, तब तक क्रिया बन्द नही होती, पूर्ण अक्रियदशा (अकर्म स्थिति) आती नही। और जब तक क्रिया बन्द नही होती, तब तक कर्म बॅधते रहेगे, तब तो फिर यह कर्म एक ऐसा सरोवर हुआ, जिसका पानी कभी सूख ही नही सकता, कभी निकाला ही नही जा सकता। ऐसी स्थिति मे मोक्ष क्या होगा ? और कैसे होगा ?

सिद्धान्त यह है कि क्रिया करते हुए कर्मवध होता भी है, और नही भी। जव क्रिया के साथ राग-द्वेष का सम्मिश्रण होता है, प्रवृत्ति मे आसक्ति की चिकनाई होती है, तब जो पुद्‌गल आत्मा के ऊपर चिपकते है, वे कर्म रूप मे परिणत हो जाते है। जिस-जिस शुभ या अशुभ विचार और अध्यवसाय के साथ वे कर्म-ग्रहण होते है, उसी रूप मे वे परिणत होते चले जाते है। विचारो के अनुसार उनकी अलग-अलग रूप मे परिणति होती है। कोई ज्ञानावरण रूप मे, तो कोई दर्शनावरण आदि के रूप मे। किन्तु जब आत्मा मे राग-द्वेष की भावना नही होती, प्रवृत्ति होती है, पर, आसक्ति नही होती, तव कर्म-क्रिया करते हुए भी कर्म-बंध नही होता।

भगवान् महावीर से जब पूछा गया कि इस जीवन-यात्रा को किस प्रकार चलाएँ कि कर्म करते हुए, खाते-पीते, सोते-बैठते हुए भी कर्म बन्ध न हो, तो उन्होने कहा –

''जय चरे जय चिट्ठे, जय मासे जय सए।
जय भुजन्तो भासन्तो, पावकम्म न बधई।''

–दशवैकालिक, ४, ८

तुम सावधानी से चलो, खडे रहो तब भी सावधान रहो, सोते-बैठते भी प्रमाद न करो। भोजन करते और बोलते हुए भी उपयोग रखो कि कही मन में राग और आक्रोश की लहर न उठ जाए। यदि जीवन मे इतनी जागृति है, सावधानी है, अनासक्ति है, तो फिर कही भी विचरण करो, कोई भी क्रिया करते रहो, पापकर्म का बँध नही होगा।

इसका मतलब यह हुआ कि कर्म-बध का मूल कारण प्रवृत्ति नही, बल्कि राग-द्वेष की वृत्ति है। राग-द्वेष का गीलापन जब विचारो मे होता है, तब कर्म की मिट्टी का गोला आत्मा की दीवार पर चिपक जाता है। यदि विचारो मे सूखापन है, निस्पृह और अनासक्त भाव है, तो सूखे गोले की तरह कर्म की मिट्टी आत्मा पर चिपकेगी ही नहीं।

वीतरागता ही जिनत्व है

एक बार हम विहार काल मे एक आश्रम में ठहरे हुए थे। एक गृहस्थ आया और गीता पढने लगा। आश्रम तो था ही। इतने मे एक सन्यासी आया, और बोला - ''पढी गीता, तो घर काहे को कीता ?''

मैने पूछा – ''गीता और घर मे परस्पर कुछ वैर है क्या ? यदि वास्तव मे वैर है, तब तो गीता के उपदेष्टा श्रीकृष्ण का भी घर से बैर होना चाहिए और तब तो गृहस्थ को तो छोडिए, आप साधुओ को भी गीता के उपदेश से मुक्ति नही होगी।''

साधु बोला – हमने तो घर छोड दिया है।

मैने कहा – घर क्या छोडा है, एक साधारण घोसला छोडा, तो दूसरे कई अच्छे विशाल घोसले वसा लिए है।

कही मन्दिर, कही मठ और कही आश्रम खडे हो गए। फिर घर कहाँ छूटा है?

सन्यासी ने कहा – हमने इन सब का मोह छोड रखा है।

मैंने कहा – हाँ, यह बात कहिए। असली बात मोह छोडने की है। घर मे रहकर भी यदि कोई मोह छोड सकता है, तो बेडा पार है। घर बन्धन नही है, घर का मोह बन्धन है। कभी-कभी घर छोडने पर भी घर का मोह नही छूटता है और कभी घर नही छोडने पर भी, घर मे रहते हुए भी, घर का मोह छूट जाता है।

बात यह है कि जब मोह और आसक्ति छूट जाती है, तो फिर कर्म मे ममत्त्व नही रहता। अहकार नही रहता। उसके प्रतिफल की वासना नही रहती। जो भी कर्म, कर्तव्य करना है, वह सिर्फ निष्काम ओर निरपेक्ष भाव से करना चाहिए। उसमे त्याग और समर्पण का उच्च आदर्श रहना चाहिए। सच्चा निर्मल, निष्काम कर्मयोगी जल मे कमल की तरह ससार से निर्लिप्त रहता है। वह अपने मुक्त जीवन का सुख और आनन्द स्वय भी उठाता है और ससार को भी बॉटता जाता है। मनुष्यता का यह जो दिव्य रूप है, वही वास्तव मे नर से नारायण का रूप है। इसी भूमिका पर जन मे जिनत्व का दिव्य भाव प्रकट होता है। इन्सान के सच्चे रूप का दर्शन इसी भूमिका पर होता है। इस माँसपिण्ड के भीतर जो सुप्त ईश्वर और परमात्म तत्त्व है, वह यही आकर जागृत होता है।

■

❑ बनेचन्द मालू

आदमी नही था

किसी बेचारे का एक्सीडेट हो गया।
कार तो भाग गई पर लोगो को भी नही आई दया।
खून से लथपथ पडा था सडक पर।
कोई पास के अस्पताल नही ले जा रहा था,
क्योकि पुलिस का था डर।
सवालो का जवाब देना होगा।
कैसे हुआ, किसने देखा, कहना होगा।
बाद मे थाना भी जाना होगा, कोर्ट मे देनी होगी गवाही।
इस तरह घसीटा जाना पडेगा, क्यो ले ऐसी वाह वाही।
समय बीत गया, बेचारा ढेर हो गया।
किसी नवयुवती का सिदूर, नन्हे बच्चो की आशा,
चिर निद्रा मे सो गया।
घर मे कोहराम मच गया, मातम छा गया।
हसी-खुशी भरे जीवन को काल-चक्र खा गया।
आने जाने वाले सान्त्वना दे रहे थे।
पूछ-पूछ कर घटना का जायजा ले रहे थे।
एक औरत अफसोस जता रही थी,
कह रही थी व्यस्त सडक थी भीड तो बहुत थी।
फिर पडा क्यो रहा, अस्पताल भी पास मे वही था।
मैंने कहा भीड तो बहुत थी,
अस्पताल भी पास मे वही था,
पर भीड मे कोई आदमी नही था।

नवतत्त्व

जैन दर्शन मे पदार्थ या वस्तु को तत्त्व कहा गया है। लाक्षणिक अर्थ मे वस्तु स्वरूप (तत् + व) होने का साथ 'सत् से युक्त तत्त्व के तीन लक्षण है– उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य।' अर्थात् उत्पत्ति, नाश एव ध्रुव गुण धारण करने वाला तत्व है। यह तत्व (सत् सहित) अनादि एव अनन्त है। जो सर्वथा असत् है वह तत्व नही हो सकता। सार, भाव या रहस्य को भी तत्व का पर्यायवाची कह सकते है परन्तु वास्तव मे सद्भूत वस्तु को ही तत्व कहते है। तत्व नवीन पर्यायो की उत्पत्ति एव पुरानी अवस्था का विनाश होने पर भी अपने स्वभाव का त्याग नही करता।

आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मा ही मुख्य तत्व है जो पूर्ण एव शुद्ध अवस्था मे परमतत्व से विभूषित हो परमात्मा है और कर्मयुक्त होकर ससारी रूप मे विविध योनिया धारण करता है।

तत्व को कई रूपो मे वर्गीकृत एव विभाजित किया जा सकता है– प्रथम शैली–(१) जीव (२) अजीव।

द्वितीय शैली–(१) जीव (२) अजीव (३) आश्रव (४) सवर (५) वध (६) निर्जरा (७) मोक्ष। इसमे पुण्य और पाप इन दोनो को और जोड देने से नव तत्त्व वन जाता है।

तृतीय शैली–(१) जीव (२) अजीव (३) पुण्य (४) पाप (५) आश्रव (६) सवर (७) निर्जरा (८) वध (९) मोक्ष।

उपरोक्त वर्गीकरण मे भी जीव एव अजीव मुख्य तत्व है जो अन्य तत्वो के आधार है। जीव पुद्गल (अजीव) के सयोग-वियोग से विविध जन्म धारण करते हुए निरन्तर आत्मनिष्ठ होकर विकास की ओर वढता जाय तो परम और चरम तत्व मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। प्रथम शैली के विभाजन से यह ससार षटद्रव्यात्मक कहा जा सकता है –

जीव	अजीव
(१)	(२)
	धर्मास्तिकाय
	अधर्मास्तिकाय
	आकाशास्तिकाय
	पुद्गलास्तिकाय
	काल

द्वितीय शैली मे पुण्य एव पाप को स्वतन्त्र तत्व न मान कर आत्मा अर्थात् जीव के आश्रित माना है। अत तत्वो की सख्या सात ही रह जाती है। तृतीय शैली मे तत्व नव माने गये है। इसमे से जीव एव अजीव ये दो तत्व धर्मी है। अर्थात् आश्रव आदि तत्वो के आधार है। और शेष उनके धर्म है। इनको पुन तीन वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है –

ज्ञेय = जानने योग्य–जीव, अजीव। उपादेय = ग्रहण करने योग्य–सवर, निर्जरा, मोक्ष। हेय = त्याग करने योग्य–आश्रव, वध, पुण्य, पाप। उक्त तत्वो का सक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है –

१ जीव जीव का लक्षण उपयोग अर्थात् चेतना है। उपयोग के दो भेद है (१) साकारोपयोग (ज्ञान) और (२) निराकारोपयोग (दर्शन) अत जिसमे ज्ञान और दर्शन रूप उपयोग पाया जाय, वह जीव है।

जीव सुख-दु ख और अनुकूलता-प्रतिकूलता की अनुभूति करने मे सक्षम है। इसीलिए इसे चेतन कहा गया है। स्व पर का ज्ञान, विवेक आदि गुण अन्य पदार्थो मे नही पाये जाते है। जीव को सत्व, प्राणी, भूत, आत्मा आदि शब्दो से भी जानते है।

स्थावर जीव एकेन्द्रिय होते है अत उनके चर्म अर्थात् त्वचा रूप इन्द्रिय के अतिरिक्त इन्द्रियॉ नही होती। जो हमारी ऑखो से दिखाई नही देते, वे सूक्ष्म है और जो हमे दृष्टिगोचर होते है, वे बादर है। जिनको आहार, शरीर, भाषा आदि पर्याप्तियॉ पूर्ण प्राप्त हो वे पर्याप्त और जिन्हे प्राप्त न हो सके वे अपर्याप्त कहलाते है –

वनस्पतिकाय का विभाजन इस प्रकार है–
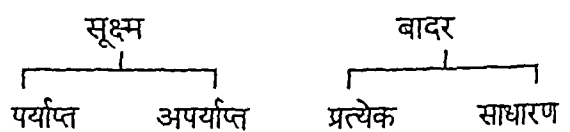
प्रत्येक–एक शरीर मे एक जीव हो।

साधारण–एक औदारिक शरीर मे अनन्त जीव एक साथ जन्म ले, आहार ले और श्वासोच्छ्वास करे। इनके अनेक प्रकार है– जैसे प्याज, आलू, रतालू, गाजर, अदरख आदि।

प्रत्येक वनस्पति के बारह भेद है–

१ रुक्खा (वृक्ष) दो प्रकार के होते है––

(क) एगट्ठिया = एक गुठली वाले, जैसे–आम, नीम, जामुन, नारियल आदि।

(ख) बहुविया = बहुबीजी जैसे अमरूद, अनार, अजीर, सीताफल आदि।

२ गुच्छा–बैगन, टीडोरी, तुलसी आदि।

३ गुम्मा (गुल्म)–गुलाब, जूही, चम्पा, मोगरा, मरवा आदि।

४ लया (लता)–पद्म लता, अशोकलता, नागलता।

५ वल्ली (वेल) तोरइ, तुम्बी, करेला, अगूर।

६ पव्वगा (गाठ मे बीज)–गन्ना, वेत आदि।

७ तणा (तृण)–दूब, कुश।

८ वलया (गोलाकार)– तमाल, नारियल, खजूर।

९ हरिया (हरी, काम वाली शाक भाजी)–मेथी, पालक, बथुआ।

१० जलरूहा (जल मे उत्पन्न होने वाली वनस्पति)–उत्पल, कमल, पुडरीक कमल, सिघाडा।

१२ कुहणा = पृथ्वी को फोडकर पैदा होनेवाली वनस्पति जैसे– भूफोडा आदि।

द्वीन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक के जीव त्रस कहलाते है। चूँकि ये जीव अपने हिताहित हेतु स्थान परिवर्तन करते है अत गतिशील है और त्रस कहे जाते है। त्रस के भेद इस प्रकार है–

१ द्वीन्द्रिय–स्पर्श (शरीर) एव रसन (जीभ) इन्द्रियो वाले जीव जैसे लट, शख, जोक आदि।

२ त्रीन्द्रिय–स्पर्श, रसन एव घ्राण इन्द्रियो से युक्त जीव जैसे–जू, लीख, कीडी, चीटी आदि।

३ चतुरीन्द्रिय–स्पर्श, रसन, घ्राण एव चक्षु इन्द्रियो वाले जीव जैसे मक्खी, मच्छर, बिच्छू, भवरा आदि।

४ पचेन्द्रिय–स्पर्श, रसन, घ्राण, चक्षु एव श्रोत्र इन पॉचो इन्द्रियो वाले जीव जैसे पशु-पक्षी, मनुष्य, नारक एव देवता।

एकेन्द्रिय से चतुरीन्द्रिय तक के जीव (तिर्यच) मन रहित होते है अत असज्ञी (अमनस्क) कहलाते है और पचेन्द्रिय तिर्यंच मन वाले होने से सज्ञी कहलाते है। इसी प्रकार गर्भज मनुष्य, औपपातिकदेव और नारक जीव भी मन वाले होने के कारण सज्ञी कहलाते है।

तिर्यच पचेन्द्रिय जीवो के पॉच प्रकार है–

१ **जलचर**–जल मे रहने वाले जीव जैसे मछली, कछुए, मगर, ग्राह।

२. स्थलचर

(क) ठोसखुर वाले (एगखुरा) घोडा, गधा।

(ख) दो खुर वाले (बिखुरा) भैस, बकरी, ऊँट।

(ग) कई खुर वाले (गडीपया) हाथी।

(घ) सण्णफया = नख वाले पजे जैसे सिंह, चीता, बिल्ली, कुत्ता।

३ **नभचर**–आकाश मे उडने वाले।

(क) चर्मपक्षी–झिल्लीदार पख। चिमगादड, भारड पक्षी।

(ख) रोमपक्षी–रोए के पख। चिडिया, कबूतर, मोर, तोता, मैना।

(ग) समुग्ग पक्षी–डिब्बे की तरह बद पख वाले।

(घ) वितत पक्षी–सदा पख खुले हुए।

समुग्ग पक्षी और वितत पक्षी अढाई द्वीप मे नही होते है।

४ **उर सरि सर्प (छाती के बल चलने वाली सर्प जाति)**

(क) अहि (अ) फण करने वाले–आशी विष, उग्र विष आदि।
(आ) फण नही करने वाले–दिव्वागा, गोणसा।

(ख) निगल सकने वाले–अजगर।

(ग) असालिया–गॉव या नगर का नाश करने वाले।

(घ) महोरग (अढाई द्वीप के बाहर)।

(ड) **भुजपरिसर्प**–भुजा से चलने वाले जैसे नेवला, चूहा, छिपकली आदि।

ज्ञातव्य है कि जैन दर्शन मे जीवो का वैज्ञानिक और विस्तृत वर्गीकरण किया गया है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवो मे वनस्पति के बारे मे वैज्ञानिक विश्लेषण के बाद आज सभी मानते है कि वनस्पति मे भी जान है परन्तु शताब्दियो पूर्व पेड-पौधो मे चेतना बताकर प्रभु महावीर ने हमे अहिंसा का महत्व बताया था। इसी प्रकार नारक जीवो के भेद, मनुष्य व देवता के भी भेद बताकर जीव का स्वरूप बताया गया है।

अजीव–

अजीव को जड और अचेतन भी कहते है। जो चेतना रहित है और सुख-दु ख की अनुभूति नही करता, उसे अजीव कहते है। इनमे मूर्त और भौतिक पदार्थ जैसे चूना, चॉदी, सोना, ईंट आदि और अमूर्त तथा अभौतिक पदार्थ जैसे काल, धर्मास्तिकाय आदि का समावेश हो जाता है।

अजीव के पॉच भेद है–

१ **पुद्‌गल**–जो स्पर्श, गध, रस एव वर्ण से युक्त हो और पूरण तथा गलन पर्यायो से युक्त हो, पुद्‌गल है। परस्पर मिलना, बिखरना, सडना, गलना आदि पुद्‌गल की क्रियाएँ है।

पुद्गल के चार भेद है–

स्कन्ध–परस्पर बद्ध प्रदेशो का समुदाय।

देश–स्कन्ध का एक भाग।

प्रदेश–स्कन्ध या देश से मिला हुआ द्रव्य का सूक्ष्म भाग।

परमाणु–पुद्गल का सूक्ष्मतम अश (परम+अणु) जिसका अन्य विभाग न किया जा सके।

अन्धकार, छाया, प्रकाश, शब्द आदि पुद्गल की अवस्थाएँ है। पुद्गल सदा गतिशील रहता है और जीव से मिलकर तद्नुसार गति प्रदान करता है। पुद्गल के चार धर्म है, जिसके निम्न भेद है—

स्पर्श (८) मृदु, कठिन, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध एव रुक्ष।

रस (५) तिक्त, कटु, अम्ल, मधुर, कषैला।

गध (२) सुगन्ध, दुर्गन्ध।

वर्ण (५) नील, पोत, शुक्ल, कृष्ण, लोहित।

२ **धर्मास्तिकाय**–जीव और पुद्गल द्रव्यो को गति करने मे सहायक द्रव्य को धर्मास्तिकाय कहा जाता है। यह गति का प्रेरक नही, सहायक तत्व है। जिस प्रकार मछली के लिए जल सहकारी है उसी प्रकार धर्मास्तिकाय है। इसके तीन भेद है स्कध, देश और प्रदेश।

३ **अधर्मास्तिकाय**–जीव और पुद्गल को गतिशीलता से स्थिर होने या ठहरने मे सहायक द्रव्य को अधर्मास्तिकाय कहते है। इसके भी तीन भेद है–स्कध, देश और प्रदेश।

४ **आकाशास्तिकाय**–जो सब द्रव्यो को अवकाश या आकाश देता है। इसके दो भेद लोकाकाश और अलोकाकाश है। लोकाकाश मे सभी द्रव्य है परन्तु अलोकाकाश मे केवल आकाश द्रव्य है। इसको भी स्कध, देश और प्रदेश मे विभाजित किया जा सकता है।

५ **काल**–जो द्रव्यो की वर्तना (परिवर्तन) का सहायक है, उसे काल द्रव्य कहते है। नए, पुराने, बचपन, जवानी आदि की पहिचान काल द्रव्य से होती है। काल अस्ति (सत्ता) तो है परन्तु बहुप्रदेशी न होने के कारण 'काय' रहित है अर्थात् अप्रदेशी है।

जैनागमो मे काल को विशेष रूप से निरूपित किया गया हे। जहॉ आज सख्याऍ दस शख तक मानी जाती है, जैन शास्त्रो मे उससे बहुत आगे तक वर्णित है। काल की सूक्ष्मतम इकाई 'समय' को माना गया है और ऑख झपकने मे असख्यात समय व्यतीत होते है। समय से लेकर वर्ष तक काल की निम्नलिखित पर्याये है –

(समय = सूक्ष्मतम इकाई)

४४४६	आवलिका	=	१ श्वासोच्छ्वास
७	श्वासोच्छ्वास	=	१ स्तोक
७	स्तोक	=	१ लव
७७	लव	=	१ मुहूर्त

(१, ६७, ७७, २१६ आवलिका = १ मुहूर्त)

३०	मुहूर्त	=	१ दिन रात
१५	दिन रात	=	१ पक्ष
२	पक्ष	=	१ माह
२	माह	=	१ ऋतु
३	ऋतुऍं	=	१ अयन
२	अयन	=	१ वर्ष

पुण्य

जो आत्मा को शुभ की ओर ले जाए, पवित्र करे और सुख प्राप्ति का सहायक हो, पुण्य है। पुण्य शुभ योग से बन्धता है। पुण्य का फल मधुर है। इसे बॉधना कठिन है और भोगना सहज है।

आत्मा की वृत्तियॉ अगणित है। अत पुण्य-पाप के कारण भी अनेक है। शुभ प्रवृत्ति पुण्य का और अशुभ-प्रवृति पाप का कारण बनती है। पुण्य नौ प्रकार से वॉधा जाता है और ४२ प्रकार से भोगा जाता है।

पुण्य के नौ भेद

१ अन्न पुण्य — अन्न दान।
२ पान पुण्य — जल या पेय दान।
३ लयन पुण्य — स्थान या जगह देना।
४ शयन पुण्य — शय्या, पाट, पाटला देना।
५ वस्त्र पुण्य — वस्त्र दान।
६ मन पुण्य — शुभ चिन्तन, गुणी जन को देख प्रसन्नता एव मन का शुभ योग प्रवर्तन।
७. वचन पुण्य — शुभ-हितकारी वचन, मधुर वचन।
८ काय पुण्य — शरीर द्वारा जीवो की सेवा आदि करना।
९ नमस्कार पुण्य — गुणीजनो, गुरुजनो आदि का विनय व नमन।

पुण्य कर्म भोगने की ४२ प्रकृतियाँ

वेदनीय के उदय से (१) साता वेदनीय = सुख

आयुकर्म के उदय से (३) देव-मनुष्य—तिर्यच आयु

गौत्रकर्म के उदय से (१) उच्चगौत्र

नामकर्म के उदय से (३७)

गति/जाति (३) मनुष्य गति, देव गति व पचेन्द्रिय जाति।

शरीर (५) औदारिक-औदारिक (उदर) शरीर मनुष्य, पशु-पक्षी आदि।

वैक्रिय–नानारूप शरीर बनाना– देवता, नारकी, जीव लब्धिधारी मनुष्य एव तिर्यञ्च भी।

आहारक–शरीर मे से शरीराकार सूक्ष्म शरीर निकालना।

तेजस–तपोवल से तेजोलेश्या निकालने की शक्ति।

कार्मण–अष्ट कर्मो के विकार से सबधित शरीर।

ज्ञातव्य है कि तेजस और कार्मण शरीरों का सम्बन्ध आत्मा के साथ अनादिकाल से है और मोक्ष पाये बिना अलग नहीं होते।

अग, उपाग, अगोपाग (३) अग–भुजा, पैर, सिर, पीठ आदि।

उपाग–अगुली आदि।

अगोपाग–अगुलियो की पर्व रेखाएँ।

सहनन (१) वज्र ऋषभनाराच–विशेष आकार युक्त मजबूत अस्थि रचना।

सस्थान (१) सम-चतुरस्त्र–पर्यकासनवत् सस्थान युक्त शरीर शुभवर्ण, गन्ध रस स्पर्श, युक्त शरीर (४)

आनपूर्वी (२) देवानुपूर्वी–कर्मक्षय के अतिम दौर में जीव को अन्यगति की ओर आकृष्ट होते हुए वचा कर देवगति मे ले जाना।

मनुष्यानुपूर्वी–विग्रह गति के समय पुन मनुष्य गति मे खीचने वाले कर्म पुद्गल।

शुभ विहायोगति (१) हंस, हाथी, वृषभ की चाल।

त्रस दशक (१०) त्रस नाम, बादर नाम, पर्याप्त नाम, प्रत्येक नाम, स्थिर नाम, शुभ नाम, सुभग नाम, सुस्वर नाम, आदेय नाम एव यश कीर्ति नाम।

३१ अगुरुलघु ३२ पराघात नाम (अजेय पराक्रम) ३३ आतप नाम ३४ उद्योत नाम ३५ श्वासोच्छ्वास नाम ३६ निर्माण नाम ३७ तीर्थकर नाम।

पाप–

जो आत्मा को पतन की ओर ले जाए, मलीन करे और जिसके कारण दु ख की प्राप्ति हो, पाप कहते है। अशुभ योगो से बन्ध कर पाप कटु फल प्रदायक है।

पाप उपार्जन के अठारह कारण है =

१ प्राणातिपात–जीवो की हिसा या उन्हे दु ख देना।

२ मृषावाद–असत्य भाषण।

३ अदत्तादान–स्वामी की आज्ञा बिना वस्तु लेना।

४ अब्रह्मचर्य–कुशील सेवन।

५ परिग्रह–धन लिप्सा ममत्व।

६ क्रोध–कोप एव गुस्सा।

७ मान–अहंकार जिसके कारण चित्त की कोमलता और विनय लुप्त हो जाय।

८ माया–छल-कपट।

९ लोभ–तृष्णा, असंतोष।

१० राग–माया और लोभ के कारण आसक्ति एव मनोज्ञ वस्तु के प्रति स्नेह।

११ द्वेष–अमनोज्ञ वस्तु से द्वेष। क्रोध एव मान के वश होकर द्वेष की जागृति।

१२ कलह–लडाई-झगडा।

१३ अभ्याख्यान–झूठा दोषारोपण।

१४ पैशुन्य–दोष प्रगटन, चुगली।

१५. परपरिवाद–दूसरो की बुराई एव निन्दा करना।

१६ रति अरति–सावद्य पापयुक्त क्रियाओ मे चित्त लगाना, रुचि एव निरवद्य शुभ क्रियाओ के प्रति उदासीन, अरुचि भाव रहना।

१७ माया मृषावाद–कपट युक्त झूठ।

१८ मिथ्यादर्शन–कुदेव, कुगुरु, कुधर्म के प्रति श्रद्धा रखना।

पाप का बधन १८ प्रकार से है तो इसके फल का भोग ८२ प्रकार से होता है।

आश्रव–

जीव रूपी तालाब मे कर्म रूपी जल का आ + श्रव अर्थात् प्रवाह होता है। ससारी जीव मे प्रतिक्षण मन, वचन, काय के परिस्पन्दन के कारण कर्म पुद्गल का एकीकरण होता है। इसका उदाहरण अनेक छिद्रो वाली नाव को पानी मे डालना है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग रूपी पॉच द्वारो से कर्म ग्रहण कर आत्मा मल युक्त होती है और तद्नुसार विविध जन्म धारण करती है।

मिथ्यात्व–विपरीत श्रद्धा अथवा तत्व ज्ञान का अभाव।

अविरति–त्याग के प्रति निरुत्साह एव भोग के प्रति उत्साह।

प्रमाद–मद्य, विषय, निद्रा एव विकथा युक्त आचरण।

कषाय–क्रोध, मान, माया, लोभ की वृत्तियाँ।

योग–मन, वचन, काया की शुभाशुभ प्रवृत्ति।

सवर–

अध्यात्म-साधना मे सवर महत्वपूर्ण तत्व है। आत्मा को कर्म बन्धन से मुक्त करने के लिये सर्वप्रथम आश्रवो को रोकना आवश्यक है। जब तक आश्रवरूपी द्वार खुला रहेगा, तबतक पूर्व आवद्ध कर्म के साथ नये कर्मो का आना भी चालू रहेगा। यदि पूर्व-कर्म फल देकर आत्मा से पृथक हो भी जाय तो नव अर्जित कर्म अपना प्रभाव डालने को तैयार हो जायेगे।

इसके मुख्य छ भेद है–समिति, गुप्ति, परीषह, यतिधर्म, भावना और चारित्र। समिति आदि वास्तविक सवर तभी वन सकते है जबकि वे जिनाज्ञापूर्वक हो। अत सवर मे सम्यक्त्व का समावेश हो ही जाता है। आश्रव का निरोध करना संवर है, अत सम्यग्दर्शन से मिथ्यात्व आश्रव रुकता है। यति धर्म और चारित्र से अविरति आश्रव रुकता है। गुप्ति, भावना और यतिधर्म से कषाय आश्रव रुकता है। समिति, गुप्ति,

परीषह वगैरह से योग और प्रमाद आश्रव रुकता है। इस प्रकार सवर से आश्रव का निरोध होता है।

५ समिति—

प्रभु महावीर ने 'जय चरे, जय चिट्ठे' (यतनापूर्वक चलो यतना पूर्वक बैठो) के माध्यम से साधु को प्रत्येक प्रवृत्ति यतनापूर्वक करने का उपदेश दिया है। अत विवेक एव ज्ञानपूर्वक प्रवृत्ति करना ही 'समिति' है।

१ इर्यासमिति—जीवदया का ध्यान रखते हुए उपयोग पूर्वक चलना।

२ भाषासमिति—हित, मित, सत्य एव प्रिय वाणी उपयोगपूर्वक बोलना।

३ एषणा समिति—विवेक-पूर्वक निरीक्षण कर, निर्दोष आहार-पानी, वस्त्रादि ग्रहण करना।

४ आदान-निक्षेपणा समिति—जीवदया का उपयोग रखते हुए वस्त्र पात्रादि को विवेकपूर्वक रखना एव उठाना।

५ परिष्ठापनिका समिति—मल-मूत्र आदि को निर्जीव स्थान पर विवेकपूर्वक विसर्जन करना।

३ गुप्ति—

गुप्ति का अर्थ है गोपन करना सयमन करना नियमन करना।

१ मनोगुप्ति—अशुभ विचारो से मन को रोकना अर्थात् आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान न करना। धर्मध्यान, शुक्लध्यान मे मन को जोडना।

२ वचनगुप्ति—दूषित वचन न बोलना। निर्दोषवचन भी बिना कारण नही बोलना।

३ कायगुप्ति—शारीरिक अशुभ प्रवृत्ति से बचना। निष्कारण शारीरिक क्रिया को रोकना।

१० यतिधर्म – (१) क्षमा (सहिष्णुता) (२) नम्रता (लघुता) (३) सरलता (४) निर्लोभता (५) तप (बाह्यअभ्यन्तर) (६) सयम (प्राणिदया व इन्द्रियनिग्रह) (७) सत्य (निरवद्य भाषा) (८) शोच (मानसिक पवित्रता) (९) अपरिग्रह किसी पर भी ममत्त्व न रखना (१०) ब्रह्मचर्य पूर्णरूप से पालन करना।

२२ परीषह— भूख-प्यास आदि से जन्य कष्ट को कर्म निर्जरा एव सयम की दृढता के लिये समतापूर्वक सहन करना परीषह है।

१-५ = भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी एव मच्छर आदि से जन्य कष्ट को कर्मक्षय मे सहायक व सत्ववर्धक मानकर समतापूर्वक सहन करना।

६ अचेलक = जीर्ण-शीर्ण, मल मलिन वस्त्र हो तो भी मन मे खेद न करना। अच्छे वस्त्र की चाह न करना।

७ अरति—प्रतिकूलता आने पर भी विचलित न होना। किन्तु भावी कर्म-विपाक का विचार कर, 'प्रतिकूलता को सहन कर लेने मे महान् लाभ है' यह सोचकर प्रतिकूलता को समभाव पूर्वक सहन कहना।

८ स्त्रीपरिषह—स्त्री को देखकर मन को विचलित न होने देना।

९ चर्यापरिषह—गॉव-गॉव विचरण करते हुए रास्ते मे कॉटे-काकरे, खड्डे आदि से होने वाले कष्ट को सम्यक् सहन करना।

१० निषद्या परिषह—श्मशानादि मे कायोत्सर्ग आदि करते हुए यदि देव मानव सम्बन्धी उपद्रव हो तो उसे समतापूर्वक सहन करना।

११ शय्या परिषह—ऊँचे-नीचे आँगनवाला, धूलवाला, सर्दी-गर्मी के लिये प्रतिकूल उपाश्रय मिले फिर भी आकुल-व्याकुल न होना।

१२-१३ आक्रोश-वध—तिरस्कार करने, कटु शव्द बोलने अथवा प्रहार करने पर भी शान्त रहना।

१४ याचना—सयम के लिये उपयोगी वस्तु की याचना करते हुए शर्म या दीनता न होना।

१५ अलाभ—उपयोगी वस्तु माँगने पर भी यदि गृहस्थ न दे तो भी मन मे रोष या शोक नही करना। किन्तु अपने अन्तराय कर्म का उदय है, ऐसा सोचकर शान्त रहना।

१६-१७-१८ रोग-तृणस्पर्श-मल-परीषह—रोग तृणादि के कठिन स्पर्श एव मैल आने पर खेद न करना।

१९ सत्कार—सत्कार-सम्मान मिले तो खुश न होना, न मिले तो नाराज न होना।

२०-२१ प्रज्ञा-अज्ञान—अच्छी प्रज्ञा हो तो गर्व न करना। ज्ञान न आवे तो दीनता नही लाना।

२२ सम्यक्त्वपरीषह—अन्य धर्मो के मन्त्र-तन्त्र चमत्कार आदि को देखकर वीतराग-प्ररूपित धर्म से विचलित न होना किन्तु जैनधर्म मे स्थिर रहना।

■

▢ प्रो० विष्णुकांत शास्त्री

शिक्षा का भारतीय आदर्श

प्राय कहा जाता है कि एक समय था जब भारत को जगद्गुरु की उपाधि प्राप्त थी और हमारे विश्वविद्यालयो मे, तक्षशिला मे, नालन्दा मे, विक्रमशिला मे या और दूसरे विश्वविद्यालयो मे विदेशो से भी बडे-बडे विद्वान शिक्षा ग्रहण करने आते थे। बाद मे ऐतिहासिक विपर्यय के कारण हमारी स्थिति मे परिवर्तन हुआ और हमारी शिक्षा का विकास-क्रम अवरुद्ध-सा हो गया। १८५७ मे अग्रेजो ने लदन विश्वविद्यालय के अनुकरण पर कलकत्ता विश्वविद्यालय, मद्रास विश्वविद्यालय और बम्बई विश्वविद्यालय की स्थापना की। उनकी स्थापना के पीछे एक कूट योजना भी थी। मैकाले ने जो टिप्पणी (मिनट) लिखी थी उसमे उन्होंने बताया था कि अगर हम अग्रेजी माध्यम से भारत के विद्वानो को प्रशिक्षित करने का प्रयास करे तो एक दिन ऐसा आएगा कि वे केवल रग मे भारतीय रह जाएँगे। अपने चिन्तन मे, व्यवहार मे वे हमारा अनुकरण करने की चेष्टा करेंगे। उनकी यह चेष्टा थी कि वे अग्रेजी के माध्यम से शिक्षा देकर भारतीयो को मुख्यत क्लर्क बनाने के लिए तैयार करे। हमारे उस समय के पुरखो ने इसकी तीन प्रकार की प्रतिक्रियाएँ की। कुछ लोग थे जो बिलकुल अग्रेजीदाँ हो गए, अग्रेजी की नकल मे अग्रेज बनने की चेष्टा करने लगे। यदि उनका नाम था रतन दे तो वे अपने को लिखते थे डी रैटन और अगर उनका नाम था आशुतोष तो अपने को लिखते थे ए. टोष यानी अपने नाम मे, अपने व्यवहार मे वे अग्रेजो के अधिकाधिक अनुकरण द्वारा अपने को अग्रेज साबित करने की चेष्टा करते थे। निश्चय ही यह रास्ता भारत के लिए स्वाभिमान का रास्ता नही था। कुछ ऐसे विद्वान भी थे जिन्होंने पश्चिमी शिक्षा का बहिष्कार करना चाहा और उसके द्वारा अपने पुरातन जीवन मूल्यो से चिपटे रहने का प्रयास किया। निश्चय ही यह रास्ता भी सही रास्ता नही था क्योंकि ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र मे हम केवल भौगोलिक सीमा के आधार पर जानने, या न जानने का निर्णय नही कर सकते। हमारे ही वेद की उक्ति है

'आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वत '

अर्थात् सब दिशाओ से मिले शुभ ज्ञान। जो शुभ ज्ञान है वह किसी भी देश से क्यो न आए हमको स्वीकार करना चाहिए। हमारे पुरखो की एक तीसरी श्रेणी थी जिसने अधानुकरण करने से भी इन्कार किया और पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान के उज्ज्वल पक्ष का बहिष्कार करने से भी इन्कार किया। उन्होने राष्ट्रीय चेतना के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। यह जो तीसरा मार्ग है इस तीसरे मार्ग को आज तक उचित मानते है, क्योंकि यही सही रास्ता हे। हम यह जानते है कि हम अपने पुराने ज्ञान-विज्ञान को आज के युग मे अगर स्वीकार करे तो उसको हम युगानुकूल बनाएँ। प्राचीन परपरा को युगानुकूल बनाकर और विदेशी शैली से ली गई ज्ञान राशि को अपन देश के अनुकूल बनाकर हम अपने विकास के रास्ते पर चल सकते है। विकास और शिक्षा इन दोनो का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। अगर हम शिक्षा के क्षेत्र मे पीछे रहेगे तो हम विकास के क्षेत्र मे भी आगे नही बढ सकते। हमारे देश की आज की स्थिति बहुत प्रशसनीय नही है। आज भी हमारे देश की बहुत बडी जनसख्या निरक्षर है। आज भी हमारे देश मे बहुत बडी सख्या प्राथमिक शिक्षा के स्तर से ऊपर नही उठ पाई है। बहुत कम लोग उच्चतर शिक्षा प्राप्त कर सके है। उनके ऊपर कितना बडा उत्तरदायित्व है सारे देश के पुनर्निर्माण का, सारे देश के राष्ट्रीय विकास का, इस बात का हमको अनुभव करना चाहिए।

हमे इस बात को समझना चाहिए कि आखिर वे कौन-से गुण है जिन गुणो ने हमारे देश को जगद्गुरु बनाया था और उन गुणो को आज हम किस रूप मे स्वीकार कर सकते है। हमे विचार करना चाहिए कि हम अपने देश की परम्परा से जुडे रह कर कैसे आधुनिक हो सकते है, कैसे हम वास्तव मे अपनी उस वैदिक उक्ति को चरितार्थ कर सकते है कि विश्वविद्यालय का मतलब होता है 'यत्र विश्व भवत्येक नीडम्', जहाँ सारा ससार एक घोसला बन जाए। सारे ससार के विद्वान जहाँ आ सके और जिनकी दृष्टि क्षेत्रीय

न हो, जिसकी दृष्टि सकीर्ण न हो, जिसकी दृष्टि के सामने सारा विश्व हो। विश्व मानवता को स्वीकार करते हुए अपने देश की राष्ट्रीयता, अपने देश का सर्वतोमुखी विकास करने के लिए अपने को समर्पित करने की दृष्टि हममे कैसे विकसित हो यही हमारे अध्यापको के, हमारे विद्यार्थियो के, हमारे शोधार्थियो के चिन्तन का विषय होना चाहिए और इस दिशा मे हमको अग्रसर होना चाहिए।

मै यह जानता हूँ कि अपने कार्य के प्रति गौरव-बोध हमे किसी काम को भली-भाँति सम्पन्न करने की प्रेरणा देता है। जब हम जगद्गुरु थे तो हमने अध्ययन-अध्यापन के कार्य को किस रूप मे देखा था। उस समय की स्थिति यह थी कि हमने इस कार्य को तपस्या के रूप मे देखा था। हमारी मान्यता थी 'छात्राणा अध्ययन तप ', यह कथन इस बात को साबित करता है कि अध्ययन अध्यापन को हमने उच्चतर भूमिका पर प्रतिष्ठापित करने की चेष्टा की थी। हमारी दृष्टि केवल अर्थकारी विद्या प्राप्त करने की नही थी। हमारा तत्कालीन अध्यापक सगौरव कहता था

नाह विद्या-विक्रय शासनशतेनापि करोमि ।

सैकडो शासन का अधिकार प्राप्त होने पर भी मै विद्या-विक्रय नही करूँगा। यह दृष्टि हमारे अध्यापको की दृष्टि थी। अच्छा अध्यापक कौन होता है? अच्छा अध्यापक वही होता है जो आजीवन छात्र रहे। जब तक साँस चलती रहे तब तक सीखने की प्रवृत्ति अगर बनी रहेगी तब तक अच्छे अध्यापक हो सकेगे। आधुनिक युग के महान् उपदेशक, महान् गुरु श्री रामकृष्ण परमहस देव ने कहा था, 'जतो दिन बॉची ततो दिन शीखी' (जितने दिन जीऊँगा उतने दिन सीखूँगा)। यह लगातार जो सीखते रहने की परम्परा है, यह परम्परा विद्या के क्षेत्र को उन्नत मान देती है। कैसे हम विद्या को प्राप्त करे? शिक्षा का मतलब क्या होता है? 'शिक्षा विद्योपादाने', शिक्षा का मतलब होता है विद्या देने की प्रक्रिया। 'शिक्षते उपदीयते विद्या यया सा शिक्षा', शिक्षा वह जिससे विद्या प्रदान की जाती है। हमारे देश मे विद्या के दो भाग किए गए है एक पराविद्या, एक अपराविद्या। पराविद्या का मतलब है परमात्म विद्या, अध्यात्म विद्या और अपराविद्या माने लौकिक विषयो की विद्या। इन दोनो प्रकार की विद्यायो के अर्जन को तपस्या की सज्ञा दी गई है। एक बार ऋषियो से एक प्रश्न पूछा गया कि सवसे बडा तप कौन-सा है? ऋषियो मे एक नाकोमौद्गल्य ऋषि थे, उन्होंने कहा

स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाकोमौद्गल्य
तद्धितपस् तद्धितप तद्धितपस् तद्धितप ।।

विभिन्न ऋषियो ने अलग-अलग तप बताए, लेकिन नाकोमौद्गल्य ने कहा कि सवसे वडा तप है स्वाध्याय करना और प्रवचन करना। सभी ऋषियो ने अपनी सहमति ज्ञापित करते हुए कहा, हॉ वही तप है, वही तप है। यही अच्छे शिक्षक का धर्म है। स्वाध्याय जितना उत्तम होगा प्रवचन उतना उत्कृष्ट होगा। इसलिए तैत्तिरीय उपनिषद ने आदेश दिया 'स्वाध्यायन्मा प्रमद ', स्वाध्याय से यानी अच्छे ग्रन्थो के निरन्तर अनुशीलन से कभी प्रमाद मत करना। जो भी अध्यापक होगा वह अगर तपस्या करना चाहता है तो उसको निरन्तर स्वाध्याय करना होगा और जितना अधिक स्वाध्याय वह कर सकेगा उसका प्रवचन उतना प्रामाणिक होगा। कालिदास ने शिक्षको की एक अद्भुत श्रृखला बताई है कि बडा शिक्षक कौन है, धुरि-प्रतिष्ठा का अधिकारी शिक्षक कौन है। उन्होंने कहा

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसस्था,
सक्रान्तिरन्यस्य विशेष युक्ता ।
यस्योभय साधु स शिक्षकाणा,
धुरिप्रतिष्ठापयितव्य एव ।।

अर्थात् कुछ विद्वान होते है जो ज्ञान तो बहुत अर्जित कर लेते है लेकिन ज्ञान का सक्रमण करने मे, अपने विद्यार्थियो को ज्ञान दे पाने मे वे कुशल नही होते। सक्रान्ति की विद्या से वे रहित होते है। कुछ विद्वान होते है जो सक्रमण मे जो बहुत कुशल होते है, जितना जानते है उतना दूसरो को सिखा देते है लेकिन वे जानते ही कम है।

ये दोनो प्रकार के विद्वान धुरिप्रतिष्ठा के अधिकारी नही है।

यस्योभय साधु स शिक्षकाणा,
धुरिप्रतिष्ठापयित्य एव ।।

जिसमे ये दोनो गुण हो अर्थात् वह स्वय ज्ञानी भी हो, और ज्ञान के सक्रमण की कला मे भी कुशल हो वही विद्वान धुरिप्रतिष्ठा का, वास्तविक प्रतिष्ठा का अधिकारी होता है। हमारे देश मे धुरिप्रतिष्ठा के अधिकारी विद्वान थे, वे जब भिक्षा देते थे, तब हमारे विद्यार्थी आगे बढते थे। आज भी हमारे देश मे बहुत से ऐसे धुरिप्रतिष्ठा के अधिकारी विद्वान है लेकिन मेरी अपेक्षा है कि हममे से प्रत्येक शिक्षक इस धुरिप्रतिष्ठा को प्राप्त करने की ओर अग्रसर हो। शिक्षक का यही आदर्श था। आज यह बात आश्चर्यजनक लग सकती है, लेकिन हमारे देश का आदर्श शिक्षक डके की चोट पर अपने विद्यार्थियो से कहता था

यान्यस्माक सुचरितानि
तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि ।

हमारे देश का शिक्षक कहता था कि 'जो हमारा सुचरित है, विद्यार्थियो। केवल उस सुचरित का तुम अनुगमन करना। जो सुचरित से भिन्न है उसका अनुगमन मत करना।' हमारे देश के

शिक्षक की अद्भुत दृष्टि थी। वह कहता था, 'सर्वत्र जयमन्विच्छेत् पुत्रात् शिष्यात् पराजयम्।' मनुष्य को सर्वत्र विजय की कामना करनी चाहिए लेकिन मेरा पुत्र मुझको हरा दे, मेरा विद्यार्थी मुझको हरा दे, यह कामना भी भारत का शिक्षक करता था। अगर मेरा विद्यार्थी मुझको पराजित करेगा तो कैसे पराजित करेगा? ज्ञान की सीमा को जहाँ तक मैने बढाया है जब उससे आगे वह बढा के ले जायेगा, तब मेरी बात मे वह कही खोट निकालेगा और उसको दूर करेगा, जब मुझसे भी ज्यादा वह ज्ञानी हो जाएगा तब न मुझे पराजित करेगा? अगर कोई शिष्य किसी गुरु को अपने ज्ञान से पराजित करता है तो गुरु की छाती फूल जाती है। हमारे आदर्श गुरु की चेष्टा होती थी कि हमारे शिष्य हमसे भी योग्य बन जाएँ, यह नही कि हम अपने शिष्यो को दबाते रहे।

हमारे देश मे कहा गया है कि दो प्रकार के गुरु होते है। एक प्रकार का गुरु होता है आकाशधर्मी गुरु और दूसरे प्रकार का गुरु होता है शिलाधर्मी गुरु। शिलाधर्मी गुरु कैसा होता है? आप लोगो ने मैदानो मे देखा होगा कि हरी घास के ऊपर अगर कोई एक ईट रख दे, एक शिला रख दे और एक महीने के बाद उस ईंट को हटाये तो दिखेगा कि ईट से दबी घास पीली पड गई, निस्तेज हो गई, विकलाग हो गई। जो गुरु शिलाधर्मी गुरु के रूप मे अपने विद्यार्थियो पर लद जाए और कहे कि मै जो कहता हूँ वही तुमको मानना पडेगा, वही सत्य है, तो वह अपने विद्यार्थियो का विकास नही कर सकता। शिलाधर्मी गुरु हमारे यहॉ त्याज्य, हमारे यहॉ निन्द्य माना जाता है। हमारे यहाँ जिस गुरु की आदर्श कल्पना की गई है उस गुरु की सज्ञा आकाशधर्मी है। आकाशधर्मी गुरु कैसा होता है? आकाश चाहता है कि उसके नीचे जो वनस्पतियॉ है वे विकसित हो, जिनकी जितनी क्षमता हो वह उतनी विकसित हो। घास को उगने की क्षमता प्राय सतह तक है और देवदारु की उगने की क्षमता बहुत ऊँची है, बरगद बहुत फैल सकता है। आकाशधर्मी गुरु प्रत्येक शिष्य को प्रकाश देता है, प्रत्येक शिष्य को वायु देता है, प्रत्येक शिष्य को अवकाश देता है बढने का ताकि जिसकी जितनी क्षमता है वह उतनी विकसित भूमिका को अर्जित कर सके। यह आकाशधर्मी गुरु का लक्षण है। आकाशधर्मी गुरु शिष्य की क्षमता को पहचानता है। जैसे चिकित्सा रोग की नही हो जाती, चिकित्सा रोगी की की जाती है, वैसे विद्या विद्या के लिए नही दी जाती विद्या व्यक्ति को दी जाती है। उस व्यक्ति की जो क्षमता है, उस व्यक्ति के जो विशेष गुण है, उन विशेष गुणो को कैसे विकसित किया जाए, यह कुशलता जिस गुरु मे होती है उसको आकाशधर्मी गुरु कहते है। आकाशधर्मी गुरुओ के द्वारा भारतवर्ष बडा हुआ है और आज भी अगर भारतवर्ष बडा होगा तो इन्ही आकाशधर्मी गुरुओ के द्वारा होगा जो अपने शिष्यो से मतभेद की चिन्ता किए बिना उनको सही रास्ते बताते हुए उनकी प्रवृत्ति के अनुसार उनके विकास की सुविधा देते रहेंगे। शिष्यो की क्षमता के अनुसार उनके विकास की दिशा बताने वाला आकाशधर्मी गुरु हमारा आदर्श होना चाहिए।

हम अध्यापकगण यदि आकाशधर्मी गुरु के रूप मे जीवन जिये, तब हम अपने शिष्यो को भी अपनी भूमिका पर ला सकेगे। हमारे कबीर दासजी ने कहा है, पारस मे और गुरु मे बहुत अन्तर होता है। 'पारस पत्थर लोहे को सोना बना सकता है लेकिन गुरु, आकाशधर्मी गुरु, शिष्य को भी आकाशधर्मी गुरु बना सकता है।' गुरु की वास्तविक सफलता शिष्य की श्रद्धा अर्जित करने मे है। एक बढिया श्लोक है

बहव गुरव सन्ति शिष्यवित्तापहारक ।
दुर्लभ स गुरुर्लोके शिष्यचित्तापहारक ।।

ऐसे तो गुरु बहुत है जो शिष्यो के वित्त का, अर्थ का अपहरण कर लेते है। आजकल हम लोग फीस लेते ही है, प्राय हर विद्यार्थी को फीस देनी पडती है तो वित्त का अपहरण करने वाली शिक्षा सस्थाएँ और गुरु बहुत है। 'दुर्लभ स गुरुर्लोके शिष्यचित्तापहारक', किन्तु वैसा गुरु दुर्लभ है इस लोक मे जो शिष्य के चित्त का अपहरण कर सके, जो शिष्य की श्रद्धा अर्जित कर सके। शिष्य श्रद्धेय के रूप मे किसी गुरु को क्या केवल इसलिए स्वीकार कर लेगा कि वह अध्यापक है, वह प्रोफेसर है। ऐसा नही होता। केवल पद से सम्मान प्राप्त नही होता। शिक्षक मे कुछ वैशिष्ट्य होना चाहिए, जिससे शिष्य के मन मे श्रद्धा उत्पन्न हो और वह वैशिष्ट्य जब तक हमारा शिक्षक वर्ग अर्जित करता रहेगा तब तक हमारे विद्यार्थी आगे बढते रहेगे।

हमको इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि अध्यापक के समान ही शिष्य का क्या स्वरूपभूत लक्षण होना चाहिए। शिष्य कैसे ज्ञान प्राप्त करे, इसके बारे मे गीता मे दो बहुत अच्छी उक्तियाँ कही गई है

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।

शिष्य का आधारभूत लक्षण है ज्ञान प्राप्त करने के लिए अग्रणी होना। शिष्य ज्ञान प्राप्त कर सके, इसके लिए उनको परिप्रश्न करने का अधिकार मिलना चाहिए। परिप्रश्न माने बार-बार प्रश्न, परिप्रश्न माने चारो तरफ से प्रश्न, परिप्रश्न माने जब तक विषय समझ मे न आए तब तक प्रश्न करने का अधिकार शिष्यो का है, इसकी स्वीकृति लेकिन परिप्रश्न को सम्पुटित किया गया है, प्रणिपात यानी विनम्रतापूर्वक नमस्कार और सेवा के द्वारा। विद्यार्थी अध्यापक से

प्रश्न करने के अधिकारी है, अगर सचमुचं उस विषय को वे जानने, समझने की इच्छा रखते है, किन्तु उस विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्हे विनम्र होना चाहिए। इस सन्दर्भ मे एक अच्छी उक्ति

पैये असीस लचैसे जो सीस,
लची रहिये तब ऊँची कहैये ।

जब तक विद्यार्थी का सिर श्रद्धा से झुकता नही है गुरु के सामने, तब तक वह विद्या अर्जित नही कर सकता। साथ ही हमे निश्छल सेवा के द्वारा गुरु को प्रसन्न भी करना चाहिए। इस प्रकार सेवा और प्रणिपात के द्वारा हम अनेकानेक प्रश्न करने का अधिकार प्राप्त कर सकते है। एक और बात है, एक उक्ति बहुत बार उद्धत की जाती है 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्', श्रद्धावान को ज्ञान प्राप्त होता है लेकिन इतनी ही बात आधी बात है। पूरी उक्ति है गीता की

श्रद्धावान् लभते ज्ञान तत्पर सयतेन्द्रिय ।

उस व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त होता है जो अपने गुरु एव विषय के प्रति श्रद्धा तो रखता ही है साथ ही उसको अर्जित करने के लिए तत्पर है, जुटा हुआ है, उसी के प्रति समर्पित है। दूसरी ओर उसका ध्यान ही नही जाता। दूसरी ओर उसका ध्यान जाए इसके लिए उसको सयतेन्द्रिय होना चाहिए, अपनी इन्द्रियो पर सयम करना चाहिए। अपनी इन्द्रियो पर सयम करके जब हम अपना पूरा ध्यान अपने अध्येतव्य विषय की ओर लगायेंगे तब हम श्रद्धा के द्वारा ज्ञान अर्जित कर सकेगे। विद्यार्थियो के लिए एक बहुत अच्छा श्लोक है, याज्ञवल्क्यीय शिक्षा का। उसका अभिप्राय यह है कि हम अपनी भूमिका को सतत नापते रहे कि हम कहॉ खडे है। विद्या-बुद्धि की कौन-सी भूमिका है जिस पर अभी हम खडे है और जिससे अग्रसर होना चाहते है, उच्चतर भूमिका पर जाना चाहते है। यह अद्‌भुत श्लोक है

शुश्रुषा श्रवण चैव ग्रहण धारण तथा ।
ऊहापोहार्थविज्ञान तत्वज्ञान च धी गुणा ।।

धी माने बुद्धि। बुद्धि के सात गुण है अर्थात् बुद्धि की सात भूमिकाएँ है। हम सब विचार करे कि हम किस भूमिका पर खडे है। बुद्धि की पहली भूमिका है शुश्रुषा। शुश्रुषा माने श्रोतुमिच्छा। श्रोतुमिच्छा माने जानने की इच्छा, सुनने की इच्छा। पुराकाल का यह श्लोक है। पुराकाल मे तो छपी हुई किताबे होती नही थी, हस्तलिखित ग्रन्थ होते थे उनकी सख्या भी बहुत कम थी। इसलिए गुरु के निकट जाकर पूछा जाता था। कोई बात जानने की इच्छा हुई तो उसे कहते थे शुश्रुषा। सुनने की, जानने की इच्छा। यदि इच्छा के स्तर पर ही रुक गई तो समझिए कि बुद्धि बहुत मद है। शुश्रुषा श्रवण चैव। बुद्धि की दूसरी भूमिका है जानने की चेष्टा, जानने की क्रिया। श्रवणम् का मतलब हुआ कि अपनी जिज्ञासा को लेकर, अपने प्रश्न को लेकर किसी योग्य अधिकारी गुरु के पास गये उनसे विनम्रतापूर्वक प्रश्न किया और उन्होंने जो उत्तर दिया, जो उन्होंने समझाया, उसको सुना। श्रवणम् का मतलब हुआ जानने की, ज्ञान अर्जित करने की चेष्टा। आज हमारे मन मे शुश्रुषा हो तो हम इनसाइकलोपीडिया से समझ सकते है, हम इन्टरनेट से समझ सकते है लेकिन आधारभूत बात यह है कि जानने की इच्छा होनी चाहिए और जानने की इच्छा के बाद जानने की क्रिया होनी चाहिए। श्रवणम् माने जानने की क्रिया। जानने के लिए अध्यापक के पास गए, आपने अपने अध्यापक से सवाल किया, उनका बताया हुआ उत्तर सुना, लेकिन समझ मे नही आया तो मतलब हुआ कि बुद्धि मन्द है। बुद्धि की तीसरी भूमिका है ग्रहणम्। जो कुछ आपको बताया गया वह आपकी समझ मे आना चाहिए। वह आपको समझ मे आया कि नही, अगर समझ मे आया तो आप बुद्धि की तीसरी भूमिका पर है और सम्झ मे नही आया तो आपकी बुद्धि मद है। बुद्धि की चौथी भूमिका है धारणम्। आपने किसी विद्वान का व्याख्यान सुना, घर मे आकर कहा, आज का व्याख्यान बहुत अच्छा था, वाह-वाह, वाह-वाह कितना अच्छा व्याख्यान था आज का। किसी ने पूछा क्या कहा गया था व्याख्यान मे, उत्तर दिया, भाई, यह तो याद नही, तो यह बुद्धि की मन्दता है। बुद्धि की चौथी भूमिका धारणम् अर्थात् जो हमने सुना जिसको हमने समझा उसको हमने धारण किया कि नही किया। अगर हमको वह याद नही है तो हमारी बुद्धि मन्द है। हमको बुद्धि की चौथी भूमिका पर जाना चाहिए कि हम पढे उसको स्मरण रख सके, धारण कर सके। ऊहापोहार्थविज्ञानाम्। 'गगा गए गगादास, यमुना गए यमुनादास' ऐसा नही होना चाहिए। इन्होने कहा यह भी सही, उन्होंने कहा वह भी सही, ऐसा नही होना चाहिए। जो विषय सुना है, जो विषय समझा है या जो विषय पढा है उसके ऊपर ऊहापोह किया कि नही, विचार किया कि नही, वह सही है तो क्यो सही है, वह गलत है तो क्यो गलत है। यह जो सही और गलत के बारे मे विश्लेषण करना, वितर्क करना, विवेचन करना है यह बुद्धि की पॉचवी भूमिका है। अन्ध श्रद्धा की बात भारतीय दृष्टि मे नही है। ऊहापोह करना चाहिए, विचार करना चाहिए और विचार करने के बाद जो सही लगे उसे स्वीकार करना चाहिए, जो गलत लगे उसे छोड देना चाहिए और जो कुछ सीखा है उस सीखे हुए को काम मे लाना चाहिए। 'अर्थविज्ञानम्' यह बुद्धि की छठी भूमिका है। जो भी हमने सीखा है, जो हमने ज्ञान प्राप्त किया है वह अगर काम मे नही आया तो किस काम का। मीमासा का सूत्र है, 'सर्वमपि ज्ञान कर्मपरम्' अर्थात्

सीखा हुआ ज्ञान, हमारे आचरण मे, हमारे कर्म मे उतरना चाहिए। हमको सही दिशा देने वाला ज्ञान हमसे ठीक-ठीक काम करवाए। वेदान्त ने इसमे एक अपवाद बताया है, *'ऋते आत्मज्ञानात्' अर्थात्* आत्मज्ञान को छोडकर, आत्मज्ञान के बाद कर्म अनिवार्य नही रहता। किन्तु अभी तो हम लौकिक ज्ञान की बात कर रहे है। तो अर्थ विज्ञानम् अर्थात् ज्ञान का उपयोग हो। जैसे कोई अनुसधान हुआ तो उस अनुसधान के द्वारा, विविध तकनीको के द्वारा हम कैसे यत्र बना सकते है, कैसे उसका उपयोग समस्याओ का समाधान करने मे कर सकते है, यह अर्थ विज्ञान आना चाहिए। यह बुद्धि की छठी भूमिका है। तत्वज्ञान च धी गुणा, और तत्त्वत किसी विषय को समझ लेना, उस विषय को पूर्णत समझ लेना है, जैसे मिट्टी को तत्वत समझ लिया तो मिट्टी से बनी हुई सभी चीजो को समझ लिया, सोने को तत्वत समझ लिया तो सोने से बनी हुई सब चीजो को समझ लिया। किसी चीज का तात्विक ज्ञान प्राप्त कर लेना उस विषय की समझदारी की सातवी भूमिका है। हमारे विद्यार्थियो को सातवी भूमिका तक जाने की तैयारी करनी चाहिए।

बडा काम कैसे होता है? बडा काम केवल इच्छा से नही होता। बडा काम उस बडी इच्छा को पूर्ण करने के लिए अपने जीवन को होम देने से होता है। जीवन की सारी शक्तियो को एकाग्र करके अपने विषय को उपलब्ध करने के लिए जब हम अपने आप को समर्पित कर देगे, तब बडा काम कर सकेगे।

अनुसधान या शोध कार्य के लिए भी यह स्थापना सत्य है। ज्ञान का प्रदर्शन कर सस्ती वाहवाही लूट लेना अलग बात है और किसी विषय की तह मे जाकर उसकी उलझी हुई गुत्थियो को सुलझाना, उस विषय के ज्ञान को आगे बढाना, बिल्कुल दूसरी बात है। नवीन शोधो के द्वारा ज्ञान की समृद्धि कौन कर सकता है, कैसे कर सकता है, इस पर एक बहुत ही अच्छा श्लोक है

तरन्तो दृश्यन्ते बहव इह गभीर सरसि,
सुसाराभ्या दोर्भ्या हृदि विदधत कौतुकशतम् ।
प्रविश्यान्तर्लीन किमपि सुविविच्योद्धरति यश,
चिर रुद्धश्वास स खलु पुनरेतेषु विरल ।

अर्थात् इस गहरे और विशाल ज्ञान-सरोवर मे तैरते हुए बहुत से तैराक अपनी पुष्ट भुजाओ से नाना प्रकार के कौतुक करते हुए दीख पडते है किन्तु इन सबमे वह (विद्वान) *विरला ही है* जो देर तक सॉस रोक कर, गहरे डूब कर गभीर विवेचन के बाद किसी दुर्लभ रत्न का उद्धार कर लाता है। आत्मप्रदर्शन विमुख, गभीर, निष्ठापूर्ण, ऐकान्तिक वस्तुनिष्ठ विद्या साधना ही मौलिक शोधपरक उपलब्धि का आधार है, यह सत्य इस श्लोक मे बहुत अच्छी तरह निरूपित किया गया है। अभिनवगुप्त ने अपूर्व वस्तु का निर्माण करने मे समर्थ प्रज्ञा को प्रतिभा कहा है, 'अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्रज्ञा प्रतिभा'। हमारे शोधार्थी प्रतिभाशाली हो और नई-नई शोधो, नए-नए आविष्कारो द्वारा ज्ञान की परिधि को बढाते रहे।

हमारी परम्परा यह भी मानती है कि अपनी मान्यताओ की हमे बार-बार जॉच-पडताल करनी चाहिए इसके लिए सही रास्ता विद्वानो से विचार-विमर्श करते रहना। 'वादे वादे जायते तत्वबोध ', इस दिशा मे हमारा मार्ग निर्देशक सूत्र है। कई बार ऊँचा पद प्राप्त कर लेने के बाद प्राध्यापकगण विचार-विमर्श से कतराने लगते है। उन्हे लगता है कि यदि उनकी बात गलत साबित हो जाएगी तो उन्हे अपमानित होना पडेगा। अत विवाद से शास्त्रो या विचार-विमर्श से वे कन्नी काटते है। कालिदास ने इस प्रवृत्ति की निन्दा करते हुए एक मार्मिक श्लोक लिखा है

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरो
तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम् ।
यस्यागम केवल जीविकायै
त ज्ञानपण्य वणिज वदन्ति ।।

अर्थात् सम्मानजनक पद प्राप्त हो जाने के बाद जो विवादभीरु, आत्मविश्वासहीनता के कारण दूसरो के द्वारा की गई निन्दा को सहता रहता है, जिसका ज्ञान केवल जीविकोपार्जन के लिए ही होता है वह तो ज्ञान बेचने वाला बनिया है, विद्वान नही। विद्वान सब समय विवाद ही करता रहे, इसका अर्थ यह भी नही। इसका अभिप्राय यही है कि अपनी मान्यता विचार की कसौटी पर खरी उतरती रहे, इसकी ओर सजग रहना चाहिए। अन्यथा विद्वत्ता तेजस्विनी नही हो सकती। हमारी पारम्परिक प्रार्थना यही है कि हमारा अधीत (हमारा प्राप्त किया हुआ ज्ञान) तेजस्वी हो 'तेजस्विनावधीतमस्तु'। यह तेजस्विता खडित तभी होती है जब हम अपना ज्ञान बेचने लगते है। जायसी की हृदयस्पर्शिणी उक्ति है, 'पडित होई सो हाट न चढा। चहै बिकाइ भूलि गा पढा'। मेरी मगलकामना है कि हमारे तेजस्वी विद्वान प्राध्यापक आत्मविक्रय की स्थिति से बचे। एक बात और। ज्ञान प्राप्त करने की तेजस्वी परम्परा यह मानती थी कि केवल एक विषय का ज्ञान रखने वाले वास्तव मे ज्ञानी नही होते। उनकी मान्यता थी, 'एक शास्त्र अधीयान न चिंचिदपि शास्त्र विजानाति'। अर्थात् *एक ही शास्त्र को जानने वाला कुछ भी शास्त्र नही जानता।* सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिए बहुत से शास्त्र जानने चाहिए, भले ही विशेषज्ञता एक शास्त्र की हो। क्योंकि सभी शास्त्र, सभी विषय परस्पर सम्बद्ध है। एक शास्त्र की ग्रन्थि दूसरे शास्त्र के प्रकाश से सुलझाई जा सकती है। अत विद्वान को बहुश्रुत होना चाहिए।

भारतीय शैक्षणिक दृष्टि यह रही है कि हम तो अपने जीवन की सार्थकता के लिए पढ रहे है, हम तो अपने जीवन मे ऋषि ऋण उतारने के लिए जो कुछ हमने बडो से सीखा है उसको सामान्य जनता तक पहुँचा देने के लिए काम कर रहे हैं। अत हमारी चिन्ता होनी चाहिए कि कैसे हम उच्चतम ज्ञान-विज्ञान भारतीय भाषाओ मे ले आएँ, कैसे हम उच्चतम विद्या को निम्नतम मे ले आएँ, कैसे हम उच्चतम विद्या को निम्नतम वर्ग तक पहुँचाने की धारावाहिकता उत्पन्न करे।

मै यह भी मानता हूँ कि हमारे देश के पुनर्निर्माण का जो महायज्ञ चल रहा है, उसकी वास्तविक आधारभूमि विश्वविद्यालय है। हमारे विश्वविद्यालयो मे जैसे प्राध्यापक, प्रशासक रहेंगे, हम वैसे ही पाठ्यक्रम रखेगे, वैसा ही वातावरण बनाएँगे, वैसे ही विद्यार्थी उत्पन्न करेंगे। स्वाभवत देश वैसा ही बनेगा। अगर हम अपने राष्ट्र को महान् बनाना चाहते है तो अपनी गौरवपूर्ण परम्परा से प्रेरणा लेते हुए आगामी सहस्त्राब्दी मे आने वाली चुनौतियो का मुकाबला करने मे समर्थ प्राध्यापक नवीनतम ज्ञान-विज्ञान से समृद्ध पाठ्यक्रम और परिवेश की सयोजना हमे करनी होगी जिससे सभी चुनौतियो का समुचित प्रत्युत्तर देने मे समर्थ विद्यार्थियो का निर्माण हम कर सके।

(कानपुर विश्वविद्यालय मे दीक्षात भाषण)

जितेन्द्रियता

जब तक जीभ स्वादिष्ट भोजन चाहती है, जब तक नासिका सुगध चाहती है, जब तक कान वारागना के गायन और वाद्य चाहते है, जब तक आँखे वनोपवन देखने का लक्ष्य रखती है, जब तक त्वचा सुगधीलेपन चाहती है, तब तक यह मनुष्य नीरोगी, निर्ग्रंथ, निष्परिग्रही, निरारभी और ब्रह्मचारी नही हो सकता। मन को वश करना यह सर्वोत्तम है। इससे सभी इन्द्रियॉ वश मे की जा सकती है। मन को जीतना बहुत-बहुत दुष्कर है। एक समय मे असख्यात योजन चलनेवाला अश्व यह मन है। इसे थकाना बहुत दुष्कर है। इसकी गति चपल और पकड मे न आ सकनेवाली है। महाज्ञानियो ने ज्ञानरूपी लगाम से इसे स्तभित करके सब पर विजय प्राप्त की है।

उत्तराध्ययनसूत्र मे नमिराज महर्षि ने शकेन्द्र से ऐसा कहा कि दस लाख सुभटो को जीतनेवाले कई पडे है, परन्तु स्वात्मा को जीतनेवाले बहुत दुर्लभ है, और वे दस लाख सुभटो को जीतनेवालो की अपेक्षा अति उत्तम है।

मन ही सर्वोपाधि की जन्मदात्री भूमिका है। मन ही बध और मोक्ष का कारण है। मन ही सर्व ससार की मोहिनीरूप है। यह वश हो जाने पर आत्मस्वरूप को पाना लेशमात्र दुष्कर नही है।

मन से इन्द्रियो की लोलुपता है। भोजन, वाद्य, सुगध, स्त्री का निरीक्षण, सुन्दर विलेपन यह सब मन ही मॉगता है। इस मोहिनी के कारण यह धर्म को याद तक नही करने देता। याद आने के बाद सावधान नही होने देता। सावधान होने के बाद पतित करने मे प्रवृत्त होता है अर्थात् लग जाता है। इसमे सफल नही होता तो सावधानी मे कुछ न्यूनता पहुँचाता है। जो इस न्यूनता को भी न पाकर अडिग रहकर मन को जीतते है, वे सर्वसिद्धि को प्राप्त करते है।

मन अकस्मात् किसी से ही जीता जा सकता है, नही तो अभ्यास करके ही जीता जाता है। यह अभ्यास निर्ग्रथता मे बहुत हो सकता है, फिर भी गृहस्थाश्रम मे हम सामान्य परिचय करना चाहे तो उसका मुख्य मार्ग यह है कि यह जो दुरिच्छा करे उसे भूल जाये, वैसा न करे। यह जब शब्द, स्पर्श आदि विलास की इच्छा करे तब इसे न दे। सक्षेप मे, हम इससे प्रेरित न हो, परन्तु हम इसे प्रेरित करे और वह भी मोक्षमार्ग मे। जितेन्द्रियता के बिना सर्व प्रकार की उपाधि खडी ही रहती है। त्यागने पर भी न त्यागने जैसा हो जाता है, लोक-लज्जा से उसे निभाना पडता है। इसलिए अभ्यास करके भी मन को जीतकर स्वाधीनता मे लाकर अवश्य आत्महित करना चाहिये।

■

□ प्रो० सागरमल जैन

अहिंसा की सार्वभौमिकता

अहिंसा की अवधारणा के विकास का इतिहास मानवीय सभ्यता और सस्कृति के विकास के इतिहास का सहभागी रहा है। जिस देश, समाज एव सस्कृति मे मानवीय गुणो का जितना विकास हुआ, उसी अनुपात मे उसमे अहिसा की अवधारणा का विकास हुआ है। चाहे कोई भी धर्म, समाज और सस्कृति हो, उसमे व्यक्त या अव्यक्त रूप मे अहिसा की अवधारणा अवश्य ही पाई जाती है। मानव समाज मे यह अहिंसक चेतना स्वजाति एव स्वधर्मी से प्रारम्भ होकर समग्र मानव समाज, सम्पूर्ण प्राणी जगत और वैश्विक पर्यावरण के सरक्षण तक विकसित हुई है। यही कारण है कि विश्व मे जो भी प्रमुख धर्म और धर्म प्रवर्तक आये उन्होंने किसी न किसी रूप मे अहिंसा का सदेश अवश्य दिया है। अहिंसा की अवधारणा जीवन के विविध रूपो के प्रति सम्मान की भावना और सह-अस्तित्व की वृत्ति पर खडी हुई है।

हिन्दूधर्म मे अहिंसा

वैदिक ऋषियो ने अहिंसा के इसी सहयोग और सह-अस्तित्व के पक्ष को मुखरित करते हुए यह उद्घोष किया था – **'सगच्छध्व, सवदध्व स वो मनासि जानताम्, समानो मत्र, समिति समानी'** अर्थात् हमारी गति, हमारे वचन, हमारे विचार, हमारा चिन्तन और हमारी कार्यशैली समरूप हो, सहभागी हो। मात्र यही नही ऋग्वेद (६ ७५ १४) मे कहा गया कि **'पुमान पुमास परिपातु विश्वत '** अर्थात् व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वे परस्पर एक दूसरे की रक्षा करे। ऋग्वेद का यह स्वर यजुर्वेद मे और अधिक विकसित हुआ। उसमे कहा गया –

मित्रस्याह चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे ।। – यजुर्वेद ३६ १८

अर्थात् मै सभी प्राणियो को मित्रवत् देखूँ और वे भी मुझे मित्रवत् देखे 'सत्वेषु मैत्री' का यजुर्वेद का यह उद्घोष वैदिक चिन्तन मे अहिसक भावना का प्रबल प्रमाण है।

उपनिषद् काल मे यह अहिंसक चेतना आध्यात्मिक जीवन दृष्टि के आधार पर प्रतिष्ठित हुई। छान्दोग्योपनिषद् (३/१७/४) मे कहा गया–

अथ यत्तपो दानमार्जवमहिसा सत्यवचनमिति ता तस्य दक्षिणा ।

अर्थात् इस आत्म-यज्ञ की दक्षिणा तप, दान, आर्जव, अहिसा और सत्य वचन है। इसी छान्दोग्योपनिषद् (८ १५ १) मे स्पष्टत यह कहा गया है–

अहिसन् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्य. स खल्वेव ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते ।

अर्थात् धर्म तीर्थ की आज्ञा से अन्यत्र प्राणियो की हिसा नही करता हुआ यह निश्चय ही ब्रह्मलोक (मोक्ष) को प्राप्त होता है, उसका पुनरागमन नही होता है, पुनरागमन नही होता है।

आत्मोपासना और मोक्षमार्ग के रूप मे अहिंसा की यह प्रतिष्ठा औपनिषदिक ऋषियो की अहिंसक चेतना का सर्वोत्तम प्रमाण है।

वेदो और उपनिषदो के पश्चात् स्मृतियो का क्रम आता है। स्मृतियो मे मनुस्मृति प्राचीन मानी जाती है। उसमे भी ऐसे अनेक सदर्भ है, जो अहिंसा के सिद्धान्त की पुष्टि करते है। यहाँ हम उसके कुछ सन्दर्भ प्रस्तुत कर रहे है–

अहिसयैव भूताना कार्य श्रेयोऽनुशासनम् । –मनुस्मृति २/१५९

अर्थात् प्राणियो के प्रति अहिंसक आचरण ही श्रेयस्कर अनुशासन है।

अहिसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते । –मनुस्मृति ६/६०

अर्थात् प्राणियो के प्रति अहिंसा के भाव से व्यक्ति अमृतपद (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

अहिंसा सत्यमस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
एत सामासिक धर्म चतुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनु ।।–मनुस्मृति १०/६३

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, पवित्रता और इन्द्रिय निग्रह– ये मनु के द्वारा चारो ही वर्णो के लिये सामान्य धर्म कहे गये है।

हिन्दू परम्परा की दृष्टि से स्मृतियो के पश्चात् रामायण, महाभारत और पुराणो का काल माना जाता है। महाभारत, गीता

और पुराणो मे ऐसे सैकडो सन्दर्भ है, जो भारतीय मनीषियो की अहिसक चेतना के महत्वपूर्ण साक्ष्य माने जा सकते है–

अहिसा सकलोधर्मो हिसाधर्मस्तथाहित ।

– महाभारत शा पर्व अध्याय २७२/३०

अर्थात् अहिंसा को सम्पूर्ण धर्म और हिसा को अधर्म कहा गया है।

न भूतानामहिसाया ज्यायान् धर्मोस्तथाहित ।

– महाभारत शा पर्व २९२/३०

अर्थात् प्राणीमात्र के प्रति अहिसा की भावना से श्रेष्ठ कोई धर्म नही है।

अहिसा परमोधर्मस्तथाहिसा परो दम ।
अहिसा परम दानमहिसा परम तप ।।
अहिंसा परमोयज्ञस्तथाहिसा पर फलम् ।
अहिसा परम मित्रमहिसा परम सुखम् ।।

– महाभारत अनुशासन पर्व ११६/२८-२९

अर्थात् अहिसा सर्वश्रेष्ठधर्म है, वही उत्तम इन्द्रिय निग्रह है। अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ दान है, वही उत्तम तप है। अहिसा ही सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है और वही परमोपलब्धि है। अहिसा, परममित्र है, वही परमसुख है।

इस प्रकार हम देखते है कि वैदिक एव हिन्दूधर्म मे ऐसे अगणित सदर्भ है, जो अहिसा की महत्ता को स्थापित करते है।

बौद्ध धर्म मे अहिसा

मात्र यही नही भारतीय श्रमण परम्परा के प्रतिनिधिरूप जैन एव बौद्ध धर्म भी अहिंसा के सर्वाधिक हिमायती रहे है। बौद्धधर्म के पचशीलो, जैनधर्म के पच महाव्रतो और योगदर्शन के पचयमो मे अहिसा को प्रथम स्थान दिया। धम्मपद मे भगवान बुद्ध ने कहा है–

न तेन आरियो होति येन पाणानि हिसति ।
अहिसा सव्वपाणान अरियोति पवुच्चति ।।

– धम्मपद धम्मट्ठवग्ग १५

अर्थात् जो प्राणियो की हिसा करता है, वह आर्य (सभ्य) नही होता, अपितु जो सर्व प्राणियो के प्रति अहिंसक होता है, वही आर्य कहा जाता है।

अहिंसका ये मुनयो निच्च कायेन सवुता ।
ते यन्ति अच्चुत ठान यत्थ गत्वा न सोचरे ।

– धम्मपद कोधवग्ग ५

अर्थात् जो मुनि काया से सवृत होकर सदैव अहिंसक होते है, वे उस अच्युत स्थान (निर्वाण) को प्राप्त करते है, जिसे प्राप्त करने के पश्चात् शोक नही रहता। धम्मपद मे अन्यत्र कहा गया है–

निधाय दण्ड भूतेषु तसेसु थावरेसु च ।
यो न हन्ति न घातेति तमह ब्रूमि ब्राह्मण ।।

अर्थात् जो त्रस एव स्थावर प्राणियो को पीडा नही देता है, न उनका घात करता है और न उनकी हिसा करता है, उसे ही मै ब्राह्मण कहता हूँ।

इस प्रकार पिटक ग्रन्थो मे ऐसे सैकडो बुद्धवचन है, जो बौद्ध धर्म मे अहिसा की अवधारणा को स्पष्ट करते है।

जैन धर्म मे अहिसा

जैनधर्म मे अहिंसा को धर्म का सार तत्व कहा गया है। इस सम्बन्ध मे आचाराग, सूत्रकृताग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, मूलाचार आदि अनेक ग्रन्थो मे ऐसे हजारो उल्लेख है, जो जैनधर्म की अहिंसा प्रधान जीवन दृष्टि का सम्पोषण करते है। इस सम्बन्ध मे आगे विस्तार से चर्चा की गई है। यहाँ हम मात्र दो तीन सन्दर्भ देकर अपने इस कथन की पुष्टि करेंगे। दशवैकालिक सूत्र मे कहा गया है–

धम्मो मगलमुक्किट्ठ अहिसा सजमो तवो।–दशवैकालिक १/१

अर्थात् अहिंसा, सयम और तप रूप धर्म ही सर्वश्रेष्ठ मगल है।

सूत्रकृताग मे कहा गया है–

एय खु णाणिणो सारं ज ण हिंसति कचण ।
अहिसा समय चेव एतावत वियाणिया ।। –सूत्रकृताग ११/१०

ज्ञानी होने का सार यही है कि किसी जीव की हिंसा नही करते। अहिंसा ही धर्म (सिद्धान्त) है– यह जानना चाहिये।

अन्यत्र कहा गया है–

सव्वे जीवा वि इच्छन्ति जीविउ न मरिज्जिउ ।
तम्हा पाणवह घोर निग्गथा वज्जयतिणं ।।

अर्थात् सभी सुख अनुकूल और दु ख प्रतिकूल है। इसीलिए निर्ग्रन्थ प्राणी वध (हिंसा) का निषेध करते है।

सिक्खधर्म मे अहिसा

भारतीय मूल के अन्य धर्मो मे सिक्खधर्म का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इस धर्म के धर्मग्रन्थ मे प्रथम गुरू नानकदेवजी कहते है–

जे रत लग्गे कपडे जामा होए पलीत ।
जे रत पीवे मासा तिन क्यो निर्मल चित्त ।।

अर्थात् यदि रक्त के लग जाने से वस्त्र अपवित्र हो जाता है, तो फिर जो मनुष्य मास खाते है या रक्त पीते है, उनका चित्त कैसे निर्मल या पवित्र रहेगा ?

अन्य धर्मों मे अहिसा

न केवल भारतीय मूल के धर्मो मे अपितु भारतीयेतर यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्मो मे भी अहिसा के स्वर मुखर हुए है। यहूदी

धर्म के धर्मग्रन्थ **Old Testament** मे पैगम्बर मोजेज ने जिन दस धर्मदिशो का उल्लेख किया है, उनमे छठा धर्मादेश है– **'Thou shall not kill'** अर्थात् 'तुम किसी को मत मारो'। वस्तुत यहूदी धर्म मे न केवल हिसा करने का निषेध किया गया, अपितु प्रेम, सेवा और परोपकार जैसे अहिसा के विधायक पक्षो पर भी बल दिया गया है।

यहूदी धर्म के पश्चात् ईसाई धर्म का क्रम आता है। इस धर्म के प्रस्तोता हजरत ईसा माने जाते है। यह सत्य है कि ईसामसीह ने ओल्ड टेस्टामेन्ट मे वर्णित दस धर्मदिशो को स्वीकार किया, किन्तु मात्र इतना ही नही, उनकी व्याख्या मे उन्होने अहिसा की अवधारणा को अधिक व्यापक बनाया है। वे कहते है– ''पहले ऐसा कहा गया है कि किसी की हत्या मत करो लेकिन मै कहता हूँ कि बिना किसी कारण अपने भाई से नाराज मत होओ।'' इससे भी एक कदम और आगे बढकर वे कहते है कि ''यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर तमाचा मार देता है, तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो।'' पुराना धर्मदिश कहता है– ''पडोसी से प्यार करो और शत्रु से घृणा करो'', मै तुमसे कहता हूँ कि ''शत्रु से भी प्यार करो। जो तुम्हे शाप दे उसे वरदान दो, जो तुम्हारा बुरा करे, उसका भला करो।'' ईसा के इन कथनो से यह स्पष्ट होता है कि उन्होने यहूदी धर्म की अपेक्षा भी अहिसा पर अधिक बल दिया है और उसके निषेधात्मक पक्ष कि 'हत्या मत करो' की अपेक्षा 'करुणा, प्रेम, सेवा' आदि विधायक पक्षो को अधिक महत्व दिया है।

इस्लाम धर्म मे कुरान के प्रारम्भ मे ईश्वर (खुदा) के गुणो का उल्लेख करते हुए उसे उदार और दयावान (रहमानुर्रहीम) कहा गया है। उसमे बिना किसी उचित कारण के किसी को मारने का निषेध किया गया है और जो ऐसा करता है वह ईश्वरीय नियम के अनुसार प्राणदण्ड का भागी बनता है। मात्र यही नही, उसमे पशुओ को कम भोजन देना, उन पर क्षमता से अधिक बोझ लादना, सवारी करना आदि का भी निषेध किया गया है, यहाँ तक कि हरे पेडो के काटने की भी सख्त मनाही की गई है। इससे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि इस्लाम धर्म मे भी अहिसा की भावना को स्थान मिला है।

इस प्रकार हम देखते है कि प्राय विश्व के सभी प्रमुख धर्मो मे अहिंसा की अवधारणा उपस्थित है।

❑ डॉ० किरण सिपानी

अपने ही घर में किसी दूसरे घर के हम हैं

तेजी से बदलता विश्व-परिदृश्य एक ओर तो सभावनाओ के नित नये द्वार खोल रहा है और दूसरी ओर नये विश्वविद्यालयो एव शिक्षण-सस्थानो के माध्यम से व्यावसायिक, तकनीकी, इजीनियरी, कृषि एव विज्ञान सबधी नवीन पाठ्यक्रमो की व्यवस्था की गयी है। खुले विद्यालयो के तहत मुख्यधारा से कटे एव समस्याग्रस्त विद्यार्थियो को शिक्षा की सुविधाएँ दी जा रही है। नारी शिक्षा एव प्रौढ शिक्षा से सबधित उल्लेखनीय प्रयास किये गये है। विदेशो मे अध्ययन के लिए छात्रवृत्तियॉ सुलभ हुई है। परन्तु इतने विकास के बावजूद शिक्षा सामाजिक, नैतिक, मानवीय एव आध्यात्मिक सरोकारो से दूर होती जा रही है। विद्यार्थियो मे अकेलापन, कुठा, असुरक्षा एव भय की भावनाएँ घर कर रही है। हिसा की प्रवृत्ति बढ रही है और बुरी आदते पनप रही है। जीवन अधिक बोझिल, अधिक उच्छृखल और जटिल हो गया है। गुणवत्ता का स्थान विस्तार ने ले लिया है। पूरा विश्व शिक्षा की समस्याओ और समाधानो मे विचारमग्न है।

सभी शिक्षाविदो की मान्यता है कि 'सा विद्या या विमुक्तये'– विद्या व्यक्ति को सीमाओ से मुक्त करती है। विद्या की परमार्थकरी एव अर्थकरी रूप उसके विभिन्न लक्ष्यो को स्पष्ट करते है। परमार्थकरी विद्या का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त कराना ही नही वल्कि विद्यार्थियो के व्यक्तित्व, चरित्र एव उनके मानसिक-आध्यात्मिक विकास को भी परिधि मे समेटना है। आध्यात्मिक और नैतिक विकास से ही जीवन मूल्यो की रक्षा हो सकती है। अर्थकरी विद्या आजीविका से जोडती है, कर्मक्षेत्र मे स्वय को प्रमाणित करने के अवसर देती है। आज की शिक्षा मे परमार्थकरी रूप आँख की ओट हो गया है, अर्थकरी उद्देश्य हावी हो गया है। सपूर्ण विश्व अर्थ और शक्ति की क्रीडा मे आनदमग्न है। हर क्षेत्र चाहे वह शिक्षा का ही क्यो न हो, 'पावर' और 'मनी' से जुड गया है। आजीविका से जुडे पाठ्यक्रमो (जॉब ओरिएण्टेड कोर्सेज) की धूम मची है। शिक्षा के परम्परागत विषय साहित्य, दर्शन, इतिहास एव भाषाशास्त्र आदि बाजार की परिभाषा पर खोटे उतर रहे है।

शिक्षा के प्रतिमान बदल गये है। पहले जहाँ श्रेष्ठता कसौटी थी, आज पैसे न आसन खिसका लिया है। प्रतिभासम्पन्न को अगूठा दिखाते हुए कम अक पाने वाला धनाढ्य विद्यार्थी उच्च शिक्षा के अवसरो को अपने लिए सुलभ बना लेता है और अब तो बॉहे फैलाकर आमत्रण देते बाजारवाद ने सबको पीछे धकेल दिया है। क्रेडिट पर पढिए, प्रतिभा को बधक रखिये, कैरियर बनाइये और उधार चुकाइये। मीठी आवाज मे पुकार-पुकार कर अपने प्रलोभनो मे फॉसते नित नये इन्स्टीच्यूट गली-कूचो मे उग रहे है। क्या मजाल कि आप सोने और पीतल मे फर्क कर पाये। अच्छे से अच्छे, बडे से बडे स्कूल-कॉलेज मे चेक बुक लेकर पीछे के दरवाजे से घुसने की सहूलियत हो गयी है। बडे कदो के स्कूल-कॉलेज-इन्स्टीच्यूट मे पढनेवालो की डिग्रियो की कीमत कई गुना बढ जाती है और विवाह-बाजार मे डिमाड भी ऊँची हो जाती है। मान्यता प्राप्त विद्यालयो से साठ-गाठ कर कई निजी (प्राइवेट) विद्यालय लाखो कमा रहे है। शिक्षा तत्र मे पनपती इस माफिया सस्कृति के षडयन्त्रो के कारण परीक्षा न दे पानेवाले विद्यार्थियो की खबरो से अखबार के पन्ने रग रहते है।

परीक्षा को अनिवार्य बुराई मानते हुए भी शिक्षाविद् इसका कोई विकल्प नही खोज पाये है। परीक्षार्थी बनने मे ही विद्यार्थी को अपना मोक्ष नजर आ रहा है। परीक्षोपयोगी प्रश्नो के 'नोट्स' ही अध्ययन-अध्यापन का काम्य हो उठे है। जो शिक्षक 'नोट्स' नही दे सकता वह पुराणपथी (आउटडेटेड) मान लिया जाता है। ऊँची फीस लेनेवाले ट्यूशनी शिक्षक पूजनीय है। एक ही ढाँचे मे ढले उत्तर परीक्षक के लिए काफी सुविधाजनक होते है–एक जैसा माल, एक जैसी जॉच। विना फीस लिए पढाने वाला शिक्षक मन्दबुद्धि, दयापात्र एव त्याज्य होता है। फीस लिए विना भला कही बुद्धि का द्वार खुलता है? परीक्षा और अध्ययन-अध्यापन का यह मेल कितना

अर्थपूर्ण होता है– इसी सदर्भ मे बाबा तुलसीदास की पक्तियाँ याद आ रही है –

''गुरु सिस अध-बधिर का लेखा
एक न सुनइ एक नहि देखा ।''

नोट्स जीरोक्स करवाने के चलन ने विद्यार्थियो का अपकार ही किया है। जीरोक्स के माध्यम से अपना समय बचाकर कुछ ही क्षणो मे नोट्स की प्रतिलिपियॉ (कॉपीज) – ज्ञान के पन्ने सचित कर विद्यार्थी बहुत प्रसन्न होते है। पहले अपने हाथ से उतारने के कारण विद्यार्थियो को विषय-वस्तु की एक झलक मिल जाती थी। लिखते रहने के अभ्यास के कारण उनके लिखने की गति भी तीव्र हो जाती थी। अक्षरो को सुडौल बनाने के अवसर भी उन्हे सहज सुलभ हो जाते थे, वर्तनी की अशुद्धियॉ भी कम होती थी। इधर वर्तनी की अशुद्धियो की बाढ आ गयी है, चाहे लिखनेवाला ऑनर्स का विद्यार्थी ही क्यो न हो। लिखने की गति धीमी होने के कारण अक्सर विद्यार्थी प्रश्नपत्र के सम्पूर्ण उत्तर नही लिख पाते।

अनियमित परीक्षाएँ, वर्ष-दर-वर्ष मनमाने परीक्षको का चुनाव, मनचाहे स्कूल-कॉलेजो की उत्तर-पुस्तिकाओ के प्रति पक्षपात आदि तरह-तरह के आरोपो से घिरी परीक्षा-प्रणाली आडम्बर बनकर रह गयी है। अधिकाश परीक्षा-कक्षो मे विद्यार्थियो को उन्मुक्त सॉस लेने, हाथ-पाव-गर्दन हिलाने एव लघुशका निवारण की बेलगाम लम्बी छूट सिद्ध करती है कि स्वतत्रता उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। परीक्षा स्थलो मे सरस्वती के प्रताप मे इतनी वृद्धि होती है कि शौचालय तक विद्यामदिरो मे परिणत हो जाते है और चोर दरवाजे से प्रवेश कर लक्ष्मी भी विराजने लगती है। आलम यह है कि किसी किसी परीक्षा-कक्ष मे परीक्षार्थियो की आँखो से बरसते तीरो को फौलादी सीने पर झेलता निरीक्षक रणभूमि मे डटा रहता है। उसकी शहादत का आखिर क्या मोल है? जो डिग्रियो के रास्ते मे आयेगा, वह चूर-चूर हो जायेगा।

धीरे-धीरे सुस्ताता, कछुआ चाल से चलता परीक्षा तत्र लम्बे अतराल के पश्चात् परीक्षको तक पहुँचता है। कुछ को इस दायित्व से मुक्त होने की खूली छूट है तो कुछ पर अतिरिक्त बोझ लाद दिया जाता है। कभी परीक्षको के निकम्मेपन के प्रशस्तिपत्र पढे जाते है तो कभी आनन-फानन उनसे मॉग की जाती है कि इतनी पुस्तिकाएँ इतने दिनो मे जॉच कर दो–गोया परीक्षक हाड-मॉस का पुतला न होकर मशीन हो। स्विच दबाया और नियत समय मे फैक्ट्री मे इतना प्रोडक्शन तैयार! आजकल अधिकारीगणो की जागरूकता के चर्चे है। परीक्षको की जन्मकुडलियॉ पढी जा रही है और आचार-सहिताएँ घोषित की जा रही है। आशा की जानी चाहिये कि इस समुद्र-मथन के बेहतर परिणाम होगे।

घरो-परिवारो मे परीक्षा उन्माद का रूप धारण कर चुकी है। बच्चा और सारा परिवार एक तनाव की स्थिति मे जीते है। त्योहारो पर पहरे बैठा दिये जाते है। माँ-बाप, घर-दफ्तर के जरूरी कामो को तिलाजलि दे परीक्षा-स्थलो पर योगासन की मुद्रा मे बैठे-खडे रहते है। हमारे शास्त्रो मे कहा भी तो गया है–''एकै साधै सब सधै।'' बाह्य परीक्षा के साथ आतरिक मूल्याकन (इन्टरनल एसेसमेन्ट) एव वार्षिक परीक्षा के साथ सतत मूल्याकन के प्रयोग भी शुरु किये गये है। आतरिक मूल्याकन के लिए स्कूलो मे हर विषय मे एक 'प्रोजेक्ट' बनाने का प्रावधान किया गया है। इन प्रोजेक्ट फाइलो के लिये सामग्री जुटाने एव तैयार करने मे बच्चो के साथ मॉ-बाप भी जुट जाते है और कभी-कभी तो विषय के 'प्रोफेशनल' को मोटी रकम देकर फाइले तैयार करवायी जाती है। परिणामस्वरूप ऐसे प्रयास अपने उद्देश्यो तक पहुँचने मे असमर्थ रहते है, विद्यार्थी यथार्थ ज्ञान (प्रैक्टिकल नॉलेज) को जीवन मे उतार नही पाते।

शिक्षक की छवि मैली हुई है। कर्त्तव्य पर अधिकार हावी हो गया है। राजनीति और व्यक्तिगत बैर भाव से सचालित होनेवाले शिक्षक विद्यार्थियो के कल्याण को भूल कर अपनी गोटियॉ बैठाने मे मशगुल रहते है। उनका व्यवहार विद्यार्थियो की मौलिकता और रचनात्मकता को कुठित कर देता है। कुछ शिक्षक विद्यार्थियो से दूरी बनाये रखना श्रेयस्कर समझते है। उनसे विद्यार्थी इतने आतकित रहते है कि न्यायपूर्ण बात कहने मे भी हकलाते है। जहॉ सवादहीनता होती है, वहाँ दूरियाँ बढती है। सीधा-सच्चा-आत्मीय सवाद समस्याओ को सुलझाने मे कारगर साबित होता है। नये वेतनमान के साथ शिक्षको को अनेक नियमो मे बाँध दिया गया है। यह ठीक है कि एक मछली तालाब को गदा करती है, परन्तु शिक्षको पर तरह-तरह की पाबदियाँ लगाना उनकी सृजनात्मकता को बदी बनाना है। मस्तिष्क की उर्वरता-ऊर्जा को प्रशासनिक एव दफ्तरी कार्यों मे खर्च करना न्यायसगत नही कहा जा सकता।

पाठ्यक्रमो पर पुनर्विचार के तहत कही तो ताजी हवा को प्रवेश मिला है और कही नवीनता के बहाने अल्पज्ञतावश जरूरी विषयो को भी बदल दिया गया है। एक ओर सस्कृत अध्ययन-अध्यापन की दुर्गति है और दूसरी ओर ज्योतिष विद्या को पढाने के नगाडे बजाये जा रहे है, इतिहास के साथ खिलवाड किया जा रहा है। कभी जरूरी एव नवीन पुस्तको की खरीद के समय पुस्तकालयो के लिए धन का रोना रोया जाता है और कभी सरकारी अनुदान के तहत पाठ्यक्रम की परिधि के बाहर अवाछित पुस्तको की भीड के कारण पुस्तकालयो मे उपयोगी पुस्तको के लिए स्थान का अभाव

रहता है। उचित देख-रेख की कमी के कारण न तो शिक्षक और न ही विद्यार्थी पुस्तकालयो का लाभ उठा पाते है।

आजादी के बाद शिक्षा की सबसे बडी समस्या शिक्षा के माध्यम की है। माध्यम का प्रश्न जटिल से जटिलतर होता जा रहा हैं। भारतीय भाषाएँ अभिशप्त है। अग्रेजी ने उनके अधिकार छीन लिये है। हिन्दी, मातृभाषा एव क्षेत्रीय भाषा मे शिक्षा की बाते पिछडेपन की निशानी है। उनके माध्यम से चलने वाले विद्यालय या तो बद होते जा रहे है अथवा अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए उन्हे अग्रेजी माध्यम की वैकल्पिक व्यवस्था करनी पडी है। भारतीय भाषाओ के माध्यम से शिक्षित हाशिये पर डाल दिये गये है। इन भाषाओ के विद्वानो का गभीर चितन अपने ही देश मे दो कौडी का साबित हो रहा है, उसका बाजार मे कोई मूल्य नही। वे शिक्षक ही विद्वान समझे जाते है जो पग-पग पर अग्रेजी के उदाहरण देकर अपनी धाक जमाते है। अग्रेजी आधुनिकता और प्रतिष्ठा के साथ जुड गयी है। अग्रेजीदाँ ही नौकरियो के लिये चुने जाते है, देशज चरित्रो की कोई कद्र नही। इस देशज पीडा को निदा फाजली ने बखूबी व्यक्त किया है –

''पहले हर चीज थी अपनी मगर अब लगता है,
अपने ही घर मे किसी दूसरे घर के हम है।''

हमारे देश के अतिरिक्त किसी भी स्वाधीन देश का बच्चा विदेशी भाषा या अग्रेजी भाषा से शिक्षारभ नही करता। जापान जैसा उन्नत देश भी अपनी भाषा के माध्यम से चरम ऊँचाइयो का स्पर्श कर पाया है। हमारे देश के उच्चतम शिक्षण सस्थान अग्रेजी माध्यम से अपने विद्यार्थियो को विश्वोन्मुख बनाने मे मगन है क्योंकि अग्रेजी के बिना विश्व की कल्पना नही की जा सकती। हमारे राष्ट्रीय नेताओ ने खुली सम्पूर्ण बहस से हमेशा बचने का प्रयास किया। वोट हिन्दी और प्रातीय भाषाओ मे मॉगे और राज्य अग्रेजी मे किया। बुद्धिजीवियो का एक वर्ग अग्रेजी के माध्यम से लोकतत्र की लडाई लडना चाहता है। लोकतत्र की लडाई लोकभाषा के बिना सभव नही है। वर्तमान शासन व्यवस्था की भाषा अग्रेजी है और राष्ट्रभाषा हिन्दी इस व्यवस्था से बाहर है। इस व्यवस्था के टूटे बिना हिन्दी एव कोई भी प्रादेशिक भाषा सिर उठाकर जी नही सकती। भारतीय भाषाओ से कटना अपने परिवेश से कटना है, सामाजिक रिश्तो की गरमाहट का ठडे होते जाना है।

स्वतत्र भारत की स्वतन्त्र शिक्षा नीति विकसित नही हुई। वह मैकाले के पदचिह्नो का अनुसरण करती हुई नौकरी तक सीमित रही, जीवन से दूर होती गयी। दो-अढाई वर्ष का बच्चा नर्सरी और केजी शिक्षा-व्यवस्था मे भेज दिया जाता है – अपने घर, आस-पडोस और समाज से काट कर। शुरु से ही उसे एक सकीर्ण घेरे मे कैद होने का अभ्यास डाल दिया जाता है। थोडे बडे होने पर बच्चे को होस्टल मे भेज कर हम विशिष्ट बना देना चाहते है। होस्टली या स्कूली शिक्षा के पश्चात् उच्चतर-शिक्षा के लिये विदेश यात्रा की योजनाओ मे हम तन-मन-धन समर्पित करने के लिये आकुल-व्याकुल रहते है। इस पूरी व्यवस्था मे क्या महत्व है भावनात्मक परिवेश का! कितना सटीक कहा था प्रसाद ने –

''किन्तु है बढता गया मस्तिष्क ही निश्शेष,
छूट कर पीछे गया है रह हृदय का देश।''

इस तत्र मे सस्कारो का कोई स्थान नही। इस खतरे को महसुसते हुए बच्चो को सस्कारित करने के लिये सस्कार-शिविर आयोजित किये जा रहे है। इनके महत् उद्देश्य मे कोई सदेह नही है, परन्तु वर्तमान परिवेश मे ये मात्र घटना बन कर रह जाते है, जीवन मे उतर नही पाते। पारम्परिक उत्सव और त्योहार हमे शिक्षित नही कर पा रहे है, महज कर्मकाण्ड बनकर रह गये है। दीपावली के ठीक बाद वाले दिन परीक्षा मे बैठनेवाला विद्यार्थी क्या तन-मन से त्योहार को जी पाता है? टी०वी० पर त्योहार मना कर बच्चो को सस्कारित नही किया जा सकता। त्योहारो के अनुकूल परिवेश का निर्माण होना चाहिये। स्कूल-कॉलेजो की छुट्टियॉ भारतीय जीवनशैली को दृष्टिगत रखकर तैयार की जानी चाहिये।

देश के महत्वपूर्ण मुद्दो मे शिक्षा को सम्मिलित नही किया जाता। सकल राष्ट्रीय आय का बहुत छोटा सा प्रतिशत (छ प्रतिशत) शिक्षा पर खर्च किया जाता है। अपने दायित्व से मुक्त होकर सरकार निजी शिक्षण सस्थानो को प्रोत्साहन दे रही है। परन्तु परिवार की आय मे बढोतरी करनेवाले बच्चे को विद्यालय भेज पाना एक दुष्कर कार्य है। यदि मॉ-बाप भेज भी पाये तो छोटे से कमरे मे ठूॅसे गये पचास-साठ बच्चो को छ -सात सौ के वेतन पर नियुक्त शिक्षक/शिक्षिका के हवाले कर देना कितना अमानवीय है। भौतिक-शैक्षणिक-मानवीय साधनो के अभाव मे ऐसी योजनाएँ दिवा-स्वप्न बन कर रह जाती है। ग्रामीण जीवन के प्रति गहरी समझ के बिना शिक्षा के गन्तव्य को पाया नही जा सकता। सन् २००१ को नारी सशक्तिकरण वर्ष की सज्ञा दी गयी। रिपोर्टो के आधार पर ६ से १४ वर्ष के बच्चो के लिये अनिवार्य शिक्षा के तहत ३८ ५२ प्रतिशत लडकियॉ ही पॉचवी कक्षा से ऊपर शिक्षित है। इस प्रतिशत मे कमी का कारण है– लडकियो पर अतिरिक्त काम का बोझ एव समय की कमी। ग्रामीण अभिभावक भयभीत है। उनका दृढ विश्वास है कि स्कूली लडकियो पर होनेवाले यौन हमलो के विरुद्ध सरकार की ओर से सशक्त कदम नही उठाये जाते।

खैर। लडकियो की शिक्षा का प्रतिशत जो चाहे रहा हो, उनकी स्थिति निश्चित रूप से परिवर्तित है। वे लडको के साथ कदम-से-कदम मिलाकर शिक्षित हो रही है और कही-कही तो उन्हे पीछे छोडकर आगे निकल रही है। उनमे आत्मबोध का विकास हुआ है। प्रशिक्षित नारी ने व्यावसायिक योग्यताएँ अर्जित की है। उसने आर्थिक स्वतन्त्रता का सुख भोगा है। उसमे निर्णय लेने का साहस पैदा हुआ है। आत्मरक्षा के लिए जूडो-कराटे के शिक्षण ने निपुणतापूर्वक आक्रामक होने के तेवर भी पैदा किये है। सशक्तिकरण के दौर मे सतुलित, दूरदर्शी एव विवेकसम्पन्न बोध ही नारी-छवि को गरिमा प्रदान करेगा एव शिक्षा के नये प्रतिमान स्थापित करने मे सशक्त भूमिका निभायेगा।

शिष्टाचार मे परिणत होते भ्रष्टाचार, बाजारवाद और आरक्षण के भँवर मे फँसा विद्यार्थी दिग्भ्रमित है। राजनीति मे उसका इस्तेमाल किया जा रहा है, उसे भागीदार नही बनाया जा रहा। वह डरा-डरा, सहमा-सहमा है, कभी एक दिशा मे दौड रहा है तो कभी दूसरी दिशा मे। एक के बाद एक प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षाओ मे बैठता, चारो तरफ हाथ-पाँव मारता अपने लिए स्थान सुरक्षित करना चाहता है। दो-तीन तरह के पाठ्यक्रमो (कोर्सेज) का बोझ लेकर चलने के कारण एक के प्रति भी पूरी तरह समर्पित नही हो पाता एव परीक्षाफल मनोनुकूल नही हो पाता। कोचिग सेटर एव स्कूल-कॉलेज की दुहरी मार झेलते हुए विद्यार्थी की मानसिकता रुग्ण हो जाती है। कभी वह आक्रामक हो उठता है तो कभी दयनीय। कभी वह शिक्षक के अनुपस्थित होने पर कक्षाएँ न होने की शिकायत करता है तो कभी शिक्षक से गुहार लगाता है कि बिना पढाये ही छोड दिया जाये। कभी पाठ्यपुस्तक न लाने पर विद्यार्थियो का ढीठ बने रहना और कभी किसी भी गल्ती पर लज्जित होने के बजाय पूरी कक्षा का ठहाके लगाना – यह आम दृश्य है। न जाने विद्यार्थी स्वय पर हँसते है या शिक्षक पर। और कभी किसी शिक्षिका को देखकर 'लाल छडी मैदान खडी ', 'ओ मनचली कहाँ चली ' जैसे फिल्मी गीतो की कडियो के माध्यम से फिकरे कसते हुए वे अपने दुस्साहसी व्यक्तित्व का आतक जमाते देखे जाते है। उच्च शिक्षा के बावजूद भी बेरोजगारी सुरसा की तरह मुँह बाये खडी रहती है और बहुत बार आतकवाद की राह पर ले चलती है। किसी अखबार मे एक खबर छपी थी कि भारतीय छात्रो को लुभाने के लिये ब्रिटेन के विश्वविद्यालयो ने हाल ही मे दिल्ली मे मेले आयोजित किये है। इन मेलो का उद्देश्य है कि ब्रिटेन की सर्वश्रेष्ठ शिक्षा और उसकी विविधता को भारतीय छात्र के सामने रखना। ब्रिटेन के विश्वविद्यालय भारतीय छात्रो के मेहनती स्वभाव और अग्रेजी पर उनकी पकड से बेहद प्रभावित है। मेलो के आयोजको का मानना है कि देश की प्रतिभाओ पर आरक्षण की पडती मार ने उन्हे विदेशो की ओर भागने के लिए मजबूर किया है। वहाँ छात्र-छात्राओ को सब्जबाग नही दिखाये जाते बल्कि रोजगारोन्मुख शिक्षा प्रदान की जाती है। वैश्वीकरण के दौर मे प्रतिभा-पलायन का रोना बेमानी है।

कम्प्यूटर के उदय ने शिक्षा के क्षेत्र मे हलचल मचा दी है। इस क्रातिकारी घटना ने सपूर्ण विश्व को एक ग्राम मे तब्दील कर दिया है। समय की रफ्तार के साथ चलने के लिए 'सरवाइवल ऑफ द फास्टेस्ट' की नीति ने चाहे-अनचाहे कम्प्यूटर-शिक्षण को अनिवार्य बना दिया है। नेटवर्क के प्रवेश ने शिक्षण-प्रशिक्षण की नई प्रणालियाँ ईजाद की है। यह सच है कि कम्प्यूटर घर बैठे अल्प समय और अल्प श्रम के माध्यम से असीम ज्ञान उपलब्ध करवा सकता है, प ु इसके लिए मशीन के सामने बैठने की मानसिकता, व्यवस्था और स्थान की अनुकूलता की कवायद से गुजरना पडता है। सोये-बैठे – किसी भी स्थिति मे पुस्तक की उपलब्धता और सुविधा का सुख अलग ही होता है। मनुष्य और मनुष्य के बीच कहे-अनकहे जो सवाद होता है वह मनुष्य और यत्र के बीच सभव नही। इसी सदर्भ मे मै रमशे दवे का कथन उद्धृत करना चाहूँगी– ''स्लेट चाहे कम्प्यूटर के परदे मे बदल जाए, किताबे इन्टरनेट और वेबसाइटो का रूप धारण कर ले और शिक्षक चाहे दूरदर्शन या प्रौद्योगिकी ससाधनो के एकर्स मे बदल जाएँ और मशीन, मशीन की पराकाष्ठा भले हो जाए, मगर द्रष्टा नही हो सकती। इसलिए मनुष्य की भूमिका दृष्टि और द्रष्टा की भूमिका है, विचार और ज्ञान की भूमिका है। इसलिए आशा की जा सकती है कि चाहे शिक्षा मनुष्य का भविष्य हो या न हो, मनुष्य शिक्षा का भविष्य अवश्य होगा (''इक्कीसवी शती मे शिक्षा का भविष्य''–सितम्बर २००१, वागर्थ)।''

शिक्षा बहुआयामी प्रक्रिया है। इसमे ज्ञान के साथ श्रम एव शारीरिक स्वास्थ्य के साथ नैतिक उन्नयन का समन्वय आवश्यक है। जानकारी या सूचनात्मक ज्ञान को ही शिक्षा का पर्याय न समझकर, जीवन के लिए, जीवन के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये। क्या ये सदर्भ फिर गाँधी की ओर मुडने का सकेत नही देते ?

वृन्दावन गार्डेन्स
१८, क्रिस्टोफर रोड, कोलकाता-७०० ०४६

डॉ महेन्द्र भानावत

लोक माध्यम : जनशिक्षण और चुनौतियाँ

भारत परम्पराओ का देश है और यहा की परम्पराए मनुष्य के विवेक के उद्भव अथवा सभ्यता के आदिकाल से जुडी हुई है। यहा के समाज की पहचान आज भी परम्पराधर्मी समाज के रूप मे है। लोक ने जिसे अपनी परिपाटी कहा, शास्त्रो ने उसे अपने विशिष्ट सम्प्रदायो के साथ जोडते हुए मर्यादा की सज्ञा से अभिहित किया।

लोक परम्परा के सवाहक के रूप मे लोक की ही पारम्परिक विधिया रही है जिन्हे लोक माध्यमो के रूप मे देखा जा सकता है। आज लोक माध्यम चाहे जिस नवीकृत रूप मे हमारे सामने हो लेकिन पारम्परिक लोक माध्यम उनके मूलाधार रहे है। लोक जीवन इन माध्यमो से साम्प्रदायिक सम्पर्क ही नही, सामुदायिक सवाद और सामुदायिक सह-शिक्षण भी प्राप्त करता है।

लोक ने इन माध्यमो को अनुरजनपरक आवरण देकर उन्हे चिरस्थायी बना दिया है। यद्यपि आज ये माध्यम आधुनिकता का सकट झेल रहे है लेकिन देहात मे अब भी अपनी विरासत को महत्त्ववान बनाये हुए है। देहातवासी आज की उपग्रहीय सचार और सम्प्रेषण प्रणाली से अनभिज्ञ है। राजधानियो मे बैठकर सरकार और गैर सरकारी उच्च सस्थाओ के लिए परियोजनाए तैयार करते समय उच्च पदस्थ अधिकारी सर्व सामान्य तक अपनी बात पहुचाने के जो स्पप्न सजोते है वे सर्वप्रथम पारम्परिक लोकमाध्यमो पर ही दृष्टि निक्षेप करते है, क्योकि शहरी और अभिजात्य अथवा मध्यवर्गीय परिवारो तक तो आधुनिक माध्यमो से बात पहुच जाती है किन्तु आधारभूत सुविधाओ के अभाव मे जीवन जीने वाले लोगो तक अपनी बात पहुचाने के लिए हर क्षेत्र के अपने अपने आचलिक लोक माध्यमो का सहारा लेना पडता है।

लोक माध्यमो का वर्गीकरण

यू तो पहले के हर क्षेत्र मे अपने अपने लोक माध्यम है जिनके साथ जहा आचलिक परम्परा जुडी होती है वही आचलिक भाषा, अचल जन्य उत्पादो से सजे मढे वाद्य होते है और फिर वे उस अचल के लोक जीवन की अपनी पसन्द भी होते है तथापि उनका मूल स्वरूप या मूल लक्ष्य एक ही होता है। लक्ष्य और उद्देश्य के अनुसार पारम्परिक लोकमाध्यमो के तीन स्वरूप है –

१) सूचनात्मक
२) शिक्षात्मक
३) अनुरजनात्मक

लोक माध्यमो के प्रत्येक रूपानुरूप के साथ चाहे वे रामलीला हो, रासलीला हो, माच, तमाशा, गवरी, चविड्डुनाटकम्, भवाई, जात्रा, ख्याल, यक्षगान, कठपुतली, भगत, तेरुकुत्तु, रमखेलिया, गोधल, भागवतमेल, विदेशिया, मुटियाट्टम, करियाला, अकिया, नौटकी, कुरवजि, स्वाग स्वदा भाडपथर हो अथवा लोक माध्यमो का और कोई रूप हो, उनके साथ सूचना शिक्षा और अनुरजन उद्देश्यो का निहितार्थ व्याप्त मिलता है।

ये पारम्परिक लोकमाध्यम एक प्रकार से किसी अचल की रसवती कलाओ का माधुर्य लिए होते है। ये कही समूह और समुन्नत मिलते है तो कही हास्यभाव भी इनमे देखा जाता है। ये माध्यम लोक की सजीवनी है। कई बार लोक की यह धरोहर लोक को पुनर्जीवित करती है तो कई बार लोक इन्हे श्रीहीन होने से बचाता है।

लोक के ये माध्यम कही आल्हादक होते है तो कही अनाल्हादक भी किन्तु ये शास्त्रीय अनुष्ठातिक जटिल चक्रो से अलग-अलग अपनी लोक पगडण्डी पर ही अनवरत नजर आते है। इन माध्यमो की कुछ विशेषताए भी है –

१) ये लोकभाषा पर आधारित होते है।
२) लोक की अपनी समझ और स्तर के समानान्तर चलते है।
३) लोकोक्तियो के सहारे ये अपना विकास करते है और कई बार सूत्र शैली मे भी अपनी यात्रा करते है।
४) लोग सग्रह या लोकराधना इनका प्राणिक आधारित है।

भारत के प्रमुख पारम्परिक लोग माध्यम चाहे वे अभिनेय, प्रदर्शनात्मक या गेय अथवा कथनात्मक हो, मुख्य रूप से निम्न है –

१) लोककथा
२) लोकनाट्य
३) लोकनृत्य
४) लोकगीत

लोककथा

लोककथा वह है जो परम्परा से चली आई है। वह तथ्यात्मक भी हो सकती है और कथ्यात्मक भी। यू तो आदिम युग से मानव ने अपनी अनुभूतियो को कथा के रूप मे अथवा रूपक बाधकर समझाने का प्रयास किया है। शास्त्रो मे ऐसी कथाओ के कई रूपक मिलते भी है किन्तु शास्त्रो मे भी बारम्बार लोक की महिमा कर अपने से अधिक महत्त्व लोक को दिया है और वहा श्रुत परम्परा अथवा पुरोवाक्य के रूप मे इतिहास पुराण की युक्ति का मिलना लोककथा परम्परा की समृद्धि को ही दर्शाता है। इस प्रकार कथाभिव्यक्ति तीन रूपो मे नजर आती है –

१) कथा रूपकात्मक
२) पौराणिक
३) लोककथात्मक अथवा लोककठ पर जीवतएतिह्य।

भारत मे लोककथाए मुख्य रूप से धार्मिक विकास, व्रत अनुष्ठान, प्रणबद्धता और भय और कौतुक के साथ-साथ रहस्य रोमाच की स्मरणीयता के साथ रसावयवो को लेकर काल के प्रवाह मे जीवत रही है। ये ही कथाए पारम्परिक मिथक, अवदान, चरित्र वर्णन, सस्कारारम्भ, पेड प्रकृति वीराख्यान आदि के रूप मे भी अपना आकार दर्शाती है।

यहा पारम्परिक कथाकार रहे है जिन्होने अपनी निराली परम्परा को जीवन दिया है। राजस्थान मे कथक्कडो या वातपोशी की परम्परा देखने को मिलती है। यहा राणीगगा, राव, भाट, चारण सहित रावल, मोतीसर, वडवा, ढादी, नगारची, सरगडा, वीरम आदि समुदायो मे जजमानो को कहानी द्वारा रिझाकर उनसे यथेष्ट नेग प्राप्त करने की परम्परा रही है। ये कहानिया कौतुक अभिवर्धन करने वाली तथा इतनी सजीव और जानदार होती है कि रसिक को सदैव अधीर बनाये रखती है।

यहा कथा को केणी, वार्ता, बात आदि भी कहा जाता है। यहा कथाओ के कहने के चार रूप देखने को मिलते है –

१) कथास्थल
२) कथावाचन
३) कथा गायक•
४) कथा मर्तन।

कथाओ के साथ हुकारे की भी अपनी महिमा है। लोक माध्यमो मे हूकारा अथवा सजीवता की सहमति वह रूप है जो तत्काल सम्प्रेषणीयता की प्रतिक्रिया और कथ्य-तथ्य की पुष्टि का प्रतीक है। यह किसी भी आधुनिक माध्यमो मे सभव नही है फिर हूकारे की ये परम्पराए इतनी सजीव और जीवन से नैकट्य लिए होती है कि उनमे तात्कालिक समझ और स्वीकारोक्ति प्रस्तोताओ के लिए पृष्ठपोषण का कार्य भी करती है।

लोकथाओ के साथ ही लोकगाथाओ का भी अपना महत्त्व है जो एक प्रकार से लोक का प्रबन्ध काव्य है। इनमे भी लोकमानसीय प्रवृत्तिया, लोक के आदर्श का निरूपण स्वाभाविक प्रवाह तो होता ही है साथ ही साथ चरित्र नायक की जीवन कथा, गेयता मे परम्परित होती है। ये एक प्रकार से जातीय सस्कृति का अनुभव चित्र प्रस्तुत करती है। पवाडा भी इसी का एक रूप है।

लोकनाट्य

लोकजीवन मे जन्म लेकर लोक को शिक्षित-प्रशिक्षित करने, लोकोद्वार अथवा लोक के लिए आदर्शपरक कार्य करने वाले नायको के चरित्र का कथात्मक चित्रण तो होता ही है, उसका मचन भी होता आया है। लोक की यह विशिष्ट थाती है कि उसमे पौराणिक पात्रो से लेकर विभिन्न युगो मे जन्म लेकर अपने चरित्रो से अपने श्रेष्ठ उपलब्धिमूलक आदर्शपरक कार्यो से अपनी अमिट छाप कायम करनेवाले चरित्रो की नाट्यपत्र प्रस्तुतिया होती आई है। लोक जीवन उन्हे अपने ढग से मचित करता है। लोक का अपना मच है लोक के अपने ही कलाकार उसको मचित करते है। इन लोकनाट्यो की सवसे वडी विशेषता यह है कि दर्शको मे से ही कई वार पात्र उभरकर आते है और अपने अनुभव को दर्शा जाते है।

ये लोकनाट्य सर्वसाधारण के जीवन से अपना सम्बन्ध रखते है और मनोरजन के साथ ही जनशिक्षण का कार्य भी करते है। लोक के नाटको की यह सबसे बडी विशेषता हैं कि वे दुर्गुणो पर सद्‌गुणो की विजय की अभिव्यक्ति होते है और प्राय स्थापन इसी फलिर्ता के साथ होता है।

लोकनाटको की भी अपनी लोकभाषा हे। इनमे रूढिया, लोकाचार, परिपाटिया, कथा-आख्यान के साथ-साथ वार्ता और विश्वास भी सवाद रूप मे उपस्थित होते है। लोक के नाटको की यह भी एक विशिष्टता है कि उनमे बनाव और शृगार के मुकाबले वागाभिव्यक्ति की वरीयता हासिल होती है। लोकनाट्यो के कलाकार वाग्विदग्धता तथा तात्कालिक सवाद सर्जन एव बाग्स्खलन मे दक्ष होते है और यह भी अति वैशिष्ट्य है कि वे कही प्रशिक्षण प्राप्त किये नही होते है। आज के नाट्यकर्मी जहा एक-एक सवाद को रटने अथवा डबिग का सहारा लेते है, वही लोकजीवन के कलाकार स्वयमेव सिद्ध होते है।

राजस्थान मे लोकनाट्यो के मूलत दो रूप होते है –

१) लघु प्रहसन, जिसमे रम्मत, भवाई, रावल, रासधारी, हेला, स्वाग, महरण तथा बहुरूपियो के सवादी ख्याल लिए जा सकते है।

२) गीतिनाट्य, जिसमे वैवाहिक अवसरो पर किये जाने वाले टूटिया के ख्याल, गवरी के गीताधारित खेल, माच के खेल व अन्य ख्याल शामिल है।

यहा तुर्राकलगी के ख्याल, कुचामणी ख्याल, शेखावाटी के ख्याल, मेवाडी ख्याल, नौटकी के ख्याल, कलाबक्षी ख्याल, किशनगढी ख्याल, चिडावी ख्याल, कठपुतली ख्याल, हत्थरसी ख्याल, गधर्वो के ख्याल, नागौरी ख्याल, कडा ख्याल एव झाडशाही ख्यालो की अपनी विशिष्ट विरासत रही है।

इसी प्रकार यहा लीलाओ की भी अपनी सुदीर्घ परम्परा देखने को मिलती है। सम्भवत ये लीलाए धार्मिक अथवा भक्ति आन्दोलनो की प्रेरणाए लिए रही है क्योकि इनके मूल मे देव अथवा भगवन्त लीलाए मुख्य है। यहा – रामलीला, रासलीला, समकालिक लीला, नरसिह लीला, समया, रासधारी, गरासियो की गौर लीला, भीलो की शिवलीला अथवा गवरी आदि।

लोकनृत्य

लोकनृत्य लोक माध्यमो की दृष्टि से सवसे महत्त्वपूर्ण है। ये लोक जीवन के उल्लास की सशक्त अभिव्यक्ति है और सम्प्रेषण माध्यम के रूप मे मानव शरीर के उपयोग की प्राचीनतम कला भी। इनकी प्रस्तुति मे सामाजिक जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाए अथवा महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्तिया उजागर होती है। भावनाओ की अभिव्यक्ति और भावोद्रेक के लिए मानव जीवन को नृत्य एक नैसर्गिक माध्यम है। यह किसी एक व्यक्ति की उपज नही बल्कि समष्टि की सरचना है। सदियो पूर्व मनुष्य अपने आनन्द मगल के कारण अग भगिमाओ का जो अनियोजित प्रदर्शन करता रहा, वही धीरे-धीरे आयोजन नियोजन के साथ लोकनृत्यो के रूप मे सामने आया।

लोक नृत्यो के कई रूप है –

१) स्वान्तसुखाय लोकनृत्य
२) आनुष्ठानिक लोकनृत्य
३) श्रम साध्य लोकनृत्य
४) सामाजिक लोकनृत्य
५) मनोरजनात्मक लोकनृत्य

इन रूपो के बावजूद लोकनृत्यो के लिए यह कहा जा सकता है कि उनमे लोकजीवन की परम्परा, उसके सस्कार तथा जनता का आत्मिक विश्वास निहित होता है जिसे बाद मे आध्यात्मिक विश्वास का नाम दे दिया गया। ये लोकनृत्य सामूहिक अभिव्यक्ति होते है और सर्वगम्य तथा सर्व सुलभता योग्य सहजता लिए होते है। एक प्रकार से ये लोकनृत्य सामूहिक अनुरजन के साथ-साथ लोकशिक्षण के भी सशक्त माध्यम है।

राजस्थान मे घूमर, घाटाबनाडा, पणिहारी, तेराताली, गणगौर, मोरबद, कागसिया जैसे नृत्य गुजरात के भवाई, डाडिया, गरबारास, कश्मीर के रुफ, वाट्टल, घूमाल, बाड, पाथेर व मुखौटा नृत्य, पजाब के भागडा, गिद्दा, लूद्दी झूमर और चीना, हरियाणा के डडा, छठी, हिमाचल प्रदेश के नाटी, घोडायी, डागी, नाट, फुरेही व फराटी, किन्नौर के बोयाग्चू, गद्दी, उत्तरप्रदेश के चाचरी, रसिया, चरकुला, रास, रासक, झूला, फेरा, डागरिया आसन, रणासो, उडीसा के डडानाट, लागुडा, केलाकेलूनी, घटा पटुआ, छाऊ व घूमरा, पश्चिमी बगाल के गभीरा, रायबेश, ढाली, जात्रा, पालागान, असम के बीहू, ढुलिया, भवरिया व खुलिया, मणिपुर के लाइहारोबा, माइबा, रास, सकीर्तन च चौलम जैसे कई नृत्य यह बताते है कि लोक जीवन इन नृत्यो को एक सशक्त माध्यम के रूप मे रजन और शिक्षण का आधार बनाये हुए है।

लोकगीत

लोकगीत लोक की धरोहर है, किसी व्यक्ति की नही। ये केवल शब्दरचना ही नही लोक का पूरा शास्त्र लिए होते है। उनमे सामूहिक मगलेच्छा निहित मिलती है। वे अपने मूल मे समूह की सरचना भी है। इनमे शब्द भी समूह का, स्वर भी समूह का, ताल, लय, छद भी समूह का होता है। ये किसी भी समाज, सभ्यता, सस्कृति के दर्पण, रक्षक व पोषक होते है। लोक जीवन की सुखद भावनाओ ओर कमनीय कामनाओ के सहारे उन्हे वाणी का रूप मिलता है। एक प्रकार से लोक की गुजन मे कुछ निश्चित शब्दो का जमाव और उनके गायन से लोक का हर्षाव इन गीतो का महत्त्व परिभाषित करते है।

लोकगीतो के कई रूप है। विभिन्न प्रान्तो मे अनुष्ठान, बनभट, उनके प्रयोग गायन समय, गायक कलाकार और अन्य विशेषताओ के आधार पर भिन्न-भिन्न वर्गीकरण हुए है लेकिन मूलत लोकगीत चार श्रेणी के माने जा सकते है–

१) सस्कार सम्बन्धी लोकगीत
२) सामाजिक लोकगीत
३) धार्मिक लोकगीत
४) मनोविनोद के लोकगीत

लोकगीतो की ही कोटि का एक भेद भजन, हरजस, प्रभाती, साख-सबद आदि भी है। इन लोकगीतो की प्रभावना और अति व्याप्ति जीवन के प्रत्येक छोर पर देखी जा सकती है। इसीलिए यह मान्यता चली आई है कि बिना गीत के कोई रीत नही होती है। भारत मे जन्म से लेकर मृत्यु तक लोकगीतो की परम्पराबद्ध शृखला को देखा जा सकता है। सरलता, समरसता, सरसता के साथ मधुरता और लयबद्धता लोकगीतो के वे गुण है जिनके कारण वे शीघ्र ही कठस्थ हो जाते है। लोक जीवन मे ये लोकशिक्षण के महत्त्वपूर्ण आधार बने हुए है। आधुनिक युग के चितको और प्रचारको ने भी लोकगीतो की शक्ति का लोहा माना है। आधुनिक माध्यमो की सर्वसाधारण की पहुच के लिए भी लोकगीतो ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इस प्रकार भारत के पारम्परिक लोक माध्यम अपना स्वरूप और विस्तार बनाये हुए है। आधुनिकता की चमक मे यद्यपि चकाचौध होकर अपने स्वरूप को खोते जा रहे है तथापि इनकी अपनी समृद्ध परम्परा रही है और इसी परम्परा ने इन माध्यमो को कालजयी भी बना रखा है।

सचार लोक व्यवहार का आधार स्तम्भ है। किसी सोच, किसी सकल्प और किसी सृजन को औरो तक पहुचाने या समष्टिगत करने के प्रयासो मे सचार सेतु का कार्य करता है। प्राचीन काल मे सचार को प्रथमत 'नाद' नाम दिया गया और उसकी कल्पना श्रेष्ठ सत्ता या ईश्वरीय रूप मे की गई। इसके पीछे धार्मिक भाव चाहे जो रहा हो किन्तु मूलत विचारो की सप्रेषणीयता ही थी और उसे येन-केन-प्रकारेण एक मन या एक हाथ से अनेक मना या अनेक हस्ता करने का चिंतन मुख्य रहा।

इसी दृष्टिकोण का परिचायक है लोकमाध्यमो के पीछे का सोच। शब्द, वाणी, लिपि और कला-उत्पाद से लेकर अभिनय या प्रदर्शन भी इसी के अग रहे है। इस रूप मे आगिक, वाचिक और कालिक तथा लिखित एव वस्तुगत सर्जित रूप सचार के मूल स्वरूप कहे जा सकते है। लोक माध्यमो मे यही अवधारणा निहित मिलती है।

लोक माध्यमो मे चाहे लोक-कथा हो, लोकनाट्य हो, लोकनृत्य हो, लोकगीत हो अथवा और कोई लोकशिल्प, वे कही न कही एक सकल्प और एक विचार को एक से अनेक तक प्रसारित करने का निहितार्थ लिए होते है। लोकमाध्यमो के लिए कहा जा सकता है कि वे सामाजिकता के विस्तार का पूरा वाङ्मय लिए होते है। इन माध्यमो ने न केवल परिवार और परिवार के बीच ही वल्कि समाज और समाज के बीच सम्बन्धो और सवादो का सिलसिला शुरू किया तथा विभिन्न चीजो, शिल्पो, विचारो, मान्यताओ और आज के सोच से मूल्यो को पीढी-दर-पीढी हस्तातरित सचालित किया।

एक प्रकार से पारस्परिक लोक माध्यम सर्जन से लेकर आलोडन-बिलोडन और चिंतन तक की अवधारणा अपने मूल में लिए होते है। इसीलिए इन्हे सचयी कहा जाता है क्योंकि ये माध्यम हजारो वर्षो के अनुभवो को अपने मे सचित और समाहित किये अपने स्वरूप को सुविधानुसार विकसित एव वर्धित करते रहे है। आज के विचारो ने इन्हे साम्कृतिक धरोहर कह दिया और यही विचार एक हद तक इन्हे स्थगित और सीमित करने का हथकण्डा ही कहा जायेगा।

यहा विचार यह भी है कि अति यात्रिक युग मे देहाती या लोक माध्यमो को भले ही जगली, नामसझ या शताब्दियो पूर्व के सोच वाले लोगो के अनुरजन के अलावा कुछ नही माना जाता है अथवा दिन-ब-दिन परिवर्तित होते परिवेश मे

इन माध्यमो को फैशन की तरह देख लेने की कल्पना बढ चली हो परन्तु ग्रामीण या पारम्परिक लोक माध्यम अपने मूल मे नई परम्पराओ के जन्मदाता और नये माध्यमो के बीच भी रहे है।

इस प्रकार देखा जाय तो आज पारम्परिक लोक माध्यम कई चुनौतियो से जूझ रहे है। यह भी सोचा जा सकता है कि कई माध्यम तो अर्थहीन या नकारा करार दिये गये है। इसी कारण जहा लोक कलाकारो का अभाव होता जा रहा है वही लोगो का अथवा पूरे समुदाय का भी रवैया, दृष्टिकोण बदलता जा रहा है।

• पारम्परिक लोकमाध्यम आज के दौर मे जिन चुनौतियो से लोहा ले रहे है अथवा जिन चुनौतियो से हार मान रहे है, वे तीन विचारो पर निर्भर है ——

१) बदलाव
  अ) तकनीक के स्तर पर
  ब) जीवन स्तर पर
२) पलायन
  अ) कलाकारो की पराङ्मुखता
  ब) दर्शक या श्रोता समुदाय का दिशा हीन होना
३) दिखावा
  क) आयोजन के नाम पर
  ब) सामुदायिक सोच के स्तर पर

इस प्रकार देखा जाये तो आज पारम्परिक लोक माध्यम सीमित या स्थगित होते जा रहे है जबकि इनका विकास और कालक्रम बहुत लम्बा नजर आता है। यह जान पडता है कि ये माध्यम सैकडो और हजारो वर्षो के कालक्रम मे जो अपना स्वरूप तय कर पाये, वह आधुनिक सचार क्राति के आते ही विगत चार पाच दशको मे बौने और वामनाकार होते होते अडाकार होते चले जा रहे है।

यदि विस्तार से इनके समक्ष उपस्थित चुनौतियो पर नजर डाले तो मुख्य चुनौतिया निम्न जान पडती है–

इलेक्ट्रॉनिक क्राति

बीसवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध विद्युत क्राति के बाद इलेक्ट्रॉनिक क्राति का रहा और इस दौर मे सर्वाधिक विकसित रूप सचार माध्यमो का सामने आया। इस दौर मे जहा अति यात्रिकता बढी वही श्रव्य और दृश्य माध्यम भी नवीन रूप और और तडकभडक लेकर सामने आये। नब्बे के दशक मे सचार माध्यमो का जो स्वरूप सामने आया उसने नागरिकीय मानसिकता ये यह सवाल खडा कर दिया कि कल कोई नई तकनीक आने वाली है।

इसका आलम यह हुआ कि इन माध्यमो मे भी विकसित, अति विकसित और नव विकसित माध्यमो की रेलमपेल रही और अब सद्य तकनीक अथवा लेटेस्ट टेक्नोलॉजी एक कहावत के रूप मे सामने है। सचार माध्यमो मे आज रेडियो और दूरदर्शन की बात क्या करे, उपग्रहीय सचार माध्यम सामने है और विश्व के किसी भी कोने मे होने वाली घटना, दुर्घटना अथवा आयोजन को तत्काल अथवा साथ-साथ किसी अन्य कोने मे देखा जा सकता है।

फिल्मो मे भी आज कई तकनीके सामने है तथा सदियो पुराने जीवों को भी सजीव और साकार रूप मे फिल्माये जाने की आधुनिककृत पद्धतिया सामने आई है जिनके मूल मे कम्प्यूटर है। आज दूर सवेदी तकनीक भी सचार माध्यमो के साथ है।

इसके विपरीत पारम्परिक सचार माध्यमो के साथ यह विकासक्रम नही देखा जा सकता। इसी कारण जमाने की हवा वाले किसी व्यक्ति के सामने यदि पारम्परिक या ठेठ देहात की बात की जाती है तो बेमानी लगाती है।

यह भी एक युगीन सच है कि नवीकृत माध्यमो को अधुनातन करने की दशा मे सरकारे और वैज्ञानिक कितना चिंतन और अर्थ नियोजन या अर्थ निवेशन कर रहे है उतना पारम्परिक माध्यमो के साथ देखना तो दूर, सोचना भी सम्भव नही है।

जीवन शैली मे नवीनता

भारत की ही क्या बात करे, विश्व की ही जीवन शैली मे एकदम बदलाव आया है। न केवल पारिवारिक सम्पदाओ बल्कि सामाजिक रिश्तो पर भी इस बदलाव का असर देखा जा सकता है। आज की जीवन शैली नवीनता की अनुगामिनी है। परम्परा या पौराणिकता को वह छोड देना चाहती है। नवीनता की अनुशायिनी होने से जहा जीवन को अर्थ मिला है वही वह अपनी परम्परा से टूटे पत्ते की तरह कट गई है। आज के जीवन के पास पैसा है किन्तु समय नही है। वह लोकशिक्षण की बात भूल चुका है जबकि पारम्परिक माध्यम लोकशिक्षण के बहुआयाम लिए उपस्थित होते रहे है।

बदलाव के इस दौर ने पारम्परिक माध्यमो पर न केवल आघात किया अपितु उनका सर्वदृष्टि दमन भी किया है।

प्रतियोगितात्मक वातावरण

आज हर क्षेत्र मे प्रतिस्पर्धा देखने को मिलती है। व्यापार, व्यवसाय, उद्यम, चिकित्सा और सस्कारो तक मे नवीनता के साथ-साथ प्रतियोगितात्मक भावनाए देखने को मिल रही है। हर व्यक्ति पडोसी के मुकाबले अपने को अत्याधुनिक और अति यात्रिकता से युक्त बताने के उपक्रम मे लगा है। ऐसे मे पारम्परिक माध्यमो और उनके कलाकारो या सचालको मे प्रतिस्पर्धी मानसिकता का विकास नही हुआ है, फलत वे एक भयकर चुनौती से जूझ रहे है।

यजमानी प्रथा की समाप्ति

पारम्परिक लोक माध्यमो का विकास बहुत हद तक यजमानी प्रथा की देन रहा। लोक कलाकार अपने यजमानो अथवा आश्रयदाताओ के गाव और घर तक जाते तथा उनका अनुरजन करते हुए लोक शिक्षण का प्रयास करते थे। आज उपभोक्ता सस्कृति का दौर है जिसने यजमानी प्रथा को सदियो पीछे छोड दिया है। इस बात को इस दोहे से भी समझा जा सकता है –

वैश्या काते कातणो, भाट करे व्यौपार।
वाका मर गया रातिया अन वाका मरया दातार ।।

इसी कारण लोक कलाकारो मे भी अपनी कला के प्रति विरक्ति जागी है। यह एक तरह से न केवल कलाकारो की अपितु निखिल समुदाय की भी पलायनता को दर्शाता है।

साक्षरता का दौर

समाज मे कल तक जो निरक्षरता थी वह लोकोन्मुखी भाव से लोक माध्यमो को सरक्षण दे रही थी अथवा यह कहा जा सकता है कि अपने सहज भाव मे वह कलाओ को आश्रय दे रही थी किन्तु साक्षरता ने जमाने की हवा का काम किया है और उसने सहजता को असहजता का जामा पहना दिया है। समाज मे बेनकाबी बढी और छोटी कलाओ को क्षुद्र करार देते हुए आधुनिकता की डगर पर अपने कदम बढाये है।

फैशन परस्ती

पारम्परिक माध्यम फैशन परस्ती की मानसिकता से जूझ रहे है। आज परम्परा को फैशन के रूप मे देखा जाने लगा है। घरो की सजावट पारम्परिक उत्पादो से की जाने लगी है।विद्यालयो, महाविद्यालयो और अन्य सस्कारो के आयोजनों को पारम्परिक प्रवृत्तियो के नाम तो दिये जाते है लेकिन वहा वैठा कुछ देखने को नही मिलता जैसे कि आज परम्परा के नाम पर घूमर, गवरी, हमेलो, पणिहारी, चिरमी, गणगौर जैसे सास्कृतिक नामो से आयोजन रखे जाते है पर उनमे आधुनिकता अथवा भोडापन ही देखने को मिलता है। इसे भी एक फैशन परस्ती का रूप कहा जा सकता है कि लोकगीतो के साथ आधुनिक मानसिकता की माग को आवश्यक करार देते हुए बडे स्तर पर छेडछाड की जा रही है। एक और जहा इसमे कलाकार की असीमित यशलिप्सा का भाव है वही ओडियो-वीडियो निर्माताओ का विपणन और अर्थार्जन का दृष्टिकोण भी देखने को मिलता है। आज हर चीज एक उत्पाद के रूप मे देखी जाने लगी है। पारम्परिक कल्पनाए और पारम्परिक माध्यम इस मानसिकता से बुरी तरह चोट खाये हुए है।

अर्थफूक आयोजन एव सरकारीकरण

वर्तमान दौर मे हर आयोजन अर्थसाध्य हो गया है। बडे आयोजनो का सरकारीकरण भी होता चला जा रहा है। सार्वजनिक हित के नाम पर लोक कलाकारो को तरजीह नही दी जाती और तथाकथित अभिजनो के सगठन, क्लब किसी फिल्म, एलबम के कलाकार के नाम पर सास्कृतिक सध्या एव नाइट आयोजित करने की मानसिकता लिए बैठे है।

आज छोटे से लेकर बडे शहर तक उन कलाकारो के आयोजन रखे जाने लगे है जो स्क्रीन पर नजर आते है। दो चार ठुमको और मनलुभावने अर्धनग्न नृत्यो की प्रस्तुतियो के साथ-साथ भारी भरकम आर्केस्ट्रा के बीच लोक का अपना साजोसामान बौना जान पडता है। एक प्रकार से लोक की और लोकजीवन से जुडे माध्यमो की आज भारी उपेक्षा होने लगी है। लोक कलाकारो को यदि किसी बडे आयोजन मे बुलाया जाता है तो वे दया के पात्र से ज्यादा कुछ नजर नही आते। शादी, जन्मदिन, नामकरण या विवाह-वर्षगाठ के साथ ही सेवानिवृत्ति पर दी जाने वाली पार्टियो मे लोक कलाकारो को बुलाना भी एक फैशन हो गया है और वहा भी ध्वनि विस्तारक यत्रो, सीडी आदि माध्यमो के आगे वे वामनाकार नजर आते है।

सरकार ने अपने स्तर पर जहा सास्कृतिक केन्द्रो की स्थापना की वही सगीत नाटक अकादमिया, कलाकेन्द्र, लोककला वीथिया भी स्थापित की। लोककला मेलो के आयोजन भी शुरू किये किन्तु इनमे भी लोकनृत्य माध्यमो की उपेक्षा ही हुई क्योकि कलाकार अपना समग्र जौहर नही दिखा सकते। वे सचालक अथवा सयोजक के मूत्र मे लिपटे मकार्ची

व्यक्तित्व के धारक हो जाते है फिर एक विडम्बना यह भी देखने को मिल रही है कि सास्कृतिक आयोजनो के ठेकेदार पारम्परिक कला साधको या कलापक्ष परिवारो की उपेक्षा कर डुप्लीकेसी का खेल खेलते नजर आते है।

लोक कलाकारो के प्रशिक्षण का अभाव

कल तक बातपोशी, लोकगीतो का गायन, नर्तन, वादन, कथा कथन जैसी कलाओ का प्रशिक्षण कलाकार अपने घर पर ही कर लिया करते थे, आज वह परम्परा नही रही। नई पीढी अपनी परम्परा को हेय दृष्टि से देखने लगी। उसे नया कुछ करने की जुगत मे एबीसीडी से कार्यारम्भ करना पडता है। एक प्रकार से वे अपने पारम्परिक कर्म और धर्म से हीन होकर नवीन अनुशासन मे अनुभव प्राप्त करना चाहते है जो न केवल उन्हे महगा पडता है बल्कि पारम्परिक कला माध्यमो पर भी भारी पड रहा है।

पिछले कुछ समय से कुछ कला सस्थानो मे लोक कलाकारो के प्रशिक्षण की चिंता उठने लगी है किन्तु यह भी एक विडम्बना है कि ये कला प्रशिक्षण समयबद्ध होते है जबकि लोककलाकारो के लिए सतत प्रशिक्षण और सुधि-दर्शक समुदाय की आवश्यकता होती है।

लोक कलाकारो को प्रशिक्षण वे लोग देने लगे हैं जो कला रूपो को जानते ही नही है। आज बडे शहरो मे कई सस्थाए लोक कला प्रशिक्षण के नाम पर ग्रीष्मकाल आदि अवकाश के समय शिविर आयोजित करते है किन्तु उनका परिणाम एक-दो नृत्य तक ही सीमित होकर रह जाता है। अन्य कई माध्यम है जिनके प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था नही है यथा पडगायन, कावड वाचन, कथा कथन अथवा बातपोशी, कथा गायन, लोकचित्रायण का अकन आदि विधाओ के लिए कोई प्रशिक्षण ,नही होते क्योकि ये बेहद श्रम और समय साध्य कला माध्यम रहे है।

इसी प्रकार लोकवाद्यो के वादन के प्रशिक्षण शिविर भी नही लगाये जाते। खडताल, रावणहत्था, सिघी, सारगी, अपग, गिरगिडी, भूगल, डोसका, मोरचग, नड, घोरयू आदि वाद्यो का वादन तो लुप्त ही होता चला गया। माठ वादन की बाते तो देखते ही देखते खत्म हो गई है। शादी समारोहो मे शहनाई, वाकिया और नक्काडा वादन के ओडियो टेप आ गये है।

लोककथा उपकरणो का निर्माण रुकना

कल तक जो कलाकार अपने हाथो से पसदीदा वाद्यो या कला सहयोगी सामान का निर्माण करते थे वे अपनी कला को छोड चुके है। पुतलीकार, नट, भाट अपने माध्यम स्वय नही बनाते बल्कि बने बनाये सामान से ही अपना काम चलाकार यह कहते सुने जाते है कि हमने तो अपनी जिन्दगी जी ली अब आने वाली पीढी खुद अपनी चिता करेगी क्योकि आगन्तुक पीढी कुछ नया कर दिखाना चाहती है। सिघी, सारगी का निर्माण बन्द हो गया, मोरचग का वादन और निर्माण थम सा गया है। नड, अलगौजे, चग, तारपी, पावरी, घोरयू, बाकिया, नरसिंगे केवल सग्रहालयो की शोभा होकर रह गये। मशक और अरबी ताण के बाजे अब समारोहो की शोभा नही बढाते बल्कि विवाह वाद्यो मे भी सिन्थेसाइजर बजाया जाने लगा है जो एक ही वाद्य कई वाद्यो की पूर्ति कर देता है।

बस्सी जैसे काष्ठ शिल्पियो के गाव मे कावडो, मुखौटो, पुतलियो, गणगौरो, खाडो केवाणो का निर्माण नही होता। खाडो को बने हुए वर्षो हो गये। भरावो के शिल्प, गवारियो की कागातिया आज लोक पसन्दगी से ही जाते रहे। यही कारण है कि 'घाट से गडाई' महगी होने लगी। पडो का स्थान पडक्यो ने ले लिया फिर मुद्रण कला ने भी पड पर भारी प्रहार किया। एक प्रकार से मुद्रण ने जहा दुर्लभ चीजो को सरेआम लाकर रख दिया वही कलाकारो की उत्पादन क्षमता ओर उदरपूर्ति के माध्यम पर भी भारी चोट की है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पारम्परिक लोकमाध्यम जो कभी अपने अचल मे अपनी परम्परा की साख भरते थे, वे अपनी पहचान ही खोते जा रहे है क्योंकि उनके सामने चुनौती, चुनौती न होकर सुरसा की तरह दिन दुगुना रात चौगुना बढने वाला सकटाकार रूप लिए मुह बाये खडा है। ऐसे मे यदि पारम्परिक माध्यमो को बचाने के हनुमत् प्रयास नही हुए तो केवल चुनौतिया ही नजर आयेगी और लोकमाध्यमो की केवल बाते ही रह जायेगी।

■

□ डॉ० शिवनाथ पाण्डेय

बदलते परिवेश में शिक्षा और शिक्षक

मनुष्य का चरित्र-निर्माण करनेवाली शिक्षा का आज प्रमुख उद्देश्य है, अर्थोपार्जन। वर्तमान अर्थ-प्रधान-परिवेश मे इसे बिल्कुल गलत भी नही कहा जा सकता। किंतु यदि अर्थोपार्जन ही शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य हो जाय तो निश्चित रूप से यह एक चिता का विषय बन जाता है। कदाचित् यही वजह है कि राष्ट्र-निर्माता माने जाने वाले शिक्षक समाज के प्रति भी 'आचार सहिता' की बात आज चर्चा का विषय बन गयी है। कहना न होगा कि भारतीय समाज मे कभी ब्रह्मा, विष्णु और महेश की कतार मे स्थान पाने वाले गुरुओ के प्रति आज प्रशासनिक अनुशासन की बात एक युगातकारी बदलाव है, जिसके प्रति मात्र सकेत करना ही यहाँ हमारी सीमा है।

ईश्वर से भी गुरु को श्रेष्ठ माननेवाले कबीर ने कभी कहा था कि–

'गुरु तो ऐसा चाहिए सिक्ख सो कछु न लेय ।
सिक्ख तो ऐसा चाहिए गुरु को सरबस देय ।।'

यह पूज्य-भाव आज सिर्फ वायवीय आदर्श बनकर रह गया है। यथार्थ इसके बहुत कुछ विपरीत है। वर्तमान जीवन-सदर्भो से जुडकर यही स्वाभाविक भी है क्योंकि आज का शिक्षक प्राचीन गुरुओ की भाँति जगल मे झोपडी बनाकर फल-फूल पर जीवन व्यतीत करनेवाला त्यागी महापुरुष नही, बल्कि आधुनिक ग्राम या नगर मे निवास करने वाला एक सुविधापरस्त आम आदमी है। यदि यथार्थ से जुडकर आधुनिक सामाजिक सबधो का मूल्याकन करे तो यह कहना गलत नही होगा कि आज समाज मे वही व्यक्ति सम्मान का अधिकारी है, जो भौतिक सुख-सुविधा के साधनो से सपन्न है। इस आधार पर समाज मे अपने को प्रतिष्ठित करने की दौड मे यदि आज का शिक्षक भी शामिल है, तो व्यावहारिक दृष्टि से उसे गलत नही कहा जा सकता क्योंकि आज समाज का शायद ही कोई ऐसा वर्ग है, जो इस भावना से वचित है। किंतु साथ ही इस तथ्य से इकार भी नही किया जा सकता कि इस दिशा मे हमारी एक मर्यादित सीमा होनी चाहिए। युग-युग से सम्मानित शिक्षक-समुदाय की मर्यादा को अर्थ-सग्रह की अध-दौड ने आज किन कारणो से इस स्थिति मे पहुँचा दिया, यह एक विचारणीय विषय है, जिसे सामयिक सदर्भो से जोडकर ही देखना उचित है।

भारतीय समाज व्यवस्था के नीव-निर्माण मे दो क्षेत्रो को व्यावसायिकता से बिल्कुल दूर सेवा-पक्ष के अतर्गत रखा गया– एक शिक्षा एव दूसरी चिकित्सा। किंतु बाजारवाद के दबाव मे आज व्यवसाय-जगत का सबसे फायदेमद एव सहज साधन है, इन क्षेत्रो से जुडे क्रमश प्राइवेट स्कूल एव नर्सिग होम खोलना। प्राय हर क्षेत्र मे आज निजीकरण की प्रक्रिया भी इसी दबाव का प्रतिफलन है। भविष्य मे सरकारी विद्यालयो का भी उद्योगपतियो की सपत्ति के रूप मे बदल जाना बिल्कुल असभव नही कहा जा सकता। सरकारी शिक्षण-सस्थानो मे भी ठीका के आधार पर नियुक्तियो का मन बना चुकी सरकारो की नियत आज साफ हो चुकी है। इस क्रम मे शिक्षा के राजनीतिकरण ने और भी कई समस्याएँ पैदा की है। आज शिक्षको के लिए विकास का माध्यम पढने-पढाने से अधिक राजनीति प्रेरित शिक्षक-सघो की गतिविधियो मे हिस्सेदारी है। ऐसे परिवेश मे शिक्षक-शिक्षार्थियो का आदर्श की कसौटी पर मूल्याकन के क्या परिणाम होगे, यह स्वत स्पष्ट है।

सिद्धात और व्यवहार के टकराव मे सिद्धात की हार वर्तमान सामाजिक परिवेश का स्वाभाविक सत्य है। इस सत्य मे जुडकर ही आरभिक शिक्षा मे मातृभाषा के महत्व को मानते हुए भी आज बहुत कम ऐसे समर्थवान व्यक्ति है, जो मातृभाषा-माध्यम के विद्यालयो मे शौक से अपने बच्चो का नामाकन कराना चाहते है। भारतीय शिक्षा-सस्कृति मे अग्रेजी एव अग्रेजियत का बीज-वपन करनेवाले मैकाले की शिक्षा-नीति की भर्त्सना करते हुए भी हम उसे अपनाने से परहेज नही कर पाते। राष्ट्रीयता की भावना मे प्रेरित होकर खोले गये हिंदी-माध्यम विद्यालयो को भी अग्रेजी-माध्यम मे बदलने से रोक नही पाते। कोलकाता मे आज भी कई ऐसे विद्यालय है, जो अपने नाम के बिल्कुल विपरीत अग्रेजी एव अग्रेजियत के प्रचार-प्रसार मे सलग्न है। स्पष्टत इसकी वजह मे

आज हिदी की अपेक्षा अग्रेजी का अधिक रोजगारोन्मुख होना है। जैन धर्म के अणुव्रत-अनुशास्ता, युग प्रधान आचार्य तुलसी के अनुसार, ''शिक्षक यदि शिक्षा को जीविका का साधन मात्र मानता है तो वह विद्यार्थी को पुस्तक पढा सकेगा, पर जीवन-निर्माण की कला नही सिखा सकेगा। इसी प्रकार विद्यार्थी यदि जीविकोपार्जन के उद्देश्य से पढता है तो वह डिग्रियॉ भले ही उपलब्ध कर लेगा, किंतु ज्ञान के शिखर पर नही चढ सकेगा।'' किंतु आज शिक्षा का यह आदर्श सिर्फ कहने भर को रह गया है। वास्तविकता यह है कि 'जैन धर्म' की भावना से प्रेरित होकर खोले गये 'जैन विद्यालय' भी शिक्षा-माध्यम के रूप मे अग्रेजी को अपनाकर जीविकोपार्जन का ही मार्ग प्रशस्त करते है। वर्तमान सामाजिक परिवेश मे यही युग धर्म है, जो युग-प्रधान आचार्य की कथनी और उनके अनुयायियो की करनी मे भिन्नता लाने को बाध्य करता है।

जगत-गुरु के रूप मे विश्व-विख्यात भारत की शिक्षा-सस्कृति मे व्यावसायिकता का बीज-वपन कब और किन परिस्थितियो मे हुआ, यह कहना तो सहज सभव नही, परन्तु प्राचीन भारत मे भी यह भावना थी जिसके सकेत मिल जाते है। महाकवि कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' मे लिखा है कि 'यस्यागम केवल जीविकायै त ज्ञानपण्य वणिज वदन्ति।' अर्थात् जिसका शास्त्रज्ञान केवल जीविका निर्वाह के लिए है, वह तो ज्ञान बेचने वाला वणिक् है। कहना न होगा कि आज प्राय हर क्षेत्र मे यह व्यावसायिकता ही हमारी आधुनिक अर्थ-व्यवस्था की देन है। 'शिक्षा-विभाग' का 'मानव ससाधन विकास मत्रालय' के रूप मे परिवर्तन कदाचित् इसी अर्थ-व्यवस्था का परिणाम है। क्योकि आधुनिक शिक्षा को चरित्रनिर्माणोन्मुख बनाने के बजाय रोजगारोन्मुख बनाना ही वर्तमान समय की मॉग है। इस मॉग के दबाव मे हमारी सामाजिक सस्कृति के अतस मे निहित नैतिक मूल्य आज नष्ट-भ्रष्ट होते जा रहे है, जिसकी ओर सकेत करते हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कीन्ज का कहना है कि ''अभी तो आनेवाले कम से कम सौ वर्षो तक हमे अपने आपको और प्रत्येक व्यक्ति को इस भुलावे मे रखना होगा कि जो उचित है, वह गलत है और जो गलत है वह उचित है, क्योकि जो गलत है वह उपयोगी है, जो उचित है वह नही। अभी हमे कुछ अर्से तक लालच, सूदखोरी और एहतियात की पूजा करनी होगी, क्योकि इन्ही की सहायता से हम आर्थिक आवश्यकताओ के अधेरे रास्ते से निकलकर रोशनी मे कदम रख सकेगे।'' यही है आज का व्यावहारिक सत्योद्घाटन। अज्ञान के अधकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर गमन करने का मत्र 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का आज कोई 'कीन्ज' द्वारा साकेतिक उपर्युक्त अर्थ भी निकाले तो आश्चर्य नही। क्योकि गुरुकुल से आरभ होकर आज इटरनेट तक पहुँची शिक्षा-सस्कृति की मुख्य दिशा नैतिकता की चोटी से चलकर भौतिकता की खाई मे ही खोते जाना है। ऐसे बदलते परिवेश मे शिक्षक अपने व्यावहारिक जीवन मे कौन-सा रास्ता अख्तियार करेगे, यह स्पष्ट करने की आवश्यकता नही है। आज ट्यूशन के औचित्य-अनौचित्य की चर्चा इसी का परिणाम है।

वर्तमान युग-धर्म, 'अर्थ-सग्रह' की दृष्टि से अतिरिक्त समय मे ट्यूशन के औचित्य को समझा जा सकता है, पर मूल कर्तव्यबोध को नजरअदाज कर सिर्फ ट्यूशन ही शिक्षक का लक्ष्य बन जाय तो यह शिक्षा-सस्कृति के विघटन की पराकाष्ठा है। इससे साथ बैठकर पढनेवाले प्रतिभावान गरीब छात्रो को मानसिक आघात भी पहुँचता है। क्योकि असली परीक्षापयोगी शिक्षा तो उन्ही शिक्षको द्वारा कक्षा से बाहर दी जाती है, जो अर्थ-सपन्न छात्रो को ही नसीब हो पाती है। फलत स्कूल स्तर पर कृष्ण-सुदामा का अलगावबोध कक्षा स्तर पर भी विद्यमान रहता है। ऐसे शैक्षणिक परिवेश से निकले बच्चो से किस प्रकार का समाज बनेगा, यह एक विचारणीय विषय है। अर्थ-सपन्न अभिजात वर्ग के मूर्ख-गवार बच्चे भी चॉदी की सीढी पर चढकर आधुनिक विज्ञान-टेक्नोलॉजी की ऊँचाई पर पहुँच जाते है। तथाकथित पिछडी जातियो के गरीब बच्चो को भी आरक्षण का एक सहारा मिल जाता है, पर कुलीन कहकर छाँट दिये जानेवाले प्रतिभावान गरीब बच्चो का भविष्य सोचनीय बन जाता है। कभी-कभी तो वे अपने मूर्ख-गवार सहपाठियो के ही दरबान-चपरासी बनने तक को अभिशप्त होते है। यही है अर्थ-प्रधान समाज मे निरतर विघटित होती शिक्षा-सस्कृति के परिणाम, जो किसी भी समाज प्रेमी या व्यवस्था के लिए चिंता का विषय बन सकता है। किंतु इस चिता का समाधान सिर्फ शिक्षको के लिए 'आचार-सहिता' या कानून बनाकर सभव नही है। ऐसा सोचना समाधान के लिए सरलीकरण का रास्ता अख्तियार करना है। वास्तविकता यह है कि नैतिक बोध की गिरावट आज समाज के हर क्षेत्र मे आई है, जिसका विश्लेषणपरक अनुशीलन किये बिना सिर्फ सतही सुधार की बाते अदूरदर्शिता की पहचान बन कर रह जाएगी।

अग्रेजी एव अग्रेजियत के प्रभाव से क्रमश विनष्ट हो रही भारतीय शिक्षा-सस्कृति के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए कभी स्वामी विवेकानद ने कहा था, ''यदि देश के बच्चो की शिक्षा का भार फिर से त्यागी व्यक्तियो के कधो पर नही आता तो भारत को दूसरो की पादुकाओ को सदा-सदा के लिए अपने सिर पर ढोते रहना होगा।'' बेशक आधुनिक शिक्षा अपने चरम विकास पर पहुँचकर भी त्याग के अभाव मे सामाजिक रागात्मक सबधो को छिन्न-भिन्न करती जा रही है, पर सवाल है कि आज स्वार्थोन्मुखी शिक्षा को सामयिक यथार्थ से सामना करते हुए

त्याग-तपस्या पर आधारित विलुप्त होते पारपरिक जीवन-मूल्यो से किस प्रकार जोडा जाय। आधुनिक अर्थ-प्रधान परिवेश मे यह एक कठिन चुनौती है, जिसका समाधान सिर्फ सतही स्तर पर सोचने या कानून बनाने से सभव प्रतीत नही होता। आज आवश्यकता है शिक्षा की जड से जुडे उन कारणो पर विचार करने की, जिनके चलते चाहकर भी हम अपने को सुधार नही पाते। इस दिशा मे प्रशासन द्वारा समय-समय पर गठित आयोगो के प्रतिवेदन भी ध्यातव्य है।

आजादी के बाद गठित राधाकृष्णन आयोग (१९४९) के प्रतिवेदन मे इस बात पर जोर दिया गया है कि शिक्षा का उद्देश्य सत्य के वैज्ञानिक सत्यापन के साथ-साथ विघटित होते जीवन-मूल्यो पर भी केन्द्रित होना चाहिए। प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए डॉ० राधाकृष्णन ने कहा था, ''मै उस दिन की कल्पना करता हूँ जब भारत के विश्वविद्यालय राष्ट्र का बौद्धिक-सास्कृतिक नेतृत्व करेगे। नया परिवेश बनाने मे उनकी भूमिका निर्णायक होगी।'' कोठारी आयोग (१९६४-६६) ने भी बौद्धिक-पक्ष के समानातर नैतिक पक्ष पर भी ध्यान केन्द्रित करने की सिफारिश की है। इसी प्रकार सन् १९८६ मे 'शिक्षा की राष्ट्रीय नीति' के अतर्गत तो इस तथ्य पर चिता व्यक्त की गई है कि आज सारे विकास के बावजूद महत्वपूर्ण व आवश्यक मूल्यो का ह्रास होता जा रहा है। कहना न होगा कि समग्रता मे इस सोच की दिशा मैकाले की शिक्षा-नीति से टकराते हुए एक ऐसे नीति-निर्धारण की ओर है, जो आनेवाली पीढी को ज्ञानवान के साथ-साथ चरित्रवान बनाने मे भी सहायक हो, अन्यथा वह दिन दूर नही जब बाजारवाद के दबाव मे बडी-बडी कपनियो या उद्योगपतियो द्वारा ही शिक्षा-सस्थान सचालित होगे और उनके मुनीम या उच्च पदस्थ कर्मचारी ही यह तय करेगे कि किन-किन विषयो की पढाई हो तथा कैसे छात्रो एव शिक्षको की भर्ती कर लेन-देन की रकम तय की जाय। कारण कि सपूर्ण शैक्षणिक प्रक्रिया का अनुशीलन हानि-लाभ के चश्मे से होगा। आखिर बिना लाभ देखे कोई क्यो अपना पूँजी-निवेश करेगा ? अत ऐसे परिवेश मे ऐसी शिक्षा का विकास सभव है, जो आज कप्यूटर एव इटरनेट से सचालित कपनियो के योग्य अधिकारियो एव कर्मचारियो का निर्माण करे। अपने समय की ऐसी ही मॉग को स्वीकार कर तत्कालीन शिक्षा-नीति मे परिवर्तन के प्रयासो का उल्लेख करते हुए कभी अग्रेज प्रशासक 'मैकाले' ने कहा था, ''इस समय तो हमारा सर्वोच्च कर्तव्य एक ऐसा वर्ग तैयार करना है, जो हमारे तथा हमारे द्वारा शासित करोडो भारतवासियो के बीच सपर्क-सूत्र का काम करे। यह एक ऐसे लोगो का वर्ग होगा, जो केवल रक्त एव वर्ण से भारतीय दीखेंगे, पर रुचि, भाषा तथा आचार-विचार आदि की दृष्टि मे अग्रेज होगे।'' कहना न होगा कि गुलाम भारत मे राजनीतिक गुलामी को और दृढ करने के उद्देश्य से घोषित इस शिक्षा-नीति के ही निकट आज की भी शिक्षा-प्रणाली दीख रही है, जिसका मुख्य लक्ष्य ज्ञान-प्राप्ति और चरित्र-निर्माण की जगह धन कमाना और नौकरशाही को बढावा देना है।

शिक्षा अपने गूढ अर्थो मे दीक्षा भी है। भारतीय शिक्षा-सस्कृति के तहत कभी शिक्षा के समानातर दीक्षा देने की भी एक स्वस्थ परपरा थी, जिसका आज प्राय लोप-सा हो गया है। भौतिक गुणो के विकास मे आज नैतिक-बोध की बाते करना मूर्खता का पर्याय-सा है। क्योंकि आर्थिक लाभ-हानि पर आधारित वर्तमान समाज मे जिस काम से लाभ होता है, वही प्रासगिक है अन्यथा शेष सब बकवास है। वर्तमान शिक्षा की प्रासगिकता की भी यही कसौटी है। एक हिंदी साहित्यकार नदकिशोर आचार्य के अनुसार ''अब नैतिक-अनैतिक के बोध को भी बाजार की सप्रभुता के अतर्गत आना पड रहा है और शायद यही कारण है कि आज हम नैतिक अनैतिक से अधिक चिता कानूनी और गैर कानूनी की करने लगे है—और गैर कानूनी भी अतत वह है जिसे हम येन-केन-प्रकारेण कानून के दायरे मे साबित न कर सके।'' बेशक इस दृष्टि से शिक्षा का व्यापारीकरण एक गैर कानूनी कार्य है, जो वर्तमान समाज की नियत बन चुका है। अत स्थायी समाधान इस नियत को बदलने की प्रक्रिया से जोडते हुए ढूँढना ही अपेक्षाकृत अधिक सार्थक होगा। कहना न होगा कि इस दिशा मे सबसे महत्वपूर्ण भूमिका शिक्षको की ही है, जो भावी समाज के निर्माता विद्यार्थियो को किताबी शिक्षा के साथ-साथ नैतिक आचरण की दीक्षा भी दे सकते है। यह दूसरी बात है कि बिना अपने को सुधारे दूसरो को सुधारना सहज सभव नही होता, पर बहुत हद तक सामयिक परिस्थितियो को देखते हुए पाठ्यक्रम एव पठन-पाठन की शैली मे परिवर्तन इस दिशा मे एक सार्थक प्रयास साबित हो सकता है। क्योंकि शिक्षा का मतलब सिर्फ मस्तिष्क का विकास नही, व्यक्तित्व का सपूर्ण विकास है। यह तथ्य सिर्फ भारत जैसे विकासशील देशो के लिए ही नही बल्कि तथाकथित विकसित समझे जाने वाले उन तमाम देशो के लिए भी उतना ही आवश्यक है, जो सिर्फ भौतिक साधन-सपन्न होकर भी नैतिक स्तर पर अस्तित्वहीन होते जा रहे है। यही वजह है कि 'इमाइल दुर्खीम' जैसे प्रसिद्ध फ्रासीसी समाजशास्त्री का भी मानना है, ''शिक्षा का मुख्य उद्देश्य नैतिक आचरण का विकास करना है, जिसके बिना कोई भी समाज अस्तित्व मे नही रह सकता है।'' अत निष्कर्ष के तौर पर आज बदलते शैक्षणिक परिवेश मे भी ज्ञान-विज्ञान के विकास के साथ नैतिक मूल्यबोध शिक्षा एव शिक्षक दोनो के लिए अपरिहार्य है।

१, वाटकिन्स लेन, हवडा-१

❑ पुष्करलाल केडिया

शिक्षा प्रेमियों के नाम एक पैगाम

राष्ट्र की स्वाधीनता की स्वर्ण जयन्ती धूमधाम से हमने मनाई। देश को स्वतन्त्र हुए चौवन वर्ष हो गये। स्वाधीनता दिवस आगे भी इसी प्रकार मनाते रहेगे। इन समारोहो मे स्वतन्त्रता की महत्ता एव कर्तव्यबोध के ओजस्वी भाषण सुनने को मिलेगे। लेकिन यदि नागरिको के समान व्यवहार पर चिन्तन करे तो ऐसा लगता है हम आजादी के पूर्व जहॉ थे वही आज भी है। आम नागरिको मे सफाई, स्वास्थ्य, सदाचार मे विशेष बदलाव नजर नही आ रहा है।

हम सब किसी न किसी रूप से शिक्षा क्षेत्र से जुडे है। शिक्षक, प्रबन्धकारिणी सदस्य-अभिभावक-दानदाता-सामाजिक कार्यकर्ता-सहयोगी सभी का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध शिक्षा से है।

देश को स्वतन्त्र हुए ५४ वर्ष हो गये लेकिन नागरिको के समान व्यवहार का चितन करे तो ऐसा लगता है हम आजादी के पूर्व जहॉ थे आज भी वही है। राष्ट्र की नजर आज की नयी पीढी पर है और इसके निर्माण की जिम्मेवारी हम पर है।

विद्यालय चरित्रवान इन्सान निर्माण के केन्द्र है। चरित्र निर्माण की भूमिका मे कई ऐसी छोटी-छोटी बाते है, जिन पर शिक्षा-प्रेमियो का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। वीज छोटा होता है पर वही वीज विराट रूप ग्रहण करता है। इसी तरह वात छोटी नजर आयेगी पर उसका असर विराट नजर आयेगा।

१ कागज कलम पास रखना विद्यालयो मे जब भी किसी के भाषण-उद्‌बोधन आदि का कार्यक्रम होता है, बच्चो को सभागार मे एकत्र होने की सूचना दी जाती है एव बच्चे कागज कलम लिए बिना सभागार मे उपस्थित हो जाते है। विशिष्ट व्यक्ति अपने विचार प्रकट करके चले जाते है पर उसका कोई भी अश बच्चे द्वारा नोट नही किया जाता है। कुछ ही दिनो मे वह सब कुछ भूल जाता है। यही आदत उसके जीवन का एक अग बन जाती है। प्रवचन पडालो आदि कार्यक्रमो मे हजारो-हजारो व्यक्ति सुनने के लिए एकत्र होते है पर कुछ एक को छोडकर किसी के पास कागज कलम दिखाई नही देता।

२ किताब कापी पर पुस्तकालय की तरह नम्बर लगाना बच्चे अपने कापी किताब के कवर पर सामने ही स्टीकर लगाकर विषय का नाम लिख लेते है। समय सारणी के अनुसार कापी किताब छाँटने के लिए हर कापी किताब को उलट-पुलट कर देखना पडता है। यदि पुस्तकालय की तरह किनारे की तरफ भी नम्बर लगाकर सूची बना ली जाये तो कापी किताब छॉटने मे सुविधा रहेगी। कोई कापी किताब न मिलने पर भी उसे उसकी जानकारी हो जायेगी।

यही आदत बडे होने पर फाइलो, रजिस्टरो मे किनारो पर विवरण लिखने का मार्ग प्रशस्त करेगी। घरो मे सामानो को सुचारू रूप से लिखकर रखा जा सकेगा।

३ समाचार पत्र पत्रिकाओ से कटिंग काटना समाचार पत्र-पत्रिकाओ को पढने के बाद अपने मन पसन्द के चुटकुले, पहेलियॉ, कविताएँ, गीत, कार्टून, लेख आदि काटकर रखने का अभ्यास कराना चाहिए। अच्छी-अच्छी रुचिकर बाते पढने के बाद जल्द ही भूल जाते है। पुरानी कापियो पर भी कटिंग चिपकाई जा सकती है। इस विधि से अपनी पसन्द का अनमोल सग्रह हो जायेगा।

४ हाबी (रुचि) अनुसार सग्रह बच्चो को उनकी मन पसन्द चीज को हाबी (रुचि) अनुसार सग्रह के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। पोस्टेज स्टाम्प, फर्स्ट डे कवर, सिक्के, फोटो, ऑटोग्राफ आदि। किसी भी विषय मे रुचि पैदा होने से बच्चे का मन एक नये लक्ष्य की प्राप्ति के लिए लगा रहेगा।

५ सफाई व्यवस्था विद्यालय मे कूडा करकट डालने की निश्चित स्थान पर समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। देखने मे आता है कि बच्चे टिफिन के समय मे टिफिन करके कागज, दोना आदि इधर-उधर डाल देते है। बाद मे सफाई कर्मचारी उन्हे एकत्र कर फेंकता है। "जहाँ खाओ वहाँ गिराओ" एक आदत सी बन जाती है। सडक पर कूडा मत फेंको "जहाँ तहाँ मत थूको" के नारो का

उस पर कोई असर नही होता। कक्षा मे भी कागज इधर-उधर न डाले, इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

६ **सेवा दिवस** गणतन्त्र दिवस, स्वाधीनता दिवस, गाँधी जयन्ती आदि किसी भी अवसर पर एक दिन विद्यालय मे सेवा दिवस मनाया जाये। इस दिन कक्षा, बरामदा, सीढी आदि स्थानो पर बच्चे सफाई आयोजन करे, ऐसा करने से उनमे सेवा-भावना जागृत होगी।

७ **प्रतियोगिताएँ** ग्रीष्मावकाश, दुर्गापूजा-दीपावली एव बडी छुट्टियो मे पेंटिग, निबन्ध, ड्राइग आदि प्रतियोगिताओ का आयोजन किया जा सकता है। इससे उनमे समय के समुचित सदुपयोग की आदत पडेगी। विलक्षण व्यक्तित्व वाले बच्चे भी सामने आयेगे।

८ **मानिटर, प्रिफेक्ट प्रशिक्षण** विद्यालयो मे बच्चे ही मानिटर / प्रिफेक्ट नियुक्त किये जाते है। इन बच्चो के स्वय के प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि उन्हे अपनी जिम्मेवारी का बोध हो सके। विद्यालय की प्रगति की योजना एव अन्य कार्यक्रमो की भी इन्हे जानकारी देनी चाहिए ताकि अन्य बच्चो को वे समझा सकें।

९ **प्रबन्धकारिणी समिति** प्रबन्धकारिणी समिति मे अधिकतर विभिन्न समस्याओ पर ही विचार विमर्श किया जाता है। छात्रो के विकास पर भी चर्चा का विषय अवश्य रहना चाहिए।

राष्ट्र की नजर आज नई पीढी पर है और इसके निर्माण की जिम्मेवारी हम सबकी है।

आइए! हम सब मिलकर भावी पीढी को सवारने का व्रत धारण करे तथा राष्ट्र का स्वर्णिम भविष्य बनाने हेतु अपना योगदान सुनिश्चित करे।

महामत्री, श्री विशुद्धानन्द सरस्वती हॉस्पीटल
एण्ड रिसर्च सेन्टर, कोलकाता

❐ **अलका धाडीवाल**

भूल

विडम्बना है
ससार की
जन्म दिया जिसको
अपने
रक्त और दूध से
सीचा जिसको
हमने
स्नेह और प्यार से
चाहा जिसको
हृदय की गहराइयो से
उसने ही
तरेरी ऑख
जब
चढा वो परवान
हुआ वो बलवान
जब उसकी
शाखाएँ दर शाखाएँ
निकली
नयी समस्याओ
का
कितनी ही खोजो के
बाद
कहॉ मिल
पाते है
दु ख ।
कहॉ
खोज
पाते है
हम
सुख ।
भोगना ही
होता है
हमे
अपने
कृत कर्मो का
फल ।

❑ प्रमोद नवलकर

बोझ मत बनाओ शिक्षा को

अमिता मेरी पुरानी दोस्त है। हालाँकि वह मुझसे बहुत छोटी है, पर हमारी बहुत जमती है ... न ज्यादा नही मिलते, पर टेलीफोन पर एक-दूसरे से जरूर बाते करते है। मैंने दिवाली पर उसे शुभकामना देने के लिए फोन किया था। उसका मूड बहुत अच्छा था। उसने मुझे मेरी पत्नी के साथ डिनर पर बुलाया। मैंने उससे अगले सप्ताह आने का वादा किया।

काम के बोझ के कारण मै ऐसे वादे अक्सर पूरे नही कर पाता। पर अचानक ऐसा हुआ कि मुझे शाम को फुर्सत मिल गई। मैंने अपने तीन दोस्तो को फोन किया, पर वे घर पर थे नही। तब मैंने अमिता के घर फोन किया। काफी समय तक किसी ने भी फोन नही उठाया। फिर एक नौकरानी ने उठाया। मुझे पीछे से काफी तेज आवाज सुनाई पडी। वह अमिता की आवाज थी। जब उसने फोन लिया तो काफी क्रोधित थी। जब मैंने उससे बात की, वह तब भी क्रोधित ही थी। उसने मुझसे पूछा कि मैंने फोन क्यो किया है और इससे पहले कि मै जवाब दे पाता, वह चिल्लाई, 'तुम्हारी जुरावे कहाँ है ? मैंने कल ही तुम्हे चेतावनी दी थी।' मै स्तब्ध रह गया और मैंने पैरो की ओर देखा। जुरावे ठीक जगह पर थी। अमिता फिर फोन पर आई और बोली, 'सॉरी प्रमोद, ये वच्चे हर चीज को उलझा देते है (अमिता की वेटी पाँचवी और बेटा दूसरी क्लास मे है)। जब सुबह स्कूल बस आती है, तभी वे हर चीज के लिए दौड-भाग मचाते है।'

इससे पहले कि मै बोल पाता, अमिता फिर चिल्लाई, 'टेलीविजन बद करो। यदि तुमने अपना पाठ पूरा नही किया तो मै टीचर के लिए नोट लिखकर नही दूँगी। वही तुम्हे दड देगी।' उसने फिर फोन पर आकर सॉरी कहा। मैंने उससे कहा कि हम डिनर के लिए आ रहे है। पर वह मूड मे नही थी। 'प्रमोद, मुझे माफ करना। मै तुम्हे बाद मे फोन करूँगी। मुझे नही लगता कि हम आज यह कर पाएँगे। अभी तो मै किचन मे भी नही गई हूँ।' यह कहते हुए वह फिर बच्चो पर चिल्लाने लगी।

जिस प्रफुल्लित अमिता ने कुछ सप्ताह पहले ही मुझे डिनर पर बुलाया था, वह इतनी गुस्सैल हो गई थी। सबकुछ तो वही था। अमिता भी वही थी। जब उसने मुझसे डिनर के लिए कहा था तो बच्चो की दिवाली को छुट्टियाँ थी और जब मैंने यह बताने के लिए फोन किया कि मै डिनर पर आ रहा हूँ, तो उनका यूनिट टेस्ट होने वाला था।

एक समय था, जब अभिभावक अपने बच्चो को स्कूल जाते देखकर खुश होते थे। लेकिन आज स्कूल जाते बच्चो का मतलब है, अभिभावको की खुशी आ अत। यह घर-घर की कहानी है। शिक्षक, बच्चे और अभिभावक इतने प्रताडित है कि वे शिक्षा से घृणा करने लगते है। माँ अपने घर के काम ठीक से नही कर पाती। पिता को घर पर शाति नही मिलती। बच्चो का बचपन का मजा छिन जाता है। शिक्षक मशीन की तरह पढाते है। समाज का स्वास्थ्य बिगड गया है।

शिक्षा का आजकल इतना व्यवसायीकरण हो गया है कि आज उद्योगपति भी फैक्टरी लगाने के बजाए एक नया स्कूल या कॉलेज खोलने को प्राथमिकता देते है। कोई भी स्कूल भारी फीस लेने के बावजूद बच्चे के सुरक्षित भविष्य की गारटी नही देता। हरेक का यह विश्वास है कि अव केवल कोचिग ही बच्चो का प्रदर्शन सुधार सकती है। स्कूल या उसकी शिक्षा पर से सभी का विश्वास उठ गया है।

जब मैंने मैट्रिक की परीक्षा दी थी तो मै गिरगाँव की शेट्ये कोचिंग क्लास मे पढा था। मेरे स्कूल के शिक्षक मुझसे नाराज थे, क्योकि उन्हे लगा कि यह तो उनका अपमान है। आज स्थिति बदल गई है। ज्यादातर शिक्षक प्राइवेट ट्यूशन करते है। वच्चो, उनके 'आई क्यू' या उनके मनोविज्ञान से किसी का

कुछ लेना-देना नही है। परपरागत पाठ्यक्रम पुराना पड गया है। शिक्षा मत्री की नियुक्ति राजनीतिक होती है। वह बिलकुल नही जानता कि बच्चो पर क्या गुजरती है। कोई भी ऐरा-गैरा अपने सुझाव दे देता है और उस विषय को पाठ्क्रम मे शामिल कर लिया जाता है। इससे स्कूली बच्चो के पहले से दबे कधो पर और भी बोझ बढ जाता है। उन्हे स्कूल या घर पर कोई मार्गदर्शन नही मिलता। बच्चो, शिक्षको व अभिभावको के बीच कोई सामजस्य नही होता। वह रिश्ता तो काफी पहले ही मर गया।

आज की शिक्षा स्कूली बच्चो के शोषण के अलावा कुछ नही है। विख्यात शिक्षा विशेषज्ञ स्वर्गीय राम जोशी ने प्रणाली की पुन सरचना के लिए सभी शिक्षा सस्थानो को एक साल के लिए बद करने का सुझाव दिया था। हालॉकि यह सभव नही हो सकता, पर अब बच्चो को शिक्षा के बोझ से धीरे-धीरे निजात देने का समय आ गया है। उन्हे कॉपियो और किताबो से छूट मिलनी ही चाहिए। उन्हे केवल स्कूल के समय मे ही पढाया जाना चाहिए। यदि चाहो, तो स्कूल का समय आधा घटा बढा दो। उन्हे किताब-कॉपियॉ स्कूल के डेस्क मे ही बद करने दो और तितलियो की तरह उडते हुए घर जाने दो। बच्चो को उनका बचपन वापस मिल जाएगा। मॉ को बच्चो को कुछ सिखाने का समय मिल जाएगा और पिता को भी गर्व होगा।

परीक्षा होने दो। पर रैक मिलने की गलाकाट स्पर्धा नही होनी चाहिए। उसका कोई मतलब नही है। एसएससी का टॉपर, बी कॉम के तृतीय वर्ष मे फेल हो सकता है। गॉव मे बैलगाडियो की दौड की याद है? बैलो को आगे निकलने के लिए कोडे मारे जाते है। विजेता बैल वापस लौटते है। ट्रॉफी बैल के मालिक को दी जाती है, बैल को नही। सभी शिक्षा सस्थानो को इस चूहा-दौड से बाहर आना चाहिए और बच्चो को उनका बचपन और पिताओ को उनका पितृत्व वापस मिलना ही चाहिए। मॉ एक मॉ ही रहनी चाहिए।

■

❒ अलका धाडीवाल

मेरे पापा

जीवन की
मुश्किल राहो
को
आसान बनाना सिखाया
मेरे पापा ने ।।१।।

कर्म ही कर्म
मे
धर्म भी है
सिखाया
मेरे पापा ने ।।२।।

जीवन की
हर
दो राहो मे
चुनना मार्ग
सत्य का
सिखाया
मेरे पापा ने ।।३।।

मुश्किले तुम्हारी–
परीक्षा है,
धैर्य न खोना–
सिखाया,
मेरे पापा ने ।।४।।

कभी न भूलेगी
वो बाते
काम री ही पूछ है
झूठ नही
हर परिस्थिति मे समझौता,
वो पाणी मुलतान गयो,
कैया कुम्हार गधे नही चढे,
अक्ल शरीर उपजे ।।५।।

❐ इन्द्रकुमार कठोतिया

जैन धर्म से अनुप्रेरित शासक : जयसिंह सिद्धराज और उसकी मुद्राएँ

महान जैन धर्म से प्रभावित होकर न जाने कितने ही भारतीय नरेशो ने या तो जैन धर्म को अगीकार किया अथवा उसके प्रचार-प्रसार और उत्थान मे अपना महनीय योगदान दिया। अनहिलपाटण अथवा अनहिलवाद या अनहिलपुरा (गुजरात) के चालूक्यवशीय (सोलकी) जयसिह सिद्धराज (विक्रम सवत् ११५०-११९९ तद्नुसार ई० सन् १०९४-११४४) उन्ही राजाओ मे से एक था।

गुजरात के चालूक्यवशीय राजाओ के लगभग साढे तीन सौ वर्षो के इतिहास मे (९६१-१३४० ई०) जैनधर्म एव तत्सम्बन्धी साहित्य का अविच्छिन्न एव द्रुत गति से विकास हुआ। जैन लेखक राजघरानो एव प्रशासन से जुडे रहे जिसमे उनके द्वारा रचित साहित्य से हमे तत्कालीन परिस्थितियो, घटनाओ एव राजनैतिक वातावरण का अविकल एव अक्षरस ज्ञान प्राप्त होता है। मूलराजा से लेकर अन्तिम राजा तक इस राजघराने की राजधानी अनहिलपताका अथवा अनहिलपुरा या अनहिलपाटण ही बनी रही।[१]

जयसिंह कर्ण एव मायानल्लादेवी का पुत्र था। मायानल्ला चद्रपुर के कदब राजा जयकेशी की पुत्री थी।[२] ''प्रबध चिंतामणि'' के अनुसार यह जयकेशी 'शुभकेशी' का पुत्र था जो कर्णाटक का राजा था। हमे यह ज्ञात है कि शुभकेशी गोवा के कदव राजघराने का तीसरा अधिष्ठाता शष्ठदेव था। ऐसा समझा जाता है कि जयसिह के नाना जयकेशी कोकण के राजा थे जिसकी राजधानी आधुनिक गोवा थी। जयसिंह की माँ एक महान स्त्री थी। जयसिंह के आरम्भिक जीवन को सँवारने का पूर्ण श्रेय उन्ही को जाता है। राजा कर्ण की मृत्यु के उपरान्त मायानल्ला देवी ने मत्री शातु की निगरानी मे जयसिह को शस्त्र विद्या की शिक्षा दिलवायी।[३] मायानल्ला देवी ने एक दीर्घ जीवन जीया और अपने पुत्र की उदीयमान जीवन-यात्रा को निकटता से देखा। हेमचन्द्राचार्य अपने 'देव्याश्रय काव्य' मे लिखते है कि जयसिह बढती उम्र के साथ युद्ध-कला एव शासन-व्यवस्था मे निपुण होता गया। हाथियो तक को वश मे कर लेने की कला भी वो जानने लगा था। तरुण अवस्था को प्राप्त करते ही उसका राज्याभिषेक कर दिया गया। यह औपचारिकता वि० स० ११५० पौष मास मे सम्पन्न की गई।[४] 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के अनुसार उसका राज्यकाल उनचास वर्ष (वि० स० ११५० से ११९९ तद्नुसार १०९४ से ११४३ ई०) था।[५] 'विचार श्रेणी' भी इसी तथ्य का प्रतिपादन करती है परन्तु 'आइने अकबरी' के अनुसार जयसिह ने पचास वर्षो तक राज्य किया।[७] इस उल्लेख का अनुमोदन वि० स० १२०० (११४४ ई०) के बाली पाषाण शिलालेख से भी होता है।[८]

'प्रबन्ध चिन्तामणि' के अनुसार 'कर्ण' जयसिह का राज्याभिषेक करके 'आशापल्लि' के विजय-अभियान के निमित्त चला गया और विजयोपरान्त वही पर कर्णावटी नामक नगरी बसा कर स्वय राज्य करने लगा।[९]

जयसिह जब राज्यारूढ हुआ तब अनहिलपाटण की राजनैतिक और भौगोलिक स्थिति उतनी सुदृढ नही थी। उसके पूर्वज मूलराज से लेकर भीम तक – शाकभरी, सिध, नाडूला, मालवा, सौराष्ट्र, लाट, कच्छ और अर्बूद मडल के नरेशो से युद्ध करते रहे थे परन्तु अन्तिम तीन क्षेत्र ही उनके अधिपत्य मे आ पाए।

जयसिह बडा ही जीवट का योद्धा था। उसने जो कुछ भी अपने पूर्वजो से प्राप्त किया उसको विस्तृत करते हुए एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की और गुजरात की कीर्ति को चहुँ ओर फैलाया। कई जैन सूत्रो से हमे विदीत होता है कि जयसिह गुजरात साम्राज्य का 'साभर' से कोकण सीमा रेखा तक निर्विवाद राजा वन गया था। उसके साम्राज्य मे आधुनिक गुजरात – लाट, सौराष्ट्र, कच्छ सहित राजस्थान के कुछ भूभाग, मालवा एव मध्य भारत निहित थे।

जयसिंह का सर्वप्रथम महत्वपूर्ण कार्य 'मालवा विजय' के साथ आरम्भ हुआ। कहते है जयसिह के आरम्भिक राज्यत्वकाल मे परमार नरेश नरवर्मन ने अनहिल पाटण पर चढाई कर दी थी। यह

घटना तब घटित हुई बताई जाती है जब जयसिह अपनी माता मायानल्ला देवी के सग सोमनाथ की तीर्थ यात्रा पर गया हुआ था। उसके मुख्यमत्री शातु को आक्राता के साथ अपमानजनक शर्तो पर सधि करनी पडी। तीर्थ यात्रा से लौटने के उपरान्त जयसिह ने इसका वदला मालवा पर जीत हासिल करके लिया। नरवर्मन के साथ हुए युद्ध का वर्णन जैन वाङ्मय मे बडे विस्तार से किया है। इनमे जयसिह सूरि रचित 'कुमार पाल चरित', जिनमण्डलगणि रचित 'कुमारपाल प्रबन्ध' तथा राजशेखर कृत 'प्रबन्ध कोष' प्रमुख है। इन काव्यो से यह जानकारी प्राप्त होती है कि इस युद्ध मे जयसिंह ने नरवर्मन को बदी बना लिया था। इन रचनाओ से पूर्व की एक कृति 'कीर्ति कौमुदी' से जानकारी मिलती है कि जयसिह ने नरवर्मन की धा नगरी पर अपनी विजय प्राप्त कर ली। इन साहित्यिक रचनाओ क अतिरिक्त हमे कतिपय शिलालेखो से भी इस महत्वपूर्ण विजय की जानकारी मिलती है। 'तालवार' शिलालेख से इस विषय पर प्रकाश पडता है कि जयसिह ने नरवर्मन का मानमर्दन कर दिया था। इसी प्रकार ललवाडा के गणपति मूर्ति लेख से पता चलता है कि जयसिंह ने नरवर्मन के घमड को चूर-चूर कर दिया।[१०] दोहड स्तभ-शिलालेख से ज्ञात होता है कि जयसिह ने मालवा के राजा को कैद कर लिया था।[११] जैन साधु जयमगल द्वारा रचित 'शुध शैल-शिलालेख' से ज्ञात होता है कि इस युद्ध मे नाडूल चाहमान अशराज ने जयसिह का साथ दिया था।[१२] कुमारपाल की बडनगर प्रशस्ति मे भी इस कथानक का उल्लेख है कि किस तरह जयसिह ने मालवा के राजा का मानमर्दन किया था।[१३]

लगता है इस मालवा-विजय के उपलक्ष मे ही जयसिह ने 'महाराजाधिराज परमेश्वर'[१४] एव 'त्रिभुवन गण्ड'[१५] की उपाधियाँ धारण की।

जयसिह का द्वितीय महत्वपूर्ण युद्ध सौराष्ट्र के साथ हुआ। आ० हेमचन्द्र ने 'सिद्ध-हेम-व्याकरण' मे सौराष्ट्र विजय का वर्णन किया है।[१६] 'कीर्ति कौमुदी' के अनुसार जयसिह ने शक्तिशाली सौराष्ट्र के 'खेगार' को युद्ध मे परास्त किया।[१७] 'विविध तीर्थ कल्प' मे भी राजा का नाम 'खेगार राय' उल्लिखित है।[१८] इसी प्रकार 'पुरातन प्रवन्ध सग्रह' मे भी इस युद्ध का उल्लेख किया गया है।[१८] 'प्रवन्ध चिन्तामणि' के अनुसार जयसिह ने सौराष्ट्र के प्रवन्धन हेतु 'सज्जन' को अपना 'दण्डाधिपति' अथवा 'राज्यपाल' नियुक्त किया।[२०] जयसिह के राज्यत्वकालीन वि०स० ११९६ के दोहड शिलालेख मे भी यह उल्लिखित है कि उसने सौराष्ट्र के राजा को वदी वनाकर कारावास मे वद कर दिया था।[२१] 'प्रवध चिन्तामणि' के सूत्रो से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि सौराष्ट्र पर विजय ई० ११२५-२६ से पूर्व कभी भी हुई होगी।

जयसिह की एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि अनार्य राक्षस राजा 'बरबरक' पर विजय प्राप्ति था। इस उपलब्धि के पश्चात् ही उसे 'सिद्धराजा' की उपाधि से विभूषित किया गया।[२२] इसी विजय-प्राप्ति के पश्चात् उसे 'बरबरक जिष्णु' का विरूद भी प्राप्त हुआ। उज्जैन के वि०स० ११९६ के खण्डयुक्त पाषाण शिलालेख मे इसका स्पष्ट उल्लेख हुआ है।[२३] इस युद्ध विषयक वर्णन जैन कृति 'वाग भट्टालकार'[२४] मे भी गुम्फित है। 'प्रबन्ध कोष' से हमे चन्देल 'मदनवर्मन' के साथ उसकी राजधानी 'महोबा' के लिए हुए युद्ध विषयक जानकारी प्राप्त होती है। अन्तत जयसिह ने छियानवे करोड स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त कर युद्ध को समाप्त किया। 'कालीजर' के 'पाषाण शिलालेख' से भी उपर्युक्त घटना पर प्रकाश पडता है (जनरल ऑफ एसियाटिक सोसाइटी, १८४८)।

हेमचन्द्राचार्य कृत 'चडोनुशासन'[२५] तथा वागभट्ट कृत अलकार के लेखन से उजागर होता है कि जयसिह ने सिधुराज को युद्ध मे हराया था। 'वाग भट्टलकार' के टीकाकार सिंह देवगणि लिखते है कि वह 'सिधुदेशधीप' अर्थात् सिंध का शासक था। जयसिह के ११४० ई० के 'दोहड शिलालेख' मे इस युद्ध के विषय मे उल्लेख किया गया है।[२६]

सपादलक्ष के 'आनक राजा' (अर्णोराजा) (११३९-११५३ ई०) का वर्णन 'प्रवन्ध चिन्तामणि' मे किया गया है। उसने अर्णोराजा से लाखो वसूल करके छोडा।[२७] साभर से प्राप्त एक शिलालेख मे भी यह उल्लिखित है कि 'आनक' जयसिह के अधीन हो गया था।[२८]

इसी प्रकार जयसिह के दक्षिण भारतीय अभियान के विषय मे भी हमे 'जिन मडन गिरी' कृत 'कुमारपाल-प्रवन्ध' से ज्ञात होता है।[२९] एक हस्तलिखित जैन ग्रन्थ से जयसिंह के 'देवगिरी' अभियान के विषय मे जानकारी मिलती है। वहाँ से जयसिंह 'पैटान' की ओर अग्रसर हो गया जहाँ के राजा ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। 'कल्याण कटक' मे उस समय 'विक्रमादित्य-षष्ठ' का स्वामित्व था। इसका विरूद 'परमार्दी' था। जयसिंह के 'तालवार शिलालेख' मे परमार्दी के हार जाने का उल्लेख किया गया है।[३०] 'कोल्हापुर प्रवध चिन्तामणि' के सर्गो से हमे जयसिंह का उस क्षेत्र मे अधिकार होने का पता चलता है।[३१]

इस तरह उपर्युक्त लगभग दस युद्धो मे विजय प्राप्त कर जयसिंह एक मान्यताप्राप्त योद्धा बन गया था और अपने बाहुबल से वह निर्विवादित रूप से साभर से कोकण तक का एकाधिपति बन चुका था।

हस्तलिखित जैन ग्रन्थो एव तत्कालीन प्रस्तर शिलालेखो से हमे ज्ञात होता है कि जयसिंह ने अपने साम्राज्य पर ज्यो-ज्यो पकड मजबूत की उसे क्रमश उन्नत उपाधियॉ प्रदत्त की गई। जयसिह के राज्यारोहण के सात वर्षो पश्चात् वि०स० ११५७ (११००ई०) मे रचित 'निशिथ चूर्णि' मे जयसिह को केवल मात्र 'श्री जयसिंह देवराज्ये' अर्थात् 'जयसिह के राज्य काल मे' से सम्बोधित किया गया है।[३२] राजा को विरुद रहित सम्बोधन से उद्घृत किया जाना उसके अप्रभाव का परिचायक है। ऐसा आभासित होता है कि जयसिंह उस काल मे केवल मात्र सिहासन का ही अधिकारी बन सका होगा। इसके तीन वर्षोपरान्त रचयित वि०स० ११६० (११०४ ई०) की जैन हस्तलिखित कृति 'आदिनाथ चरित' से प्रकाश पडता है कि जयसिह का राज्य-विस्तार 'केमबे' तक हो गया था।[३३] चार वर्षो पश्चात् हमे स० ११६४ (११०८ ई०) मे रचित एक हस्तलिखित जैन ग्रथ प्राप्य है। इसमे जयसिह को 'समस्त राजाबलि-विराजिता-महाराजाधिराज-परमेश्वर श्री जयसिह देव कल्याणे-विजयराज्ये' से सम्बोधित किया गया है।[३४] ऐसा लगता है कि उस समय तक जयसिह ने सर्वत्र अपने पराक्रम का लोहा मनवा लिया होगा। इसके पश्चात् वि०स० ११६६ (ई० १११०) मे रचित 'आवश्यक सूत्र ग्रथ' से जयसिंह के एक और विरूद का– 'त्रिभुवन गड' भान होता है।[३५] 'त्रिभुवन गड' अर्थात् तीनो लोको का अभिभावक। ऐसा प्रतीत होता है कि जयसिह का सैन्य अभियान उस समय मे अपनी पराकाष्ठा पर था। और उसका वर्चस्व चहुँ दिशाओ मे पैठ गया होगा। फाल्गुन वि०स० ११७९ मे विरचित 'पचवास्तुका ग्रथ' मे उसी विरुदावली को उद्धृत किया गया है किन्तु साथ मे 'श्रीमत्' और जोड दिया गया।[३६] उस समय तक 'सातुका' जयसिंह का 'महाकाव्य' अर्थात् मुख्यमत्री था। भाद्रपद मास वि०स० ११७९ मे रचित जैनग्रथ 'उत्तराध्ययन सूत्र' से विदित होता है कि उस समयम मे मुख्यमत्री 'आशुका' हो चुका था तथा राजा को अतिरिक्त विरुदावली 'सिद्ध चक्रवर्ती' भी प्रदत्त की गई।[३७] वि०स० ११९२ मे लिखित 'नवपदलघुवृत्ति' एव 'गाला शिलालेख' मे जयसिह को 'अवन्तिनाथ' के विरूद से भी नवाजा गया है।

किन्तु बडे ही आश्चर्य का विषय है कि जयसिह की ज्ञात मुद्राओ मे उपर्युक्त एक भी विरूद का प्रयोग नही किया गया। सलग्न निखात मे मैंने प्राप्य १७ सिक्को के लेख को दर्शाया है। इन सिक्को के उर्ध्व भाग मे एक दक्षिणाभिमुख हस्ति का अकन हुआ है और वाम भाग मे तीन पक्तियो मे निम्न आलेख उकेरित किया गया है

''श्रीमज –
जयसिंह
प्रिय''

स्वर्गीय मुद्राशास्त्री डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त के अनुसार सिक्को पर प्रयुक्त 'प्रिय' शब्द बडा ही अटपटा-सा लगता है। डॉ० गुप्त के अनुसार इस शब्द का प्रयोग 'वीसलदेव प्रिय द्रम्म' के रूप मे प्राय अभिलेखो मे देखा जाता है। कदाचित् इसका अभिप्राय आत्मीयता प्रकट करना है।[३९] डॉ० गुप्त ने इन सिक्को का तारतम्य प्रतिहार राजा वत्सराज जिसने रणहस्ति विरुद धारण किया था। उनके भी चित भाग पर दक्षिणाभिमुख हाथी और पट भाग पर 'रण-हस्ति' आलेख है। परन्तु मेरी धारणा है कि जयसिह के सिक्को की तुलना वत्सराज से करना समीचीन नही होगा। कारण चालुक्य वशीय जयसिह 'प्रतिहार वत्सराज' के आठवी शताब्दी (ई० ७७८-७८८) के सिक्को की भाँति सिक्के ५०० वर्षो उपगन्त क्यो प्रचलित करता ? द्वितीयत प्रतिहार वत्सराज के सिक्के ६-७ ग्रेन के नन्हे आकार के सिक्के है जबकि जयसिह द्वारा मुद्रित सिक्को का वजन २० ग्रेन है। डॉ० गुप्त के अतिरिक्त न तो किसी मुद्राविज्ञ ने जयसिह सिद्धराज के सिक्को को उद्धृत ही किया, नही प्रदर्शित किया।

परन्तु जैन वाङ्मय मे हमे इस तथ्य की कुछ व्याख्या मिलती है कि क्यो जयसिह ने एक ओर हस्ति तथा दूसरी ओर 'जयसिह प्रिय' का उपयोग किया है। हमे विदित है कि राजा भोज की मृत्यु के उपरान्त 'परमार' और चालुक्य राजघरानो के मध्य रुष्ठता बढती ही गई। 'भोज' के अनुवर्ती राजाओ नरवर्मन तथा उसके पुत्र यशोवर्म्मन कभी भी उज्जैनी की भव्यता एव कीर्ति को प्रतिष्ठापित नही कर सके। किन्तु उन्होंने चालुक्य राजा जयसिह के साथ अपनी लडाई जारी रखी। यशोवर्म्मन एक बेहद ही कमजोर शासक था। वह सन् ११३३ ई० से पूर्व मालवा के राजसिंहासन पर आरूढ हुआ। उसके शासन काल मे भी जयसिह के साथ कोई समझौता नही हो सका। फलस्वरूप जयसिह ने बडी तैयारी के साथ मालवा पर हमला कर दिया। हेमचन्द्र के अनुसार यह युद्ध बारह वर्षो तक लम्बा चला। वे लिखते है– ''जयसिह मालवा की ओर बडी ही धीमी गति से चला। रास्ते मे जितने भी छोटे-बडे राज्य मिले उन्हे धराशायी करता गया। 'भीलो' ने भी उसे अपनी सेवाये प्रस्तुत की। अन्त मे उसने अपनी सेना को क्षिप्रा नदी के तट पर तैनात करते हुए धार-नगरी पर हमला किया। भयभीत यशोवर्म्मन मुँह छुपाए धार के किले मे पडा रहा। उसने किले के समस्त दरवाजो को वद करवाते हुए उन्हे तीखे तुणिरो से आच्छादित कर दिया। जयसिह ने

'यश पत ' नामक एक हाथी के सहयोग से सभी दरवाजो को ध्वस्त कर दिया। यशोवर्म्मन धार नगरी से पलायन कर गया ।[४०] मेरुतुग ने धार विजय की इस घटना का वर्णन कुछ इस प्रकार से किया है– ''राजा जयसिह ने मालवा राज्य को विजित करने का अभियान प्रारम्भ किया। यह लडाई १२ वर्षो तक जारी रही। परन्तु जयसिंह धार के मजबूत किले पर अपना कब्जा नही जमा सका। जयसिह वहॉ से लौट जाना चाहता था कि तभी मत्री मुजल ने किले को विध्वस करने की एक योजना वनाई। राजा को इस तरकीब के बारे मे सूचित किया गया। उसने अपनी सेना को दक्षिण दरवाजे की ओर लगाया तथा महत शामला द्वारा निर्देशित एक विशालकाय हाथी 'यश पतल' की मदद से लोहे की मजबूत कॉटेदार छडो से निर्मित दरवाजे को तोडने मे सफलता प्राप्त की। तदुपरान्त सभी दरवाजो को खोल दिया गया। किन्तु इस प्रयास मे उक्त हाथी घटनास्थल पर ही वीरगति को प्राप्त कर गया। इस घटना से द्रवित होकर उस हाथी की स्मृति मे राजाज्ञा से गणपति के एक भव्य मदिर का निर्माण ग्राम वाडसर मे करवाया गया। जयसिह ने यशोवर्म्मन को बदी बनाया, धार मे अपना प्रभुत्व कायम किया और अत मे पाटण की ओर लौट गया ''[४१] उपर्युक्त वर्णन से हम इस सभावना को नही नकार सकते कि जयसिह के सिक्को मे इसी हाथी को दर्शाया गया था जो राजा को अत्यधिक प्रिय था। इस सम्भावना को इस तथ्य से और भी बल मिलता है कि ये सिक्के मालवा क्षेत्र तथा विशेषकर धार अचल मे बहुलता से पाए जाते है। तत्कालीन समय के अन्य सिक्को के बारे मे हमे जैन ग्रन्थो से जानकारी तो मिलती है परन्तु जयसिह के अन्य सिक्के अभी तक प्रकाश मे नही आए है। हेमचन्द्र ने अपने ग्रथ 'देव्याश्रय काव्य' मे कतिपय सिक्को का उल्लेख किया है। छोटे सिक्को मे उन्होंने 'सुरपा' नामक सिक्के का उल्लेख किया है।[४२] उनके अनुसार एक पुष्पहार की कीमत दो सुरपा के बराबर थी। उन्होंने 'प्रस्थ' और 'भगिका' नामक दो अन्य सिक्को का भी उल्लेख किया है। 'भगिका' अनुपात मे आधे रुपये के बरावर था।[४३] महगी स्वर्ण मुद्राओ के विषय मे भी जैन ग्रथो ने प्रकाश डाला है। एक स्वर्ण मुद्रा तो २० अथवा ४० रुपये के वरावर थी। लगता है वह मात्रा मे अत्यधिक वजन की होगी। अन्य स्वर्ण मुद्राओ मे 'निस्क', 'विस्ट' और 'पाल' का नाम प्रमुख है।

प्रत्येक सेना का भी अपना मागलिक चिह्न युक्त ध्वज होता था। जयसिंह सिद्धराज के ध्वज मे 'ताम्रचूडा' नामक सिक्को मे कही नही मुद्रित किया गया।

यद्यपि जयसिह का पारिवारिक धर्म शैव था किन्तु उसका अन्य धर्मो के प्रति भी समान रुझान था। जैन धर्म से तो वह अत्यधिक ही प्रभावित था। 'प्रबध चितामणि' के अनुसार उसने सभी दर्शनो की शाखाओ को मान्यता प्रदान कर सम्मानित किया था। 'सर्वधर्म समभाव' मे उसका अटूट विश्वास था। जहॉ उसने 'सोमनाथ' की तीर्थ यात्रा की थी वही जैन के दो धार्मिक स्थलो 'रेवतक' तथा 'शत्रुञ्जय' की तीर्थ यात्राएँ भी सम्पन्न की थी। 'देव्याश्रय काव्य' के पद्रहवे खड से विदित होता है कि जयसिह सिद्धराज ने सरस्वती नदी के किनारे सिद्धपुरा मे अन्तिम अर्हत का मदिर बनवाया था।[४५] वहॉ से वह सोमनाथ की पैदल यात्रा पर निकला। सोमनाथ से जयसिह 'रेवतक' पहाड पर गया तथा बाइसवे तीर्थकर 'नेमिनाथ' की आदर सहित पूजा की।[४६] तत्पश्चात् वह 'शत्रुञ्जय' गया तथा वहॉ पर उसने 'नभेय' प्रथम तीर्थकर की पूजा अर्चना की।[४७] शत्रुजय के पास उसने 'सिहपुर' (अर्वाचीन-सिहोर) नामक एक नगरी बसाई तथा अन्य गॉवो सहित इसे भी दान मे दे दिया। [४८] वि स ११९१ के एक जैन ग्रथ के अनुसार, जैन धर्म से प्रभावित होकर उसने एकादशी वगेरह कतिपय दिवसो पर जीवहत्या को बद करा दिया था।[४९]

जयसिह द्वारा सौराष्ट्र के प्रवधन हेतु 'सज्जन' को महामण्डलेश्वर अथवा राज्यपाल नियुक्त किया गया था। यह सज्जन जैन धर्म का परम भक्त था। 'विविध तीर्थ कल्प' के अनुसार सज्जन ने वि०स० ११८५ (ई० ११२९) मे गिरनार के पहाड पर 'नेमिनाथ भगवान' का एक मदिर बनवाया था।[५०] 'रेवत गिरीरासो' भी इस तथ्य की पुष्टि करता हे।[५१] 'प्रभावक चरित' से ज्ञात होता है कि सौराष्ट्र नौ वर्षो तक सज्जन के अधीन रहा।[५२] प्रबन्ध चिन्तामणि के मतानुसार सज्जन ने तीन वर्षो की राजकीय आय को इस मन्दिर के निर्माण मे व्यय किया था।[५३] वाद मे यही सज्जन 'कुमारपाल' के समय मे भी 'दण्डनायक' नियुक्त किए गए। इसका प्रमाण हमे दिगम्बर लेखक रामकीर्ति द्वारा सीतोगढ मे लिखित काव्य से मिलता है।[५४]

एक हस्तलिखित जैन ग्रन्थ के अनुसार वि०स० ११७९ (ई० ११२३) मे 'आशुका' को अपना मुख्यमत्री वनाया था। वह जैनधर्म का अनुयायी था। जयसिंह ने उन्ही के परामर्श मे शत्रुञ्जय की तीर्थ यात्रा सम्पन्न की थी।[५५] प्रभावक चरित' और 'मुद्रिता कुमुद चद्र' के अनुसार आशुका दिगम्वर मुनि कुमुदचन्द्र और देवसूरि के शास्त्रार्थ मे भी उपस्थित रहे थे।[५६]

वि०स० ११९१ (ई० ११३५) के एक ग्रथ मे जानकारी मिलती है कि महात्मा गागला जयसिंह के राज्य मे राजकीय कार्यो के कर्ता थे। ये भी जैनधर्म के अनुयायी थे तथा कुमुदचद्र और देवसूरि के मध्य जो शास्त्रार्थ हुआ उसमे वे भी उपस्थित थे। [५७] यह शास्त्रार्थ वि०स० १०८१ मे हुआ था और उस समय गागल न्याय्यता अभिलेखन के प्रभारी थे।

सिद्धराज जयसिह ने पाटण को ज्ञान का मदिर बना दिया था। जैन साधुओ ने जिस धार्मिक उत्साह से अपने हस्तलिखित साहित्य को प्रणीत एव सग्रहीत किया वह अनहिलपट्टन की बौद्धिक त्वरितता की छवि को और भी अधिक उजागर करती है। हेमचन्द्राचार्य ने भी पाटण के धार्मिक और शैक्षणिक जीवन के बारे मे अपनी कृतियो मे प्रकाश डाला है। जैनधर्म के चैत्र गच्छीय महान सत हेमचन्द्र का बहुत ही गहरा असर जयसिह सिद्धराज पर था। सर्वप्रथम वे राजपुरोहित बनाए गए। तत्पश्चात् उन्हे राजकीय इतिहासकार बनाया गया। वे जयसिह के नैतिक एव धार्मिक मार्गदर्शक भी थे। तत्कालीन समय के राजकीय इतिहास लेखक होने के नाते हेमचन्द्र ने जयसिह के समृद्धशाली राज्य के विषय मे अपने 'देव्याश्रय' काव्य मे विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की है। इस साहित्यिक प्रबन्ध मे जयसिह और हेमचन्द्राचार्य के आपसी मैत्री सम्बन्धो के बारे मे भी बहुत सारे उपाख्यानो को उद्धृत किया गया है। उन्होंने राजा जयसिह के कहने पर बहुत सारे ग्रथो का सृजन किया जिसमे 'सिद्ध हेम व्याकरण', 'कुमार पाल चरित', प्राकृत 'देव्याश्रय महा काव्य', 'लघवरहन नीति शास्त्र', प्राकृत 'वृहद् अर्हन नीति शास्त्र', 'चगेनुशासन' आदि प्रमुख है।

इस प्रकार 'वागभट्टलकार' के जैन साहित्यकार 'वागभट्ट' भी राजा के विशेष कृपापात्र थे। इस ग्रथ के टीकाकार वागभट्ट को सोम का पुत्र बतलाते है। 'प्रभावक चरित' के अनुसार उन्होंने एक जैन मन्दिर भी वि०स० ११७८ मे बनवाया था।[५८]

जयमगलाचार्य जो 'कवि शिक्षा' के रचयिता थे तथा वर्धमान सूरि जिन्होने व्याकरण पर 'गण रतन महोदधि' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया था ऐसे जैन साहित्यकार हुए है जो जयसिह के राज्यकाल मे फलवित हुए।

जैनधर्म के सम्पर्क एव प्रभाव से जयसिह के हृदय मे करुणा का सागर आलोडित होने लगा था और यही कारण रहा कि उसने युद्ध मे भी प्रतिपक्षिय राजाओ को आक्रान्त करने के पश्चात् भी रिहा ही नही किया वरन् अपनी पुत्रियो के सग विवाह भी करवाया। अजमेर के राजा अर्णोराज इसका ज्वलन्त उदाहरण है। युद्ध मे हराकर भी उसने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ करवा दिया।[५९] पृथ्वीराज विजय के अनुसार उसकी पुत्री का नाम कचनदेवी था। इसी प्रकार 'प्रवध चिन्तामणि' से हमे जानकारी मिलती है कि उसने युद्ध मे पराजित किए हुए सपादलक्ष के आनाका राजा को न केवल सपादलक्ष ही लौटा दिया अपितु लाखो रुपये भी साथ मे दिए।[६०]

वि०स० ११९९ मे किराडू के परमार राजा सोमेस्वर की सहायता कर जयसिंह ने उसे अपना खोया राज्य पुन दिलवाया।

उसने 'बहूलोढा' नामक एक कर' भी अपनी प्रजा की भलाई के लिए हटा दिया। इससे राज्य को ७२ लाख रुपये का राजस्व प्राप्त होता था। जयसिंह अपनी प्रजा की पुकार को हमेशा सुनता था जो उसकी अच्छी शासन व्यवस्था का परिचायक है। नगर रक्षा के लिए उसने कोतवाल अथवा नगर सरक्षक का पद बनाया था। अनहिल पुरा के तत्कालीन कोतवाल जैन अनुयायी जयदेव थे। इसी प्रकार 'वाग् भट्टलकार' के रचियता जैन वाग्भट्ट भी जयसिह के राज्य मत्री थे।[६१]

जयसिंह सिद्धराज अपने जीवन के उत्तरार्द्ध काल मे जैनधर्म से इतना प्रभावित हो गया था कि उसने अपने अन्तिम समय मे जैन विधि से समाधि पूर्वक अनशन की अवस्था मे पाण्डित्यपूर्ण मृत्यु को वरण किया। श्रीचद्रसूरि कृत प्राकृत जैन रचना 'मुनि सुव्रत स्वामी चरित'के प्रत्यक्षदर्शी वर्णन के अनुसार भी जयसिह ने सथारा करके उपवास मे मृत्यु का वरण किया।[६२]

सन्दर्भ

१ देव्याश्रयकाव्य, खण्डकाव्य प्रथम, गाथा ४ पुर श्रिया सदाश्लिष्ट नाम्नाणहिलपाटकम् ।

२ वही, खण्ड काव्य, नवम, गाथा ९९-१०० और १५३

३ सिघी जैन ग्रन्थमाला, पुरातन प्रबन्ध सग्रह, पृष्ठ ३५
''अष्ट वार्षिक एव स सान्त्मत्रिणा गुण श्रेणि नीत ।''

४ वही, प्रबन्ध चिन्तामणि, पृष्ठ ५५
''स० ११५० वर्षे पौष वदि ३ रानौ श्रवणनक्षत्रे वृषलग्ने श्री सिद्धराजस्य पट्टाभिषेक ''

५ वही, पृष्ठ ७६
''स० ११५० पूर्वश्री सिद्धराज जयसिंहदेवेन वर्ष ४९ राज्य कृतम्।''

६ 'जैन साहित्य सशोधक,' खड द्वय, सर्ग ४, पृष्ठ ९

७, आइने अकबरी, ब्लोचमेन एव जनारेट द्वारा अनुवादित, भाग-२, पृष्ठ २६०

८ 'एपिग्राफिया इडिका', खण्ड ११, पृष्ठ ३२-३३

९ सिंघी जैन ग्रन्थमाला, प्रबन्ध चिन्तामणि, पृष्ठ ५५
''स्वय तु आशापल्ली नवासिनमाशाभिधान भिल्लम भिषेणयन् कर्णावलीपुर निवेश्य स्वय तत्र राज्य चकार ''

१० 'डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नॉरदर्न इडिया,' भाग २, लेखक एच०सी० राय, कलकत्ता, पृष्ठ ९६६ ● ११ वही

१२ 'एपिग्राफिया इडिका' खण्ड ९, पृष्ठ ७६-७७, सर्ग २६
''श्री आशाराजनामा समजनि वसुधानायकस्तम्य बन्धु । साहाय्य मालवाना भुवि यदसि कृत वीक्ष्यसिद्धाधिराज ।।''

१३ 'एपिग्राफिया इडिका', खण्ड १, पृष्ठ २९३, उद्धरण ५ (२)

१४ सिंघी जैन ग्रन्थमाला, जैन पुस्तक प्रशस्ति-'सग्ह' पृष्ठ १०१

१५ वही, पृष्ठ ६५

१६ 'पुरातत्व (गुजराती)', खण्ड ४, पृष्ठ ६७
''अजयत् सिद्धासौराष्ट्रन ''

१७ खण्ड काव्य – द्वितीय, गाथा २५

१८ सिधी जैन ग्रन्थमाला, विविध तीर्थ-कल्प, पृष्ठ ९

१९ सिंधी जैन ग्रथमाला, पुरातन प्रबध सभ्रट पृष्ठ ३४-३५

२० वही – विविध-तीर्थ-कल्प, पृष्ठ ९
'पुव्विगुर्जर धाराए जयसिहदेवेण खगारराय हणित्ता सज्जणो दण्डाहिवो ठाविओ।'

२१ 'इण्डियन एटीक्वेरी', भाग १०, पृष्ठ १५८-६०
''श्री जयसिंहदेवोऽस्ति भूपो गुर्जरमण्डले।
येन कारागृहे क्षिप्तौ सुराष्ट्रमालवेश्वरौ ।।''

२२ 'सिद्धो बर्बरकश्चास्य सिद्धराजस्ततोऽभवत्।' जिन मडन रचित 'कुमारपाल प्रबन्ध' से।

२३ 'आर्क्रियोलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया–एनुअल रिपोर्ट', १९२८, पृष्ठ ५४-५५

२४ अध्याय ४, गाथा १२५ ''येन नक्तचर सोऽपि युद्धे बर्बर को जित ।''

२५ अध्याय ४, गाथा १२९

२६ 'इण्डियन एण्टीक्वेरी,' भाग १०, पृष्ठ १५८, तल २
''अन्येऽप्युत्सादिता येन सिन्धुराजादयो नृपा ।''

२७ सिंधी जैन ग्रन्थमाला – प्रबन्ध चिन्तामणि – पृष्ठ ४७६

२८ 'इण्डियन एन्टीक्वेरी', १९२९, पृष्ठ २३४-२३६

२९ 'कुमारपाल प्रबन्ध,' पृष्ठ ७

३० 'राजपूताना म्यूजियम रिपोर्ट', १९१५, पृष्ठ-२

३१ 'सिंधी जैन ग्रन्थमाला' – प्रबन्ध चिन्तामणि, पृष्ठ-७३

३२ वही, 'जैन पुस्तक प्रशस्ति सग्रह,' पृष्ठ-९९
''मगल महाश्री । स० ११५७ आषाढ वदि षष्ट्या शुक्र दिने श्री जयसिंहदेवविजयराज्ये श्री भृगुकच्छनिवासिना जिनचरणाराधन-तत्परेण निशीथचूर्णिपुस्तक लिखितम् ।''

३३ 'केटलॉग ऑफ द मेनूस्क्रिप्ट फ्रॉम जैसलमेर', पृष्ठ-४५, पाद सदर्भ-३
'विक्कमनिवकालाउ सएसु एक्कारसेषु सट्ठेषु। सिरि जयसिंहनरिन्दे रज्ज परिपालय तम्मि

३४ 'सिधी जैन ग्रन्थमाला – जैन पुस्तक प्रशस्ति सग्रह'–पृष्ठ१००

३५ वही – पृष्ठ १००
''११६६ पोष वदि २ मगलदिने महाराजाधिराजत्रैलोक्यगड श्री जयसिंहदेव विजयराज्ये ''

३६ 'वही' – पृष्ठ ६५, स० ११७९ फागुण वदि १२ खौ समस्तराजावलि महाराजधिराज श्रीमत् त्रिभुवनगण्ड श्री जयसिंघदेवकल्याणविजयराज्ये सन्तुकप्रतिपत्तौ ।

३७ 'वही', पृष्ठ १०१ स० ११७९ भाद्रपद वादि अधेह श्रीमदण-हिलापाटकाभिधान, राजधान्या समस्तनिजराजावलीसमलकृत महाराजधिराज-परमेश्वर-त्रिभुवनगड श्री सिद्धचक्रवर्ति श्रीमज्ज-जयसिहदेव कल्याण विजयराज्ये श्री श्रीकरणे महामात्य श्री आशुक सकलव्यापारान करोति ।

३८ 'भारत के पूर्व कालिक सिक्के' – डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त, पृष्ठ २९६ ● ३९ 'वही' – पृष्ठ २९६

४० 'देव्याश्रय काव्य' सर्ग १४

४१ ''सिंधी जैन ग्रथमाला, प्रबन्ध चिन्तामणि'', पृष्ठ ५८-५९
'नृपति प्रयाणाम करोत्। तत्र जयकारपूर्वक द्वादशवार्षिके विग्रहे सजायमाने सति कथचित् धारादुर्ग भग कर्तुमप्रभूष्णु अत्र मया धारा भगान्तर भोक्तव्य मितिकृत प्रतिज्ञो दिनान्तेऽपि कर्तुमक्षमतया सचिवै काणिक्या धाराया भज्यमानाया पत्रिभि परमार पुत्रे विपद्यमाने-इत्थ प्रपश्चात नृप प्रतिज्ञामापूर्य अकृतकृत्यया पश्चाद्व्याघुटितुमिच्छुर्मुञ्जाल सचिव ज्ञापयामास दुर्ग विमृश्य यश पटहनाम्नि बलवति दन्तावले समभिरूढ सगज पृथिव्या पपात । सगज सुभटतया तदा विपद्य बहुसरग्रामे यशोधवलनामा विनायकरूपेणावततार,

४२ 'देव्याश्रय काव्य' – खडा १७, गाथा ४८

४३ 'वही' – खड ५, गाथा ९४ और १००

४४ 'वही' – खड ४, गाथा ४५, खड १७, गाथा ८३-८४

४५ 'वही' – गाथा १६-१७ ● ४६ 'वही' – गाथा ६१-८८

४७ 'वही' – गाथा ८९-९५, ४८ 'वही' – गाथा ९७-९८

४९ 'विजयसिंह रचित धर्मोपदेशमाला'
''यस्योपदेशादखिला च देशे सिद्धाधिप श्री जयसिहदेव । एकादशी मुख्यदिनेश्च मारिमकारयच्छा सन दान पूर्वाम् ।''

५० 'सिंधी जैन ग्रन्थमाला – विविध तीर्थ कल्प', पृष्ठ ९

५१ 'रेवन्तगिरी-रासु, काडवका', सर्ग १, गाथा ९
''इक्कारसह सहीउ पचासीयवच्छरि नेमि भयणु उद्धरिउ साजणि नरसेहरि ।''

५२ 'सिंधी जैन ग्रन्थमाला – प्रभावक चरित', पृष्ठ १९५, गाथा ३३३
''अद्य माग्नवमे वर्षे स्वामिनाधिकृत कृत ।
आरुरोह गिरि जीर्णमद्राक्ष च जिनालयम् ।।''

५३ 'वही'– प्रवन्ध चिन्तामणि, पृष्ठ ६४
''तेन स्वामिनमविज्ञाप्यैव वर्षत्रयोद्राहितेन श्रीमदुर्ज्जयन्ते श्रीनेमीश्वरम्य काष्टमय प्रासादमपनीय नूतन शैलमय प्रासाद कारित ।''

५४ 'एपिग्राफिया इडिका', भाग २, पृष्ठ ४२२

५५ 'जैन साहित्यनो इतिहास', पृष्ठ २४७

५६ 'सीघी जैन ग्रन्थमाला – प्रभावक चरित,' देवसूरि, पृष्ठ १८१, गाथा २७० ● ५७ 'वही', देवसूरि, गाथा १७२

५८ 'वही', पृष्ठ १७३, गाथा ६७-७३ 'वडी देवसूरि चरितम्' के अन्तर्गत ● ५९ खण्डकाव्य २, गाथा २७-२९, पृष्ठ ७

६० 'सिंधी जैन ग्रन्थमाला – प्रवन्ध चिन्तामणि', पृष्ठ ७६
''सपादलक्ष सह भूरिलक्षैरानाक भूपाय नताय दत्त ।''

६१ 'काव्यमाला' भाग ४८, पृष्ठ १४८

६२ 'गायकवाड्स ओरियण्टल सीरीज', ७६, हस्तलिखित ग्रथ पाटण, पृष्ठ ३१४-३२२
''अह सगचालीस दिणाइ पालिऊण समाहि[illegible] ।
धम्मज्झाणपरायणचित्तो जो परभव पत्ता ।।''

जय सिंह सिद्धराज की प्राप्य ताम, रजन एवं स्वर्ण सिक्कों की निखात

१ श्री
जय सिं
ह प्रि (य)

२ X
(ज) य सि (ह)
प्रिय

३ (श्री) मद
X सिह
(प्रिय)

४ श्री म (द्)
(ज) य सिंह
प्रिय

५ श्रीमद
(ज) य सिह
XX

६ श्री म (द)
जय सि
XX

७ (श्री मद ज)
य सिंह
प्रिय

८ श्री म (द)
जय सि (ह)
प्रिय

९ XX
जय सिं (ह)
प्रिय

१० श्री म (द)
(ज) य सिंह
प्रिय

११ श्री मद
(ज) य सि (ह)
प्रिय

११ XX
(ज) य सि (ह)
प्रिय

१२ XX
(ज) य सिं हं
प्रिय

१३ श्री म (द)
जय सि (ह)
प्रिय

१४ श्री म (द)
जय सि (ह)
प्रिय

१५ श्री म (द)
जय सि (ह)
प्रिय

१६ श्री मद
(ज) य सिंह
XX

१७ श्री म (द)
जय सि ( )
XXX

□ डॉ सुषमा सिघवी

भारतीय दर्शनों में आत्मवाद

आत्मा और धर्म एक अर्थ के वाचक हो सकते है क्योंकि हमारा स्वभाव ही आत्मा है और वस्तु का स्वभाव ही धर्म। विभाव और विधर्म घातक है। विवेक मूलक प्रवृत्ति आत्मा के चैतन्य तथा धर्म के स्वरूप को उजागर करने का सही माध्यम है - ''विवेगे धम्ममाहिए''।

'समयण्णे, खेत्तण्णे, कालण्णे' – समय-क्षेत्र-काल को समझकर प्रवृत्ति करने के निर्देश आगमो मे पदे-पदे प्राप्त होते है। आत्मपरता आवश्यक है क्योंकि निवृत्ति और प्रवृत्ति के विवेक का अधिष्ठान आत्मा है।

''उट्ठिए नो पमायए'' का उद्घोष तथा 'गोयमा। समय मा पमायए' का आगम उद्धरण तथा 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' इस मत्र को एकाकार करने का केन्द्र आत्मा की चेतना का पुरुषार्थोन्मुखी होना है तथा आत्मौपम्यभाव का विकास करना है।

'सव्वे जिविउ इच्छइ न मरिज्जिउ' का मनोविज्ञान आत्मा के स्वरूप को समझने का प्रतिबिंब है और इसी का प्रतिफलन है – 'आत्मवत् सर्वभूतेषु य पश्यति स पण्डित '।

विश्व के समस्त दर्शन, समस्त नय-निक्षेप-प्रमाण, समस्त युक्ति-श्रुति और अनुभव आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करते है। विभिन्न दर्शनो मे प्रतिपादित आत्म-स्वरूप को समझ कर, शास्त्र एव आप्तवचन के परिप्रेक्ष्य मे तर्क तथा विवेक पूर्वक अनुभव तथा अनुभूति की निकष पर मानव धर्म और विभिन्न दर्शन प्ररूपित धर्म को परिभाषित किया जा सकता है। आत्मा और धर्म के एकाकार होने का एक उपाय यह हो सकता है कि स्थानाङ्ग सूत्र के अष्टम स्थान उत्थान पद के अनुशासन पर्व की शिक्षा का सर्वत्र स्वागत हो तथा जीवन मे कर्मयोग द्वारा सामाजिक उत्थान की कर्मठता अभिव्यक्त हो।

एक ओर भगवान महावीर के २६०० वे जन्मकल्याणक का यह वर्ष है तथा दूसरी ओर भारत की धरा पर गरीबी, बीमारी, अशिक्षा, सस्कारहीनता, भ्रष्टाचार, सवेदनहीनता, अमानुषिक दुष्कृत्य तथा प्राकृतिक आपदाओ का अम्बार लग रहा है। क्या हमारी आत्मा, दर्शनो मे अन्तर्निहित समस्याओ के समाधान की शिक्षा को अमल मे लाने हेतु जाग्रत हो सकेगी? प्रस्तुत शोध पत्र मे विमर्श है ऐसी शिक्षा का जो स्वभाव के अनुकूल है, सरल, सुलभ, सुकर है, सार्वजनिक है एव पक्षपात से रहित है, नियति से बढकर पुरुषार्थ के प्रयत्नो को पुरस्कृत करती है, तथा विभिन्न दर्शनो के आगमो द्वारा प्रमाणित है। आइये। ऐसी शिक्षा की अष्टपदी को हम निष्काम भाव से अङ्गीकार करे और कर्मयोगी बन जावे। उत्तराध्ययन की शिक्षा आचरणीय है–

किरिय च रायए धीरे अकिरिय परिवज्जए
दिट्ठीए दिट्ठिसम्पन्ने धर्म चर सुदुच्चर।।

अर्थात् व्यक्ति कर्म मे रुचि रखे, निष्क्रियता का परित्याग कर, दृष्टि सम्पन्न होकर सम्यकदृष्टि से दुष्कर सद्धर्म का आचरण करे। जब क्रिया और कर्म मे निष्काम भाव आ जाए तो कर्म का विष समाप्त हो जाता है और पुरुषार्थ अमृत बन जाता है। अर्जन मे विसर्जन का सूत्र वास्तविक स्वामित्व की पहचान है।

यह आत्मा के अस्तित्व की सार्थकता है कि हम स्थानाङ्ग सूत्र के उत्थान पद से उत्थान प्रारम्भ करे। प्राकृत पदो का सार है कि –

१। हम श्रेष्ठ धर्म को सुने।
२। श्रेष्ठ धर्म का आचरण करे।
३। सयम की साधना द्वारा नये पापास्रव का निरोध करे।
४। निष्काम तप साधना से बद्ध कर्मो को क्षीण करने मे तत्पर हो।

५। अनाश्रित एव असहायजनो को आश्रय एव सहयोग दे।
६। अशिक्षितो को शिक्षित करने मे सचेष्ट हो।
७। प्रसन्न भाव से रोगी की सेवा मे प्रस्तुत हो।
८। आपस मे मतभेद, कलह एव विग्रह का पारस्परिक सद्भावना से समाधान करे। स्थानाङ्ग सूत्र की इस अष्टपदी मे सभी दर्शनो के अध्यात्म का नवनीत है 'पुरिसा। बध प्पमोक्खो तुज्झत्थमेव' हे पुरुष। बन्धन मुक्ति तेरे पुरुषार्थ पर अवलम्बित है।

बन्धन चाहे अज्ञान और अशिक्षा का हो, अभाव का हो, रोग और शोक का हो, कुसस्कारो का हो, स्वार्थान्धता का हो, या दुष्टाचरण का हो, इनसे मुक्ति का साधन पुरुषार्थ, सत्पुरुषार्थ है। आत्मा के शुभ और शुद्ध भावो का प्रकटीकरण मिट्टी से सोना बनाने के समान श्रमसाध्य तो है किन्तु सभव है तथा अमूल्य है।

उपनिषदो का अध्यात्म, शकराचार्य का अद्वैत, पतजलि का योग, कपिल का प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञान, न्याय दर्शन के प्रमाणादि १६ तत्वो का ज्ञान और वैशेषिक दर्शन का सप्त-तत्व-ज्ञान, यह सम्पूर्ण आत्मवाद तभी सार्थक है जब आत्मा/जीव/पुरुष/चैतन्य/चित् की स्वभाव की स्थिति मे हो। यही आत्मा से परमात्मा बनने का मार्ग है। इस स्वभाव के प्रकटीकरण का एक सूत्र स्थानाङ्ग सूत्र की अष्टपदी मे निहित है और यह सामाजिक, सार्वजनिक और समायनुकूल उपाय है जिसका क्रियान्वयन भगवान् महावीर के २६००वे जन्म कल्याणक महोत्सव के अवसर पर अत्यन्त उपयोगी है। हमारी आत्मा का चैतन्य इस अष्टपदी की क्रियान्विति मे लग जाये तो आत्मौपम्य-भाव की जागृति से ससार अवश्य निरापद होगा।

जब दर्शन और धर्म आत्मपरक हो जाते है तो वहा हिसा का स्थान नही रहता, वहा करुणा प्रवाहित होने लगती है, वायुमण्डल अमृतमय हो जाता है।

भारतीय सस्कृति के देवी-देवताओ का पशु-पक्षियो के साथ अनन्य सम्बन्ध आत्मौपम्य भाव को दर्शाता है तभी तो भगवान विष्णु का वाहन गरूड, शिव का वाहन नन्दी वृषभ, गणेश का वाहन मूषक, कार्तिकेय का मोर, लक्ष्मी का उल्लू, सरस्वती का हस, दुर्गा का सिह, तथा चौबीस तीर्थकरो मे से १७ तीर्थकरो के चिन्ह पशु-पक्षी जिनमे वृषभ, हाथी, घोडा, बन्दर, हिरण, बकरा, सर्प आदि सम्मिलित है। जीव सभी समान है। चेतना और आत्मा के स्तर पर समानता का यह दर्शन सृष्टि के प्रत्येक जीव मे गुणग्राहकता, तथा सवेदनशीलता और परस्पर सुरक्षा के भाव को जगाता है। विश्व मे व्याप्त जीव शोषण, जीवक्रूरता एव जीव हिंसा के विरोध मे सरक्षण, सवेदन और अहिंसा के विस्तार द्वारा एक सार्वभौम जीवन-दृष्टि के प्रसार तथा स्वय की आत्मा को पहचानने की अन्तर्दृष्टि के विकास मे यह शोध पत्र प्रभावी होगा। अमृतचन्द्रसूरि के शब्दो मे सभी चेतन स्वधर्मी जीवो के प्रति वात्सल्य का आलम्बन भारतीय दर्शनो मे आत्मवाद का प्राण है –

अनवरतमहिंसाया शिवसुखलक्ष्मी निबन्धने धर्मे।
सर्वेष्वपि च सधर्मिषु परम वात्सल्यमालम्ब्यम् ॥

निदेशक
क्षेत्रीय केन्द्र कोटा खुला विश्वविद्यालय, उदयपुर

आचारांग सूत्र में प्रतिपादित समता का स्वरूप

आचाराग सूत्र जैन अग-आगमो का प्रथम अगसूत्र है। आचाराग मे जिन विषयो का उल्लेख है वे इतने व्यापक और सामान्य है कि ग्यारह अगो मे से प्रत्येक अग मे किसी न किसी प्रकार उनकी चर्चा आती ही है। आचाराग का समस्त दर्शन अमूर्त चितन का परिणाम न होकर सहज प्रत्यक्षीकरण पर आधारित है। महावीर ने कभी यह नही कहा कि जो कुछ मै कह रहा हूँ उसे आँख बद कर सही मान ही लिया जाय। महावीर बार-बार हमे ससार (राग-द्वेष) की गतिविधियो को स्वय देखने के लिए कहते है। आचाराग मे इसके लिए उन्होंने ''पास'' शब्द का प्रयोग किया है।[१] वस्तुत वे हमे स्वतत्र रूप से अपनी अनुभूतियो के द्वारा उन निष्कर्षो पर पहुँचने के लिए प्रेरित करते है जो स्वय महावीर ने अपने अनुभव और प्रत्यक्ष से फलित किए थे। यह जैनियो का आचारदर्शन भी है।

जैन आचारदर्शन मे आचरण के कुछ सामान्य नियम ऐसे है, जिनका पालन करना गृहस्थ और श्रमण दोनो के लिए आवश्यक है। इनमे षट् आवश्यक कर्म, दस धर्मो का परिपालन, दान, शील, तप और भाव, बारह अनुप्रेक्षाएँ तथा समाधिमरण है। जैन आगमो मे आवश्यक कर्म छ माने है— सामायिक, स्तवन, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान।

सामायिक समत्ववृत्ति की साधना है। जैनाचारदर्शन मे समत्व की साधना जीवन का अनिवार्य तत्व है। वह नैतिक साधना का अथ और इति दोनो है। समत्व साधना के दो पथ है, बाह्य रूप मे वह सावद्य (हिंसक) प्रवृत्तियो का त्याग है[२], तो आन्तरिक रूप मे वह सभी प्राणियो के प्रति आत्मभाव (सर्वत्र आत्मवत् प्रवृत्ति) तथा सुख-दु ख, जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, निन्दा-प्रशसा मे समभाव रखना है।[३] सामायिक समभाव मे है, रागद्वेष के प्रसगो मे मध्यस्थता रखने मे है। माध्यस्थवृत्ति ही समता है।[४] समता (सामायिक) कोई रूढ क्रिया नही, वह तो समत्ववृत्ति रूप पावन आत्मगगा मे अवगाहन है, जो समग्र राग-द्वेष जन्य कलुष को आत्मा से अलग कर मानव को विशुद्ध बनाती है। सक्षेप मे सामायिक (समता) एक ओर चित्तवृत्ति का समत्व है तो दूसरी ओर पाप विरति।[५] समत्ववृति की यह साधना सभी वर्ग, सभी जाति और सभी धर्मवाले कर सकते है। किसी वेशभूषा और धर्म विशेष से उसका कोई सम्बन्ध नही है। कोई भी मनुष्य चाहे गृहस्थ हो या श्रमण, जैन हो या अजैन, समत्ववृति की आराधना कर सकता है। वस्तुत जो समत्ववृत्ति की साधना करता है, वह जैन ही है चाहे वह किसी जाति, वर्ग या धर्म का क्यो न हो।[६] एक आचार्य कहते है कि चाहे श्वेताम्बर हो या दिगम्बर, बौद्ध हो या अन्य कोई, जो भी समत्व वृत्ति का आचरण करेगा, वह मोक्ष प्राप्त करेगा, इसमे सन्देह नही है।[७]

बौद्ध-दर्शन मे भी यह समत्ववृत्ति स्वीकृत है। ''धम्मपद'' मे कहा गया है कि सब पापो को नही करना और चित्त को समत्ववृति मे स्थापित करना ही बुद्ध का उपदेश है।[८] गीता के अनुसार सभी प्राणियो के प्रति आत्मवत दृष्टि[९], सुख-दु ख, लोह-कचन, प्रिय-अप्रिय और निन्दा-स्तुति, मान-अपमान, शत्रु-मित्र मे समभाव और सावद्य (आरम्भ) का परित्याग ही नैतिक जीवन का लक्षण है।[१०] श्रीकृष्ण अर्जुन को यही उपदेश देते है कि हे अर्जुन! तू अनुकूल और प्रतिकूल सभी स्थितियो मे समभाव धारण कर।[११] अपने निषेधात्मक रूप मे सामायिक (समता) सावद्य कार्यो अर्थात् पाप कार्यो से विरक्ति है, तो अपने विधायक रूप में वह समत्वभाव की साधना है।[१२] भगवती सूत्र मे कहा है कि— ''आत्मा ही सामायिक (समता) है और आत्मा ही सामायिक (समता) का प्रयोजन है।''[१३] इस सूत्र मे समत्वभाव को प्राप्त करने के लिए आत्मबोध का होना आवश्यक बतलाया गया है।

आचारागसूत्र के प्रथम उद्देशक मे ही हमे आत्मबोध का परिचय प्राप्त हो जाता है। सूत्र का प्रारम्भ ही अस्तित्व सम्बन्धी मानवीय जिज्ञासा से होता है। पहला ही प्रश्न है— इस जीवन के पूर्व मे

अस्तित्व था या नही अथवा इस जीवन के पश्चात् मेरी सत्ता बनी रहेगी या नही ? मै पूर्व जनम मे कौन था ? और मृत्यु के उपरान्त किस रूप मे होऊँगा ?[१४] यही अपने अस्तित्व का प्रश्न मानवीय जिज्ञासा और मानवीय बुद्धि का प्रथम प्रश्न है, जिसे सूत्रकार ने सर्वप्रथम उठाया है। मनुष्य के लिए मूलभूत प्रश्न अपने अस्तित्व या सत्ता का ही है। धार्मिक और नैतिक चेतना का विकास भी इसी अस्तित्व बोध या स्वरूप बोध पर आधारित है। मनुष्य की जीवन दृष्टि क्या और कैसी होगी ? यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि अपने अस्तित्व, अपनी सत्ता और स्व-स्वरूप के प्रति उसका दृष्टिकोण क्या है ? पाप और पुण्य अथवा धर्म और अधर्म की सारी मान्यताएँ अस्तित्व की धारणा पर ही खडी हुई है। इसीलिए सूत्रकार ने कहा है कि– जो इस 'अस्तित्व' या 'स्व-सत्ता' को जान लेता है वही आत्मवादी है, लोकवादी है, कर्मवादी है और क्रियावादी है।[१५] जब तक व्यक्ति अपनी सत्ता को नही पहचानता, स्व-स्वरूप का मान नही करता, तब तक समता की ओर नही बढ पाता। जब व्यक्ति को स्व-स्वरूप व इसकी सत्ता का भान हो जाता है, तभी वह समता की ओर बढता है। व्यक्ति को जब इस 'स्व' और 'पर' भाव की स्वाभाविक और वैभाविक दशा का यथार्थ श्रद्धान हो जाता है, तो वह सम्यक्त्व सामायिक (समता) करता है। जब 'स्व' और 'पर' का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तो श्रुत सामायिक (समता) करता है और जब 'पर' भाव से 'स्व-भाव' की ओर लौटता है तो चारित्र सामायिक (समता) करता है।[१६]

आचाराग सूत्र मे स्थान-स्थान पर स्व-स्वरूप का भान करवाया गया है तथा समत्ववृत्ति का उपदेश किया गया है। आचाराग की अहिंसा समतामय है। आश्रव-सवर का बोध कराते हुए सूत्रकार कहता है कि आत्मवादी मनुष्य यह जानता है कि मैने क्रिया की थी। मै क्रिया करता हूँ। मै क्रिया करने वाले का भी अनुमोदन करूँगा। ससार मे ये सब क्रियाएँ (कर्म-समारभ) जानने तथा त्यागने योग्य है।[१७] इसलिए सूत्रकार कहते है कि तू देख। आत्मसाधक (समतादर्शी) लज्जमान है। इन षट् जीव निकायो की हिंसा नही करता।[१८] अणगार का लक्षण बताते हुए सूत्रकार कहते है कि अहिंसा मे आस्था रखने वाला अर्थात् समता मे स्थित साधक यह सकल्प करे कि प्रत्येक जीव अभय चाहता है, यह जानकर जो हिंसा नही करता, वही व्रती है। इस अर्हत् शासन मे जो व्रती है, वही अणगार कहलाता है।[१९] आचाराग की साधना समता की साधना है। भावलोक मे विचरण करने की साधना है। सूत्रकार भावलोक के सम्बन्ध मे कहते है कि भावलोक का अर्थ क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी समूह है।[२०] यहाँ उस भावलोक की विजय का अधिकार है क्योंकि कषाय-लोक पर विजय प्राप्त करने वाला साधक काम-निवृत्त हो जाता है।[२१] और काम निवृत्त साधक, ससार से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

ग्रन्थकार कहते है कि– ससार का मूल–आसक्ति है। अर्थात् जो गुण (इन्द्रिय-विषय है) वह (कषायरूप ससार का) मूल स्थान है और जो मूलस्थान है, वह गुण है।[२२] मेरेपन (ममत्व) मे आसक्त हुआ मनुष्य प्रमत्त होकर उनके साथ निवास करता है। वह रात-दिन परितप्त एव तृष्णा से व्याकुल रहता है।[२३] सूत्रकार कहते है कि हे पुरुष! न तो वे तेरी रक्षा करने और तुझे शरण देने मे समर्थ है और न तू ही उनकी रक्षा व शरण के लिए समर्थ है।[२४] यहाँ सूत्रकार ने प्रमाद परिमार्जन की बात कही है। लोभ पर विजय प्राप्त करने के लिए सूत्रकार कहते है कि जो विषयो के दलदल से पारगामी होते है, वे वास्तव मे विमुक्त है।[२५] आचाराग की समता समस्त प्राणियो को सुख से जीने का सदेश देती है। सूत्रकार कहते है कि सब प्राणियो को आयुष्य प्रिय है। सभी सुख का स्वाद चाहते है। दु ख से घबराते है। उनको वध (मृत्यु) अप्रिय है, जीवन प्रिय है। वे जीवित रहना चाहते है। सबको जीवन प्रिय है।[२६]

समता का लक्ष्य दृष्टाभाव को जागृत करना है। सूत्रकार कहते है कि जो द्रष्टा है (सत्यदर्शी), उसके लिए उपदेश की आवश्यकता नही होती।[२७] समताभाव के लिए आसक्ति को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। आचाराग मे आसक्ति को शल्य कहा है। हे धीर पुरुष! तू आशा और स्वच्छन्दता करने का त्याग कर दे।[२८] समता का लक्ष्य एकीभाव है, आत्मा मे लीन हो जाना है। सूत्रकार कहते है कि जो अनन्य (आत्मा) को देखता है, वह अनन्य (आत्मा) मे रमण करता है। जो अनन्य (आत्मा) मे रमण करता है, वह अनन्य (आत्मा) को देखता है।[२८] आगे कहा है कि जो आत्मा को जान लेता है, उसके लिए उपदेश की आवश्यकता नही रहती। अर्थात् द्रष्टा के लिए (सत्य का सम्पूर्ण दर्शन करने वालो के लिए) कोई उद्देश (उपदेश) नही है।[२९]

आचाराग मे भ० महावीर कहते है कि इस ससार मे व्याप्त आतक और महाभय जिस व्यक्ति ने देख और समझ लिया है वही हिंसा से निवृत्त होने मे सफल हो सकता है।[३०] आतुर लोग स्थान-स्थान पर परिताप पहुँचाते है वही दूसरी ओर देखो तो साधुजन समता का जीवन जीते है।[३१] ऐसे शात और धीर व्यक्ति देहासक्ति से मुक्त हो जाते है।[३२] इसलिए महावीर कहते है कि हे पडित! तू क्षण को जान।[३३] सूत्रकार कहते है कि धैर्यवान पुरुषो को अवसर की समीक्षा करनी चाहिए और क्षण भर भी प्रमाद नही करना चाहिए।[३४] वास्तव मे जिस व्यक्ति ने क्षण को पहचान लिया

है वह एक पल का भी विलम्ब किये बिना अपने जन्म और मरण की मुक्ति के लिए प्रयास प्रारभ कर ही देगा। महावीर कहते है कि कुशल व्यक्ति को प्रमाद से क्या प्रयोजन ?[३५] वे कहते है कि उठो और प्रमाद न करो।[३६] यही समता आचाराग सूत्र मे भावशीत और भावउष्ण, इन दोनो को समभावपूर्वक सहन करने का उपदेश किया है। कहा है कि– अमुनि (अज्ञानी) सदा सोये हुए है, तथा मुनि (ज्ञानी) सदैव जागते है।[३७] समता मे स्थित साधक के लिए सूत्रकार कहते है कि समस्त प्राणियो की गति और अगति को भलीभाँति जानकर जो दोनो अन्तो (राग और द्वेष) से दूर रहता है, वह समस्त लोक मे कही भी छेदा नहीं जाता, भेदा नही जाता, जलाया नही जाता और मारा नही जाता।[३८]

समता की साधना सत्य की साधना है। सत्य मे समुत्थान करने के लिए कहा है कि– हे पुरुष! तू सत्य को ही भलिभाँति समझ। सत्य की आज्ञा (मर्यादा) मे उपस्थित रहने वाला वह मेघावी मार (मृत्यु, ससार) को तर जाता है।[३९] वह सत्यार्थी साधक क्रोध, मान, माया और लोभ को शीघ्र ही त्याग देता है। समता मे स्थित साधक के लिए कहते है कि जो एक (आत्मा) को जानता है, वह सब को जानता है और जो सबको (ससार) जानता है, वह एक आत्मा को जानता है।[४०] महावीर कहते है कि समताधारी साधक लोकैषणा मे न भटके।[४१] जिस साधक मे यह लोकेषणा बुद्धि नही है, उसके अन्य प्रवृत्ति अर्थात् सावद्यारम्भ-हिंसा नही होगी। अथवा जिसमे सम्यक्त्व ज्ञाति नही है या अहिसा बुद्धि नही है, उसमे दूसरी विवेक बुद्धि नही होगी। हिंसा मे रचे-पचे और उसी मे लीन रहने वाले मनुष्य बार-बार जन्म धारण करते रहते है। मोक्ष मार्ग मे प्रयत्न करने वाले, सतत प्रज्ञावान-धीर साधक से कहा गया है कि उन्हे देख जो प्रमत्त है, धर्म से बाहर है। तू अप्रमत्त होकर सदा अहिंसादि रूप धर्म मे पराक्रम कर।[४२] निर्युक्तिकार ने लोक के सार के सम्बन्ध मे प्रश्न उठाकर समाधान किया है कि– लोक का सार धर्म है, धर्म का सार ज्ञान है, ज्ञान का सार सयम है तथा सयम (समता) का सार मोक्ष है।[४३] समता मे अस्थित लोगो की दृष्टि मे धन, काम, भोग-साधन, शरीर, जीवन, भौतिक उपलब्धियाँ आदि सारभूत मानी जाती है, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि मे अर्थात् समता मे रमण करने वाले के लिए ये सब पदार्थ सारहीन है, क्षणिक है, नाशवान है, आत्मा को पराधीन बनाने वाले है और अन्तत दुखदायी है। समता की दृष्टि मे मोक्ष (परम पद) परमात्मपद आत्मा (शुद्ध, निर्मल, ज्ञानादि स्वरूप)। मोक्ष प्राप्ति के साधन– धर्म, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप एव सयम आदि सारभूत है।[४४] ससार स्वरूप का परिज्ञान कराते हुए सूत्रकार कहते है कि जिसे सशय (मोक्ष और ससार के विषय मे सन्देह) का परिज्ञान हो जाता है, उसे ससार के स्वरूप का परिज्ञान हो जाता है। जो सशय को नही जानता, वह ससार को भी नही जानता।[४५] इसलिए सूत्रकार कहते है कि (समता मे स्थित) साधक (समतादर्शी) ससारवृक्ष के बीज रूप कर्मो (कर्मबन्धो) के विभिन्न कारणो को जानकर उनका परित्याग करे और् कर्मो से सर्वथा मुक्त (अवधूत) बने।[४६]

आचाराग की समता अन्त मे विमोक्ष का निरूपण करती है। 'विमोक्ष' का अर्थ परित्याग करना, अलग हो जाना है और विमोह का अर्थ है– मोह रहित हो जाना। तात्विक दृष्टि से अर्थ मे कोई अन्तर नही है। बेडी आदि किसी बन्धन रूप द्रव्य से छूट जाना 'द्रव्य विमोक्ष' है और आत्मा को बन्धन मे डालने वाले कषायो अथवा आत्मा के साथ लगे कर्मो के बन्धन रूप सयोग से मुक्त हो जाना 'भाव-विमोक्ष' है।[४७] इसे हम द्रव्य समता और भाव समता की सज्ञा दे सकते है।

समता का लेखा-जोखा हमे भ० महावीर के जीवन की घटनाओ से प्राप्त होता है, जो कि आचाराग सूत्र के 'उपधान-श्रुत' नामक अध्ययन मे वर्णित है। सूत्रकार ने लाढदेश की उत्तम तितिक्षा-साधना का वर्णन करते हुए कहा है कि 'दुर्गम लाढदेश' के वज्रभूमि और थुभ्रभूमि नामक प्रदेश मे भ० महावीर ने विचरण किया था। वहॉ उन्होंने बहुत ही तुच्छ (उबड-खावड) वासस्थानो व कठिन आसनो का सेवन किया था।[४८] लाढदेश के क्षेत्र मे भगवान ने अनेक उपसर्ग सहे, वहाँ के बहुत से अनार्य लोग भगवान पर डडो आदि से प्रहार करते थे। उस देश के लोग ही प्राय रूखे थे, अत भोजन भी प्राय रूखा-सूखा ही मिलता था। वहॉ के शिकारी कुत्ते उन पर टूट पडते और काट खाते थे।[४९] कुत्ते काटने लगते या भौकते तो बहुत थोडे से लोग उन काटते हुए कुत्ते को रोकते, अधिकाश लोग तो इस श्रमण को कुत्ते काटे, इस नियत से कुत्तो को बुलाते और छुछकार कर उनके पीछे लगा देते थे।[५०] उस समय अणगार भ० महावीर प्राणियो के प्रति मन, वचन और काया से होने वाले दण्ड का परित्याग और अपने शरीर के प्रति ममत्व का व्युत्सर्ग करके समता मे विचरण करते थे। भगवान उन ग्राम्यजनो के काटो के समान तीखे वचनो को निर्जरा का हेतु समझकर सहन करते थे।[५१] उस लाढदेश मे बहुत से लोग डण्डे मे या मुक्के से अथवा भालो आदि शस्त्र से या फिर मिट्टी के ढेले या खप्पर से मारते और 'मारो-मारो' कहकर होहल्ला मचाते।[५२] उन अनार्यो ने पहले एक बार ध्यानस्थ खडे भगवान के शरीर को पकड कर मॉस काट लिया था। उन्हे (प्रतिकूल) परीषहो से पीडित करते थे फिर भी भगवान समता मे स्थिर रहते।[५३] कुछ दुष्ट लोग ध्यानस्थ भगवान

को ऊँचा उठा कर नीचे गिरा देते थे। किन्तु भगवान शरीर का व्युत्सर्ग किये हुए परिषह सहन करने के लिए प्रणबद्ध, कष्ट सहिष्णु, दु ख प्रतिकार की प्रतिज्ञा से मुक्त थे। अतएव वे इन परिषहो, उपसर्गो से विचलित नही होते थे।[५४] जैसे कवच पहना हुआ योद्धा युद्ध के मोर्चे पर शस्त्रो से बिद्ध होने पर भी विचलित नही होता है वैसे ही समता-सवर का कवच पहने हुए महावीर उस देश मे पीडित होने पर भी कठोरतम कष्टो का सामना करते हुए मेरु पर्वत की तरह ध्यान मे निश्चल रहकर समता (मोक्षपथ) मे पराक्रम करते थे।[५५] दो मास से अधिक अथवा छ मास तक भी महावीर कुछ नही खाते-पीते थे। रात-दिन वे राग-द्वेष रहित समता मे स्थिर रहे।[५६] वे गृहस्थ के लिए बने हुए आहार की ही भिक्षा ग्रहण करते थे और उसको वे समतायुक्त बने रहकर उपयोग मे लाते थे।[५७] महावीर कषाय रहित थे। वे शब्दो और रूपो मे अनासक्त रहते थे। जब वे असर्वज्ञ थे तब भी उन्होंने साहस के साथ सयम पालन करते हुए एक बार भी प्रमाद नही किया।[५८] महावीर जीवन पर्यन्त समता मे स्थिर रहे।[५९]

इस प्रकार हम देखते है कि आचारागसूत्र मे समता के महत्वपूर्ण सूत्र सग्रहित है जो आत्म दृष्टि-अहिसा-समता, वैराग्य, अप्रमाद, अनासक्ति, निस्पृहता, निस्सगता, सहिष्णुता, ध्यानसिद्धि, उत्कृष्ट सयम-साधना, तप की आराधना, मानसिक पवित्रता और आत्मशुद्धि-मूलक पवित्र जीवन मे अवगाहन करने की प्रेरणा देते है। इसमे मूल्यात्मक चेतना की सबल अभिव्यक्ति हुई है। इसका प्रमुख उद्देश्य समता पर आधारित अहिसात्मक समाज का निर्माण करने के लिए व्यक्ति को प्रेरित करना है, जिससे समाज के आधार पर सुख-शान्ति एव समृद्धि के बीज अकुरित हो सके। हिंसा-अहिंसा के इतने विश्लेषण के कारण ही 'आचाराग' को विश्व साहित्य मे सर्वोपरि स्थान दिया जा सकता है। "आचाराग" की घोषणा है कि प्राणियो के विकास मे अन्तर होने के कारण किसी भी प्रकार के प्राणी के अस्तित्व को नकारना अपने ही अस्तित्व को नकारना है।[६०]

पूर्व प्रभारी एव आगम योजना अधिकारी
आगम-अहिसा-समता एव प्राकृत सस्थान,
पश्चिमी मार्ग, उदयपुर ।

सदर्भ ग्रन्थ

१) आचाराग सूत्र – १३-१४, १०३-१०९, २) नियमसार – २५, ३) उत्तराध्ययन – १९/९०-९१, ४) गोम्मटसार जीवकाण्ड (टीका) ३६८, ५) जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययेन भाग २, पृ ३१३ –डॉ० सागरमल जैन, ६) भगवतीसूत्र २५/७/२१-२३, ७) जिनवाणी, सामायिक अक पृ० ५७, ८) धम्मपद – १८३, ९) गीता – ६/३२, १०) गीता – १४/२४-२५, ११) गीता – २/४८, १२) जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ३९३-९४, १३) "आयाखलु सामाइए, आया सामाइ यस्स अट्ठे।"– भगवतीसूत्र, १४) "अत्थि मे आया उववाइए, नत्थि मे आया । के अह आसी, केवा इओ चुओ इहपेच्चा भविस्सामि ।।"– आचारागसूत्र – १/१/१/३, १५) "सोहँ से आयावाई, लोगावाई, कम्मवाई, किरियावाई ।"– आचारागसूत्र – १/१/१/४५, १६) जिनवाणी सामायिक अक, पृ० ९७, १७) आचारागसूत्र – १/१/१/४, १८) आचारागसूत्र – १/१/१/५, १९) आचारागसूत्र – १/१/१/४०, २०) भावे कसायलोगो, अहिगारो तस्स विजएण – आचारागटीका-१७५, २१) "काम नियतमई खलु ससारा मुच्चई खिप्प।" –आचारागटीका–१७७, २२) "जे गुणे से मूलट्ठाणे, जे मूलट्ठाणे से गुणे।"– आचाराग २/१/६३, २३) "इच्च त्थ गढिए लोए वसे पमत्ते।"– आचाराग-२/१/६३, २४) "णाल ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमपि सेसिं णाल ताणाए वा सखाए वा।" –आचाराग–२/१/६७, २५) "विमुका हुते जणा जे जणा पारगामिणो।", आचाराग–२/२/७१, २६) "सव्वे पाणा पिआउया सुहसाया दुक्खपडिकूला अप्पियवह । पियजीविणो जीवितुकामा । सव्वेसिंजीविय पिय ।।" –आचाराग–२/३/७८, २७) "उद्देसो पासगस्स णात्थि ।"– आचाराग–२/३/८०, २८) "जे अणण्णदसी से अणण्णारामे, जे अणण्णारामे से अणण्णादसी ।।"– आचाराग–२/६/१०१, २९) "उद्देसो पासगस्स णत्थि"– आचाराग–२/३/८०, ३०) आचाराग पृ० ४३/१४५-१४६, ३१) "लज्जमाणा पुढा पासा ।"– आचाराग पृ० ८/१७, ३२) "इह सति गया दविया णाव कखति।"– आचाराग पृ० ४२/१४९, ३३) "खण जाणाहि पडिए"– आचाराग पृ० ७४/२४, ३४) "अतर च खलु इम सपेहाए-धीरे मुदुत्तमवि णो पमायए।" –आचाराग पृ० ७२/११, ३५) "अल कुसलस्स पमाएण।"– आचाराग पृ० ८८/९५, ३६) "उट्ठिए णो पमायए।" आचाराग पृ० १८२/२३, ३७) "सुत्ता अमुणी मुणिणो सया जागरति"– आचाराग–३/१/१०६, ३८) आचाराग – ३/३/१२३, ३९) आचाराग – ३/२/१२७, ४०) "जे एग जाणति से सव्व जाणति, जे सव्व जाणति से एग जाणाति।"– आचाराग–३/४/१२९, ४१) "णो लोगस्सेसण चरे।"– आचाराग–४/१/१३३, ४२) आचारागसूत्र – पृ० ११९, ४३) "लोकस्सार धम्मो धम्मपि य नाणसारिय विति । नाण सजनसार, सजनसार च निव्वाण।" –आ० निर्युक्ति गा० २४४–टीका से उद्धृत, ४४) आचाराग पृ० १४४, ४५) "ससघ परिजाणतो ससारे परिण्णाते भवति, ससय अपरिजाजतो ससारे अपरिण्णाते भवति।" –आचाराग – ५/१/१४९, ४६) आचाराग निर्युक्ति गाथा २५१, ४७) आचाराग निर्युक्ति गाथा- २५९-२६०, ४८ से ५९) आचारागसूत्र-नवम अध्ययन–सूत्र २९४, २९५, २९६, २९९, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३१२, ३१५, ३२९, ३३२ क्रमानुसार, ६०) आचाराग चयनिका – डॉ० कमलचन्द सोगाणी–भूमिका

और फिर?

बिलकुल इस क्षण तक मेरी कल्पना मे बच्चे थे। उन्हे ही सम्वोधित करने की चाह लिये मै ये पक्तियॉ लिखने बैठा। पर इसी वीच मेरी छ वर्षीया दौहित्री समता आई और मेरे पास बैठकर बाते करने लगी। बडी सीधी-सरल बच्ची है। उच्छृखलता का नाम भी नही। उसके चचेरे भाई को सब 'चीनू' कहकर बुलाते है। वह समता से एक-दो वर्ष बडा है, कुछ चचल भी। मैने समता से पूछा– "चीनू तुम्हे मारता है क्या?" वह बोली– "कभी-कभी मार देता है।" मैने पूछा– "क्यो?" उसने जो जवाब दिया वह मेरे लिये वच्चो के निर्मल-निर्विकार अन्त करण का साक्षात् दर्शन था। उसने कहा– "कोई-कोई समय मुझसे भूल हो जाती है।" मै अचानक जैसे गहरी नीद से जागा – कहॉ ओसकणो की पवित्रता लिये ये बच्चे जिन्हे हम अबोध कहते है और कहॉ अह और आग्रह मे आकठ डूबे हम। बच्चो के इस अन्त स्वरूप पर जब दृष्टि पडी तो मेरा मन कुछ उलझ-उलझ गया। उन्हे कुछ कहने से पूर्व ही मेरे विचारो ने करवट बदल ली।

प्रकृति के वरदान अनन्त है, उतने ही उनके रूप भी। पर वच्चो से वढकर वह भी और कौन-सा उपहार हमे दे। पक्षियो का कलरव जिनकी भाषा है और परियो का देश जिनका स्वप्नलोक, जो हमारे मन मे इन्द्रधनुष के रग विखेरते है और ऑगन मे फूलो की मुस्कान, जिनकी हर श्वास मलयज का झोका है और हर किलकारी निर्झर का सगीत – उन बच्चो से बढकर, सच ही, और किस चीज की कल्पना हम करे?

बच्चे सृष्टि की अनन्यतम कृति है – निर्विकार वृत्तियॉ, निश्छल आचरण, निष्कलुष मन। सहज, सरल और प्रकृतिगत। भीतर और बाहर समरूप। न कोई मुखौटा, न आडम्बर, न औपचारिकता। सब कुछ अनावृत और निरावरण। लडे, झगडे, रूठे पर दूसरे ही क्षण फिर वही आत्मीयता। मलिनता मन को छुये ही नही। **खामेमि सव्वजीवे** - क्षमादान और क्षमायाचना के शब्द ओठो पर नही, अन्तर ही उनसे आप्लावित। अध्यात्म का हर पाठ तो इनके स्वभाव मे है। फिर कौन-सा ज्ञान इन्हे दे? बल्कि इनसे तो हम ही कुछ सीखे। उपदेशो की आवश्यकता तो यथार्थ मे बडो को है। तो थोडा अपनी ओर मुडे। यह मुहूर्त सचमुच कुछ देर थमने का है, एक चिर-उपेक्षित प्रश्न का समाधान पा लेने का है – बच्चे वडे होकर क्यो उन विकारो से ग्रस्त होते है जिनसे यह धरती त्रस्त है?

जीव के बारे मे बतला रहा व्यक्ति अनजाने ही अजीव की व्याख्या कर रहा होता है। पुण्य के विश्लेषण मे पाप की परिभाषा छिपी रहती है। आश्रव (कर्म-ग्रहण) का ज्ञान निर्जरा (कर्म-क्षय) की प्रक्रिया है। बध और मोक्ष भी एक दूसरे की परिक्रमा करते है और यहॉ भी देखिये, बच्चो से प्रारम्भ हुई बात अनायास ही मुझे वडो के पास ले आई, सप्रयास स्वय तक पहुॅचने का उपक्रम तो सब उपलब्धियो का प्रथम सोपान है ही।

सप्रयास स्वय तक पहुॅचने का उपक्रम! दो शब्दो का सदेश भगवान महावीर का – **तिन्नाण तारयाण**। पहले स्वय तिरो, फिर दूसरो को तारो। स्वय को तारना सार्थक जीवन की वर्णमाला के पहले अक्षर है। दूसरो का तारना तो उसकी अतिम पक्ति है। पर विडम्बना ऐसी कि हम अन्तिम पक्ति से ही अपनी वर्णमाला शुरु करते है। यह क्षण इस क्रम को वदलने का है, उपदेशो की जगह आचरण को मुखरित करने का है, कुछ विवेकशील व्यक्तियो के चिंतन की गहराई मे उतरने का है।

तो आगे बढे अव।

*

मेरे दादाजी श्री पूनमचदजी रामपुरिया – हिम्मत के धनी, पुरुषार्थ के प्रतीक, प्रत्युत्पन्नमति और दूरदर्शी। उस समय की बात जब राजस्थान के वहुत से घरो मे गाय-भेस होती थी। हमारे घर मे भी थी। अधिकाश परिवार कलकत्ता मे रहता था। महीने-दो-महीने वाद घर का घी कलकत्ता भेजा जाता था। कुछ घी इकट्ठा हुआ। दादाजी ठाकुर रामसिहजी को इसे पैक करने का कह कर [illegible] व्याख्यान सुनने चले गये। रामसिहजी [illegible]

डिब्बा खरीद लाए और उसमे घर वाला घी भर कर उसे सील कर दिया। दादाजी घर लौटे। डालडा का टिन सामने ही पडा था। चेहरे पर क्रोध के भाव उभरे – "डालडा कौन लाया घर मे?" रामसिंहजी बोले – "डालडा नही है। उसके खाली टिन मे कलकत्ता भेजने के लिये मैंने घर वाला घी पैक किया है।" आदेश मिला – "घी को निकाल कर दूसरे डिब्बे मे पैक करिये और डालडा के टिन को बाहर फेक दीजिए। आगे से वनस्पति घी का खाली टिन भी कभी घर मे न लाये।" बाहर गिराया गया वह तिरस्कृत टिन अपने अनादर से कितना क्षुब्ध हुआ, मैंने नही देखा, पर दादाजी का गलत चीजो के प्रति किचित भी ममत्व न रखने का सकल्प – मेरे अन्तर मे उस दिन जैसे एक दीप जला।

*

मेरे अग्रज श्री ताराचन्दजी १२-१३ वर्ष के रहे होंगे और मै १०-११ वर्ष का। चार आने मे एक फिल्मी गानो की पुस्तक खरीद लाये। पिताजी (श्रीचन्दजी रामपुरिया) की दृष्टि उस पर पडी। पुस्तक हाथ मे ली और बोले – "मै तुम्हे अच्छी-अच्छी कहानियो की पुस्तके ला दूँगा। सिनेमा की पुस्तके मत पढा करो।" मुँह से बस इतना ही। फिर हाथ गतिशील हुए। दूसरे ही क्षण हमने विस्फारित ऑखो से पुस्तक के चार टुकडे होते देखे और तीसरे क्षण वह खिडकी की राह से सडक पर पहुँच चुकी थी। चार आने भी उस समय हम बच्चो के लिये धन था। उधर 'चन्द्रलेखा' के गानो को कण्ठस्थ करने की धुन थी। धन और धुन – दोनो की साथ ही धुनाई हो गई। घर के बाहर फेकी गई वह तिरस्कृत पुस्तक अपने अनादर से कितनी क्षुब्ध हुई, मैंने नही देखा, पर गलत प्रवृत्तियो को प्रश्रय न देने का पिताजी का सकल्प – मेरे अन्तर मे उस दिन फिर एक दीप जला।

*

३१ मार्च, १९६९ - चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन पूज्या माँ का देहान्त हुआ। दिसम्बर सन् १९६३ मे उन्हे हृदय का दौरा पडा था। तब से उनका स्वास्थ्य सदा चिन्तनीय स्थिति मे ही रहा। उससे पूर्व भी उन्होने अस्थमा, गठिया आदि शारीरिक व्याधियाँ बहुत झेली। सयुक्त परिवार के कारण गृहकार्य ने भी उन्हे सदा व्यस्त रखा। फिर भी बच्चो के लालन-पालन और उनकी सुख-सुविधाओ के प्रति वे सदा अत्यन्त सजग रही।

सुबह का नाश्ता और दोनो समय का खाना वे हम सब भाइयो को स्वय पास बैठ कर खिलाती। व्यापार-व्यवसाय सम्बन्धित काम-काज के अपने आग्रह होते है। घर पहुँचने मे हमे देर-सवेर भी होती मगर वे हमारी प्रतीक्षा करती रहती। न हमे उनके हाथ से खाये बिना चैन मिलता न उन्हे खिलाये बिना। यह क्रम उनकी मृत्यु के कुछ दिन पूर्व तक रहा।

एक दिन माँ के हाथ से मेरी थाली मे चावल कुछ ज्यादा गिर गये। मैंने कहा – "माँ, आपने चावल आज ज्यादा परोस दिये।" वे जानती थी कि जूठा छोडना मुझे अप्रिय है और, इच्छा से या अनिच्छा से, मै पूरे चावल खा लूँगा। कुछ बोली नही। जब उन्हे लगा कि जितने चावल मुझे खाने चाहिये उतने मैं खा चुका हूँ तो पास रखी गिलास हाथ मे ली और बचे हुए चावलो पर पानी उडेल दिया।

अतिभोजन हानिकारक होता है – पाँचवी या छठी कक्षा के पाठ्यक्रम मे शामिल स्वास्थ्य-विज्ञान की पुस्तक मे यह बात पढी मैंने थी, गुना उसे माँ ने। शिक्षा और ज्ञान दो नितान्त भिन्न स्थितियाँ है – देह और विदेह की तरह – पहली बार मुझे यह भान हुआ। समझा-बुझाकर अथवा डॉट-डपटकर थाली मे आया भोजन निगलवा देने की परम्परा सदियो पुरानी है। अन्य कई अनिष्टकारी रुढियो और रीति-रिवाजो की तरह उसमे छिपे अनर्थ को भी माँ ने देखा और विवेकपूर्वक स्वय को उस प्रवाह से मुक्त रखा। थाली मे पडे वे तिरस्कृत चावल अपने अनादर से कितने क्षुब्ध हुए, मैंने नही देखा, पर गलत परम्पराओ को पोषण न देने का माँ का सकल्प – मेरे अन्तर मे उस दिन और एक दीप जला।

* * *

मेरे दादाजी, मेरे पिताजी और मेरी माँ। गलत चीजो के प्रति ममत्व न रखने का सकल्प, गलत प्रवृत्तियो को प्रश्रय न देने का सकल्प, गलत परम्पराओ को पोषण न देने का सकल्प। बडे सब इसी तरह बच्चो के मन मे दीप जलाते रहे, जलाते रहे। और फिर? फिर दीप से दीप जलते रहेंगे, जलते रहेंगे।

फिर तो दीप से दीप जलते रहेंगे।

■

□ डॉ सुरेश सिसोदिया

जैन शास्त्रों में वर्णित शिक्षा - सूत्र

प्रत्येक धर्म परम्परा मे धर्म ग्रन्थ का एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। हिन्दुओ के लिए वेद, बौद्धो के लिए त्रिपिटक, पारसियो के लिए अवेस्ता, ईसाइयो के लिए बाईबिल और मुसलमानो के लिए कुरान का जो स्थान और महत्व है, वही स्थान और महत्व जैनो के लिए आगम-साहित्य का है। सम्पूर्ण जैन आगम-साहित्य मे नैतिक शिक्षा से सम्बन्धित अनेक सूत्र दृष्टिगोचर होते है। अर्द्धमागधी आगम साहित्य मे चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक का रचनाकाल ईस्वी सन् की पॉचवी शताब्दी से पूर्व का माना जाता है। चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक मे सात द्वारो के माध्यम से सात गुणो का वर्णन किया गया है। ये सभी गुण वस्तुतत व्यक्ति के चरित्र-निर्माण और उसके अन्तिम लक्ष्य समाधिमरण पूर्वक देह-त्याग की प्राप्ति करने मे सहायक है। चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक मे वर्णित विषय-वस्तु के शिक्षा-सूत्र इस प्रकार है –

१ **विनय गुण** – विनय गुण नामक प्रथम द्वार मे जो कुछ वर्णन प्राप्त होता है उससे स्पष्ट होता है कि किसी शिष्य की महानता उसके द्वारा अर्जित व्यापक ज्ञान पर निर्भर नही है वरन् उसकी विनयशीलता पर आधारित है। गुरूजनो का तिरस्कार करने वाले विनय रहित शिष्य के लिए तो कहा है कि वह लोक मे कीर्ति और यश को प्राप्त नही करता है किन्तु जो विनयपूर्वक विद्या ग्रहण करता है उस शिष्य के लिए कहा है कि वह सर्वत्र विश्वास और कीर्ति प्राप्त करता है (२-६)।

विद्या और गुरू का तिरस्कार करने वाले जो व्यक्ति मिथ्यात्व से युक्त होकर लोकेषणा मे फॅसे रहते है ऐसे व्यक्तियो को ऋषिघातक तक कहा गया है (७-९)। विद्या को तो इस लोक मे ही नही, परलोक मे भी सुखप्रद बतलाया है (१२)।

विद्या प्रदाता आचार्य एव शिष्य के विषय मे कहा है कि जिस प्रकार समस्त प्रकार की विद्याओ के प्रदाता गुरू कठिनाई से प्राप्त होते है उसी प्रकार चारो कषायो तथा खेद से रहित सरलचित वाले शिक्षक एव शिष्य भी मुश्किल से प्राप्त होते है (१४-२०)। यापनीय परम्परा के ग्रन्थ मूलाचार मे भी विनय गुण को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि विनय से पढा गया शास्त्र यद्यपि प्रमाद से विस्मृत भी हो जाता है तो भी वह परभव मे उपलब्ध हो जाता है और केवलज्ञान को प्राप्त करा देता है।

२ **आचार्य गुण** – विनय गुण के पश्चात् आचार्य गुण की चर्चा करते हुए कहा गया है कि पृथ्वी के समान सहनशील, पर्वत ती तरह अकम्पित, धर्म मे स्थित चन्द्रमा की तरह सौम्यकाति वाले, समुद्र के समान गम्भीर तथा देश काल के जानकर आचार्यो की सर्वत्र प्रशसा होती है (२१-३१)।

आचार्यो की महानता के विषय मे कहा गया है कि आचार्यो की भक्ति से जहॉ जीव इस लोक मे कीर्ति और यश प्राप्त करता है वही परलोक मे विशुद्ध देवयोनि और धर्म मे सर्वश्रेष्ठ बोधि को प्राप्त करता है (३२)। आगे कहा गया है कि इस लोक के जीव तो क्या देवलोक मे स्थित देवता भी अपने आसन शय्या आदि का त्याग कर अप्सरा समूह के साथ आचार्यो की वन्दना के लिए जाते है (३३-३४)।

त्याग और तपस्या से भी महत्त्वपूर्ण गुरूवचन का पालन मानते हुए कहा गया है कि अनेक उपवास करते हुए भी जो गुरू के वचनो का पालन नही करता वह अनन्तससारी होता है। (३५)।

३ **शिष्य गुण** – आचार्य गुण के पश्चात् इस प्रकीर्णक ग्रन्थ मे शिष्य गुण का उल्लेख हुआ है जिसमे कहा गया है कि नाना प्रकार से परिषहो को सहन करने वाले, लाभ-हानि मे सुख-दुख रहित रहने वाले, अल्प इच्छा से सतुष्ट रहने वाले,

ऋद्धि के अभिमान से रहित, सभी प्रकार की सेवा-सुश्रुषा मे सहज, आचार्य की प्रशसा करने वाले तथा सघ की सेवा करने वाले एव ऐसे ही विविध गुणो से सम्पन्न शिष्य की कुशलजन प्रशसा करते है (३७-४२)।

आगे कहा गया है कि समस्त अहकारो को नष्ट करके जो शिष्य शिक्षित होता है, उसके बहुत से शिष्य होते है किन्तु कुशिष्य के कोई भी शिष्य नही होता (४३)। शिक्षा किसे दी जाए, इस सम्बन्ध मे कहा गया है कि किसी शिष्य मे सैकडो दूसरे गुण भले ही क्यो न हो किन्तु यदि उसमे विनय गुण नही है तो ऐसे पुत्र को भी वाचना न दी जाए। फिर गुण विहीन शिष्य को तो क्या? अर्थात् उसे तो वाचना दी ही नही जा सकती (४४-५१)।

४ **विनय-निग्रह गुण** - प्रस्तुत कृति मे विनय गुण और विनय-निग्रह गुण इस प्रकार दो स्वतन्त्र द्वार है किन्तु विनय गुण और विनय-निग्रह गुण मे क्या अतर है, यह इसकी विषयवस्तु से स्पष्ट नही होता, क्योकि दोनो ही द्वारो की गाथाओ मे जो विवरण दिया गया है उसका तात्पर्य विनम्रता या आज्ञापालन से ही है। यद्यपि प्राचीन आगम ग्रन्थो मे विनय शब्द दो अर्थो मे प्रयुक्त हुआ है – एक विनम्रता के अर्थ मे और दूसरा आचार के नियमो के अर्थ मे। प्राय सभी प्रसगो मे विनय का तात्पर्य आचार-निमय ही प्रतिफलित होता है अत यह कहा जा सकता है कि विनय-निग्रह गुण से लेखक का तात्पर्य आगमोक्त आचार नियमो के परिपालन से रहा होगा।

विनय-निग्रह नामक इस परिच्छेद मे विनय को मोक्ष का द्वार कहा गया है और इसलिए सदैव विनय का पालन करने की प्रेरणा दी गई है तथा कहा गया है कि शास्त्रो का थोडा जानकार पुरुष भी विनय से कर्मो का क्षय करता है (५४)। आगे कहा गया है कि सभी कर्मभूमियो मे अनन्त ज्ञानी जिनेन्द्र देवो के द्वारा भी सर्वप्रथम विनय गुण को प्रतिपादित किया गया है तथा इसे मोक्षमार्ग मे ले जाने वाला शाश्वत गुण कहा है। मनुष्यो के सम्पूर्ण सदाचरण का सारतत्व भी विनय मे ही प्रतिष्ठित होना बतलाया है। इतना ही नही, आगे कहा है कि विनय रहित तो निर्ग्रन्थ साधु भी प्रशसित नही होते (६१-६३)।

५ **ज्ञान गुण** ज्ञान गुण नामक पॉचवे द्वार मे ज्ञान गुण का वर्णन करते हुए कहा है कि वे पुरुष धन्य है, जो जिनेन्द्र भगवान् द्वारा उपदिष्ट अति विस्तृत ज्ञान को समग्रतया नही जानते हुए भी चारित्र सम्पन्न है (६९)। ज्ञात दोषो का परित्याग और गुणो का परिपालन, ये ही धर्म के साधन कहे गये है (७२)। आगे कहा गया है कि जो ज्ञान है वही क्रिया का आचरण है, जो आचरण है वही प्रवचन अर्थात् जिनोपदेश का सार है और जो प्रवचन का सार है, वही परमतत्त्व है (७७)।

ज्ञान की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि इस लोक मे अत्यधिक सुन्दर व विलक्षण होने से क्या लाभ? क्योकि लोक मे तो चन्द्रमा की तरह लोग विद्वान के मुख को ही देखते है (८१)। आगे कहा है कि ज्ञान ही मुक्ति का साधन है, क्योकि ज्ञानी व्यक्ति ससार मे परिभ्रमण नही करता है (८३-८४)। अन्त मे साधक के लिए कहा गया है कि जिस एक पद के द्वारा व्यक्ति वीतराग के मार्ग मे प्रवृत्ति करता है, मृत्यु समय मे भी उसे छोडना नही चाहिए (९४-९७)।

६ **चारित्र गुण** – चारित्र गुण नामक छठे द्वार मे उन पुरुषो को प्रशसनीय बतलाया गया है, जो गृहस्थरूपी बन्धन से पूर्णत मुक्त होकर जिनेन्द्र भगवान् द्वारा उपदिष्ट मुनि-धर्म के आचरण हेतु प्रवृत्त होते है (१००)। पुन दृढ धैर्य मनुष्यो के विषय मे कहा गया है कि जो उद्यमी पुरुष क्रोध, मान, माया, लोभ, अरति और जुगुप्सा को समाप्त कर देते है, वे परम सुख को खोज पाते है (१०४)। चारित्रशुद्धि के विषय मे कहा गया है कि पॉच समिति और तीन गुप्तियो मे जिसकी निरन्तर मति है तथा जो राग-द्वेष नही करता है, उसी का चारित्र शुद्ध होता है (११४)।

७ **मरण गुण** – विनय गुण, आचार्य गुण, शिष्य गुण, विनय-निग्रह गुण, ज्ञान गुण और चारित्र गुण का वर्णन करने के पश्चात् अन्त मे ग्रन्थकार मरण गुण का प्रतिपादन करते हुए समाधिमरण की उत्कृष्टता का बोध कराते है। वे कहते है कि विषय-सुखो का निवारण करने वाली पुरूषार्थी आत्मा मृत्यु समय मे समाधिमरण की गवेषणा करने वाली होती है (१२०)। आगे कहा गया है कि आगम ज्ञान से युक्त किन्तु रसलोलुप साधुओ मे कुछ ही समाधिमरण प्राप्त कर पाते है किन्तु अधिकाश का समाधिमरण नही होता है (१२३)।

समाधिमरण किसका होता है? इस विषय मे कहा गया है कि सम्यक् बुद्धि को प्राप्त, अन्तिम समय मे साधना मे विद्यमान, पाप कर्म की आलोचना, निन्दा और गर्हा करने वाले व्यक्ति का मरण ही शुद्ध होता है अर्थात् उसका ही समाधिमरण होता है (१३१)। साथ ही यहॉ मृत्यु के अवसर पर कृतयोग वाला कौन होता है इस पर भी चर्चा की गई है (१३३-१४०)।

कषायो की चर्चा करते हुए कहा गया है कि जिस मनुष्य ने करोड पूर्व वर्ष से कुछ कम वर्ष तक चारित्र का पालन किया हो, ऐसे दीर्घ सयमी व्यक्ति के चारित्र को भी कषाय क्षण भर मे नष्ट कर देते है (१४३-१४४)।

साधुचर्या का वर्णन करते हुए कहा है कि वे साधु धन्य है, जो सदैव राग रहित, जिन-वचनो मे लीन तथा निवृत कषाय वाले है एव आसक्ति और ममता रहित होकर अप्रतिबद्ध विहार करने वाले, निरन्तर सद्गुणो मे रमण करने वाले तथा मोक्षमार्ग मे लीन रहने वाले है (१४७-१४८)।

बुद्धिमान पुरुष के लिए कहा गया है कि वह गुरू के समक्ष सर्वप्रथम अपनी आलोचना और आत्मनिंदा करे, तत्पश्चात् गुरू जो प्रायश्चित् दे, उसकी स्वीकृति रूप "**इच्छामि खमासमणो**" के पाठ से गुरू को वन्दना करे और गुरू को कहे कि – आपने मुझे निस्तारित किया (१५१-१५२)।

आगे की गाथाओ मे समाधिमरण का उल्लेख करते हुए आसक्ति-त्याग पर बल दिया गया है। वस्तुत आसक्ति ही वह कारण है जो व्यक्ति को बन्धन मे डालती है। जिसके कारण व्यक्ति सासारिक मोह-माया मे फॅसता जाता है परिणामस्वरूप उसके कर्म बन्धन दृढ होते जाते है। यह मानव स्वभाव है कि व्यक्ति सासारिक वस्तुओ यथा- सोना-चॉदी, दास-दासी आदि भौतिक सम्पदाओ तथा स्वजन-परजन आदि के प्रति अपना ममत्व भाव रखता है और इन हेय पदार्थो को उपादेय मान लेता है, परिणामस्वरूप वह जन्म-मरण के भव-चक्र मे पड जाता है किन्तु मनुष्य की मृत्यु के समय मे न तो परिजन सहायक होते है और न ही नाना प्रकार की भौतिक सम्पदा ही उसकी सहायता कर पाती है। सम्भवत यही कारण है कि प्रत्येक मतावलम्बी अपने जीवन के अन्तिम क्षण मे समस्त प्रकार के क्लेषो से मुक्त होकर तथा राग-द्वेष को छोडकर भगवान् जिनदेव से प्रार्थना करता है कि हे भगवन्। मै समाधिमरण के पथ पर चलना चाहता हूँ, इस दिशा मे मेरा मार्गदर्शन करो तथा मुझे इतनी शक्ति प्रदान करो कि मै आसक्ति के सारे बन्धनो को काटकर बोधि प्राप्त कर सकूँ और मानव जीवन पाने का यथार्थ लाभ प्राप्त कर सकूँ।

समाधिमरण लेने वाले की तुलना एक कुशल व्यापारी से की जा सकती है। सोना-चॉदी, हीरे-जवाहरात का व्यापार करने वाले व्यापारी को यह कभी इष्ट नही होगा कि उसके सामान को किसी प्रकार से नुकसान पहुँचे। कदाचित परिस्थितिवश उसके सामान को नुकसान पहुँचने लगता है तो पहले तो वह अपने सारे सामान को बचाने का प्रयास करता है किन्तु जब ऐसा कर पाना उसके लिए सहज नही रहता है तो वह बहुमूल्य वस्तुओ को नष्ट होने से बचाता है और अल्प-मूल्य वाली वस्तुओ को नष्ट होने देता है।

समाधिमरण का व्रत लेने वाला साधक ही ठीक उसी व्यापारी की तरह शरीर एव उसमे उपस्थित सद्गुणो की रक्षा करता है। शरीर भी एक प्रकार से सासारिक वस्तु ही है और सामान्यतया प्रत्येक प्राणी को सबसे अधिक आसक्ति अपने शरीर से ही होती है। बीमारी हो जाने की अवस्था मे भी वह शरीर की रक्षा का भरसक प्रयास करता है किन्तु जब उसे यह ज्ञात हो जाता है कि वह अपने शरीर की रक्षा नही कर पाएगा तो वह शरीर के प्रति अपनी आसक्ति का त्याग करके उसमे रहने वाले सद्गुणो की ही रक्षा करता है। यहॉ यह कथन करने का हमारा अभिप्राय मात्र यह है कि समाधिमरण के इच्छुक व्यक्ति सासारिक वस्तुओ के प्रति मोह का भी त्याग कर देते है। उनके लिए ससार के समग्र वैभव, सुख-दु ख, भोग-विलास, सोना-चॉदी, दास-दासी, बन्धु-बान्धव आदि सभी कुछ आत्म-समाधि की अपेक्षा तुच्छ है।

ग्रन्थ का समापन यह कहकर किया गया है कि विनय गुण, आचार्य गुण, शिष्य गुण, विनय निग्रह गुण, ज्ञान गुण, चारित्र गुण और मरण गुण विधि को सुनकर उन्हे उसी प्रकार धारण करें, जिस प्रकार वे शास्त्र मे प्रतिपादित है। इस प्रकार की साधना से गर्भवास मे निवास करने वाले जीवो के जन्ममरण, पुनर्भव, दुर्गति और ससार मे गमनागमन समाप्त हो जाते है (१७४-१७५)।

विषय-वस्तु की दृष्टि से चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक एक अध्यात्म-साधना परक प्रकीर्णक है। इसमें मुख्य रूप से गुरू-शिष्यो के पारस्परिक सम्बन्धो का एव शिष्यो को वैराग्य की दिशा मे प्रेरित करने वाले शिक्षा-सूत्रों का सकलन है, जो इस ग्रन्थ की आध्यात्मिक महत्ता को ही स्पष्ट करता है। सुधिजन इन शिक्षा-सूत्रों का अध्ययन कर अपने जीवन् को उन्नत-समुन्नत बनाये, यही अपेक्षा है।

■

□ डॉ० प्रेमसुमन जैन

पर्यावरण – संरक्षण और जैन धर्म

पर्यावरण के साथ धर्म के सम्बन्ध को स्थापित करने के लिए धर्म के उस वास्तविक स्वरूप को जानना होगा जो प्राणी-मात्र के लिए कल्याणकारी है। वैदिक युग के साहित्य से ज्ञात होता है कि धर्म का जन्म प्रकृति से ही हुआ है। प्राकृतिक शक्तियो को अपने से श्रेष्ठ मानकर मानव ने उन्हे श्रद्धा, उपहार एव पूजा देना प्रारम्भ किया। वही से वह आत्म-शक्ति को पहिचानने के प्रयत्न मे लगा। प्रकृति, शरीर, आत्मा एव परमात्मा इस क्रमिक ज्ञान से धर्म का स्वरूप विकसित हुआ। भारतीय परम्परा मे धर्म जीवन–यापन की एक प्रणाली है, केवल बौद्धिक विलास नही है। अत जीवन का धारक होना धर्म की पहली कसौटी है। चूँकि जीवन एव प्राण सूक्ष्म से सूक्ष्म प्राणी मे भी विद्यमान है। अत उन सबकी रक्षा करने वाली जो प्रवृत्ति है, वही धर्म है। महाभारत के कर्णपर्व मे कहा गया है कि समस्त प्रजा का जिससे सरक्षण हो, वह धर्म है। यह प्रजा पूरे विश्व मे प्याप्त है। अत विश्व को जो धारणा करता है, उसके अस्तित्व को सुरक्षित करने मे सहायक है, वह धर्म है–

''धरति विश्व इति धर्म '' महाभारत की यह उक्ति वडी सार्थक है। महर्षि कणाद ने धर्म के विधायक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है कि धर्म उन्नति और उत्कर्ष को प्रदान करने वाला है–

''**यतोअ्भ्युदय नि श्रेयससिद्धि स धर्म** ''। उन्नति और उत्कर्ष का मार्ग स्पष्ट करते हुए धर्म के अन्तर्गत श्रद्धा, मैत्री, दया, सन्तोष, सत्य, क्षमा आदि सद्‌गुणो के विकास को भी सम्मिलित किया गया है।

समग्र दृष्टि से देखे तो पर्यावरण का तात्पर्य यही है। पर्यावरण या समग्र प्रकृति एक-दूसरे का पर्याय है। केवल नदी, जल, जगल, पहाड, पशु-पक्षी और हवा ही पर्यावरण नही है। हमारे सामाजिक-आर्थिक सरोकार और हमारी सास्कृतिक-राजनीतिक, सम-सामयिक परिस्थितियाॅ भी पर्यावरण के ही फलक है। बेशक प्राकृतिक पर्यावरण इन सभी फलको को सर्वाधिक प्रभावित करता है, क्योकि विकास की धुरी मे प्राकृतिक ससाधनो का ही प्रमुख स्थान है।

सतुलित पर्यावरण का अर्थ जीवन और जगत् को पोषण देना है। इस धरती पर जो कुछ दृश्यमान या विद्यमान है, वह पोषित हो, पुष्ट हो–यही पर्यावरण का अभीष्ट है। और यह दायित्व चेतनाशील मनुष्य का है। पशु-पक्षी, वनस्पतियाॅ और पेड-पक्षी, वनस्पतियाॅ और पेड-पौधे मनुष्य से कम चेतनाशील है ? यदि मनुष्य अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए उनका विनाश करता है, तो हम न तो उसे चेतनाशील कह सकते है, न विवेकशील।

इस असगति ने हमारे सम्पूर्ण जीवन-क्रम को काली छाया से ग्रस लिया है। हमारे जीवन-क्रम मे सदा एक सुसगति, समात्मता और समादर रहा है, जो आज विकास के नाम पर पैरो तेल रौदा जा रहा है, जिससे विद्वेष-घृणा पनपने लगी है। हमारे सामाजिक-सास्कृतिक पर्यावरण पर आसुरी-वृत्तियो का दबाव बढता जा रहा है। यह दशा यत्र और विज्ञान के उपजे लोभ के फल-स्वरूप है। सही अर्थो से सोचा जाए तो यत्र और विज्ञान लोभ के साधन नही होने चाहिए, पर ऐसा है कहाॅ ?

डॉ० राधाकृष्णन कहते है – यदि हम एक-दूसरे के प्रति दयालु नही है और यदि पृथ्वी पर शान्ति स्थापित करने के हमारे सब प्रयत्न असफल रहे है, तो उसका कारण यह है कि मनुष्यो के मनो और हृदयो मे दुष्टता, स्वार्थ और द्वेष से भरी अनेक रुकावटे है, जिनका हमारी जीवन प्रणाली कोई रोकथाम नही कर पाती। यदि हम आज जीवन द्वारा तिरस्कृत है, तो इसका कारण कोई दुष्ट भाग्य नही है। जीवन के भौतिक उपकरणो को पूर्ण कर लेने मे हमारी सफलता

के कारण हमारे मन मे आत्मविश्वास और अभिमान की एक ऐसी मनोदशा उत्पन्न हो गई है, जिसके कारण हमने प्रकृति के ज्ञान का सचय और मानवीकरण करने की बजाय उसका शोषण करना प्रारभ कर दिया है। हमारे सामाजिक जीवन ने हमे साधन तो दिए है, पर लक्ष्य प्रदान नही किए। हमारी पीढी के लोगो पर एक भयानक अधता छा गई है। इस अधता का उपाय कौन खोजेगा ? कही से कोई प्रकाश किरण फूट सकती है, तो वह मनुष्य ही है। जो स्वरूप आज हमारे सामने है, उसी मे से एक ऐसे ससार की रचना करनी होगी, ऐसा समाज 'गढना' होगा, जो सत्य, करुणा और सृजनशीलता पर अवलबित हो।

जैन धर्म ससार का वह पहला और अब तक आखिरी धर्म है जिस ने धर्म का मूलाधार पर्यावरण-सुरक्षा को मान्य किया है। भगवान महावीर का सब से पहला उपदेश आचाराग मे सकलित किया गया। आचाराग का पहला अध्ययन षट्काय जीवो की रक्षार्थ रचा गया। महावीर ने स्पष्टत जोर दे कर निर्देशा कि पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, वनस्पति और त्रसकाय जीव जीव है, साक्षात प्राणधारी जीव। इन्हे अपने ढग से जीने देना धर्म है, इन्हे कष्ट पहुचाना या नष्ट करना हिसा है, पाप है। अहिसा परम धर्म है और हिंसा महापाप। इन्ही षट्काय जीवो की सतति पुरानी शब्दावली मे ससार और आधुनिक शब्दावली मे पर्यावरण से अभिहित है। अपने सयत और सम्यक् आचरण से इस षट्कायिक पर्यावरणीय सहति की रक्षा करना जैन धर्म का मूलाधार है।

जैन धर्म ने ही सब से पहले पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पतियो को जीव कहा। त्रसकाय जीवो को तो और भी विचारक जीव या प्राणी मानते रहे। इधर आ कर विज्ञान ने सर जगदीश चन्द्र बसु की खोज के आधार पर वनस्पतियो को जीव मानना प्रारम्भ कर दिया, किन्तु अब षट्कायो के पहले चार काय, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि को जीव श्रेणी मे केवल जैन ही रखते है और उन्हे अन्य जीवो की भाति अपने धर्माचार मे स्थान दिए हुए है। इस आस्थागत अवधारणा के आधार पर न केवल यह पृथ्वी प्रत्युत् ब्रह्माण्ड की सारी पृथ्वियॉ, यथा—ग्रह, उपग्रह तथा नक्षत्र, सम्पूर्ण वायु मण्डल, जलाशय तथा अग्निस्रोत सब के सब एकेन्द्रिय जीव है जिनके अधीन असख्यात त्रसकाय जीवो की द्विन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय योनियॉ आश्रय लिए हुए है। इस प्रकार जैन मान्यता के अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अथवा लोक-रचना जीवतत्व से ओत-प्रोत है। सम्पूर्ण लोक जीवत है। अत सम्पूर्ण पर्यावरण एक जीवत इकाई है। जैन धर्म का दार्शनिक आधार यह है कि सम्पूर्ण लोकरचना मे जीव तत्व की प्रमुख भूमिका है। उसी के उपग्रह से ससार का सामूहिक जीवन स्थिर है। उसी के निमित्त से लोकरचना का सम्पूर्ण पर्यावरण जीवत है।

जैन धर्म का नारा है ''जिओ और जीने दो''। इस ''जिओ और जीने दो'' मे पर्यावरण के जीव तत्व के प्रति आदर का भाव निहित है। और पर्यावरण की जैन अवधारणा मे शामिल है – पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, उर्जा, पेड–पौधे, वनस्पतिया, हर प्रकार के कीट-पतग, जीव-जतु, स्वय मनुष्य, और यहा तक कि न दिखाई देने वाली देव नारक योनिया भी। इस समग्र पर्यावरण का आदर, तात्पर्य, इसे अपनी तरह जीने और मरने का मौलिक अधिकार की स्वीकृति, दूसरे शब्दो मे, पर्यावरण–सुरक्षा, स्वय पर्यावरण के जीव तत्व के द्वारा, पर्यावरणीय सुख के लिए उसमे किसी प्रकार की दखलदाजी दिए बिना जैन धर्माचार की मूल अवधारणा है। जैन पर्यावरण को मनुष्य के सुख का उपकरण मात्र नही मानते। पर्यावरण की अक्षमता का लाभ उठाते हुए उसे अपना गुलाम बनाना, अपनी लिप्सा के लिए उन का विनाश या तोड-फोड करना जैनो की निगाह मे घोर मानवीय अपराध है, जिस कारण हिसक मनुष्य घोर नारकीय दु खो का बध करता है और अपनी दु ख-शृखला को कभी न समाप्त होने वाली आयु प्रदान करता है। पर्यावरण का अपने ढग से जीने देना, उस मे कम से कम दखलदाजी करना पर्यावरण-सुरक्षा की स्वाभाविक गारटी है।

मितव्ययता जैन धर्म-दर्शन के व्यावहारिक पहलू की रीढ है। मितव्ययता की परिभाषा है– विवेकसम्मत आवश्यकता की पूर्ति के लिए कम से कम वस्तुओ का उपभोग। मितव्ययता की पूर्व शर्त है, वैराग्य और त्याग भाव, जिस से फलित होती है पर वस्तुओ की लिप्सा की कमी। कम हो चुकी या होती हुई लिप्साओ से परवस्तुओ की कम से कम आवश्यकताओ की अनुभूति पैदा होती है। कम होती हुई आवश्यकताओ का मापदण्ड है- वस्तुओ का कम से कम मितव्ययीय उपयोग। जीने के हर कदम पर जैन मितव्ययता सूत्र को लागू करते है। जितनी कम से कम जरूरत हो उसी के मुताबिक खनिज, हवा, पानी, ऊर्जा, वनस्पतिया, त्रस जीवो के शरीर और उन की सेवाए उपभोग मे ली जाए। जिस आचरण से किसी जीव के सर्वथा प्राणहरण हो जाए उससे बचा जाए।

❑ डॉ० प्रेमसुमन जैन

पर्यावरण – संरक्षण और जैन धर्म

पर्यावरण के साथ धर्म के सम्बन्ध को स्थापित करने के लिए धर्म के उस वास्तविक स्वरूप को जानना होगा जो प्राणी-मात्र के लिए कल्याणकारी है। वैदिक युग के साहित्य से ज्ञात होता है कि धर्म का जन्म प्रकृति से ही हुआ है। प्राकृतिक शक्तियो को अपने से श्रेष्ठ मानकर मानव ने उन्हे श्रद्धा, उपहार एव पूजा देना प्रारम्भ किया। वही से वह आत्म-शक्ति को पहिचानने के प्रयत्न मे लगा। प्रकृति, शरीर, आत्मा एव परमात्मा इस क्रमिक ज्ञान से धर्म का स्वरूप विकसित हुआ। भारतीय परम्परा मे धर्म जीवन–यापन की एक प्रणाली है, केवल बौद्धिक विलास नही है। अत जीवन का धारक होना धर्म की पहली कसौटी है। चूँकि जीवन एव प्राण सूक्ष्म से सूक्ष्म प्राणी मे भी विद्यमान है। अत उन सबकी रक्षा करने वाली जो प्रवृत्ति है, वही धर्म है। महाभारत के कर्णपर्व मे कहा गया है कि समस्त प्रजा का जिससे सरक्षण हो, वह धर्म है। यह प्रजा पूरे विश्व मे प्याप्त है। अत विश्व को जो धारणा करता है, उसके अस्तित्व को सुरक्षित करने मे सहायक है, वह धर्म है–

''धरति विश्व इति धर्म '' महाभारत की यह उक्ति वडी सार्थक है। महर्षि कणाद ने धर्म के विधायक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है कि धर्म उन्नति और उत्कर्ष को प्रदान करने वाला है–

''**यतोअभ्युदय नि श्रेयससिद्धि· स धर्म** ''। उन्नति और उत्कर्ष का मार्ग स्पष्ट करते हुए धर्म के अन्तर्गत श्रद्धा, मैत्री, दया, सन्तोष, सत्य, क्षमा आदि सद्गुणो के विकास को भी सम्मिलित किया गया है।

समग्र दृष्टि से देखे तो पर्यावरण का तात्पर्य यही है। पर्यावरण या समग्र प्रकृति एक-दूसरे का पर्याय है। केवल नदी, जल, जगल, पहाड, पशु-पक्षी और हवा ही पर्यावरण नही है। हमारे सामाजिक-आर्थिक सरोकार और हमारी सास्कृतिक-राजनीतिक, सम-सामयिक परिस्थितियाँ भी पर्यावरण के ही फलक है। बेशक प्राकृतिक पर्यावरण इन सभी फलको को सर्वाधिक प्रभावित करता है, क्योकि विकास की धुरी मे प्राकृतिक ससाधनो का ही प्रमुख स्थान है।

सतुलित पर्यावरण का अर्थ जीवन और जगत् को पोषण देना है। इस धरती पर जो कुछ दृश्यमान या विद्यमान है, वह पोषित हो, पुष्ट हो–यही पर्यावरण का अभीष्ट है। और यह दायित्व चेतनाशील मनुष्य का है। पशु-पक्षी, वनस्पतियाँ और पेड-पक्षी, वनस्पतियाँ और पेड-पौधे मनुष्य से कम चेतनाशील है? यदि मनुष्य अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए उनका विनाश करता है, तो हम न तो उसे चेतनाशील कह सकते है, न विवेकशील।

इस असगति ने हमारे सम्पूर्ण जीवन-क्रम को काली छाया से ग्रस लिया है। हमारे जीवन-क्रम मे सदा एक सुसगति, समात्मता और समादर रहा है, जो आज विकास के नाम पर पैरो तेल रौदा जा रहा है, जिससे विद्वेष-घृणा पनपने लगी है। हमारे सामाजिक-सास्कृतिक पर्यावरण पर आसुरी-वृत्तियो का दबाव बढता जा रहा है। यह दशा यत्र और विज्ञान के उपजे लोभ के फल-स्वरूप है। सही अर्थो से सोचा जाए तो यत्र और विज्ञान लोभ के साधन नही होने चाहिए, पर ऐसा है कहाँ?

डॉ० राधाकृष्णन कहते है – यदि हम एक-दूसरे के प्रति दयालु नही है और यदि पृथ्वी पर शान्ति स्थापित करने के हमारे सब प्रयत्न असफल रहे है, तो उसका कारण यह है कि मनुष्यो के मनो और हृदयो मे दुष्टता, स्वार्थ और द्वेष से भरी अनेक रुकावटे है, जिनका हमारी जीवन प्रणाली कोई रोकथाम नही कर पाती। यदि हम आज जीवन द्वारा तिरस्कृत है, तो इसका कारण कोई दुष्ट भाग्य नही है। जीवन के भौतिक उपकरणो को पूर्ण कर लेने मे हमारी सफलता

के कारण हमारे मन मे आत्मविश्वास और अभिमान की एक ऐसी मनोदशा उत्पन्न हो गई है, जिसके कारण हमने प्रकृति के ज्ञान का सचय और मानवीकरण करने की बजाय उसका शोषण करना प्रारभ कर दिया है। हमारे सामाजिक जीवन ने हमे साधन तो दिए है, पर लक्ष्य प्रदान नही किए। हमारी पीढी के लोगो पर एक भयानक अधता छा गई है। इस अधता का उपाय कौन खोजेगा ? कही से कोई प्रकाश किरण फूट सकती है, तो वह मनुष्य ही है। जो स्वरूप आज हमारे सामने है, उसी मे से एक ऐसे ससार की रचना करनी होगी, ऐसा समाज 'गढना' होगा, जो सत्य, करुणा और सृजनशीलता पर अवलबित हो।

जैन धर्म ससार का वह पहला और अब तक आखिरी धर्म है जिस ने धर्म का मूलाधार पर्यावरण-सुरक्षा को मान्य किया है। भगवान महावीर का सब से पहला उपदेश आचाराग मे सकलित किया गया। आचाराग का पहला अध्ययन षट्काय जीवो की रक्षार्थ रचा गया। महावीर ने स्पष्टत जोर दे कर निर्देशा कि पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, वनस्पति और त्रसकाय जीव जीव है, साक्षात प्राणधारी जीव। इन्हे अपने ढग से जीने देना धर्म है, इन्हे कष्ट पहुचाना या नष्ट करना हिसा है, पाप है। अहिंसा परम धर्म है और हिसा महापाप। इन्ही षट्काय जीवो की सतति पुरानी शब्दावली मे ससार और आधुनिक शब्दावली मे पर्यावरण से अभिहित है। अपने सयत और सम्यक् आचरण से इस षट्कायिक पर्यावरणीय सहति की रक्षा करना जैन धर्म का मूलाधार है।

जैन धर्म ने ही सब से पहले पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पतियो को जीव कहा। त्रसकाय जीवो को तो और भी विचारक जीव या प्राणी मानते रहे। इधर आ कर विज्ञान ने सर जगदीश चन्द्र बसु की खोज के आधार पर वनस्पतियो को जीव मानना प्रारम्भ कर दिया, किन्तु अब षट्कायो के पहले चार काय, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि को जीव श्रेणी मे केवल जैन ही रखते है और उन्हे अन्य जीवो की भाति अपने धर्माचार मे स्थान दिए हुए है। इस आस्थागत अवधारणा के आधार पर न केवल यह पृथ्वी प्रत्युत् ब्रह्माण्ड की सारी पृथ्वियॉ, यथा—ग्रह, उपग्रह तथा नक्षत्र, सम्पूर्ण वायु मण्डल, जलाशय तथा अग्निस्रोत सब के सब एकेन्द्रिय जीव है जिनके अधीन असख्यात त्रसकाय जीवो की द्विन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय योनियॉ आश्रय लिए हुए है। इस प्रकार जैन मान्यता के अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अथवा लोक-रचना जीवतत्व से ओत-प्रोत है। सम्पूर्ण लोक जीवत है। अत सम्पूर्ण पर्यावरण एक जीवत इकाई है। जैन धर्म का दार्शनिक आधार यह है कि सम्पूर्ण लोकरचना मे जीव तत्व की प्रमुख भूमिका है। उसी के उपग्रह से ससार का सामूहिक जीवन स्थिर है। उसी के निमित्त से लोकरचना का सम्पूर्ण पर्यावरण जीवत है।

जैन धर्म का नारा है ''जिओ और जीने दो''। इस ''जिओ और जीने दो'' मे पर्यावरण के जीव तत्व के प्रति आदर का भाव निहित है। और पर्यावरण की जैन अवधारणा मे शामिल है – पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, उर्जा, पेड–पौधे, वनस्पतिया, हर प्रकार के कीट-पतग, जीव-जतु, स्वय मनुष्य, और यहा तक कि न दिखाई देने वाली देव नारक योनिया भी। इस समग्र पर्यावरण का आदर, तात्पर्य, इसे अपनी तरह जीने और मरने का मौलिक अधिकार की स्वीकृति, दूसरे शब्दो मे, पर्यावरण–सुरक्षा, स्वय पर्यावरण के जीव तत्व के द्वारा, पर्यावरणीय सुख के लिए उसमे किसी प्रकार की दखलदाजी दिए बिना जैन धर्माचार की मूल अवधारणा है। जैन पर्यावरण को मनुष्य के सुख का उपकरण मात्र नही मानते। पर्यावरण की अक्षमता का लाभ उठाते हुए उसे अपना गुलाम बनाना, अपनी लिप्सा के लिए उन का विनाश या तोड-फोड करना जैनो की निगाह मे घोर मानवीय अपराध है, जिस कारण हिंसक मनुष्य घोर नारकीय दु खो का बध करता है और अपनी दु ख-शृखला को कभी न समाप्त होने वाली आयु प्रदान करता है। पर्यावरण को अपने ढग से जीने देना, उस मे कम से कम दखलदाजी करना पर्यावरण-सुरक्षा की स्वाभाविक गारटी है।

मितव्ययता जैन धर्म-दर्शन के व्यावहारिक पहलू की रीढ है। मितव्ययता की परिभाषा है– विवेकसम्मत आवश्यकता की पूर्ति के लिए कम से कम वस्तुओ का उपभोग। मितव्ययता की पूर्व शर्त है, वैराग्य और त्याग भाव, जिस से फलित होती है पर वस्तुओ की लिप्सा की कमी। कम हो चुकी या होती हुई लिप्साओ से परवस्तुओ की कम से कम आवश्यकताओ की अनुभूति पैदा होती है। कम होती हुई आवश्यकताओ का मापदण्ड है- वस्तुओं का कम से कम मितव्ययीय उपयोग। जीने के हर कदम पर जैन मितव्ययता सूत्र को लागू करते है। जितनी कम से कम जरूरत हो उसी के मुताविक खनिज, हवा, पानी, उर्जा, वनस्पतिया, त्रस जीवो के शरीर और उन की सेवाए उपभोग मे ली जाए। जिस आचरण से किसी जीव के सर्वथा प्राणहरण हो जाए उससे वचा जाए।

धर्म ने ससार के स्वरूप का विवेचन विभिन्न द्रव्यो और पदार्थो के माध्यम से किया है। वह केवल आत्मा और परमात्मा के स्वरूप पर ही विचार नही करता, अपितु मनुष्य और उसके आसपास के वातावरण का भी अध्ययन प्रस्तुत करता है। प्रकृति और मनुष्य को गहराई से जानने और समझने का प्रयत्न ही पर्यावरण को सही ढग से सरक्षित करने का आधार है। मनुष्य सम्पदा, जल-समूह एव वायुमण्डल के समन्वित आवरण का नाम है–पर्यावरण। वस्तुत सम्पूर्ण प्रकृति और मनुष्य के उसके साथ सम्बन्धो मे मधुरता का नाम ही पर्यावरण–सरक्षण है। पर्यावरण के विभिन्न आधार और साधन हो सकते है। किन्तु धर्म उनमे प्रमुख आधार है। समता, अहिसा, सतोष, अपरिग्रहवृत्ति, शाकाहार का व्यवहार आदि जीवन-मूल्यो के द्वारा ही स्थायी रूप से पर्यावरण को शुद्ध रखा जा सकता है। ये जीवन-मूल्य जैन धर्म के आधार स्तम्भ है।

धर्म के स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए जैन आगमो मे एक महत्वपूर्ण गाथा कही गयी है –

धम्मो वत्थुसहावो, खमादिभावो य दसविहो धम्मो।
रयणत्तय च धम्मो, जीवाण रक्खण धम्मो।।

वस्तु का स्वभाव धर्म है, क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि दस आत्मा के भाव धर्म है। रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एव सम्यग्चारित्र) धर्म है तथा जीवो का रक्षण करना धर्म है। धर्म की यह परिभाषा जीवन के विभिन्न पक्षो को समुन्नत करने वाली है। पर्यावरण की शुद्धता के परिप्रेक्ष्य मे इस प्रकार के धर्म की बडी सार्थकता है।

धर्म नाम स्वभाव का

वस्तु के स्वभाव को धर्म कहना बडी असाम्प्रदायिक घोषणा है धर्म के सम्बन्ध मे। कोई जाति, कोई व्यक्ति, किसी शास्त्र, किसी देश या विचारधारा का इस परिभाषा मे कोई बन्धन नही है। विश्व की जितनी वस्तुए है, उनके मूल स्वभाव को जान लेना, उन्हे अपने-अपने स्वभाव मे ही रहने देना सबसे बडा धर्म है। हमारे शरीर का स्वभाव है— जन्म लेना, वृद्धि करना और समय आने पर नष्ट हो जाना इत्यादि। किन्तु जब हम इससे भिन्न शरीर से अपेक्षा करने लगते है तो हम अधर्म की ओर गमन करते है। शरीर को अधिक सुख देकर उसे अमर बनाना चाहते है। बाहरी प्रसाधनो से सजाकर उसकी भीतरी अशुचिता से मुख मोडना चाहते है। अपने शरीर के सुख के लिए दूसरो के शरीर को समय से पहले नष्ट कर देना चाहते है तो इससे शोषण पनपता है, क्रूरता जन्म लेती है, विलासिता बढती है और हम अधार्मिक हो जाते है।

हमने शरीर के स्वभाव को समझने मे जो भूल की वही भूल प्रकृति को समझने मे करते है। प्रकृति के प्राणतत्व का सवेदन हमने अपनी आत्मा मे नही किया। हम यह नही जान सके कि वृक्ष हमसे अधिक करुणावान एव परोपकारी है। हमने धरती की ये धडकने नही सुनी, जो उसका खनन करते समय उससे निकलती है। प्रकृति का स्वभाव जीवन्त सन्तुलन बनाये रखने का है, उसे हम अनदेखा कर गये। हमने प्रकृति को केवल वस्तु मान लिया, लेकिन वस्तु का स्वभाव क्या है, यह जानने की हमने कोशिश नही की। परिणामस्वरूप हमने अपने क्षणिक सुख और अमर्यादित लालच की तृप्ति के लिए प्रकृति को रौद डाला, उसे क्षत-विक्षत कर दिया, उसका परिणाम हमारे सामने है। जैसे मनुष्य जब अपने स्वभाव को खो देता है तब वह क्रोध करता है, विनाश की गतिविधियो मे लिप्त होता है, वैसे ही स्वभाव से रहित की गयी प्रकृति आज अनेक समस्याए पैदा कर रही है।

शरीर, प्रकृति एव अन्य भौतिक वस्तुओ के स्वभाव की जानकारी के साथ यदि व्यक्ति आत्मा के स्वभाव को भी जानने का प्रयत्न करे तो वस्तुओ को सग्रह करने एव उनमे आसक्ति की भावना धीरे-धीरे कम हो जायेगी। क्योकि ये सब वृत्तिया भयभीत, असुरक्षित, अज्ञानी व्यक्ति की निर्भरता के कारण उत्पन्न हुई है। जब मानव को यह पता चल जाय कि उसकी आत्मा स्वय सभी शक्तियो से युक्त है, उसे बाहर की कोई शक्ति सहारा नही दे सकती और न ही आत्मा को कोई नुकसान पहुचा सकता है तब मानव स्वय निर्भय बन जायेगा, आत्म निर्भर बन जायेगा। फिर उसे वस्तुओ के ढेर और शस्त्रो के सग्रह की क्या आवश्यकता? जो व्यक्ति अपनी आत्मा के स्वभाव को जान लेगा कि वह दयालु है, जीवन्त है, निर्भय है तब वह यह भी जान जायेगा कि विश्व के सभी प्राणियो का स्वभाव यही है। तब अपनी आत्मा जैसे कीमती एव उपयोगी प्राणियो की हत्या, दमन, शोषण करने की क्या आवश्यकता है? इस समता के भाव से ही क्रूरता मिट सकती है। आत्मा के इसी स्वभाव को जानने के लिए क्षमा, मृदुता, सरलता, पवित्रता, सत्य, सयम, तप, त्याग निस्पृही वृत्ति, ब्रह्मचर्य इन दस प्रकार के आत्मिक गुणो को जानने को धर्म कहा गया है। इन गुणो की साधना से आत्मा और जगत के वास्तविक स्वभाव के दर्शन हो

सकते है। इसी स्वभाव रूपी चादर के सम्बन्ध मे सत कबीर ने कहा है–

या चादर को सुर-नर मुनि ओढी
ओढ के मैली कीनी ।
दास कबीर जतन कर ओढी ।
ज्यो की त्यो धर दीनी ।।

जतन की चादर

विश्व के चेतन, अचेतन सभी पदार्थो के आवरण से देवता, मनुष्य, ज्ञानीजन सभी व्याप्त रहते है। पर्यावरण की चादर उन्हे ढके रहती है, किन्तु अज्ञानी जन अपने स्वभाव को न जानने वाले अधार्मिक उस प्रकृति की चादर को मैली कर देते है। अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिए पर्यावरण को दूषित कर देते है। किन्तु कबीर जैसे स्वभाव को जानने वाले धार्मिक ससार के सभी पदार्थो के साथ जतन (यत्नपूर्वक) का व्यवहार करते है। न अपने स्वभाव को बदलने देते है औन न ही पर्यावरण और प्रकृति के स्वभाव मे हस्तक्षेप करते है। प्रकृति के सन्तुलन को ज्यो का त्यो बनाये रखना ही परमात्मा की प्राप्ति है। तभी साधक कह सकता है– "**ज्यो की त्यो धर दीनी चदरिया।**" अपने स्वभाव मे लीन होना ही स्वस्थ होना है। जब पर्यावरण स्वस्थ होगा तब प्राणियो का जीवन स्वस्थ होगा। स्वस्थ जीवन ही धर्म साधना का आधार है। अत स्वभावरूपी धर्म पर्यावरणशोधन का मूलभूत उपाय है। साधक है तो आत्म-साक्षात्कार रूपी धर्म विशुद्ध पर्यावरण का साध्य है, उद्देश्य है। कबीर ने जिसे "जतन" कहा है, जैनदर्शन के चिन्तको ने हजारो वर्ष पूर्व उसे यत्नाचार धर्म के रूप मे प्रतिपादित कर दिया था। उनका उद्घोष था कि ससार मे चारो ओर इतने प्राणी, जीवन्त प्रकृति भरी हुई है कि मनुष्य जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति करते समय उनके घात-प्रतिघात से बच नही सकता। किन्तु यह प्रयत्न (जतन) तो कर सकता है कि उसके जीवनयापन के कार्यो से कम से कम प्राणियो का घात हो। उसकी इस अहिंसक भावना से ही करोडो प्राणियो को जीवनदान मिल जाता है। प्रकृति का अधिकाश भाग जीवन्त बना रह सकता है। आचार्य ने कहा है–

जय चरे जय चिट्ठे, जयमासे जय सये।
जय भुंजेज्ज भासेज्ज एव पाव ण वज्झई।।

"व्यक्ति यत्न-पूर्वक चले, यत्नपूर्वक ठहरे, यत्नपूर्वक बैठे, यत्नपूर्वक सोए, यत्नपूर्वक भोजन करे और यत्नपूर्वक बोले तो इस प्रकार के जीवन से यह पाप-कर्म को नही बाँधता है।"

चलने, ठहरने, बैठने और सोने की क्रियाओ का धरती के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन क्रियाओ को यदि विवेकपूर्वक और आवश्यकता के अनुसार सीमित नही किया जाता तो सारे ससार की हिंसा इनमे समा जाती है। दो गज जमीन की आवश्यकता के लिए पूरा विश्व ही छोटा पडने लगता है। ये क्रियाए फिर हमारी आखो के दायरे से बाहर होती है। अत उनके लिए की गयी हिसा, बेईमानी और शोषण हमे दीखता नही है, या हम उसे नजर-अदाज कर देते है। अपना पाप दूसरे पर लाद देते है। इससे पर्यावरण के सभी घटक दूषित हो जाते है। धरती की सारी खनिज-सम्पदा हमारे ठहरने और सोने के सुख के लिए बलि चढ जाती है। दूसरी महत्वपूर्ण क्रिया भोजन की है। आचार्य कहते है, यत्नपूर्वक भोजन करो। इस सूत्र मे अल्प भोजन, शुद्ध भोजन, शाकाहार आदि सभी के गुण समाये हुए है। भोजन प्राप्ति मे जब तक अपना स्वय का श्रम एव साधन की शुद्धता सम्मिलित न हो तब तक वह यत्नपूर्वक भोजन करना नही् कहलाता है। व्यक्ति यदि इतनी सावधानी अपने भोजन मे कर ले तो अतिभोजन और कुभोजन की समस्या समाप्त हो सकती है। पौष्टिक, शाकाहारी भोजन का व्यापक प्रचार यत्नपूर्वक भोजन दृष्टि से ही किया जा सकता है। इससे कई प्रकार के स्वास्थ्य प्रदूषणो को रोका जा सकता है। यत्नपूर्वक वचन-प्रयोग करने की नीति जहाँ व्यक्ति को हित-मित और प्रिय बोलने के लिए प्रेरित करती है, वही इससे ध्वनि-प्रदूषण को रोकने मे भी मदद मिल सकती है।

मनोभाव एव मानसिक प्रदूषण से वर्तमान मानव सभ्यता एव प्रकृति व्यापक एव गहन रूप से प्रभावित हुई है। मानव जीवन की सरलता, सज्जनता, निष्कपटता, निश्छलता, परदु खकातरता, स्वावलबन, कर्तव्यनिष्ठा, श्रमनिष्ठा, परस्पर-सहयोग, प्राणि-मात्र के प्रति दया एव करुणा आदि ऐसे सहज मानवीय गुण है जो मनुष्य को अन्य प्राणियो की तुलना मे श्रेष्ठता प्रदान करते है और जिसके सतुलन से प्रकृति-व्यवस्था सतुलित एव मर्यादित चलती रहती है। किन्तु जब इन मानवीय गुणो का ह्रास होता है या इन गुणो का प्रतिपक्षी मनोभाव मानव जीवन को आक्रान्त करते है तब उससे न केवल व्यक्ति किन्तु समाज भी दु खी होता है। इससे प्राकृतिक सतुलन भी अस्त-व्यस्त हो जाता है जैसा कि वर्तमान मे मनोविकृत सामाजिक अव्यवस्था एव प्राकृतिक असतुलन के दुष्परिणामो को हम अनुभूत कर रहे है। वस्तुत इन सब विकृतियो के लिये मानव जगत का मानसिक प्रदूषण ही उत्तरदायी है।

पर्यावरण शुद्धि हेतु यह आवश्क है कि मानवीय मानसिक प्रदूषण को नियत्रित, सयमित एव सतुलित कर उसे जनोपयोगी बनाया जावे, इस कार्य मे सत्तासीन एव प्रशासन मे बैठे व्यक्तियो की मनोवृत्ति ही एकमात्र जैसा घटक है जो व्यक्तिगत एव सामाजिक प्रदूषण को प्रभाव-पूर्वक नियन्त्रित एव सतुलित कर पर्यावरण शुद्ध कर सकता है। व्यक्ति एव समाज सत्तासीनो तथा राज-प्रभुओ के आचरण का प्रतिबिम्ब होने के कारण सुधार की प्रक्रिया उच्च सत्तासीनो से आरम्भ होना वाछनीय है।

व्यक्ति एव समाज की अशुभ प्रवृत्तियो, असदाचार, असयम को रोकने मे रामकृष्ण, महावीर, बुद्ध, मोहम्मद, ईसा, जरस्थु एव उनके अनुयायी महर्षियो का महत्वपूर्ण योगदान रहा, जिन्होने वैचारिक शुद्धता-शुभता से व्यक्ति-सुधार द्वारा समाज–सुधार के वैज्ञनिक प्रयोग किये है। दुर्भाग्य का विषय है कि वर्तमान मे भौतिकता की चकाचौध मे हमने इन महापुरुषो द्वारा बताये गये सुख के शाश्वत मार्ग को विस्मृत कर दिया है और अपने को अपटूडेट घोषित कर दिया है। हमारी इस प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति एव समाज सहज मानवीय उदात्त भावनाओ से भटक गया है और हम एक कृत्रिम जीवन जीने को विवश हो गये है जो शारीरिक-ब्याधि, मानसिक-विक्षिप्तता एव प्राकृतिक-प्रदूषण के रूप मे हमारे सामने अपनी विकरालता सहित अनुभूत हो रहा है।

पर्यावरण का अर्थ होता है जीव-सृष्टि एव वातावरण का पारस्परिक आकलन, जिसमे सजीव प्राणी, आबहवा, भूगर्भ और आसपास की परिस्थिति विषयक विज्ञान का समावेश होता है। यदि पर्यावरण को व्यापक दृष्टि से देखा जाय तो उसमे केवल मनुष्य, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, वनस्पति और आकाश, अनत सूक्ष्म जीव-सृष्टि का ही नही, अपितु समग्र ब्रह्माण्ड, तारकवृद, सूर्य-मडल तथा पृथ्वी के आसपास के सूर्य, चन्द्र, ग्रह और गिरि-कन्दरा, पर्वत, सरिता, सागर, झरने, वन-उपवन, वृक्ष, वनस्पति, पुष्प तथा भूपृष्ठ, जलपृष्ठ सहित जीव-सृष्टि के सभी प्राकृतिक पदार्थ एव पृथ्वी, हवा, अग्नि, जल, गगन जैसे पचमहाभूत तत्वो का भी समावेश होता है। जैन धर्म के मूलाधार सिद्धातो पर यदि सुचारु एव सुयोग्य तरीके से अमल किया जाय तो प्रकृति की सुरक्षा करने मे उनका सहयोग प्राप्त होता है, पर हमे इस वात की जानकारी सर्वप्रथम प्राप्त करनी चाहिए कि जैन धर्म के मूलभूत सिद्धात कौन-कौन से है? उनकी विस्तार से ऊपर चर्चा की जा चुकी है।

जैन धर्म की बुनियाद है-अहिंसा। इसीलिए अहिसा को परम धर्म कहा गया है। केवल जैन धर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसने अहिसा की सूक्ष्मातिसूक्ष्म चर्चा की है। जैन धर्म मानता है कि प्रत्येक जीव मे आत्मा रहती है और सभी आत्माए समान है। पचेन्द्रियधारक बडे जीव हो या एकेन्द्रिय धारक जीव-सब जीना चाहते है। इसीलिए जैन धर्म के मतानुसार किसी भी जीव का दमन करना, उसे दुख पहुँचाना, उसे गुलाम बनाना, उस पर सितम ढाना या उसका प्राण-हरण करना महापाप है, हिसा है। सभी जीवो को जीने का अधिकार है। उन पर प्रेम, करुणा और दया रखनी चाहिए। जैन धर्म सर्वजीवो को जीने का प्रकृतिदत्त अधिकार स्वीकार करता है। उसमे प्रकृति के किसी भी पदार्थ के प्रति शत्रुता, नफरत या विरोध के भाव को जरा भी स्थान नही है। जैन धर्म जीव-सृष्टि एव प्रकृति-सृष्टि के प्रति प्रेम, सम्मान, करुणा, आदर, सहिष्णुता, दया, मैत्री, स्नेह, क्षमा और समता से व्यवहार करने का बोध देता है।

हम तो अनगिनत जीवो मे से एक जीव है, अनत आकाश तथा अनत काल के चक्र मे इस असीम विश्व का अस्तित्व है और ऐसी अनतता के एक बिन्दु के समान यह पृथ्वी है जिसके असख्य जीवो मे से हम एक क्षुद्र जीव है। कास्मोलॉजी या वैश्विक विज्ञान का यह जैन सिद्धात समझ मे आ जाय-तो हम जीवन के सभी क्षेत्रो मे अहकार या अहम् को छोडकर विनम्र बन सकते है। हमे प्रकृति के नियमो और उनके अर्थो को वैज्ञनिक ढग से सिद्ध करना चाहिए। वही हम सबकी नीति और हमारा परम धर्म बन सकेगा। ''युनाइटेड नेशन्स वर्ल्ड चार्टर ऑन नेचर'' का भी यही सदेश है कि हमे समग्र मानव जाति के अस्तित्व तथा विकास के लिए यही पद्धति अपनानी पडेगी।

प्राचीन साधको की इस यत्नपूर्वक (प्रमाद-रहित) जीवन पद्धति को आधुनिक मनीषियो ने भी वाणी दी है एव लोक-जीवन ने उसे आत्मसात् कर अपने उद्गार व्यक्त किये है। बगला कहावत मे कहा गया है – **पचे सोई खाइबो, रुचे सोई बोलिबो।**

आत्मालोचन से शुद्धि

प्रदूषण का अर्थ है किसी स्वाभाविक वस्तु मे विकार आ जाना। असली मे नकली वस्तु का, तत्व का मिल जाना शुद्ध वस्तु का अशुद्ध हो जाना है। मिलावट की यह प्रक्रिया शरीर मे, प्रकृति मे एव आत्मा के स्वभाव मे कर्मो के रजकणो के द्वारा, दूषित वृत्तियो (कषायो) के द्वारा निरन्तर होती

रहती है। ''कषाय'' जैनदर्शन का लाक्षणिक शब्द है। यही ससार-भ्रमण एव कर्म-परम्परा का मूल कारण है। कषाय का अर्थ ही है-मटमैला, अशुद्ध। इसको शुद्ध करना ही रत्नत्रय की साधना का उद्देश्य है। शुद्धिकरण की इस प्रक्रिया के विकास मे जैन साधना-पद्धति मे एक आलोचना-पाठ बहुत प्रचलित है, जिसके द्वारा श्रद्धालु श्रावक अपने द्वारा किये प्रदूषणो के प्रति स्वय की आलोचना करता है और उन्हे आगे न करने की प्रतिज्ञा करता है–

''करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरन के काज''

कवि जौहरीलाल ने इस आलोचना पाठ मे जीवन मे प्रमादवश जितने हिसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म, परिग्रह, क्रूरता, लोभ आदि के अनुचित कार्य हो जाते है, उनकी आलोचना की है और कहा है कि हम अपने स्वभाव को भूलकर विभाव का आचरण करते है इसलिए हम परम-पद को नही पाते है। ''जतन'' को स्वीकृति देते हुए कहा गया है–

किय आहार निहार विहारा, इनमे नहि 'जतन' विचारा।
बिन देखी धरी उठाई, बिन सोधी वसत जु खाई।।

इतनी सावधानी की चिन्ता यदि गृहस्थ जीवन मे धार्मिक व्यक्ति करने लग जाय तो उसकी कथनी-करनी का अन्तर मिट जाय। वनस्पति की रक्षा की भावना उसके मन मे है। किन्तु स्वार्थ और दयाहीनता के कारण उसने हरियाली को उजाड दिया है। अत अपने को वह अपराधी मानता है–

हा, हा, मै अदयाचारी, बहु हरित काय तो विदारी।

जल प्रदूषण का भागीदार होने का उसे आभास है। वह कहता है–

जलमल मोरिन गिरवायौ, कृमि-कुल बहुघात करायौ।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये।।

आलोचना पाठ के मात्र इस पद को यदि आज उद्योग के क्षेत्र मे पालन करने की अनिवार्यता हो जाय तो जल-प्रदूषण का अधिकाश भाग स्वयमेव रूक जायेगा। जो धार्मिक व्यक्ति अपने दैनिक जीवन मे जलचर जीवो की रक्षा की बात सोचता है वह अपने उद्योग-धधे मे उनके विनाश की बात कैसे सोचेगा ? द्रव्य का अर्जन करना ही जीवन का लक्ष्य नही है। तृष्णा की खाई को कौन भर सका है ? अत करुणा के मूल्य को प्रतिष्ठा देना ही सच्चे मानव का उद्देश्य होना चाहिए। इस आलोचना पाठ का कवि अन्त मे यही कामना करता है कि यदि मै यत्नपूर्वक अपना जीवन चलाने लग जाऊँ और 'जियो और जीने दो' के सिद्धान्त को व्यवहार मे अपना लूँ तो ससार के सभी प्राणी सुखी हो सकते है–

सब जीवन के सुख बढै, आनन्द-मगल होय।

समस्या का मूल

धर्म की परिभाषा मे जो वस्तु का स्वभाव, आत्मा के क्षमा आदि गुण एव रत्नत्रय की आराधना का निरूपण किया गया है उसको सक्षेप मे प्रस्तुत करते हुए कह दिया गया कि- **''जीवाण रक्खण धम्मो।''** धर्म का यह सूत्र पर्यावरण शुद्धता के लिए बहुत उपयोगी है। क्योकि गहराई से देखे तो पर्यावरण को प्रदूषित करने मे दो ही मूल कारण है – तृष्णा और हिंसा। इनके पर्यायवाची है– परिग्रह और क्रूरता। इनमे प्रथम साध्य है और दूसरा साधन। आश्चर्य की बात तो यह है कि हम हिसा-निवारण की तो बात करते है, आन्दोलन चलाते है, प्रतिदिन पूजन-प्रार्थना मे अहिसा की साधना का पाठ दुहराते है किन्तु परिग्रह की वृत्ति को गले लगाते है, परिग्रही को सम्मान देते है। हिंसा-निवारण या प्रदूषण-शोधन मे उस धन का उपयोग करना चाहते है, करते है, जो हिसा और प्रदूषण के माध्यमो से ही एकत्र किया गया है। इसी आत्मघाती विपरीत प्रक्रिया के कारण हिंसा या प्रदूषण घटने की बजाय दिनोदिन बढा है।

आज उद्योगो के केन्द्रीकरण, यान-वाहनो के अधिकाधिक प्रयोगो एव अणुशस्त्रो और विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगो से अन्तरिक्ष मे इतना कचरा फैल गया है कि उससे आकाश मे व्याप्त प्राणवायु समाप्त होने लगी है। जगलो को काटने की बढोत्तरी से पर्यायवरण से ऑक्सीजन का भण्डार समाप्त हो रहा है। कीटनाशक दवाओ के प्रयोग से कीडे-मकोडो की कई प्रजातिया लुप्त हो गयी है। धरती ने अपनी उर्वरक शक्ति का रूप बदल दिया है। जल के जीवो की हिंसा ने स्वाभाविक जल-शोधन की प्रक्रिया मे वाधा उपस्थित कर दी है। अनावश्यक खून-खरावे ने सारे पर्यावरण को क्रूर और लोभी बना दिया है। इस प्रदूषण को अब कृत्रिम साधनो से नही रोका जा सकता। क्योकि पर्यावरण-सशोधन की कई प्रक्रियाएँ अब व्यापारिक हो गयी है। स्वार्थ के कारण भ्रामक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के कारण प्रदूषण-निरोध के अधिकाश उपाय अब भरोसेमद नही रहे। तब इनके कुछ अन्य विकल्प खोजने होगे। प्रदूषण की समस्या को हिंसा और लालच की समस्या मानकर उसका समाधान करना अधिक उपयोगी होगा।

अधिष्ठाता, कला सकाय
सुखाडिया विश्व विद्यालय, उदयपुर

❑ डॉ० रचना जैन

प्राकृत आगम साहित्य में वनस्पति विज्ञान

जैन आगमो मे आधुनिक विज्ञान की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। कुछ विद्वानो ने इस क्षेत्र मे कार्य भी किया है। भगवतीसूत्र मे भी आधुनिक विज्ञान के कई तथ्य उपलब्ध है। डॉ० जे सी सिकदर ने इस विषय पर अपने शोधप्रबन्ध मे सक्षेप मे प्रकाश डाला है। भगवतीसूत्र के विभिन्न सस्करण के सम्पादको ने भी इस प्रकार के सकेत दिये है। उन सबका गहराई से अध्ययन किया जाना आवश्यक है।

जैन आगमो मे वनस्पति-शास्त्र की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। भगवान महावीर और गौशाल मखलीपुत्र के बीच हुये सवाद मे पौधे और उनके विकास के सम्बन्ध मे प्रकाश डाला गया है। विभिन्न प्रकार के धान्य, जौ, दाले एव अन्य तिलहनो के पौधो के सम्बन्ध मे इस ग्रन्थ मे बताया गया है कि कम से कम अन्तर्मुहूर्त व अधिक से अधिक सात वर्ष का समय बीज, बीज से पौधे के रूप मे आने मे लगा सकते है। जैन आगमो मे यह भी बताया गया है कि विभिन्न ऋतुओ मे कौन-कौन से पौधे उत्पन्न होते है। गर्म व ठण्डी जलवायु का भी पौधो के विकास पर प्रभाव पडता है।

जैन आगमो मे पौधो के भोजन के सम्बन्ध मे भी सामग्री दी गई है। ग्रथ मे कहा गया है कि कुछ पौधे सख्यात्मक कोशिकाओ वाले है व कुछ असख्यात्मक व अनन्त कोशिकाओ वाले है। इस प्रकार के विभाजन आधुनिक वनस्पति-शास्त्र मे भी उपलब्ध है। भगवतीसूत्र मे वृक्ष के मूल, कन्द, स्कन्ध, बीज, फल, पुष्प आदि अनेक भागो का विश्लेषण भी दिया गया है। इस ग्रथ मे वनस्पति मे सवेदन क्रिया पायी जाती है। इसका उल्लेख भी है, जिसका प्रमाणीकरण विज्ञान के क्षेत्र मे प्रोफेसर जगदीश चन्द्र बोस स्थापित कर चुके है। वनस्पति जीवो की रक्षा करने की प्रेरणा भी इस ग्रथ मे दी गई है। इन प्रमुख बिन्दुओ पर प्रस्तुत लेख मे विचार करने का प्रयत्न किया गया है।

वनस्पतियो मे जीवन –

भगवतीसूत्र मे वनस्पति विज्ञान से सम्बन्धित अनेक प्रसग है। वनस्पति मे जीव होते है इस बात को प्रमाणित करने के लिये इस ग्रन्थ के उस प्रसग से जानकारी प्राप्त होती है जिसमे भगवान महावीर और गोशालक के बीच तिल के पौधे के विषय मे प्रश्नोत्तर हुआ था। जब ये दोनो सिद्धार्थ नगर से कूर्मग्राम की ओर जा रहे थे तब एक स्थान पर पत्र-पुष्प युक्त हरे-भरे तिल के पौधे को देख कर गोशालक ने भगवान महावीर से पूछा कि इस तिल के पौधे के पुष्पो के जीव मर कर कहा उत्पन्न होगे और यह पौधा पूरा विकास प्राप्त करेगा या नही? महावीर ने कहा कि इस तिल के ये सात फूल मर कर इसी तिल के पौधे की एक तिल फली मे सात तिलो के रूप मे उत्पन्न होगे। महावीर की इस बात को मिथ्या सिद्ध करने के लिए गोशालक ने थोडा पीछे रुककर चुपचाप उस पौधे को मिट्टी और जड सहित वही फेक दिया और आगे निकल गया। थोडे समय बाद वहा वर्षा हुई और वह तिल का पौधा वही पर फिर मिट्टी के बीच पनप गया और जब वह गोशालक बाद मे उस रास्ते से वापस लौटा तो उसे उस तिल के पौधे मे तिल की फली और उसमे सात तिल प्राप्त हुये। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि वनस्पतिकायक जीव मर-मर कर उसी वनस्पति काय के शरीर मे पुन उत्पन्न हो जाते है–

एव खलु गोसाला। वणस्सतिकाइया पउट्टपरिहार परिध्रति

(शतक १५ उद्देशक।)

इस भगवतीसूत्र मे अन्यत्र भी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकाय मे जीवन शक्ति है, इसका प्रतिपादन किया गया है। इसके पूर्व भी आचारागसूत्र मे वनस्पति मे जीव होने के सात लक्षण प्रतिपादित किये गये है।[१]

विभिन्न सज्ञाए –

भगवतीसूत्र मे वनस्पतिकाय मे दस आहार सज्ञा इत्यादि भी बतलाई गई है।[३] इन सज्ञाओ के अस्तित्व के कारण वनस्पति मे अस्पष्ट रूप से वे सब व्यवहार होते है जो मनुष्य या विकसित प्राणी स्पष्ट रूप से करते है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बोस आदि ने इसी बात को वैज्ञानिक दृष्टि से सिद्ध भी किया है।

अकुरण क्षमता का समय –

भगवतीसूत्र मे विभिन्न प्रकार के कृषि उत्पादनो के अन्तर्गत अनेक प्रकार के पेड-पौधो और बीजो का विवरण प्राप्त होता है। वहा यह बतलाया गया है कि किस प्रकार विभिन्न प्रकार के बीज पौधो के रूप मे विकसित होते है। ग्रन्थ के छठवे शतक के सातवे साली नामक उद्देशक मे कहा गया है कि यदि कमल आदि जाति सम्पन्न चावल (शाली), सामान्य चावल (ब्रीहि), गेहू (गोधूम), जौ (यव), इत्यादि धान्य कोठे मे सुरक्षित रखे हो, बास के पटले मे, मच पर, बर्तन में डालकर विशेष प्रकार से लीपकर, छदित किये हुये, लाछित करके रखे हुये हो तो उनकी अकुरोप्ति मे हेतु भूत शक्ति योनि कम से कम अन्तर्मुहूर्त तक और अधिक से अधिक तीन वर्ष तक कायम रहती है।

इस प्रकार कलाय, मसूर, तिल, मूग, उडद, बाल, कलथ, आलिसन्दक, तुअर, काला चना इत्यादि को उपर्युक्त तरीके से रखा गया हो तो उनकी उत्पादन क्षमता कम से अन्तर्मुहूर्त एव उत्कृष्ट योनि पाच वर्ष तक होती है। इसी प्रकार अलसी, कुसुम्भ, कोद्रव, कागणी, बरट, राल, सण, सरसो मूलक बीज आदि धान्यो की उत्पादन क्षमता कम से कम अन्तमुर्हूत एव उत्कृष्ट योनि के कायम रहने का काल सात वर्ष है।

इस निर्धारित अवधि के बाद इन सभी प्रकार के धान्यो की अकुरण-क्षमता समाप्त हो जाती है और बीज अबीजक हो जाते है।[४]

आहार-सग्रहण –

भगवतीसूत्र मे वनस्पति विज्ञान के सम्बन्ध मे जो महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये है उनमे से जो प्रमुख है यहा उन पर विचार करना आवश्यक है। इस ग्रन्थ मे बताया गया है कि वनस्पति कायक जीवन विभिन्न ऋतुओ मे भिन्न प्रकार से अपना आहार ग्रहण करते है। पावस (वर्षा) ऋतु मे वनस्पतिया सबसे अधिक आहार करने वाली होती है। इसके बाद शरद ऋतु व हेमन्त ऋतु मे उससे कम आहार करती है तथा वसन्त व ग्रीष्म ऋतु मे क्रमश अल्पाहारी हो जाती है।[५] ग्रन्थ के इस कथन का अर्थ है कि वनस्पतिया जल की उपलब्धता, अधिकता और कमी को ध्यान मे रखते हुये ऋतुओ के अनुसार अपना आहार (पोषण) ग्रहण करती है। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि पौधे सकट काल के लिये भी अपने अगो मे आहार सचित कर रख लेते है। इसी ग्रन्थ मे गौतम गणधर ने यह जिज्ञासा प्रकट की है कि यदि ग्रीष्म ऋतु मे पौधे कम आहार लेते है तो उस समय अनेक पौधे हरे-भरे एव पुष्प एव फलो से युक्त कैसे होते है? तब भगवान महावीर ने समाधान करते हुये कहा कि ग्रीष्म ऋतु मे उष्ण योनि वाले कुछ ऐसे वनस्पतिकाय जीव होते है जो उष्णता के वातावरण मे भी विशेष रूप मे उत्पन्न होते है, वृद्धि को प्राप्त करते है व हरे-भरे रहते है। वनस्पति के विकास का यह क्रम और नियम आधुनिक वनस्पति विज्ञान से भी प्रमाणित है।

परासरण की क्रिया —

भगवतीसूत्र मे यह भी कहा गया है कि वनस्पतिकाय मे जो मूल वनस्पति है और कन्द वनस्पति है, इन सबके जीव अपनी-अपनी जाति के जीवो से जुडे होते है व व्याप्त होते है किन्तु वे पृथ्वी के साथ जुडे होने से अपना आहार ग्रहण करते है और उस आहार को विशेष प्रक्रिया द्वारा वृक्ष के सभी अगो को वे पहुचाते रहते है।[६]

वनस्पति की इस प्रक्रिया को आधुनिक वनस्पति विज्ञान मे ला आफ आसमोसिस (परासरण की क्रिया) कहते है। इस क्रिया के अन्तर्गत पौधे की जकडा जडे आक्सीलरी रूट्स मूलीय दाब के द्वारा पृथ्वी से विभिन्न प्रकार के लवणो जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश आदि का जलीय रूप मे अवशोषण करके पत्तियो तक पहुचाती है जहा सूर्य के प्रकाश व हरितलवक की उपस्थिति मे वे भोजन का निर्माण करके पौधे के प्रत्येक भाग मे पहुँचा जाती है, जिससे पौधा विकसित होता है।

वनस्पति वर्गीकरण –

इसी ग्रन्थ मे एक जिज्ञासा का और समाधान किया गया है कि आलू, मूला, अदरक, हल्दी इत्यादि के अन्तर्गत आने वाली विभिन्न वनस्पतिया अनन्त जीव वाली है और भिन्न-भिन्न जीव वाली है। इससे कन्द मूल के अन्तर्गत आने वाली २३ वनस्पतियो का नामकरण भी यहा दिया गया है -

१) आलू २) मूला ३) श्रृगवेर अदरख ४) हिरिली ५) सिरिली ६) सिसिरिली ७) किट्टिका ८) छिग्यिा ९) छीर विदारिका १०) वज्रकन्द ११) सूरणकन्द १२) खिलूडा १३) भद्रमोथा १४) पिडहरिद्रा १५) हल्दी १६) रोहिणी १७) हूथीहू १८) थिरुगा १९) मृद्कर्णी २०) अश्वकर्णी २१) सिहकर्णी २२) सिहण्डी २३) मुसुण्डी ।

इन सबकी आधुनिक वनस्पति विज्ञान की शब्दावली मे पहचान की जा सकती है।

भगवतीसूत्र मे आठवे शतक के तीसरे उद्देशक का नाम ही रुक्ख शत्तक है। अर्थात् इसमे वृक्ष के सम्बन्ध मे ही विवेचन किया गया है। इस विवरण मे वृक्षो का वर्गीकरण तीन प्रकार से किया गया है।[८]

(१) सख्यात जीव वाले वृक्ष, (the plant with numerable beings)

ताड (palm tree), तमाल (dark barked xanthochymus puctorius), तक्काली (pimentaacris), तेतलि (temarind), नारिकेल (coconut) आदि।

(२) असख्यात जीव वाले वृक्ष (the plant in which there are innumerable beings)

इन्हे पुन दो भागो मे विभाजित किया गया है–

अ) एक अस्तिकाय (one seeded)

नीम, आम, जामुन, पलाश, बकुल, करज, साल

ब) बहुबीजका (many seeded)

अमरूद, दाडिम, तिन्दुका, आवला, बेल, आन्नानास, बट

(३) अनन्त जीव वाले वृक्ष (The tree with infinite beings)

१-आलुक, २-मूलक, ३-श्रृगबेर अदरक इत्यादि २३ प्रकार की कदमूल आदि वनस्पतिया हैं।

प्रज्ञापनासूत्र मे इस प्रकार के वृक्षो का विशेष विवरण दिया गया है। पद सूत्र ४७ गाथा ३७-३८। इस प्रकार का वर्गीकरण आधुनिक वनस्पति विज्ञान से प्रमाणित होता है।[९]

भगवतीसूत्र के २१, २२ एव २३शतक विभिन्न जातियो की वनस्पतियो के विविध वर्गो के मूल से लेकर बीज तक के विषय मे प्रकाश डालते है। इस प्रसग मे वनस्पति जगत के साथ कर्म प्रक्रिया, लेश्या, आहार, ज्ञान, गति, मृत्यु आदि के सम्बन्धो का समाधान किया गया है।

यहा पर वृक्ष के १० अगा का विवेचन भी है। (१) मूल, (२) कन्द (३) स्कन्द (४) त्वचा छाल (५) शाखा (६) प्रवाल (७) पत्र (८) पुष्प (९) फल एव (१०) बीज। ये अग वनस्पति-विज्ञान मे आज भी स्वीकृत है। भगवतीसूत्र मे सभी वनस्पतियो को आठ वर्गो मे विभक्त किया गया है[१०]–

(१) शालि (धान्य जाति) (२) कलाय (मटर आदि दालो का वर्णन) (३) अलसी (तिलहन जाति) (४) वस (बाल जाति), (५) इक्षु (गला आदि), पर्ववाली वनस्पति (६) दर्म (डाभ आदि तृण-घास जाति), (७) अभ्र (घास विशेष) एव (८) तुलसी।

इस प्रकार भगवतीसूत्र से वनस्पति विज्ञान के सम्बन्ध मे और अधिक सामग्री भी एकत्र की जा सकती है। भगवतीसूत्र मे केवल वनस्पति के सम्बन्ध मे ही नही, जीवन विज्ञान एव परमाणु विज्ञान के सम्बन्ध मे भी सामग्री उपलब्ध है। ज्योतिष एव गणित विषयक पर्याप्त उल्लेख इस ग्रन्थ मे प्राप्त है। प्रो० जे सी सिकदर ने इस विषय मे अपना शोधकार्य प्रस्तुत किया है। फिर भी विस्तार से और तुलनात्मक दृष्टि से अभी शोध करने की आवश्यकता बनी हुई है।

सन्दर्भ

१ स्टडीज इन द भगवतीसूत्र–डॉ० जे०सी० सिकदर, वैशाली १९६४।

२ आचारागसूत्र प्रथम श्रुतस्कन्ध, उद्देशक ५

३ जैन आगमो मे वनस्पति-विज्ञान (प० कन्हैयालाल लोढा)

४ तेण पर जोणी पमिलाति, तेण पर जोणी पविद्धसति, तेण पर, बीए अबीए भवति, तेण पर जोणिवोच्छेदे पन्नत्ते समणाउसो। –भगवतीसूत्र, शत्तक - ६, उ ७ (पृ ७३)।

५ गोयमा, गिम्हासु ण बहवे उसिणजोणिया जीवा य पुग्गला य वणस्सतिकाइयत्ताए वक्कमति विउक्कमति चयति उववज्जति, एव खलु गोयम। गिम्हासु बहवे वणस्सतिका इया पत्तिया पुष्फिया जाव चिट्टति। – भगवतीसूत्र, शत्तक - ७, उ ३ (पृ० १३७)।

६ गोयमा, मूला मूलजीवफुडा पुढविजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेति तम्हा परिणामेति। कदा कदजीवफुडा मूलजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेति, तम्हा परिणामेति। एव जाव बीया बीय जीव फुडा फलजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेति, तम्हा परिणामेति। – भगवतीसूत्र शत्तक – ६, उ ७ (पृ० १३८)

७ भगवतीसूत्र, शत्तक-६, उ ७ पृ० १३९ सम्पादक - युवाचार्य श्री मधुकर मुनि, ब्यावर

८ गोयमा, तिविहा रूक्खा पणत्ता - त जहा - सखेज्जजीविया, असखेज्जजीविया, अणतजीविया। – भगवतीसूत्र, शत्तक - ८, उ ३ (पृ २९५)

९ ए टेक्सबुक आफ इकोनोमिक वाटनी (डॉ० वी० वर्मा, दिल्ली १९८८)

१० सालि कल अयसि वसे उक्खू दब्मे अब्भ तुलसीय। अट्ठेते दसवग्गा असीति पुण होति उद्देसा।। – भगवती सूत्र शत्तक २१ गाथा

प्राध्यापिका, जीव विज्ञान विभाग
अेम० वी० पटेल साइस कॉलेज, आनन्द (गुजरात)

▢ पीटर जी बीडलर

मैं पढ़ाता क्यों हूँ?

तुम अध्यापकी क्यो करते हो? मेरे दोस्त ने पूछा क्योंकि मैंने उसे बताया था कि मै स्कूल मे किसी प्रशासकीय पद के लिए आवेदन नही देना चाहता। इस बात ने उसे उलझन मे डाल दिया। आखिर मै उस रास्ते को क्यो नही अपनाना चाहता था जो जाहिर है उस लक्ष्य की ओर ले जाता है जिसे सब पाना चाहते है यानि धन और अधिकार।

मै इसलिए नही पढाता कि पढाना मेरे लिए आसान है। रोटी-रोजी कमाने के लिए मैंने बुलडोजर की मरम्मत, बढईगीरी, विश्व-विद्यालय का प्रशासन और लेखन आदि जितने भी काम किए है, पढाना उनमे सबसे मुश्किल है। जहॉ तक मेरा सवाल है, पढाने से आँखे लाल हो उठती है, शरीर बेजान और मन खिन्न हो जाता है। आँखे इसलिए लाल हो जाती है क्योंकि पढाने के लिए मै अपने को कभी तैयार नही पाता, चाहे रात को मैंने कितनी भी देर तक बैठकर तैयारी क्यो न की हो, हथेलियॉ पसीने से इसलिए भीग जाती है क्योंकि कक्षा मे प्रवेश करने से पहले मुझे हमेशा घबराहट होने लगती है। मुझे हमेशा लगता है कि छात्रो पर मेरी बेवकूफी जरूर जाहिर हो जाएगी। मन इसलिए बुझ जाता है क्योंकि एक घटे बाद जब मै कक्षा से बाहर आता हूँ तो मुझे इस बात का निश्चय हो चुका होता है कि आज मैंने छात्रो को पहले से कही ज्यादा उबाया है।

मेरे पढाने की वजह यह भी नही है कि मै प्रश्नो के उत्तर जानता हूँ, या यह कि मै इतना कुछ जानता हूँ कि उस जानकारी को दूसरो मे बॉटने के लिए मजबूर हो जाता हूँ। छात्रो को अपनी पढाई हुई बातो के नोट लेते देख कर मुझे सचमुच कभी-कभी बडा आश्चर्य होता है।

फिर भी मै क्यो पढाता हूँ?

मै इसलिए पढाता हूँ क्योंकि जिस ढग से पढाई का ढर्रा चलता है, वह मुझे पसद है। जब स्कूल की छुट्टियॉ होती है तो मुझे चितन-मनन, अनुसधान और लेखन का अवसर मिलता है– ये सब मेरे पढाने के ही हिस्से है।

मै इसलिए पढाता हूँ कि यह परिवर्तन पर आधारित है। पाठ्य सामग्री वही होते हुए भी मुझ मे परिवर्तन आता है – और सबसे बडी बात यह है कि मेरे छात्रो मे भी परिवर्तन आता है।

मै इसलिए पढाता हूँ कि मै खुद गलती करने, खुद सबक सीखने, अपने आप को और अपने छात्रो को प्रेरित करने की स्वतत्रता को पसद करता हूँ।

मै इसलिए पढाता हूँ कि मै ऐसे प्रश्न करना पसद करता हूँ जिनसे छात्रो को उत्तर देने मे मेहनत करनी पडे। ससार बुरे प्रश्नो के अच्छे उत्तरो से भरा पडा है। अध्यापन के कारण कभी-कभी मेरे सामने अच्छे प्रश्न भी आ जाते है।

मै इसलिए पढाता हूँ कि सीखना पसद करता हूँ। वास्तव मे, अध्यापक के रूप मे मेरा अस्तित्व तभी तक है जब तक मै सीख रहा हूँ। मेरे पेशेवर जीवन की एक सब से बडी खोज यह है कि मै जो जानना चाहता हूँ, वह सबसे अच्छा पढा सकता हूँ।

मै इसलिए पढाता हूँ कि मुझे इस पेशे के स्वाग मे अपने आप को और अपने छात्रो को इस मिथ्या ससार से बाहर निकालने और वास्तविक दुनिया मे प्रवेश करने के उपाय खोजने मे आनद आता है। मैंने एक बार एक पाठ्यक्रम चलाया था जिसका शीर्षक था ''मशीनी समाज मे आत्मनिर्भरता''। मेरे १५ छात्रो ने एमरसन, थोरो और हक्सले को पढा। उन्होंने डायरियॉ लिखी, सत्र के दौरान लबे निबध लिखे।

यही नही, हमने एक कपनी की भी स्थापना की। उसके लिए हमने एक बैक से ऋण लिया, खस्ता हालत वाला एक मकान खरीदा और उसको नया रूप देकर आत्म-निर्भरता के सिद्धात को अमली जामा पहनाया। अर्धवार्षिक सत्र समाप्त होने पर हमने उस मकान को बेच दिया, अपना कर्जा चुका दिया, अपने करो का भुगतान कर दिया और जो मुनाफा हुआ, उसे कपनी के सदस्यो मे बॉट दिया।

निश्चय ही यह अग नी का कोई सामान्य पाठ्यक्रम नही था। लेकिन भावी वकील, अक.उटंट और व्यवसायी के रूप मे कार्य

करने वाले १५ छात्रों ने अचानक ही नई दृष्टि से थोरो की 'वाल्डेन' पुस्तक पढनी आरभ कर दी। वे सब जानते थे कि वह जगल मे क्यो गया, उसने अपनी झोपडी कैसे बनाई और वह अपने अनुभव को इतना अच्छा क्यो मानता था कि वह उसके बारे मे दुनिया को बतलाना चाहता था। उन्हे अब यह भी मालूम था कि अत मे वह उस जगल को छोड कर क्यो चला आया। वह वाल्डेन ताल के पानी का स्वाद चख चुका था। अब अन्य अमृत कुडो की ओर चल देने का समय आ गया था।

मै इसलिए पढाता हूँ कि पढाने से मुझे विभिन्न प्रकार के अमृत का स्वाद चखने, बहुत से जगलो मे जाने और फिर वहाँ से अन्यत्र चल देने, बहुत सी अच्छी पुस्तके पढने और मिथ्या तथा वास्तविक ससार के बहुत से अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिलता है। अध्यापन कार्य से मै बराबर सीखता रहता हूँ। यह कार्य मुझे विविधता, चुनौती और अवसर प्रदान करता है।

लेकिन अब भी पढाने के असली कारण तो रह ही गए।

एक लडकी है विकी। वह मेरी पहली छात्रा थी जो डाक्टरेक्ट कर रही थी। वह उत्साही युवती थी, लेकिन उसका उत्साह अकसर मद भी पड जाता था। स्नातकोत्तर डिगरी के लिए जिस साहित्य का वह अध्ययन कर रही थी, उसी मे कडी मेहनत के बावजूद उसे कोई रोमाच अनुभव नही होता था। लेकिन उसने १४वी शताब्दी के एक बहुत ही कम विख्यात कवि पर शोध प्रबध तैयार करने मे अपनी जान खपा दी। उसने बडे परिश्रम से कुछ लेख तैयार किए और उन्हे कुछ ऊँची पत्रिकाओ को भेज दिये। ये सब लेख उसने खुद ही लिखे थे। मैंने तो एकाध बार टहोका भर ही दिया था। लेकिन जब उसने अपना शोध पूरा किया, उस समय मै वही था। पता चला कि उसके वे लेख स्वीकृत हो गए है। उसे नौकरी मिलने के साथ-साथ हार्वर्ड विश्वविद्यालय (कैंब्रिज, मासाचुसेट्स) से एक ऐसे विषय मे पुस्तक लिखने के लिए छात्रवृत्ति भी मिल गई है। इस पुस्तक का विचार उसके मन मे उन दिनो ही आया था जब वह मेरी छात्रा थी।

दूसरा कारण है जार्ज। वह मेरा सबसे अच्छा छात्र था। पहले वह इजीनियरिंग पढ रहा था, पर बाद मे उसने साहित्य ले लिया क्योंकि वह जड पदार्थो की तुलना मे लोगो को अधिक पसद करता था। उसने एम ए की उपाधि प्राप्त की और अब वह एक जुनियर हाई स्कूल मे अगरेजी का अध्यापक है।

जीन नाम की एक अन्य लडकी कॉलेज छोड गई थी। लेकिन उसके कुछ सहपाठी उसे वापस ले आए क्योकि वे जीन को आत्मनिर्भर-भवन परियोजना का परिणाम दिखाना चाहते थे। जब वह वापस आई तो मै वही था। उसने मुझे बताया कि उसकी शहर के गरीब लोगो मे दिलचस्पी है। फिर वह पढ-लिखकर नागरिक अधिकारो की वकील बन गई।

इनके अलावा जैक्वी– सफाई करने वाली औरत। उसकी खास बात यह है कि हममे से अधिकतर लोग जितना विश्लेषण द्वारा सीखते है, उससे कही अधिक वह सहज ज्ञान द्वारा जान जाती है। जैक्वी ने सेकडरी स्कूल की पढाई पूरी करने के बाद कॉलेज मे जाने का निश्चय किया।

ऐसे लोगो के कारण मै पढाने का काम करता हूँ। ये लोग मेरी ऑखो के सामने ही रहते-रहते बढते है और बदलते जाते है। अध्यापक होने का अर्थ है जब माटी नए-नए रूप धर रही हो, सृजन के उन क्षणो मे उपस्थित रहना। जन्म के बाद जब बच्चा पहली चीख मारता है, उस क्षण मे उसका साक्षी होने से बढकर और कुछ रोमाचकारी नही है।

पढाई के क्षेत्र से बाहर 'पदोन्नति' से मुझे पैसा और शक्ति मिल सकती है, लेकिन पैसा तो पहले ही मेरे पास है। मै जो काम करता हूँ और जिसमे मुझे सबसे अधिक आनद आता है, उसके लिए मुझे पैसा मिलता है। यह काम है पुस्तके पढाना, लोगो से बातचीत करना, नई-नई खोज करना और अनगिनत प्रश्न करना। केवल धनी होने मे क्या तुक है?

मेरे पास तो शक्ति भी है। मुझे टहोका लगाने का, किसी मे चिनगारी जलाने का, परेशानकुन सवाल करने का, किसी जवाब की तारीफ करने का, सच्चाई से मुँह छिपाने पर निदा करने का, किताबे सुझाने और राह दिखाने का अधिकार है। इसके अलावा और कौन-सा अधिकार माने रखता है?

कितु अध्यापन से धन और अधिकार के अलावा कुछ और भी मिलता है और वह है प्यार। यह प्यार केवल ज्ञान, पुस्तको और विचारो के प्रति प्यार ही नही है बल्कि वह प्यार भी है जो एक अध्यापक को उस छात्र से होता है जो उसके जीवन मे कच्ची मिट्टी की तरह आता है और नए-नए रूप धरने लगता है। शायद इसके लिए प्यार शब्द सही नही है, जादू अधिक उपयुक्त होगा।

मै इसलिए पढाता हूँ कि जो लोग सास लेना शुरू कर रहे है, उनके आसपास रहते हुए कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है जैसे उनके साथ-साथ मै भी नए सिरे से सास लेने लगा हूँ।

■

▢ एलेन गुडमैन

पिता की छाया में

[हर पिता को लगता है कि उसके बेटे उसी राह चले जिस पर वह चला है, हर बात को इस तरह सीखे जैसे आज तक किसी ने नही सीखा है।]

बच्चे बडे होते जा रहे है उसके। जब यह अपने आप मे कोई खास खबर भी नही, फिर भी पास वाली बेच पर बैठी महिला को यही बताता है वह। यही तो करते है बच्चे। उनके साथ यही तो लगा रहता है।

इसके बावजूद बेसबाल के मैदान पर नजरे गडाए वह यही कहता है। उसका खयाल था कि बच्चे धीरे-धीरे बडे होते जाएँगे। परतु इसके विपरीत वे धचकते से एक से दूसरी उम्र की दूरी तय किए जा रहे है। बडे को ही लो, विचित्र ढग से गाडी बदलता है तो कैसी दहलाने वाली आवाज होती है।

उसे याद है, बडा कुल तीन बरस का था और नर्सरी स्कूल जाता था। एक बार वह डैडी की उगली पकडे स्कूल जा रहा था तो उसने किसी को राह चलते हुए हेलो कहा। आखिर यह कैसे सभव है कि बेटा किसी से परिचित हो और बाप नही। तब भी उसे स्वतत्रता की उस बिजली का हलका झटका महसूस हुआ था।

अव लडको की जीवनधारा बदल रही है। बडे को कार चलाने का लाइसेस मिलने जा रहा है और सबसे छोटा भी माध्यमिक स्कूल मे दाखिले की ओर अग्रसर है।

तभी उसका १३ वर्षीय बेटा बल्लेबाजी के लिए सामने आता है। हफ्तो, महीनो का वक्त लगा कर उसने इस खेल पर अधिकार भी पा लिया है और बढिया खिलाडी बन गया है वह उसकी कलाइयॉ, उसके खडे होने के ढग और उसकी ऑखे भी यही जताती है। लगता है उसके शरीर का अग अग आज किसी अतिम परीक्षा की तैयारी मे क्रियाशील रहा है। वह बल्ला घुमा कर शानदार प्रदर्शन भी करता है—पहले बेस से दूसरे बेस मे पहुँच जाने का।

पिता इस खेल को ठीक उसी तरह देख रहा है जैसे कि मॉ-बाप देखा करते है। एक क्षण गौरव की अनुभूति होती है, तो दूसरे ही क्षण छिद्रान्वेषण शुरू हो जाता है। फिर अभिभावक होने का मतलब ही होता है अतिशय अपेक्षाएँ। परतु आज उसकी अनुभूति एक भिन्न प्रकार की है—कही विस्मय व उत्कठा का मिश्रण है तो कही स्नेह व विछोह के बीच का भी।

छोटी-छोटी बाते याद आ रही है। स्कूल से मिलने वाले गृहकार्य का स्वरूप भी अब बदलता जा रहा है। लकडी के टुकडे जोड कर छोटी मेज बना कर लाने की जगह अब लकडी के शमादान का महीन काम मिलने लगा है। मोमी रग के चित्रो का स्थान अब नागरिक शास्त्र का लबा चौडा परचा ले चुका है।

उसका कहना है कि वह भी शायद एक प्रकार की किशोरावस्था के दौर से गुजर रहा है। अपने बच्चो को लेकर सभवत मॉ-बाप को उस दौर से दोबारा गुजरना ही पडता है जबकि एक ओर तो बच्चो के फूलते-फलते रहने की सुखद अनुभूति होती है और दूसरी ओर अपनी छॉव से उनके निकल चलने की व्यथा भी सालती है।

ये दोनो स्त्री और पुरुष बाते कर ही रहे होते है कि टीमे अपना-अपना स्थान बदल लेती है। बाप का तेरह वर्षीय बेटा लपक कर खेल का दस्ताना उठा लेता है और तीसरे वेस की ओर वढ जाता है, तभी कोई जोर की हिट लगाता है, बाल जमीन को छूती हुई उसके समानातर उठती है और बेटे के हाथ मे आकर भी उस से छूट जाती है।

पिता क्षण भर को अपनी सीट से उचकता है, फिर वैठ जाता है। वह महिला को बताता है दो साल पहले यही नौवत आई होती तो इसके आँसू निकल जाते, पर अव यह जल्दी ही सयत हो जाता है। महिला कहती दो साल पहले तो आप भी उसे वार-वार ऐसे खेलो, वैसे खेलो कह रहे होते, पर आज देखिये तो कैसे चुपचाप बैठे उसका खेल देख रहे है।

हामी भरते हुए वह वोल उठता है, हम दोनो ही वडे होते जा रहे है। कभी यही पुरुष सोचता था कि पितृत्व के वारे मे वह वहुत

कुछ जानता है। आखिर वह खुद भी तो कभी बच्चा था, उसके भी पिता थे। वह कल्पना करता आया था कि वह अपनी जवानी के कटको से बचा कर अपने बच्चो को सभाले लिए जा रहा है। सोचता था कि उसने जो नीव रखी है, जहॉ तक निर्माण किया है, उसके बच्चे आगे का गगनचुबी निर्माण करेगे।

परतु उसके लडके बहुत कुछ वैसे ही निकले जैसा कि कभी वह स्वय था। अब धीरे-धीरे उसने सुप्रसिद्ध अगरेजी उपन्यासकार डोरिस लेसिग के इस कथन को स्वीकार करना भी शुरू कर दिया है ''उसके लडके को एकदम उसी राह पर चलना होगा जिस पर वह स्वय या उसके समकालीन चल चुके है ताकि वह सब बातो को इस तरह सीखे जैसे कि आज तक कोई नही सीखा है।''

इस हिसाब से, वह स्वय भी वही सब सीखता रहा है जिन्हे कभी स्वय उसके पिता ने भावनाओ की गहराई, बच्चो के प्रति आसक्ति और उन्हे अतत उन्मुक्त छोड देने की आवश्यकता को लेकर सीखा था।

तभी मैच खत्म हो जाता है। वह दुबला-पतला, लबा सा लडका लबे-लबे डग भरता उसकी ओर आता है। वह उसे अपना दस्ताना और गेद थमा देता है। अब वह अपनी टीम के साथियो के साथ जाकर पीत्सा खाने के लिए पैसे माग कर वहॉ से उडनछू हो लेता है। मैदान की अभी आधी ही दूरी उसने तय की होगी कि पलट कर चिल्लाता है, ''डैड, आने के लिए थैक्स।''

पिता भी हाथ हिलाता है। ठीक है, ठीक है। सच यही तो हमेशा होता है। बच्चे देखते ही देखते बडे हो जाते है।

■

हॅसते हॅसते जीना

बैक मे आए लुटेरे ने खजाची को एक पुरजा लिख कर थमा दिया ''सारा पैसा थैले मे डाल दो और हिलो नही, समझी बुलबुल ?''

सदेश पढने के बाद खजाची ने कागज के उस पुरजे के पीछे कुछ लिख कर लुटेरे को वापस दे दिया। उसका सदेश था ''अपनी टाई तो ठीक कर लो चोच। सुरक्षाकर्मी गुप्त टी वी कैमरे पर तुम्हारा थोबडा देख रहे है।''

एक बडे कपनी समूह के अध्यक्ष की अचूक निर्णय क्षमता की बडी ख्याति थी1 एक बार उसने कर की मार से बचने के फेर मे एक योजना पर पैसा लगाया। सारी योजना धोखाधडी सिद्ध हुई और एक लाख डालर का नुकसान हो गया। उसके व्यावसायिक सहयोगी उस पर फब्तियॉ कसते और आयकर विभाग ने भी सारे मामले की जॉच पडताल शुरू कर दी। इस स्थिति को सहना बडा कठिन था सो एक दिन अपने दफ्तर के मोटे कालीन पर वह भहरा कर गिर पडा और रोने लगा, ''मै रोजाना लाखो करोडो का सौदा करता हूँ, पर शायद ही कभी नुकसान होता हो। इस बार मैंने इतनी बडी बेवकूफी आखिर कर कैसे की।'' तभी दफ्तर का फरनीचर डोलने लगा, रोशनी मद पड गई तथा उसके कम्प्यूटर से गर्जन हुई ''तुम समझते हो कि अकेले तुम्ही तुम परेशान हो। मुझे देखो, मै खुद इस खेल मे कम से कम पॉच लाख के वारे न्यारे कर लेने के फेर मे था।''

■

शिक्षा-सृष्टि : जैन दृष्टि

दृष्टि नही तो सृष्टि का साक्षात् नही। रूढ अर्थो से मुक्त, शिक्षा तो सार्वभौम सीख का नाम है। सीख सत्य की। अहिसा की। अपरिग्रह की। सम्यग् ज्ञान, दर्शन और चारित्र की। सीख यही तो है हमारे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के साधक ससार की। सतत शिक्षा की ढोल पिटाई मे हम गर्व से स्मरण रखे सदैव कि ससार मे जैन समाज ही एकमात्र ऐसा सामाजिक सघटक है जिसके अनुयायियो के घर-घर मे सतत शिक्षा स्वरूप स्वाध्याय-यज्ञ चेतता आया है मनवन्तरो से। ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा स्वरूप सामायिक की साधना ने विश्व को दी है हमारे मनीषियो की आगम दृष्टि।

आगम दृष्टि साफ-सुथरी। एकदम स्वच्छ नितरी हुई हमे भीतर से झकझोरती हुई सदा सावचेत रखती है— स्थानाग सूत्र के अष्टम स्थान उत्थान पद पीठिका से —

"अभी तक नही सुने हुए श्रेष्ठ धर्म को सुनने के लिए तत्पर रहो—
सुने हुए धर्म पर आचरण करने को तत्पर रहो,
अशिक्षितो को शिक्षित करने मे तत्पर रहो।
यदि अपने सहधर्मी, साथियो मे किसी कारण मतभेद, कलह, विग्रह आदि खडा हो तो उसे शान्त कर परस्पर सद्भाव बढाने मे तत्पर रहो।"

यह उपदेश भर नही। कोई आदेश नही। यह तो मानवता की सीख है — सीख स्व के अध्ययन की। मात्र साक्षरता की नही। यह सीख है शिक्षा की। पढो और पढाओ की सीख। शिक्षा की इस सृष्टि से पृथक क्या होगा। राष्ट्र जागरण लोक शिक्षा अभियान का यह आगम। शुभागम। आह्वान।

सुनो उत्तराध्ययन के शाश्वत स्वर सन् १९९३ अक्षय तृतीया दिवस।

जवाहर भवन बीकानेर गगाशहर। आचार्य नानेश प्रणीत सिद्धान्त शाला का नवार्पण। आचार्य श्री की आज्ञा से मैने विनम्रत सभाला शाला-प्रबोधक का दायित्व। गुरूवाणी गूजी — अत कक्ष मे मुझे प्रबोधित करती हुई—

नीयावत्ती अचवले, अम्माई अकुतूहले,
मित्तिज्जमाणो भयइ सुय, लहुन मज्जई।
न य पाव परिक्ख खेवी, न य मित्तेसु कुप्पई,
अप्पियस्सवि मितस्स रहे, कल्लाण भासई।
कलह उभर वज्जिए, बुद्धेय अभिजाइए,
हिरिम पडिसह लीणे, सुविणी एत्ति वुच्चई।

उत्तराध्ययन-११वाँ सूत्र-बहुश्रुत पूजा

अर्थात् जो नम्र है। अचपल है। अस्थिर नही। दम्भी नही। तमासबीन नही। अनिदक है जो। दीर्घ काल-क्रोधी नही। मित्र-कृतज्ञ है जो। अनहकारी ज्ञानी है। मित्रो पर क्रोध नही करता है जो। वाक् कलही नही। मार-वार नही करता। जो कुलीन है, लज्जाशील है, व्यर्थ चेष्टा नही करता। वह बुद्धिमान मान-ध्यान लीन रहता है। गुरूदेव ने इस प्रबोधन की कडी मे सिद्धान्तशाला के साधु-साध्वी वृन्द को दी शाश्वत शिक्षा की जैन दृष्टि की दुर्लभ सीख आठ गुणो वाले शिक्षाशील की — गूजी गुरूवाणी —

अह अट्ठहि ठाणेहि सिक्खा सीलेते वुच्चई।
अहस्सिरे सयादन्ते न य मम्मुक्षाहरे॥
णा सीले ण वसीले, ण सिया अइ लोलुए।
अक्का हणे सच्चरए सिक्खा सीलेत्ति वुच्चई॥

अर्थात्— जो हसी ठठ्ठा नही करता। दान्त शान्त रहता है। जो किसी के पोत नही उघाडता। जो आचरणहीन नही होता। अदोषी-अकलकी जो होता है, वह अक्रोधी। वह सत्यानुरक्त अष्टगुणी शिक्षाशील होता है। यह गौरवागम सीख हर श्रावक को, शिक्षक को, शिष्य को, शाला शासक को, ज्ञानानुशासक को। गुणे सो गणे।

समझ तो मेहनत देगी

महात्मा गाँधी — सत विनोवा — आइन्स्टाइन सबके सब मनीषियो की युगवाणी गुजा गए समवेत स्वरो मे साधनाशील विज्ञान-शिक्षक स्वाध्यायी जैन विभूति डॉ० डी०एस० कोठारी — "ज्ञान तो पाया शिष्यो ने गुरुवाणी से। समझ ? पर समझ तो देगी मेहनत।" अब

जरा गहरे मे उतरे, इस कथन को समझे – श्रमण सस्कृति समझे। समझे हम श्रमकर्ता श्रमणो की श्रम शिक्षा। समझे हम जीवन विज्ञान।

जीवन विज्ञान की ओर

आचार्य महाप्रज्ञ कहते है – नैतिकता आदि शब्द विवाद के विषय बन गये है। इसलिए नया शब्द ढूँढना चाहिए जो आज के मानस को स्पर्श कर सके। पर कोई प्रतिक्रिया पैदा न करे। इन दृष्टियो से सोचने पर एक नया नाम जचा – 'जीवन विज्ञान।' इसकी प्रक्रिया का किसी धर्म विशेष से सम्बन्ध नही है। इसका सम्बन्ध जीवन से है। यह नाम समग्र मानव का प्रतिनिधित्व करता है – व्यापक है और असाम्प्रदायिक। यह नैतिक शिक्षा योग शिक्षा सबको समाहित करता है। जीवन विज्ञान के इस लोक शिक्षा स्वरूप को वरदायी आशीर्वचन मिला गणाधिपति तुलसी गणि का।

डॉ० डी० एस० कोठारी – गणाधिपति तुलसी और आचार्य महाप्रज्ञ – जैन मनीषियो की इस लोक शिक्षा त्रिवेणी को नमन करने का मन होता है। आज कि जैन दृष्टि सम्पन्न आज की शिक्षा सृष्टि का समूचा ज्ञान-ब्रह्माण्ड हमारी समझ मे बैठे और पैठे, इसी मे देश का भला है।

जीवन विज्ञान शिक्षा की द्वादश श्रेणियॉ

१) ध्वनि २) सकल्प ३) सम्यक् व्यायाम ४) सम्यक् श्वास ५) कायोत्सर्ग ६) ध्यान ७) शरीर शिक्षा ८) मानसिक शिक्षा ९) भावात्मक शिक्षा १०) मूल्यबोध ११) अहिसा १२) शरीर विज्ञान।

भारत देश के कवि प्रधानमत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के 'जय विज्ञान' उद्घोष का यह अभिनव जीवन-विज्ञान द्वादशाग-भारतीय शिक्षा जगत को जैन जगत की अप्रतिम देन है। बातो से नही। कारज सरेगा काम से। सच कहा गया है न—

'जानन्ति तत्त्व प्रभवन्ति कर्तुम।'

जो जानने की शक्ति रखता है वह कर्म करने की शक्ति भी धारे।

सूर्यसदन, गुप्तेश्वर नगर
उदयपुर (राज०)

दो प्रेरक प्रसंग

☐ जानकीनारायण श्रीमाली

हियै री ऑंख आचार्य द्रोण अपने १०५ शिष्यो को शब्दबेधी तीर चलाना सीखा रहे थे। सब प्रयत्न निष्फल हुए। शिष्य निराश हो गए। गुरू द्रोण भी चिन्तित हो उठे। एक रात्रि को गुरू और शिष्य साथ-साथ पक्तिबद्ध बैठकर भोजन कर रहे थे। सहसा गुरू द्रोण ने अपने हाथ से मशाल बुझा दी। कक्ष मे अधेरा छा गया। सेवको ने पुन मशाल जलाई। सभी शिष्यो की थालियॉ खाली थी। गुरूजी ने पूछा—अरे! अधेरे मे भोजन कैसे कर लिया? शिष्यो ने कहा—गुरूदेव! नित्य अभ्यास और सही अनुमान से।

आचार्य ने कहा—भोजन एक बार भी नाक-कान या ऑख मे नही गया। हर बार मुँह मे गया। इसी प्रकार नित्य अभ्यास और सही अनुमान से शब्दबेधी तीर चला सकते हो। शिष्यो के हृदय मे नवीन ज्ञान का आलोक भर गया। वे कुशल धनुर्धर बन गए।

स्पर्धा महाभारत युद्ध। सेनापति भीष्म नित्य पाडवपक्ष के दस हजार योद्धाओ का वध कर रहे थे। पाडव पक्ष की युद्धपरिषद मे अर्जुन और श्रीकृष्ण ने अप्रतिहत गति भीष्म को रोकने का वचन दिया। भीष्म-अर्जुन युद्ध प्रारभ हुआ। सूर्य तपने लगा। भीष्म की गति रुक गई थी। वे एक भी पाडव योद्धा नही मार पाए। हर्षित अर्जुन ने कुछ क्षणो के लिए पसीना पोछा और हर्षपूर्वक मित्र कृष्ण को निहारा। कृष्ण ने कहा—'हे पार्थ! इन कुछ क्षणो मे भीष्म ने दो हजार योद्धा मार दिए है। तुम ५ बार पसीना पोछोगे-विश्राति लोगे और भीष्म हमारे दस हजार योद्धा मार डालेंगे।'

विवेकवान, अविश्रात श्रम, अनथक उत्साह का सामर्थ्य ही विजयश्री दिलाता है।

ब्रह्मपुरी चौक, बीकानेर (राज०)

□ **Mangilal Bhutoria,** *M A , LL B, Sahitya-ratna*

Embryo-Transfer

Apropos my article on "The unique example of embryo transfer "performed practically about 2600yrs ago published in the journal of "The Asiatic Society" (Vol XLII Nos 3-4,2000), it was my pleasure researching the issues raised by learned readers and thinkers

The most reverred 12th Century's Jain Acharya Hem Chandra Suri is his well known treatise "Trishasti-Salaka-Purus-Carita" (त्रिषष्ठि शलाकापुरूषचरित, पर्व-10, स 2 पद 16-19) has in narration of Lord Mahavir's life described the episode of the Embryo transfer almost in a similar manner mentioned in the Jain Agamic Scriptures Kalpa Sutra' (कल्पसूत्र), Bhagwati Sutra (भगवती सूत्र) and Acharanga Sutra (आचाराग सूत्र) It seems he followed the tradition of medieval saints

It was astonishing to find a similar episode of Balram, Krishna's elder brother whose embryo-transfer as mentioned in Srimad Bhagwat-Purana (श्रीमद्भागवत पुराण स्कध-10, अध्याय-2 श्लोक-6-15) having surpassed all limits of time and imagination

भगवानपि विश्वात्मा विदित्वाकसज भयम् ।
यदूना निजनाथाना योगमाया समादिशत् ।।6।।
गच्छ देवि व्रज भद्रे गोपगोभिरलङ्कतम् ।
रोहिणी वसुदेवस्य भार्याऽऽस्ते नन्दगोकुले ।
अन्याश्च कससविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ।।7।।
देवक्या जठरे गर्भ शेषाख्य धाम मामकम् ।
तत् सनिकृष्य रोहिण्या उदरे सनिवेशय ।।8।।
अथाहमशभागेन देवक्या पुत्रता शुभे ।
प्राप्स्यामि त्व यशोदाया नन्दपत्न्या भविष्यसि ।।9।।
अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वा सर्वकामवरेश्वरीम् ।
धूपोपहारबलिभि सर्वकामवरप्रदाम् ।।10।।
नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि ।
दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ।।11।।
कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च ।
माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च ।।12।।
गर्भसकर्षणात् त वै प्राहु सकर्षण भुवि ।
रामेति लोकरमणाद् बल बलवदुच्छ्यात् ।।13।।
सन्दिष्टैव भगवता तथेत्योमिति तद्वच ।
प्रतिगृह्य परिक्रम्य गा गतातत् तथाकरोत् ।।14।।
गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणी योगनिद्रया ।
अहो विस्त्रसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशु ।।15।।

(At the prayer of Deva (देव), Vishnu decided to incarnate in part (अश) on the Earth in Devaki's womb Visualising the possibility of Kan's (कस) misdeeds killing six of her sons He called his Shakti (शक्ति) Yogmaya (योगमाया) and ordered her to transfer his *incarnate-embryo from Devaki's womb to the womb of* Rohini (रोहिणी), the second wife of Vasudev (वासुदेव), who was out of prison so, the Balram may be born out of Rohini's womb He also ordered Yogmaya herself to incarnate on Earth taking birth as Yashoda's daughter Vishnu at the same time decided to incarnate fully (अवतार) as Devaki's 8th child *The strategy being that* the 7th child of Devaki, Balram would be saved by embryo-transfer and the 8th child Krishna would be replaced by Vasudev with Yashoda's daughter Yogmaya and when Kans tries to kill her she being an angelic-incarnation, would vanish *Yogmaya did exactly as instructed by Vishnu, she hypnotised Devaki and Rohini* into deep sleep and then transferred Balram's embryo in the 7th month of pregnancy to Rohini's womb Thus Kan's purpose was defeated)

The noteworthy aspects of the above operation are-

(i) The operation takes place, when the embryo is 7 months old

(ii) The process of hypnotising the incumbents into deep sleep before the operation takes place

Dr Parameswar Solanki has without questioning the possibility of such an embryo-transfer remarked (see Jain Bharti, Vol 39 3 March 1991, pages 147-148) that the Jain Acharyas may have been guided in mentioning such an episode by the Bhagwat-Purana's example perhaps on the assumption that Bhagwat-Purana is a prior treatise But it could be vice-versa, the origin of Agamic literature is no less older than Bhagwat-Purana's The height of imagination however in Bhagwat-Purana's episode of embryo-transfer in the 7th month of pregnancy is all the more amazing and less credible than the Agamic-transfer of embryo on its 83rd day of pregnancy The process of operation of hypnotising the incumbents in deep sleep is also void of the minutest details which are the hallmark of Agamic literature

I had in my previous article published in the Journal of Asiatic Society (Vol XLII nos 3-4,2000) while highlighting the excellency of such an experiment 2600 years ago, also expressed my doubt about the factual trustworthiness of the whole episode Giving it a *sociological twist* I was *inclined to interpret the myth* differently Those were the days of feudal Kingship The King Supreme owned many a Queens and in the palace there were concubines from every strata including Brahmins with whom the king frequently had sexual relations The son born to a Brahmin-concubine could found favour with the king linking the son's parentage to the Royal household for the outside world or could be adopted by the king to save the embarassment although he already had a son (नन्दिवर्धन) from his Queen Trishala in this particular case

This angle, to look at the whole episode, may annoy many a blind followers and fanatics but needs to be explored for solving many a myths created by vested interests and to bring out historical facts as authentically as possible The modern mind with its scientfiic aptitude cannot accept such unimaginable happenings as historic truths unless they could be rationally perceived or explained Even the myth of Five-hooded-serpent-head as canopy over the 23rd Tirthankar (तीर्थकर) Parasvanath has been challenged by the modern scholars These serpent-heads are said to be the creation of medieval Jain-Acharyas The sculptures and literature depicting the canopy only go to explain Parsva's association with Nagraj (नागराज) Dharnendra (धरणेन्द्र) Sri U P Shah, a Jainololgist of repute, in his essay on the subject while explaining the depiction of serpent-canopy (नागछत्र) over Parsva interprets it to be a totemic symbol of his link with his ancestral Naga-tribe (नाग वंश) and Nag-worship (नाग-पूजा) The eminent scholar Dr M A Dhaky in his essay Arhat Parsba and Dharnendra Nexus' (published 1997) supporting Shah's views suggests that in the total absence of this serpent -canopy in any of the sculptures found in Kankali tila (ककाली टिला) of Mathura-excavations dating them to be of 1st century B C the so called depicition are obviously a Nirgrantha (निर्ग्रंथ) adaptation of the Brahmanical myth of Sesh-Nag (शेषनाग) supporting Globe of Earth on his head or followed from the myth of Krishna-Govardhan episode of Hindu-scriptures Likewise the embryo-transfer-myth could be interpreted rationally to be a creation of the later Jain-Acharyas to avoid the Brahamanical parental linkage of Lord Mahavir The medieval period between 5th to 10th century A D saw a phenomenal upsurge of hatred against Boudhas (बौद्ध) and Jains generated by the followers of Adi-Guru Shankaracharya when not only vast number of Jain shrines were demolished and or destroyed and a disheartening number of Jain And Boudh Acharyas and Muni's were slain in Southern India The possibility of one-up-manship creating such myth cannot be ruled out

The most reverred Jain scholar of the 20th century Pundit Sukhlal Sanghvi has in his critical analysis of such mythical representations in Lord Mahavir's life challenged the Embryo-transfer episode (चार तीर्थकर) and suggested that it could be an addition to the Agamic literature by later Acharyas What gave strength to his argument was the fact that the Jain scriptures of its Digamber sect have completely ignored this transfer episode Mahavir according to them was born of Trishala and there is no mention of Devananda as Mahavir's mother of conception at all

The Archaeological finds of Kankali tila (ककाली टिला) in Mathura and the inscriptions found there support the above view The famous Western Archaelogical and Historian Vincent Smith has in his treatise "*Jaina Stupa & other Antiquities of Mathura*" dated the inscriptions and sculptures to be of 1st century B C These sculptures faithfully depict most of the important events of Lord Mahavir's life but the total absence of the Embryo transfer-episode in those depictions clearly is a pointer to its concoction later on

Some passages in Kalpa Sutra depicting hatred towards Brahmins also seem to be later-age creations giving credence to the Additon-theory The Stanza (गाथा) 17 of Kalpa Sutra is explicit in this regard

तए ण तस्स सक्कस्स देविदस्स देवरन्नो अयमेयारूवे अज्झत्थिए चितिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्थन्न एय भूय, न एय भव्व, न एय भविस्स, ज न अरहता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा अतकुलेसु वा पतकुलेसु वा तुच्छकुलेसु वा दरिद्दकुलेसु वा किविणकुलेसु वा भिक्खायकुलेसु वा माहणकुलेसु वा आयाइसु वा आयाइति वा आयाइस्सति वा एव खलु अरहता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा उग्गकुलेसु वा भोगकुलेसु वा राइण्णकुलेसु वा इक्खागकुलेसु वा खतियकुलेसु वा हरिवसकुलेसु वा अन्नतरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजातिकुलवसेसु आयाइसुवा आयाइति वा आयाइस्सतिवा।

(Lord Indra oversees from his heavenly abode by Awadhigyan (अवधिज्ञान) that Lord Mahavir has incarnated on Earth into the womb of Devananda (देवानन्दा) Brahmani (ब्राह्मणी) He contemplates over it and thinks that Thirthankers, the enlightened ones can not take birth in low castes (अन्त्य कुल, अधम कुल, नीच कुल तुच्छ कुल, दरिद्र कुल, कृपण कुल, भिक्षुक कुल अथवा ब्राह्मण कुल) such as the most down trodden shudras, criminals, poverty stricken, misers, beggars and the Brahmins Therefore Indra thinks it to be his duty to transfer the embryo of Mahavir to the womb of a lady of Khsatriya Kul, a race of pure blood Then Indra proceeds to instruct his man to execute the plan)

This kind of bias against Brahmins showing them at par with the low castes is not depicted any where else in the Agamic literature of ancient times On the contrary Uttar Purana' contains references of some Tirthankars (eg Shantinath Kunthunath and Arhnath) whose spouses belonged to Mlechha community of extremely low and out castes

Muni Punyavijay (मुनि पुण्य विजय) a learned Commentator on ancient Agamic literature has in his introduction to an modern edition of Kalpa Sutra expressed his doubt about the authenticity of a number of Stanzas in it Trisala's dreams in elaborate poetic form are thought to be such doubtful additions to the original text of Kalpa Sutra The Embryo-transfer episode could well be one of such additions by later Acharyas This appears to be more so because the author of Kalpa Sutra Acharya Bhadrabahu was a born Brahmin He was the 8th successor to Lord Mahavir Brahmins in those times were ardent followers of Jins Admittedly the Agamic literature were for the first time reduced to writing in 453 A D As discovered by scholars, the second and third part of Kalpa Sutra namely Sthaviravali and Sadhu Samachari contain passages definitely written by later Acharyas

Some historians go to the length of suggesting that Jamali was the son of Nandivardhan, Trishala's own son and elder brother of Lord Mahavir According to them Mahavir's daughter Priyadarshana was given in marriage to Nandivardhan's son Jamali If that be so, Mahavir could not have been the son of Trisala He might have been adopted after having born to Devananda, the Brahmin lady

The most authentic proof of Devananda being the real mother of Mahavir and Mahavir having born of her comes from the most reverred Jain scripture Bhagvati Sutra itself Lord Mahavir is said to have attained enlightenment in 557 B C and two years later he visited his birth place Brahman Kunda when Jamali and Priyadarshna (his son in law and daughter respectively) are said to have taken Sanyas and joined Mahavir's Religious order There Devananda came to pay her respects to the Lord This incident is vividly described in stanza (गाथा) 4 and 5 of part (उद्देशक) 33 of Chapter (शतक) 9 of Bhagvati Sutra as follows

तएण सा देवाणदा माहणी आगयपण्डाया, पप्फुयलोयणा सवरिवलयबाहा, कचुयप रिक्खित्तिया धारा हयकलवग पिव समूसवियरोमकूवा समण भगव महावीर अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी देहमाणी चिट्ठइ।

(Looking at the Lord her (Devananda's) whole body shivered with ecstasy and excitement Tears burst out of her eyes and milk oozed out of her breasts The sensation pulsating in her limbs inflated the wet breast covering)

प्रश्न – भते! त्ति भगव गोयमे समण भगव महावीर वदइ णमसइ, वदिताणमसित्ता एव वयासी – किण भते। एसा देवाणदा माहणी आगयपण्डया त चेव जाव रोमकूवा देवाणुप्पिय अणिमिम्माए दिट्ठीए पेहमाणी पेहमाणी चिट्ठइ।

("Oh Lord!" addressing thus, Muni Goutam saluted and asked Mahavir – "How is it that this lady's body is shivering with excitement and milk is oozing out of her breasts and she is standing staring continuosly at you")

गोयमाइ! समणे भगव महावीर भगव गोयम एव वयासी – एव खलु गोयमा! देवाणदा माहणी मम अम्मगा, अहण देवाणदाए माहाणीए अत्तए, तएण सा देवाणदा माहणी तेण पुव्व पुत्त सिणेहरागेण आगयपण्हया जाव समूस वियरोम कूवा मम अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी पेहमाणी चिट्ठइ। तएण समणे भगव महावीर उसभदत्तस्स माहाणस्स देवाणदाए माहणीए तीसे च महतिमहालियाए इसिपरिसाए जाव परिसा पडिगया।

(Lord Mahavir answered–"Goutam, she is my own mother I was born of her That is why because of Love and excitement of seeing her son after long long time her body is shivering and milk is oozing out of her breasts" The Lord then addressed the gathering including Rishabhdutta and Devananda and after hearing his sermon the gathering dispersed)

The above mentioned narration, in my view, conclusively show that Devananda herself had given birth to Mahavir Such an ecstatic excitement at seeing her son after a long time and in such an enlightened state could only emerge in a lady who had experienced the pangs of giving birth to him Devananda was not an enlightened one and she or anybody else could not have knowledge of the so called transfer of embryo from her womb on the 83rd day of her pregnancy Lord Mahavir while answering Goutam's querry does not speak either about the so called transfer The Lord on the contrary asserts in clearest terms that he was born of her It would be traversity of facts if we in our zeal to upgrade the perentage from the so called low caste of Brahmin to the so called upper caste of Khsatriyas and stick to a myth created with bias against Brahmins and most probably to show one-up-manship to the Brahmical myths The husk should be sorted out of Rice The ancient scriptures thus need to be interpreted rationally and honestly with a visionary's perception to straighten the historical records

■

□ डॉ० प्रेमशकर त्रिपाठी

घुमक्कड़शास्त्री राहुल

बहुआयामी कृतित्व वाले महापडित राहुल साकृत्यायन ने इतिहास, दर्शन, धर्म, भाषाशास्त्र, विज्ञान, राजनीति आदि विविध विषयो पर अनेक महत्वपूर्ण निबन्ध लिखे है तथा बहुमूल्य कृतियो का सृजन किया है। उनके कहानीकार, आलोचक, निबन्धकार, नाटककार, आत्मकथा लेखक तथा जीवनीकार रूप ने हिन्दी साहित्य को विशिष्ट समृद्धि प्रदान की है। एक कट्टर वैष्णव परिवार मे जन्मे राहुल ने पहले आर्य समाज और फिर बौद्ध धर्म के रास्ते से गुजरते हुए मार्क्सवाद की मजिल तय की थी। एक साहित्यकार या लेखक के रूप मे ही नही, विचारक और चिन्तक के रूप मे भी उनकी व्यापक प्रतिष्ठा रही है। सामाजिक या राजनीतिक कार्यकर्ता की हैसियत से विविध गतिविधियो के सचालन एव क्रियान्वयन मे रुचिपूर्वक भाग लेने के साथ-साथ उन्होने गभीर शोधकर्ता के दायित्व का भी भलीभाँति निर्वाह किया था। चाहे असहयोग आदोलन या किसान आन्दोलन मे जनता के साथ सक्रिय भागीदारी हो या बौद्ध-दर्शन और बौद्ध साहित्य के अनुद्घाटित अशो की अनुसधानपरक व्याख्या– दोनो भिन्न क्षेत्रो मे राहुल के सहज एवम् पाण्डित्यपूर्ण व्यक्तित्व की झलक पाई जा सकती है।

वास्तव मे राहुल के सम्पूर्ण साहित्य मे जो तन्मयता है, गाभीर्य है उसका कारण उनका व्यापक जीवनानुभुव है, भ्रमण के दौरान जीवन की बहुरगी छटाओ तथा विरूपताओ का साक्षात्कार है। 'कागद की लेखी' के बजाय 'आखिन देखी' पर भरोसा करने के कारण ही उनका साहित्य प्रभविष्णुता-सपन्न है।

घुमक्कडी पर केन्द्रित तथा १९४८ मे प्रकाशित १६८ पृष्ठ की कृति 'घुमक्कड शास्त्र' की भूमिका मे राहुल ने लिखा है–''घुमक्कडी का अकुर पैदा करना इस शास्त्र का काम नही, बल्कि जन्मजात अकुरो की पुष्टि, परिवर्धन तथा मार्ग प्रदर्शन इस ग्रथ का लक्ष्य है।'' यद्यपि लेखक ने इस कृति मे यह दावा नही किया है कि 'घुमक्कडो के लिए उपयोगी सभी बाते सूक्ष्म रूप से यहाँ (कृति मे) आ गई है, तथापि जिन शीर्षको मे कृति को विभाजित किया गया है वे भ्रमण के महत्व के साथ-साथ घुमक्कडी से सबधित विविधि आयामो का विस्तृत विवेचन करते है। पुस्तक का पहला निबन्ध है 'अथातो घुमक्कड जिज्ञासा'। निबन्ध की शुरुआत मे लेखक ने शीर्षक की सस्कृतनिष्ठ भाषा का कारण बताते हुए लिखा है–''आखिर हम शास्त्र लिखने जा रहे है, फिर शास्त्र की परिपाटी को तो मानना ही पडेगा।'' 'जिज्ञासा' के बारे मे वे कहते है–''शास्त्रो मे जिज्ञासा ऐसी चीज के लिए होनी बतलाई गई है जो कि श्रेष्ठ तथा व्यक्ति और समाज के लिए परम हितकारी हो।'' इसी क्रम मे लेखक ने ब्रह्म को जिज्ञासा का विषय बनाने के लिए व्यास का उल्लेख किया है और यह घोषणा की है कि– ''मेरी समझ मे दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है घुमक्कडी। घुमक्कड से बढकर व्यक्ति और समाज का कोई हितकारी नही हो सकता।''

राहुलजी ने दुनिया को गतिशील बनाने तथा विकास के रास्ते प्रशस्त करने का श्रेय घुमक्कडी को ही दिया है। 'घुमक्कड-शास्त्र' के तीसरे पृष्ठ मे वे लिखते है– ''कोलम्बस और वास्को द गामा दो घुमक्कड ही थे जिन्होने पश्चिमी देशो के बढने का रास्ता खोला।'' घुमक्कड धर्म की आवश्यकता का बखान करते हुए उन्होंने लिखा है– ''जिस जाति या देश ने इस धर्म को अपनाया, वह चारो फलो का भागी हुआ और जिसने इसे दुराया, उसके लिए नरक मे भी ठिकाना नही। आखिर घुमक्कड धर्म को भूलने के कारण ही हम सात शताब्दियो तक धक्का खाते रहे, ऐरे-गैरे जो भी आये, हमे चार लात लगाते गए।''

अपने कथ्य के विवेचन मे लेखक ने शैली को अत्यत रोचक तथा भाषा को सहज बनाए रखा है। राहुल की मान्यता है कि दुनिया के अधिकाश धर्मनायक घुमक्कड रहे है। बुद्ध को सर्वश्रेष्ठ घुमक्कड घोषित करते हुए राहुल ने बताया है कि बुद्ध ने सिर्फ पुरुषो के लिए ही नही स्त्रियो के लिए भी घुमक्कडी का उपदेश दिया था। राहुल लिखते है– ''घुमक्कड धर्म, ब्राह्मण धर्म जैसा सकुचित धर्म नही है, जिसमे स्त्रियो के लिए स्थान न हो। स्त्रियाँ

इसमे उतना ही अधिकार रखती है, जितना पुरुष।'' उनके अनुसार शकराचार्य को देश की चारो दिशाओ की यात्रा ने ही, घुमक्कडी धर्म ने ही, बडा बनाया। इसी प्रकार रामानन्द, चैतन्य, ईसा, गुरुनानक, दयानन्द आदि भी इसी धर्म के बल-बूते पर महान् हुए है। इसीलिए राहुल ने घुमक्कड धर्म को ससार का 'अनादि सनातन धर्म' कहा है और उसे 'आकाश की तरह महान् और समुद्र की तरह विशाल' माना है। उनकी धारणा है कि ''घुमक्कडी के लिए चिन्ताहीन होना आवश्यक है और चिन्ताहीन होने के लिए घुमक्कडी आवश्यक है। दोनो अन्योन्याश्रय होना दूषण नही भूषण है।'' इसी लेख मे वे स्पष्ट करते है कि घुमक्कड धर्म की 'दीक्षा वही ले सकता है, जिसमे बहुत भारी मात्रा मे हर तरह का साहस हो।' लेख का समापन करते हुए वे इस्माइल मेरठी की दो पक्तियॉ का हवाला देते है–

सैर कर दुनिया की गाफिल जिदगानी फिर कहॉ,
जिन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी कहॉ ।

अपनी पाठ्यपुस्तक मे पढे हुए इस शेर ने राहुल को बचपन से ही यात्रा की ओर उन्मुख कर दिया था। घूमने-फिरने मे व्यापक रुचि का कारण नाना-नानी के यहॉ लालन-पालन भी माना जा सकता है। सेना मे सिपाही के रूप मे उनके नाना ने दक्षिण भारत का व्यापक भ्रमण किया था। अवकाश ग्रहण के बाद नाती केदार (राहुल) को नाना के मुख से अतीत के रोचक यात्रा-वृत्तान्तो को सुनने का अवसर प्राप्त हुआ।

घर छोडकर यात्रा के प्रति आकृष्ट होने का एक बडा कारण था अल्पावस्था मे उनका बेमेल विवाह। अपनी वायु से ५ वर्ष बडी पत्नी को पाकर वे अन्यमनस्क होकर उमरपुर के बाबा परमहस के पास बैठने लगे। बाबाजी ने राहुल को ससार भ्रमण का परामर्श दिया। इन सभी बातो ने मिलकर केदार को घुमक्कड बना दिया।

भ्रमण के प्रति इस आकर्षण ने राहुल को जीवन और जगत के व्यापक अनुभव की जानकारी दी। इसे उलटकर यो भी कह सकते है कि जीवन और जगत के बारे मे अपनी जिज्ञासा के कारण ही उन्होंने घुमक्कडी वृत्ति अपनायी। (जो भी हो इस रुझान ने जिन ग्रन्थो से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया, वे है– मेरी लद्दाख यात्रा, लका, तिब्बत मे सवा वर्ष मेरी यूरोप यात्रा, मेरी तिब्बत यात्रा, यात्रा के पन्ने, जापान, ईरान, रूस मे पच्चीस मास, घुमक्कड शास्त्र, एशिया के दुर्गम खण्डो मे। इन कृतियो को यात्रा साहित्य के अतर्गत परिगणित किया जाता है।

जीवनी साहित्य के अतर्गत उनकी निम्नलिखित पुस्तके रखी जा सकती है– मेरी जीवन यात्रा (१, २) सरदार पृथिवी सिंह, नये भारत के नये नेता, राजस्थानी रनिवास, बचपन की स्मृतियॉ, अतीत से वर्तमान, स्टालिन, कार्ल मार्क्स, लेनिन, माओत्से-तुग, घुमक्कड स्वामी, असहयोग के मेरे साथी, जिनका मै कृतज्ञ, वीर चद्रसिंह गढवाली।

यात्रा और भ्रमण से सबधित अन्य कृतियाँ है– सोवियत भूमि (१, २), सोवियत मध्य एशिया, किन्नर देश, दार्जिलिंग परिचय, कुमाऊँ, गढवाल, नेपाल, हिमाचल प्रदेश, जौनसार-देहरादून, आजमगढ-पुरातत्व।

राहुलजी ने घुमक्कडी के मार्ग मे धन-सपत्ति की अपेक्षा बल-बुद्धि की महत्ता पर बल दिया है– ''घुमक्कड को जेब पर नही अपनी बुद्धि बाहु और साहस पर भरोसा रखना चाहिए।'' (घुमक्कड शास्त्र, पृष्ठ २५)। परन्तु इसी कृति मे लेखक ने घुमक्कडी को हल्के रूप मे ग्रहण करने वालो को सचेत करते हुए उनके दायित्व को भी रेखाकित किया है– ''घुमक्कड को समाज पर भार बनकर नही रहना है। उसे आशा होगी कि समाज और विश्व के हरेक देश के लोग उसकी सहायता करेगे लेकिन उसका काम आराम से भिखमगी करना नही है। उसे दुनिया से जितना लेना है, उससे सौ गुना अधिक देना है। जो इस दृष्टि से घर छोडता है वही सफल और यशस्वी घुमक्कड बन सकता है।''

घुमक्कडी के लिए उपयुक्त आयु और अनिवार्य शैक्षणिक योग्यता का विवेचन करते हुए राहुलजी ने अपने अनुभव से यह बताया है कि, ''जिस व्यक्ति मे महान घुमक्कड का अकुर है, उसे चाहे कुछ साल भटकना ही पडे, किन्तु किसी आयु मे भी निकलकर वह रास्ता बना लेगा। इसलिए मै अधीर तरुणो के रास्ते मे रुकावट डालना नही चाहता। लेकिन ४० साल की घुमक्कडी के तजुर्बे ने मुझे बतलाया है कि यदि तैयारी के समय को थोडा पहले ही बढा दिया जाय तो आदमी आगे बडे लाभ मे रहता है।'' (घुमक्कड शास्त्र पृ० ३०)

लेखक ने घुमक्कड के लिए इतिहास और भूगोल-ज्ञान की अनिवार्यता की ओर तो सकेत किया ही है, भाषाओ और जलवायु की जानकारी को भी आवश्यक बताया है। उन्होंने लिखा है कि घुमक्कड का यात्रा साधनो की सुविधा के प्रति आग्रही होना अयोग्यता है। उसे तो पीठ पर सामान लादकर चलने का जीवट रखना चाहिए और बैलगाडी-खच्चर से लेकर हवाई जहाज तक की यात्रा पर अवलबित रहना चाहिए। उसका शरीर 'कष्टक्षम' ही नही 'परिश्रमक्षम' भी होना चाहिए। स्वावलबन पर बल देते हुए राहुल लिखते है– ''घुमक्कड मे और गुणो के अतिरिक्त स्वावलबन की मात्रा अधिक होनी चाहिए। सोने और चाँदी के कटोरो के साथ पैदा

हुआ व्यक्ति घुमक्कड की परीक्षा मे बिलकुल अनुत्तीर्ण हो जाएगा, यदि उसने अपने सोने-चॉदी के भरोसे घुमक्कडचर्या करनी चाही। वस्तुत सपत्ति और धन घुमक्कडी के मार्ग मे बाधक हो सकते है। केवल उतना ही पैसा पाकेट मे लेकर घूमना चाहिए, जिसमे भीख मॉगने की नौबत न आये और साथ ही भव्य होटलो और पाठशालाओ मे रहने को स्थान न मिल सके। इसका अर्थ यह है कि भिन्न-भिन्न वर्ग मे उत्पन्न घुमक्कडो को एक साधारण तल पर आना चाहिए।'' (घुमक्कड शास्त्र, पृष्ठ-३९) इसी पृष्ठ पर वे लिखते है कि घुमक्कड धर्म की यह भी विशेषता है कि वह 'किसी जात-पात को नही मानता, न किसी धर्म या वर्ण के आधार पर अवस्थित वर्ग ही को।'

राहुल के इस निष्कर्ष मे उनके वैचारिक रुझान का स्पष्ट आभास मिलता है। साम्यवाद का गहराई से अध्ययन, मनन एव अवलबन ग्रहण करने वाले राहुल ने घुमक्कडी मे भी पूजीवादी प्रवृत्ति का घोर विरोध किया है– ''सोने-चॉदी के बल पर बढिया से बढिया होटलो मे ठहरने, बढिया से बढिया विमानो की सैर करनेवालो को घुमक्कड कहना उस महान् शब्द के प्रति भारी अन्याय करना है। इसलिए यह समझने मे कठिनाई नही हो सकती कि सोने के कटोरे को मुँह मे लिये पैदा होना घुमक्कड के लिए तारीफ की बात नही है। यह ऐसी बाधा है, जिसको हटाने मे काफी परिश्रम की आवश्यकता होती है।'' (घुमक्कड शास्त्र, पृष्ठ-३९)

लेखक ने इस वृत्ति के लिए आत्मसम्मान को महत्वपूर्ण माना है तथा चापलूसी की निन्दा की है। उनका विचार है– 'वस्तुत घुमक्कड को अपने आचरण और स्वभाव को ऐसा बनाना है, जिससे वह दुनिया मे किसी को अपने से ऊपर न समझे, लेकिन साथ ही किसी को नीचा भी न समझे। समदर्शिता घुमक्कड का एकमात्र दृष्टिकोण है, आत्मीयता उसके हरेक बर्ताव का सार है।' (घुमक्कड शास्त्र, पृष्ठ-४०)

राहुल ने घुमक्कडी को साधन और साध्य दोनो माना है। उनके अनुसार– ''अभी तक लोग घुमक्कडी को साधन मानते थे और साध्य मानते थे मुक्ति - देव दर्शन को, लेकिन घुमक्कडी केवल साधन नही वह साथ ही साध्य भी है।'' (पृष्ठ-१५४) लेखक ने ग्रथ के समापन मे यह आशा व्यक्त की है कि अधिक अनुभव और क्षमता वाले विचारक अपनी समर्थ लेखनी से निर्दोष ग्रथ की रचना कर सकेगे।

इस निबध के आरभ मे कहा गया है कि यात्रा के प्रति आकर्षण ने ही राहुल के कृतित्व को बहुआयामी बनाया है, इसके समर्थन मे 'घुमक्कड शास्त्र' की इन पक्तियो का हवाला दिया जा सकता है– ''यात्राओ के लेखक दूसरी वस्तुओ के लिखने मे भी कृतकार्य हो सकते है। यात्रा मे तो कहानियॉ बीच मे ऐसे ही आती रहती है, जिनके स्वाभाविक वर्णन से घुमक्कड कहानी लिखने की कला और शैली को हस्तगत कर सकता है। यात्रा मे चाहे प्रथम पुरुष मे लिखे या अन्य पुरुष मे, घुमक्कड तो उसमे शामिल ही है, इसलिए घुमक्कड उपन्यास की ओर भी बढने की अपनी क्षमता को पहचान सकता है, और पहले के लेखन का अभ्यास इसमे सहायक हो सकता है।'' (पृष्ठ १४१) इस उद्धरण से यह बात आसानी से समझी जा सकती है कि राहुल का कहानीकार या उपन्यासकार रूप इसीलिए इतना महत्वपूर्ण है। इस सदर्भ मे पृष्ठ १४४ की इन पक्तियो का भी उल्लेख किया जा सकता है– ''घुमक्कडी लेखक और कलाकार के लिए धर्म-विजय का प्रयाण है, वह कला-विजय का प्रयाण है, और साहित्य-विजय का भी। वस्तुत घुमक्कडी को साधारण बात नही समझनी चाहिए, यह सत्य की खोज के लिए, कला के निर्माण के लिए, सद्भावनाओ के प्रसार के लिए महान् दिग्विजय है।''

तभी तो घुमक्कड स्वामी, घुमक्कडशास्त्री राहुल का तरुण-तरुणियो को परामर्श है– ''दुनिया मे मानुष-जन्म एक ही बार होता है और जवानी भी केवल एक ही बार आती है। साहसी और मनस्वी तरुण-तरुणियो को इस अवसर से हाथ नही खोना चाहिए। कमर बॉध लो भावी घुमक्कडो। ससार तुम्हारे स्वागत के लिए बेकरार है।''

■

□ डॉ० मजुरानी सिह

दिशा

प्रताप बाबू जब से कलकत्ते आए है उन्हे यहाँ एक ही चीज अच्छी लगती है, घर से रोज टहल कर लेक की तरफ आना, घूमना और बेच पर बैठ जल को निहारना घटो। इधर आते हुए उन्हे यह ब्रिज क्रॉस करना पडता है और तब ब्रिज के नीचे से आती-जाती ट्राम मे रोज बच्चो और माँओ की भीड देखते है। अपने वजन से भी भारी बैग और पानी का फ्लास्क टॉगे हुए बच्चे। प्रताप बाबू टहलते हुए प्राय सोचते है महानगर की ऐसी सुबह के बारे मे। सुबह भी बटी हुई है जैसे। बस-ट्राम चालको की सुबह, बच्चो और मॉओ की सुबह, चाय और मिठाई की दुकानो की सुबह और भिखारियो की सुबह मानो एक बार होती है – एकदम तडके। दफ्तर, फैक्टरी आदि जाने वाले लोग तबतक सोए रहते है। उनकी सुबह साढे आठ बजे होती है। तब जो हडबडी शुरु होती है कि क्या कहना। लोग दौडे-भागे बस स्टाप पर पहुँचते और अपने को लाद देते है बसो मे। प्रताप बाबू सुनते तो खूब है – इस लाइफ के बारे मे जिसे ''फास्ट'' कहा जाता पर समझते जरा भी नही। इस 'फास्टनेस' को समझने का महत्व है अपने 'स्लोनेस' को समझे। अपने बचपन से लेकर अपने बुढापे तक के स्लोनेस को। तब - जब कही दूर अजान के स्वर के साथ ब्रह्म मुहूर्त मे माता-पिता दोनो ही उठ जाते थे और सम्मिलित कठ से आराधते – शाताकारम भुजगशयनम्, पदमनाभम्, सुरेश और फिर या कुन्देन्दु तुषारहार धवला वाली सरस्वती वदना तो स्वर के आरभ के साथ पॉचो भाई बहन उठ बैठते थे। सभी तुतले उच्चारण के साथ सम्मिलित हो जाते थे। प्रताप बाबू को अभी भी अपनी माँ याद आती है – एक विशिष्ट व्यक्तित्व के रूप मे थी। वेद-उपनिषद का ज्ञान तो उन्हे बहुत बाद मे हुआ पर माँ बचपन मे ही वेद से एक अनुदित पाठ मीठे-सुरीले कठ से गाती थी, उन्हे सिखलाती थी। मॉ नहाधोकर पूजा पाठ मे लग जाती थी और पिता बच्चो को लेकर खेतो की तरफ निकल जाते थे। तब कोई बाथरूम, लेट्रिन तो था नही सबको दूर गाँव के खेतो, बगीचो और नदियो की तरफ निकलना पडता था। रास्ते भर पिता बच्चो के रग बिरगे सवालो का जवाब देते चलते थे और दुनिया भर की नई-नई बाते, नई-नई जानकारियाँ भी देते थे। इसी कृषक पिता और गृहस्थ माँ ने उन्हे गॉव से बाहर शहर भी भेजा था पढने को। शहर गॉव से पचास किलोमीटर दूर था। चार मील पैदल चल कर बस पकडनी पडती थी, यह बस दिन मे सिर्फ एक ही बार आती थी। तब चार बजे सुबह माँ उन्हे रोटी सब्जी बनाकर खिलाती और साथ बाँध भी देती थी। सबसे बडे थे प्रताप बाबू और बुद्धि भी तीव्र थी उनकी। वैसे भी पिता का सस्कारित विश्वास था कि अगर बडा पाया सभल गया तो सब सभल जाएगा। मॉ की महत्वाकाक्षा थी कि बेटा बडा अफसर बने। पिता को अपनी पत्नी से बेहद प्रेम था उनकी ऐसी इच्छाओ को पूरी करने की उन्होंने हमेशा कोशिश की। कोशिश का मतलब आज की तरह बैंकिंग या घूसघास थोडे ही था, बस अच्छे सस्कार, सुविधा और खर्च देना भर था। जैसा कि गाँवो के लोगो के मन मे एक ग्रथि होती है कि वे गवार है, अपढ है, प्रताप बाबू के पिता मे भी थी। प्रतापबाबू को अपने पिता की इस भावना से ग्लानि होती थी। ये लगातार प्रथम श्रेणी पाने की कोशिश करते – पाते भी। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि भारत के पच्चीस-तीस प्रतिशत साक्षर लोग यहाँ के निरक्षर लोगो के कष्ट और त्याग का परिणाम है। इसीलिए अफसरी मिलने और शहरो मे रहने के बावजूद इनके दिल मे गाँव की जमीन, गॉव की हवा, नदी, नहर, बगीचे और गाँव के लोग राज करते रहे। जहाँ शिक्षा का सवाल है, शहर तो बहुत बाद मे शुरू हुआ उनके जीवन मे, परन्तु जो अनुभव, जो ज्ञान गॉव की इस माटी, पानी और आकाश ने गूथा उनके भीतर, रोपा उनके भीतर, वह क्या शहर मे सभव था ? प्रताब बाबू को याद है, होश के साथ ही वे धान, मकई, गेहूँ, अरहर, मूग, मसूर, उड्द, मटर, खेसारी, चना, सरसो, राई, तिल, आलू, बैगन, टमाटर, गोभी, साग, मिर्च, जीरा, धनिया, सोआ, मेथी से लेकर आम, जामुन, कटहल, अमरूद, वेर, नारियल, खीरा, ककडी, तरवूज आदि तमाम खाने-पीने वाली चोजो, पेड-पौधो के नाम न केवल जानते थे वल्कि उनके अग-प्रत्यगो को पहिचानते थे, उनका जीता-जागता रसानुभव था। वे जानते थे कि

धान की रोपाई कब होती है, कब कटनी होती है, कब रब्बी की फसल लगायी जाती है, कब दलहन और तेलहन रोपे काटे जाते है। बारहो नक्षत्रो और महीनो के नाम कठस्थ थे उन्हे। उन्हे आश्चर्य होता कि यह कैसा जीवन है जहॉ लोग उन चीजो के बारे मे न जानते, न जानने की उत्सुकता रखते कि जिन चीजो का सबध उनके प्राणो से है, उन्हे लगाने वाली जगह कहॉ है, लोग कहॉ है ? प्रताप बाबू को बडा दुखद और हास्यास्पद लगता कि पेडो को किताबो मे पढाया जाता है, टी०वी० मे दिखाया जाता है, कापियो मे आका जाता है। खेलो को खेला कम, टी०वी० मे देखा अधिक जाता है।

दो महीने हुए थे उन्हे आये हुए। इजीनियर बेटे ने बहुत आग्रह कर बुलाया था। प्रताप बाबू स्वय तो एस०डी०ओ० के पद से हाल मे ही रिटायर हुए थे। बाकी जीवन के लिए कोई सतोषप्रद शैली ढूँढने की दिशा मे सोच रहे थे। कलकत्ता आते हुए सोचा था कि कुछ लबी अवधि तक रहेंगे, बच्चो को पढाने मे मदद करेंगे। असल मे सरकारी नौकरी की वजह से अपने बच्चो की पढाई मे खुद अपना योगदान नही दे पाये थे वे। इसकी कसक उनके भीतर भी थी और बच्चो के मन मे भी पिता के लिए एक शिकायत थी। बुढापे मे अपनी इस सोच और योजना के पीछे इगेजमेट की तलाश भी थी और शायद इस कसक से छुटकारे की भी। पर कलकत्ता आकर तो कही इसका द्वार दरवाजा दिखायी न दिया उन्हे। वे आए। काफी खातिर हुई। बेटे ने ड्राइवर और बच्चो के सग चिडियाखाना, म्यूजियम, विक्टोरिया मेमोरियल, प्लेनेटेरियम, बेलूरमठ और दक्षिणेश्वर तमाम दर्शनीय स्थलो पर भेजा उन्हे, घुमाया कहना चाहिए। दो-चार दिनो तक उनके आने की गहमागहमी रही घर मे। फिर घर के नियमित रूटीन मे वे भी एक रूटीन हो गए।

ड्राइवर सुबह बच्चो को लेकर स्कूल जाता था। बहू बच्चो को झटपट तैयार कर देती थी। बेटा बेड-टी लेकर भी साढे आठ बजे तक सोया रहता था या बिस्तर पर पडे-पडे टी०वी० न्यूज और कीप-फिट देखता रहता था। टी०वी० से न्यूज सुनने की बात प्रताप बाबू की समझ मे आती थी पर कसरत को टी०वी० मे देखने की बात बिल्कुल समझ मे नही आती थी। और तो और कसरत को कीप-फीट क्यो कहेंगे ? योग को योगा क्यो कहेगे ? देसी नामो से क्या इनकी एनर्जी कम हो जाती है ? ऐसी आधुनिकता पर कई सवाल थे उनके पास पर जवाब हँसकर टाला जाता था।

दोपहर मे बच्चे आते – खा-पीकर थोडा आराम करते, फिर शाम जुट जाते पढाई मे। प्रताप बाबू ने जैसा कि सोचा था, चाहा कि बहू का यह दायित्व अपने हाथो मे ले ले। यही सोच उन्होने कल बच्चो को बुलाया अपने पास।

पर वे बहू के व्यवहार से हतप्रभ हो गए। प्रताप बाबू हिन्दी और अग्रेजी मे गोल्डमेडलिस्ट थे, बहू को पता था। यह लडकी बहुत पढी-लिखी तो न थी पर अग्रेजी माध्यम से इटरमीडियट कर लिया था। उनके मित्र की लडकी थी। प्रताप बाबू के लडके का उससे प्रेम विवाह था, जिसमे दोनो परिवारो को एक दूसरे का सबध सहर्ष स्वीकार था। बच्चो को बुलाने पर छूटते ही उसने कहा – बडा टफ है इन लोगो का कोर्स, आप से होगा नही, स्वर धीमा था पर दृढ। इधर बच्चो का मूड बन गया, अपने इस नए टीचर से पढने का। इन कुछ दिनो मे दादाजी उनके लिए एक मजेदार जीव सिद्ध हो चुके थे – एक एडवेचर, याकि नए-नए रहस्यो के खदान। इससे भी बडी बात थी कि वहॉ किलकने-फुदकने की छूट भी अधिक थी। टीचर के रूप मे उनकी परीक्षा भी करनी थी। वे दौडे चले गए दादाजी के पास। प्रताप बाबू का बहू से आहत मन बच्चो के उत्साह मे भुला गया। उन्होने बच्चो का भारी बस्ता उल्टा-पल्टा। इतनी किताब-कापियॉ तो उन्होंने मैट्रिक तक मे भी न देखी थी। बडा पॉच साल का था, के०जी० मे पढ रहा था। छोटा ढाई का, दो-चार दिनो से नर्सरी जा रहा था।

इसलिए प्राय रोज ही स्कूल जाते समय वह एक तमाशा खडा कर देता था। नही स्कूल नही जाएगा। तब तरह-तरह से मिठाइयॉ, चाकलेट तथा अलग-अलग लोभ देकर उसे भेजा जाता था। प्रताप बाबू के वश मे होता तो वे उसे स्कूल जाने से बचा लेते। ढाई साल के बच्चे को स्कूल भेजकर क्या पढाना है भला ? उनकी सोच मे तो मॉ ही अभी पाठशाला है उसकी। अभी उसे स्कूल भेजने का मतलब तो सिर्फ उससे निजात पाना है। बस। वात्सल्य के ऐसे आधुनिकीकरण पर वे ऐसा ही सोचते है। पर ऐसा उनके सोचने से क्या हो सकता था। अपनी हैसियत के विलोपन का अहसास पूरी तरह से था उन्हे। उन्हे तो बहुत कुछ अच्छा नही लगता था और तो और इन पोतो का नाम तक लेने मे परेशानी होती थी उन्हे। जैकी और डॉन। ये भी कोई नाम है भला ? नाम एक महत्त्वपूर्ण सज्ञा है उनकी नजर मे। वह तत्काल व्यक्तित्व का परिचायक हो न हो पर उसका अपने आप मे एक सास्कृतिक, ऐतिहासिक या सामाजिक अर्थ गाभीर्य तो प्रकट होना ही चाहिए। वह भी न सही उसके पीछे कम से कम माता-पिता की महत्वाकाक्षा या कल्पना तो झाकती हो कही। उन्होने अपने इन दोनो पोतो का नाम रक्खा था, यशवन्त प्रताप और दिग्विजय प्रताप। स्कूल मे बच्चो के ये ही नाम नामाकित थे पर पुकार मे ये बदल कर जैकी और डॉन हो गये थे। इस तरह अच्छा न लगना तो कितनी-कितनी बार कितनी-कितनी घटनाओ मे घटता चला जा रहा था घर मे।

आप को अच्छा नही लगता तो न लगे, घर की हवा प्राय यह कह कर चल देती उन्हे। मानो वह बहुत दिनो से उन्हे बिना पूछे बन्नी-

बदलती चली जा रही थी। बहुत सारे मामले उनकी सम्मति के बिना तय करती जा रही थी। जब कि ऐसा भी नही था कि अगर वह उनसे मशविरा करती तो हमेशा विपरीत ही पाती। बेटे ने जब गॉव की जमीन बेचकर शहर मे फ्लैट बनवाया तब उन्हे विरोध कहॉ हुआ था ? हॉ बासिक भूमि, बापदादो की निशानी को भले ही उन्होंने बिकने न दिया था। बासिक भूमि बेची नही जाती उसे किसी को बसने के लिए जरूर दान दी जा सकती है। इसके अतिरिक्त पुराने पलग, आलमारी, बर्तन सब तो बेचे गए थे, तब उन्होने कोई रुकावट कहॉ डाली ? कितना कुछ तो स्वीकारते ही चले आ रहे थे, जमाने और अगली पीढी के लिए। लेकिन स्वीकारने के पीछे कोई विचार तो हो। मूल्यहीनता मे मूल्य तोडने की बात समझ मे नही आती थी उन्हे। खुद उन्होने भी तो कितने पुराने मूल्य, कितने खडहर ध्वस्त किये थे। क्या उन्होंने अपने यहॉ बलिपूजा नही रोकी ? क्या उन्होने विदेशी कपडो की होली नही जलायी ? क्या उन्होंने अपने माता-पिता को गॉधी और खद्दर का मतलब नही समझाया ? तब पद्रह-सोलह वर्ष के तो थे वे ? सत्य, अहिसा, चरखा और सत्याग्रह के लिए गॉधी बाबा कैसे लकुटिया लिए मानो हमेशा उनके किशोर मन के आगे-आगे चलते रहते थे। गॉधी उन्हे आधुनिकता के भी प्रतीक लगते थे और क्राति के भी। उनकी बदौलत ही तो गॉव मे जैनी बाबा के दालान मे चरखा सेन्टर खुला था और गॉव की महिलाऍ दोपहर से शाम का समय सात्विक सृजन मे बिताने लगी थी। उस सेटर से पहले तो घर की देहरी लक्ष्मण रेखा थी उनके लिए। कितना अच्छा लगता था प्रताप बाबू को वहॉ अपनी मॉ का जाना।

आजादी के आदोलन की वह लहर, वह ज्वार अपनी ऑखो से देखना और उसमे तन-मन से नहाना जीवन का लोमहर्षक अनुभव था उनके लिए। अविस्मरणीय अनुभव। उसका स्मरण आज भी उन्हे आपूर्ण स्वच्छ कर देता है, आलोडित और आर्द्र। आर्द्र इसलिए भी कि उपलब्ध आजादी के बाद क्रमश फैलता हुआ अग्रेजवाद उन्हे सन्न और हतप्रभ कर देने के लिए काफी था। पूरा देश पूरा युग न उनके हाथ था न उसके लिए वे अपना दोष ढूँढ सकते थे, पर अपनी सतानो के लिए अपनी चूक की तलाश मे अक्सर पड जाते थे। अपने जानते तो उन्होंने अग्रेजियत को कभी प्रश्रय नही दिया था, अपने घर। इगलिश मीडियम मे पढाया नही उन्हे। रेडियो हो कि टी०वी०, फ्रिज, गाडी ऐसी किसी सुविधावाद को प्रवेश का अवसर न दिया था उन्होंने। बच्चे बिगडे नही थे न बरबाद हुए थे, फिर भी कही न कही से पिता और सतानो की रुचि का फासला बडा हो गया था। किसने सिरजा था उसे ? अपनी हिस्सेदारी कहॉ ? सवाल उठते थे पर जवाब कहॉ मिलता ? वक्त-वक्त पर बच्चो के आरोप पहुँचते थे उनके पास। पिता ने घूस नही लिया, तो क्या ? सरकारी सुविधाओ का घरेलू उपयोग न किया तो क्या सरकार ने कोई तमगा दे दिया ? क्या रिटायरमेन्ट की उम्र बढा दी ? ऐसे कितने सारे दोष ढूँढ कर रक्खे थे उनके सामने बच्चो ने। इसलिए ऐसा कोई हक ही न बनता था उनका इन पोतो पर। उनके मम्मी-डैडी अपने ढग से सस्कारित करेंगे उन्हे। फास्ट और मार्डन बनाऍगे उन्हे।

बच्चो की किताबे उलट-पलट कर देखने लगे प्रताप बाबू कि बडे ने इस नये टीचर की परीक्षा प्रारभ कर दी।

दादाजी! कैन यू मल्टीप्लाइ द एलेवन इटू एलेवन ?

दादाजी मुस्कराए – जवाब दिया वन हड्रेड ट्वेन्टी वन।

एड एलेवन इटू ट्वेल्व ? वन थर्टी टू।

एड ट्वेल्व इटू ट्वेल्व ?

– वन फोर्टी फोर।

अच्छा फाइव इटू वन एण्ड हाफ

– सेवन हाफ।

बच्चा चिल्लाया। वेरी गुड, हाउ फास्ट। नाइस यू आर ?

बट वेयर इज योर कैलकुलेटर ?

'इन आवर माइड।'

उन्होंने याद किया अपने रसिकलाल गुरुजी और उनके बेतो को। कैसे लाइन लगवाते थे और कैसे लय मे एक साथ सबसे पहाडे रटवाते थे। कभी उनकी बेत नही खानी पडी थी उन्हे, यह सोच आज भी गर्व अनुभव करते थे वे। सवय्या, डेढा, ग्यारहा सब याद करवाया था उन्होंने। बीस तक के पहाडे का प्रचलन तो बहुत बाद मे हुआ। फिर केलकुलेटर और कप्यूटर तो अब यह सब भी खत्म कर रहा है। तन-मन की इतनी बचत किसलिए, यह उनकी समझ के बाहर था। बच्चो के साथ रमते हुए उन्होंने कहा – अच्छा बेटे, चलिए अब एक कविता सुनाइये।

– कविता ? ह्वाट इज कविता ?

'कविता नही जानते ? पोएम जानते हो ?'

– यस, शुरू हो गया वह –

'ट्विन्कल ट्विकल लिटल स्टार '

'हिन्दी मे कोई ?'

– नो इन हिन्दी। केवल, अ, आ, इ, ई वछ।

'हिन्दी मे भी आनी चाहिये बेटे। यह अपनी भाषा है न। मातृभाषा।'

– मातृभाषा ?

'हॉ मातृभाषा है हिन्दी तुम्हारी। मदरटग कहते है इगलिश मे।'

आओ एक गीत सीखो – एक कविता – पूर्व दिशा मे–

वच्चो ने अनुकरण किया – पूल्व दिछा मे

– उदित सूर्य को –

– उदित छूल्य को

अदर से बहू ने पुकारा बच्चो को। गीत की लडी बीच मे ही छूटी, बच्चा भीतर भागा।

प्रताप बाबू के कान मे बहू का कडकता स्वर पडा – 'डिड यू फिनिस योर होमवर्क ?' बच्चा शायद सहमा-सा गुमसुम खडा होगा – प्रताप बाबू को लगा। लगा कि उन्हे उसके सकट को शेयर करना चाहिए। वे उठे और अदर की तरफ बढे। तभी सहमता हुआ स्वर पर साफ सुना उन्होने – आई एम लरनिंग मातृभाषा मम्मी।

– ह्वाट ? मम्मी चिल्लायी। तब तक श्वसुर सामने थे।

'इनका होमवर्क करवाइये, वरना स्कूल से कप्लेन आएगी।'

बहू ने अनुशासित होकर मगर आदेश के स्वर मे कहा।

तत्क्षण बच्चा उनको सौपा तो गया पर उन्हे लगा कि उनसे छीन लिया गया है उसे। वैसे भी जो आदेश था, उसका पालन करना उनके लिए मुश्किल था। उनके लिए मुश्किल था कि बच्चो को आकाश, सूरज, चॉद, सितारे पहले न बताकर स्काई, सन, मून एण्ड स्टार बताए उन्हे। यह तो जाहिर था कि प्रताप बाबू के लिए जितना मुश्किल नही था उससे कही तकलीफदेह था। फिर भी सहमे बच्चो को गोद मे उठाकर ले आए वे अपने कमरे मे। कमरे मे आते ही बच्चा गले चिपटा और फफककर रो पडा। प्रताप बाबू ने उसे जोर से भीचा छाती से प्यार की उष्मा से सेका। बालपन ही तो था। चोट और सूजन भुलाने मे देर न लगी। फिर ऑसू से भीगे गालो को लगातार चुबनो से सुखा दिया। इतने मे बहुत सवाद हो चुके थे दादा और पोते मे। प्रताप बाबू ने धीरे-से सलाह की उससे। पहले होमवर्क, फिर कथा, कहानी, पहेली गीत सब। बच्चे ने दादा के सहयोग से होमवर्क किया और अदर ले गया मॉ के पास। मॉ देखती और वह खडा रहता, उतनी देर उसके पास धीरज न था, वापस भागा-भागा पुन दादाजी के पास।

– दादाजी! नाऊ देट साग। दादाजी भीग गए अदर से। पर अब रात हो चली थी, उन्हे पता था कि बच्चो की मॉ अभी फिर पुकारेगी उन्हे खाना खिलाएगी। बच्चे सोएँगे फिर। उन्होंने प्यार से गोद मे समेटा उसे – 'बेटे अभी आपको एक अच्छी-सी मजेदार कहानी सुनाते है, गीत सुबह।'

– कहानी ?

'हॉ शार्ट स्टोरी बेटे। उसे अपनी भाषा मे कहानी कहते है।' प्रताप बाबू ने कल्याण निकाला। ''मत्स्यावतार'' की तस्वीर दिखाते हुए कहानी सुनायी।

–'कितना मजा आया।'

दादाजी! बच्चे के मन मे जरूर सवाल खडे हुए थे कि मॉ पहुॅची।

'चलो जैकी-डॉन। कम-कम खाना खालो बेटे।'

बच्चा जानता है उपाय नही है बचने को।

–'दादाजी। मॉरनिंग मे मिलेंगे। तब गीत छिकाएँगे न।'

–'अभी आप खाना खालो, और छो जाओ।

दूसरे दिन रोज की तरह चार बजे प्राय प्रताप बाबू का स्वर आरभ हुआ – या कुन्देन्दु तुषार हार धवला

बच्चा रजाई मे कुनमुनाया। 'मम्मी दादाजी के पास जाऊँ।'

'और थोडा सो जाओ बेटे, थोडी देर मे स्कूल के लिए तैयार होना है ना।'

'नही और नही। थोडी देर के बाद आ जाऊँगा आपके पास,' कहता हुआ रजाई से बाहर निकल आया।

–'जाने दो' यह स्वर बच्चे के डैडी का था। सुबह-सुबह इस तरह नीद का उचटना एकदम से अच्छा नही लगता जिन्हे। प्रताप बाबू ने देखा वादे के अनुसार उनका पोता ब्रह्म मुहूर्त मे उनके पास पहुॅच चुका था। उन्होंने आह्लाद से गोद मे उसे उठाया – चूमा और रजाई मे गरमा कर आरभ किया—

– पूर्व दिशा मे उदित सूर्य को इन ऑंखो से देखते हुए, सौ वर्ष तक हम, जीवित रहे, जीवित रहे, जीवित रहे।

बच्चा अनुकरण कर रहा था।

प्रताप बाबू सामने खिडकी की तरफ अपनी तर्जनी से इशारा कर रहे थे जहॉ सूरज अपने निकलने का रक्तिम सकेत फैला रहा था और बच्चा एकटक उस ओर निहार रहा था–

पता नही कितना सच था पर प्रताप बाबू को लगा कि अपने बच्चो मे हुई चूक का जैसे अब सुधार कर रहे है वे।

रीडर, हिन्दी भवन, विश्वभारती

शांतिनिकेतन-७३१ २३५, पश्चिम बगाल

❑ पद्मचन्द नाहटा

भिक्षा

विष्णुपुर गॉव मे सुब्रत नाम का एक किसान रहता था। उसके पिता विक्रम बाबू मरते समय सुब्रत के लिए पूॅजी तो नाम मात्र ही छोड गये थे। हॉ, एक बडा बजर भू भाग अवश्य छोड गये। सुब्रत ने काफी मेहनत की और उस बजर भूमि को उपजाऊ बना कर अच्छे पैसे जोड लिये। वह अपनी पत्नी और दो बच्चो के साथ शान्तिपूर्वक रह रहा था। उसका सपना था कि वह बडा आदमी कहलाये और गॉव का मुखिया बने। एक रात भोजन करके आराम करते समय उसने अपने दिल की बात पत्नी को बताई और दोनो मिल कर योजना बनाने लगे। यह हुआ कि वे एक भोज का आयोजन करेंगे जिसमे सभी गॉववासी आमत्रित किये जायेंगे। इससे होने वाले मुखिया के चुनाव मे उन्हे वोट मिलेंगे, बच्चो का सम्बन्ध भी अच्छा होगा। तिथि ५ दिन बाद आने वाले पिताजी के श्राद्ध की निश्चित की गयी।

दूसरे दिन से ही सुब्रत तैयारी मे जुट गया। पूरे गॉव को निमत्रण दिया। गॉव के नामी हलवाई को बुला कर सारी व्यवस्था समझा दी गई। आयोजन के दिन सुबह से ही सुब्रत के घर काफी चहल-पहल थी। सारे कार्यकर्ता भी जुट गये और बाजार से सामान आने लगा। घर के पास के दालान मे भट्टियॉ जल रही थी और पकवान बनाये जा रहे थे। साथ ही ४ बडे बकरे भी वहॉ लाये गये थे जिनको एक खूटे से बॉध दिया गया।

एक योगी महात्मा उसी गॉंव की ओर से निकल रहे थे। भिक्षा हेतु गॉंव के भीतर घुसे। गलियो मे खेल रहे बच्चो ने बताया कि आज सुब्रत बाबू के यहॉ पूरे गॉव का भोज है, सभी वही खाना खायेंगे। महात्मा भी उसी ओर चल पडे। सुब्रत घर के बाहर खटिया पर अपने साथियो के साथ व्यवस्था सम्बन्धी चर्चा कर रहा था। आज खुशी से उसका सीना फुला हुआ था क्योंकि आज के बाद वह गॉंव का सबसे बडा आदमी कहा जायेगा। पिछले कई सालो मे किसी ने पूरे गॉव को खिलाने का साहस नही किया था। सुब्रत ने देखा कि एक महात्मा उसी के घर की तरफ चले आ रहे है। उसने मन ही मन सोचा मेरे भाग्य कितने अच्छे है कि आज एक महात्मा चल कर मेरे घर आ रहे है। इनका आदर सत्कार कर इन्हे भी भोजन करवाऊँगा। यह सोच वह उठने को हुआ कि महात्माजी को घर ले आऊँ। किन्तु देखता है कि घर के नजदीक आते-आते महात्मा रुक गये। उनकी दृष्टि उन चार बकरो पर पडी। वे घर के अन्दर न आकर बकरो के नजदीक गये। महात्मा योगी थे, उन्हे पशुओ की भाषा का भी ज्ञान था। उन्होंने देखा कि तीन बकरो की ऑंखो मे मृत्यु का भय था। वे अपना अन्त निकट जान दु खी थे किन्तु चौथा शान्त भाव से खडा था। उसकी ऑंखो मे चमक थी। महात्मा ने उसकी ही भाषा मे उस बकरे को प्रश्न किया कि क्या उसे मरने का भय नही ? बकरे ने कहा हे, महात्मा! मृत्यु तो निश्चित है। फिर बकरे तो कटने के लिये ही जन्म लेते है किन्तु मै आज बहुत खुश हूँ। महात्मा ने अपने ज्ञान से सारी स्थिति समझते हुए भी बकरे से पूछा– तुम्हारी खुशी का क्या कारण है ? बकरे ने कहा–हे योगीराज! मै पूर्व भव मे इसी गॉव मे रहने वाला विक्रम नाम का किसान था। मेरे एक पुत्र था। मै साधारण स्थिति का किसान अपने पुत्र को सारी खुशियॉ न दे सका। इस घर का मालिक सुब्रत मेरा ही पुत्र है। आज इसकी सम्पन्नता और मान देखकर मै इतना हर्षित हुआ हूँ कि मरने का गम नही। औरो के हाथो न मर कर अपने ही घर मे मर रहा हूँ।

महात्मा भिक्षा की आशा छोड वापस लौटने लगे तब तक सुब्रत वहाँ आ पहुँचा। उसने महात्मा के चरण स्पर्श किये और निवेदन करने लगा कि महात्मन! मै धन्य हूँ जो आप जैसे योगी हमारे गॉंव ही नही, घर भी पधारे। आज मेरे पिताजी की वरसी है, अन्दर यज्ञ चल रहा है, आप भोजन करके ही पधारे, इससे मेरे दिवगत पिता की आत्मा को बडी शान्ति मिलेगी। सुब्रत ने महात्मा से अनुनय विनय करते हुए कहा।

महात्मा मुस्कुराये और बडे शान्त भाव से कहा–मै एक सन्यासी हूँ, भिक्षा लेकर खाता हूँ, तुम्हारे यहॉ का भोजन मेरे अनुकूल

नही है। तुम इसे अन्यथा मत लो, मै कही और भिक्षा ले लूँगा। एक बात और जिस पिता की आत्मा की शान्ति की कामना तुम कर रहे हो वह तो तुम्हारे घर मे ही है। यह जो चितकबरा बकरा बँधा है वही तुम्हारे पिता की आत्मा है जो इस बकरे के रूप मे जन्मी है, इसने स्वय मुझे बताया है। महात्मा ने बकरे द्वारा बताई गई पूरी बात दोहरा दी। सुब्रत स्तब्ध रह गया। वह बकरे से लिपट कर रोने लगा फिर थोडी देर बाद बकरो को खोलकर महात्मा के चरणो मे गिर पडा और कहने लगा आपने मेरे हाथो घोर अनर्थ होने से बचा लिया। तब तक गाँव के कई लोग वहाँ एकत्रित हो चुके थे।

महात्मा ने उसे उद्बोधन दिया–

"यह बकरा तुम्हारा पिता है अत तुम्हे पश्चाताप हो रहा है। हर जीव किसी न किसी जन्म मे किसी न किसी के माँ-बाप या दादा दादी रहे है। ८४ लाख जीव योनियो मे भटकती आत्माओ का वध करने से निश्चित रूपेण अपने पूर्वजो की हत्या का सयोग बन सकता है। अत निरीह प्राणियो की हत्या त्याग कर दोहरे पाप से बचो।"

सुब्रत के साथ-साथ पूरे गाँव के लोगो ने यह उद्बोधन सुना एव प्रतिज्ञा की कि वे आज से ही मासाहार का त्याग करते है। और महात्मा को घर के अन्दर आकर भिक्षा ग्रहण करने का अनुरोध किया। सभी की आँखे नम थी।

४, जगमोहन मल्लिक लेन, कोलकाता-७

सीमाएँ

▢ अलका धाडीवाल

जब
मद मे
चूर मानव
नित नये
आविष्कारो से
स्वय को
देता है
उपमा
ईश्वर की ।

तब अनहोनी
होनी होती है
असम्भव
सम्भव होता है
दुर्घटना घटती है ।

अहसास होता है
हमे
अपनी
सीमाओ का

जन्म होता है
बोझ हुई
उसके लिये
बूढी हड्डियाँ

अब वह
ऋण चढाने के
लोभ मे
दूध का कर्ज उतारना
भूल गया ।

▢ जानकीनारायण श्रीमाली

भारतीय शिक्षा

भारतीय सस्कृति मे शिक्षा शब्द अत्यन्त पवित्र, आदर्श और उपकारी माना गया है। 'शिक्षैव शिक्षा' का अर्थ है – गुरु द्वारा शिष्य को दी गई सीख। इस सीख को, शिक्षा को सर्वोपकारिणी माना गया है अर्थात् यह सभी प्रकार के उपकार करनेवाली है। शिक्ष् से शिक्षा का निर्माण हुआ है जो कि सीखने का प्रतीक है और सीखने की प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है। इसलिये शिक्षा भी जीवन पर्यत चलनेवाली प्रक्रिया है। सभी प्रकार की विद्याएँ सीखने से ही फलदाई होती है। वेद मे समता को शिक्षा माना गया है।

भारतीय साहित्य मे वेद और उपनिषद अथाह ज्ञान के भडार है। वैसे तो उपनिषद कहानियो तथा पारस्परिक सवादपूर्वक तत्व का बोध कराते है और इस प्रकार सभी उपनिषद शिक्षाप्रद है किन्तु तैत्तरीय-उपनिषद मे सीधा ही शिक्षा पर प्रकाश डाला गया है। तैत्तरीय-उपनिषद मे शिक्षावली नाम से एक स्वतत्र अध्याय मे शिक्षा की विवेचना करते हुए, शिक्षा प्राप्त करने के साधन, विधि और सावधानियो का विस्तार से उल्लेख किया गया है। इस सब विषय को समझाने के साथ उपनिषद सगर्व प्रश्न करता है – कि-कि-न साधयति कल्पलतैव विद्या – अर्थात् विद्या कल्पलता है जो कि कल्पनामात्र से वाछित फल प्रदान करती है और यह कल्पलता क्या नही कर सकती अर्थात् सव कुछ कर सकती है। आज हम देखते है कि उपनिषद की यह थोथी गर्वोक्ति नही है। आधुनिक विज्ञान की प्रगति, टेलीफोन, दूरदर्शन और अन्तरिक्ष की यात्रा आदि असभव को कल्पलता विद्या ने प्रत्यक्ष सभव करके दिखा दिया है।

शिक्षा से भौतिक और आध्यात्मिक दोनो प्रकार की प्रगति होती है। आध्यात्मिक परिवेश पर, अधिष्ठान पर आधारित भौतिक शिक्षा कल्याणकारी होती है। साथ ही शिक्षा व्यक्ति का चरित्र निर्माण करती है। सतत् सस्कारो से शिक्षित हुए व्यक्ति का आचरण प्राप्त शिक्षा के अनुरूप होता है। इस प्रकार शिक्षा प्रथमत व्यष्टि और फिर समष्टि की रचना करती है।

भारतीय सस्कृति मे शिक्षा का इतना महत्व है कि केवल ३२ वर्ष की आयु मे अपनी जीवनलीला पूर्ण कर लेने वाले जगद्गुरु आद्यशकराचार्यजी ने जिन विषयो को भाष्य के लिए प्राथमिकता से चुना उनमे शिक्षा को आश्चर्यचकित कर देने वाला महत्व देते हुए चुना है। हमाये यहाँ चार पुरुषार्थ–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष है। शिक्षा तीनो पुरुषार्थो को पूर्ण करते हुए व्यक्ति की चरम आकाक्षा मोक्ष को भी सुलभ कराती है। श्रीमद् शकराचार्यजी ने मोक्ष प्राप्ति के सभी विकल्पो पर विचार करते हुए अत मे घोषणा की कि– केवल ज्ञान ही मोक्ष का साक्षात् साधन है। यह भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि गुरु अपने शिष्य को सभी प्रकार की शिक्षापूर्ण हो जाने पर समावर्तन सस्कार कराते समय उसे आज्ञा देता है– 'सत्य वद, धर्म चर' अर्थात् सत्य भाषण करो तथा धर्म का आचरण करो। इन दोनो आदर्शो की नीव पर भारतीय समाज की कालजयी रचना हुई। यही कारण है कि विश्व की अनेक अति प्राचीन सभ्यताएँ काल के गाल मे समा गई किन्तु भारतीय सभ्यता और सस्कृति आज भी चिरजीवी और सतत प्रवहमान है।

आनन्दमयी शिक्षा – हमारी शिक्षा की अवधारणा कभी भी रुक्ष नही रही। शिक्षा को ब्रह्मविद्या कहा गया है और ब्रह्म सदैव रसस्वरूप है। उस रस की प्राप्ति होने पर यह जीव रसमय-आनन्दमय हो जाता है। उस रस के परिपाक से पुरुष निर्भय हो जाता है। यह वेद की घोषणा है जो ससार को शिक्षा के माध्यम से निर्भय और आनन्दमय बनाता है। गुरुदेव रविन्द्रनाथ टैगोर की शिक्षा आनन्दमयी थी क्योकि वह भयरहित थी। **कहानी** - एक वार शातिनिकेतन की स्थापना के बाद गुरुदेव टैगोर के विद्यालय मे अपने छात्रो का शिक्षण देखने कुछ अभिभावक आए। उन्होंने देखा कुछ छात्र गुरुदेव के सामने बैठे एकाग्रचित्त से पढ रहे है जबकि कुछ पेड पर बैठे आम चूस रहे है और कुछ धूल मे खेल रहे है। उन अभिभावको ने गुरुदेव से जिज्ञासा की तो उन्होंने वताया जिस समय छात्र को शिक्षा मे रस आए, उसी समय मै उन्हे शिक्षा देता हूँ किन्तु खेलना, आम खाना और मुक्त प्रकृति का आनन्द लेना भी शिक्षा है। आज आनन्दमयी शिक्षा के लिए करोडो वालक तरस रहे है।

जीवन सत्य से परिचित शिक्षा आनन्दमयी शिक्षा आवश्यक है किन्तु भूखे पेट मे आनन्द की उत्पत्ति नही हो सकती। इस सत्य से भारतीय दार्शनिक और उपनिषदकार परिचित थे। इसलिए श्रुति ने ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के, शिक्षा प्राप्त करने के जो स्तर तय किए उनमे प्रथम स्तर अन्न था। ब्रह्मज्ञान का प्रथम द्वार अन्न था। अन्न के लोकोत्तर आनद को वेद के इस वाक्य – अहमन्नमहम्न्नमहमन्नम – मै अन्न हूँ, मै अन्न हूँ, मै अन्न हूँ – यह उन्मत्त भाव एक कृतार्थ हृदय का उद्‌गार है। विजय का उद्‌घोष है। इसलिए कार्लमार्क्स ने भूख के विरुद्ध सघर्ष की जो घोषणा की थी, वह अन्यथा नही थी किन्तु सघर्ष का पथ शिक्षा-सस्कार विहीन होने से वह घोषणा सार्थक न हो सकी। भारतीय शिक्षा पद्धति मे भूख के विरुद्ध सघर्ष है किन्तु उसका अधिष्ठान आध्यात्मिक है। यह एक आध्यात्मिक सग्राम है जिसे न्यासी भाव (ट्रस्टीशिप प्रिंसिपल) के माध्यम से सम्पत्ति समाज की, के भाव से जीता जाता है। 'तेन त्यक्तेन भुजिथा' - त्यागपूर्वक उपयोग करने से यह सघर्ष जीता जा सकेगा।

नासिकेत उपाख्यान – वैदिक भारतीय शिक्षा किस प्रकार के बालक तैयार करती थी इसका उदाहरण देना उचित होगा। महर्षि उद्दालक ने विश्वजित नामक यज्ञ के बाद गोदान प्रारभ किया। उद्दालक के पुत्र नचिकेता ने देखा वे गाऍ झुककर जल नही पी सकती थी, घास नही चबा सकती थी, उनके स्तन दूधरहित थे और इन्द्रियॉ थक चुकी थी। ऐसी जराजीर्ण गायो के दान से पिता का अपयश होगा। ऐसा सोचकर श्रद्धा से आवेशित नचिकेता ने तीन बार पिता को गोदान से रोका तो क्रुद्ध पिता ने उस कुमार (छोटे बालक) को मृत्यु को दान कर दिया। नचिकेता यमलोक को चल पडा और पश्चाताप से दग्ध उसके पिता मूर्छित होकर गिर पडे। नचिकेता ने बाद मे यम से ब्रह्मविद्या का दान प्राप्त किया।

यह कहानी विश्व की सर्वाधिक भाषाओ मे अनुदित हो चुकी है। इसमे सत्य वद, धर्म चर के आदर्श को यथार्थ मे परिणित करने, कथनी और करनी की एकता को साक्षात् जीवन मे साकार करने का प्रसग है। ऐसी थी हमारी शिक्षा।

आधुनिक युग के परिवर्तनो के बीच भी सत्य वद, धर्म चर के आदर्श पर आधारित शिक्षा एक आदर्श समाज, राष्ट्र और विश्व के निर्माण मे समर्थ है। यह दायित्व छात्रो का है। उपनिषद कहते है – छात्र ही गुरु है क्योंकि वह प्रश्न करके उत्तर के माध्यम से ज्ञान को प्रकट करवाता है।

ब्रह्मपुरी चौक, बीकानेर (राज०)

समवेदना

अमेरिका के राष्ट्रपति मि० एब्राहम लिंकन अपने अनेक लोकोत्तर गुणो के कारण काफी प्रसिद्ध हुए है। एक बार जाते हुए मार्ग मे उन्होंने कीचड मे एक बीमार सूअर को फॅसे हुए देखा। देखकर भी वे रुके नही, आगे बढे चले गये, किन्तु थोडी दूर जाने के बाद वे पुन वापस लौटे और अपने हाथो से कीचड मे सूअर को बाहर निकाला। लोगो ने हैरानी से इसका सबब पूछा तो वे बोले,

"मै आवश्यक कार्य मे व्यस्त होने के कारण इसे कीचड मे फॅसा हुआ देखकर चला तो गया, पर मेरे हृदय मे एक वेदना-सी बनी रही, मैने उसी वेदना को दूर करने के लिये इसे निकाला है।" दुखियो को देखकर हमारे हृदय मे जो टीस उठती है, उसी को मिटाने के लिए हम दुखियो का दु ख दूर करते है। इसमे उपकार और एहसान की बात नही है।

■

❒ कन्हैयालाल डूगरवाल

शिक्षा के उद्देश्य – विद्या, हुनर और विज्ञान

देश को आजाद हुए करीब ५५ वर्ष होने आये किन्तु अभी भी शिक्षा के बारे मे कोई मूलभूत परिवर्तन नही हुआ। राज्य व्यवस्था मे शिक्षा, स्वास्थ्य, कानून और व्यवस्था उसके मूलभूत कर्तव्य है। किन्तु व्यवस्था इन सबमे असफल है। शिक्षा का मूलभूत सिद्धान्त है कि उसे मातृभाषा मे होना चाहिये। देश मे भाषावार प्रातो का गठन इसी दृष्टि से हुआ था कि देश की सभी भाषाएँ विकसित और उन्नत होगी और साथ-साथ राष्ट्रभाषा देश की भाषा होगी, सरकारी कामकाज, विधायक कार्य और शिक्षा के माध्मय के रूप मे। सविधान मे प्रावधान है कि सबको शिक्षा दी जायेगी, कोई भेदभाव नही होगा। समानता होगी किन्तु आज अमीरो, गरीबो के लिए अलग-अलग व्यवस्था है। वस्तुत साधारण स्कूलो मे भी अग्रेजी का बोलवाला हो गया है। नतीजा है कि विद्यार्थी को न अग्रेजी आ रही है, न अपनी भाषा। नये विद्यार्थी और शिक्षको मे पारिभाषिक शब्द, व्याकरण और शब्द रचना की भारी त्रुटियॉ रहती है।

बुनियादी शिक्षा, हिन्दू सस्कृति की शिक्षा, मुस्लिम मदरसे, कान्वेन्ट स्कूल चलते है। कान्वेन्ट स्कूल आम लोगो मे भी रूतवे की पहचान वन रहे है। जिन लोगो के मॉ-वाप अग्रेजी वोलते है उनके वच्चो को वचपन से ही अग्रेजी मे ढाला जाना है।

वच्चा भाषा के बोझ से दवा रहता है। आज तो देश मे सव तरह की पढाई हिन्दी मे व अन्य भाषाओ मे हो सकती है किन्तु देश आजाद होने के बाद सविधान मे किये गये प्रावधानो के अनुसार हिन्दी राष्ट्रभाषा हो जानी चाहिए थी पर राज्य भाषा विधेयक लाकर अग्रेजी को अनन्त काल के लिए चालू रखी है। आज अग्रेजी उच्च वर्ग की पहचान बन गई है। विद्यार्थी मे देश की सस्कृति, जनता के दु ख-दर्द, गरीबी मिटाने का सकल्प कुछ भी नही है। तोता रटत पढकर परीक्षा पास करना ही मुख्य उद्देश्य हो गया है।

मेरा कहने का अर्थ यह नही है कि देश मे शिक्षा के क्षेत्र मे कुछ भी नही हुआ। विद्या, हुनर और विज्ञान के क्षेत्र मे काफी कुछ काम हुआ है किन्तु आज की दुनिया के मुकाबले मे हम अभी पिछडे है। मैने जब वकालत शुरू की हाईकोर्ट मे तब कानून की पढाई अग्रेजी मे चलती थी। अग्रेजी हटाओ और भाषाई आदोलनो के कारण हिन्दी और देशी भाषाओ मे काम चलने लगा। आज मध्य प्रदेश हाईकोर्ट मे ७०-८०% काम हिन्दी मे होता है किन्तु सविधान मे प्रदत्त शक्ति से हिन्दी के प्रयोग की अनुमति मिल गई। जज को हिन्दी मे लिखने की स्वतत्रता तो है पर साथ मे अग्रेजी अनुवाद की अनिवार्यता के कारण सभी अग्रेजी मे ही निर्णय दे रहे है, फलस्वरूप कानूनी भाषा का निर्माण नही हो रहा है और निर्णय अग्रेजी मे होने से हिन्दी माध्यम के वकीलो को तकलीफ होती है।

भाषा का निर्माण किताबे लिखने मात्र से नही होता, उपयोग से होता है। अग्रेजी साम्राज्यवाद के गुलाम देशो व मातृभाषा होने के कारण ब्रिटेन, अमरीका मे अग्रेजी है, शेष दुनिया मे अग्रेजी नही के बराबर है, केवल काम चलाऊ है।

हमलोग विद्या, हुनर और विज्ञान के क्षेत्र मे काफी तरक्की कर लेते यदि मातृभाषाओ मे पढाई होती, किन्तु अब मामला काफी उलझ गया है। इजराईल मे स्कूलो मे ४ घटे पढाई और ४ घटे हुनर के द्वारा उत्पादन होता है जिसके कारण स्कूलो मे आमदनी हो जाती है। जर्मनी, फ्रास, जापान, रूस आदि सभी देशो मे उनकी भाषा मे ही शिक्षा दी जाती है।

शिक्षा का उद्देश्य है कि शिक्षित युवजन चौडी छाती और ऊँचा सिर लेकर चले। उनमे स्वाभिमान, स्वदेशी व मानवतावादी भाव हो। आज हम जाति, धर्म मे बटे है। देश मे मनुष्य और हिन्दुस्तानी बहुत कम है।

राष्ट्रीय आदोलन मे देशी भाषा, भूषा, भवन चलते थे। अब मीडिया उच्च मध्यम श्रेणी क जीवन व उपभोक्तावाद का प्रचार कर रहा है। देश की समस्याओ के समाधान के लिए उसका उपयोग नही होता।

देर से सही पर शिक्षा को राजनीति से ऊपर उठकर सर्वानुमति से विना भेदभाव के उपलव्ध कराई जानी चाहिये तभी देश का भविष्य उज्ज्वल होगा।

अधिवक्ता, पूर्व विधायक, नीमच (म० प्र०)

प्रार्थना

डॉ० लारी डोसे ने अपने एक सस्मरण मे लिखा कि उसने प्रार्थना की एक अजीब चिकित्सा पद्धति का अनुभव किया। उन्होनें अपने प्रशिक्षण समय का जीवन्त वृतात लिखा, जब वे टेक्सास के थाईलैण्ड मेमोरियल अस्पताल मे थे। उन्होने एक कैन्सर-पीडित मरीज को अतिम अवस्था मे देखा और उसको यही सलाह दी थी कि उपचार से विराम ले ले क्योंकि उपलब्ध चिकित्सा से कोई लाभ नही हो रहा था।

लेकिन उन्होने यह भी देखा कि उसके बिस्तर के पास कोई न कोई मित्र बैठा रहता था जो उसके स्वास्थ्य लाभ के लिये प्रार्थना किया करता था। एक वर्ष के पश्चात् जबकि डॉ० लारी को जो वह अस्पताल छोड चुके थे, एक पत्र मिला कि क्या आप अपने पुराने मरीज से मिलना चाहेंगे ?

डॉ० लारी ने लिखा कि मुझे यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि वह अब भी जिदा है और उसके एक्स-रे का निरीक्षण करने पर पाया कि उसके फेफडे बिल्कुल ठीक थे। डॉ० लारी ने जब मेडिकल कॉलेज के दो प्रोफेसरो को उक्त घटना सुनाई, तो उन्हे इस विलक्षण घटना पर विश्वास नही हुआ।

बाद मे १९८० मे जब डॉ० लारी मुख्य कार्यकारी अधिकारी बने, उसने यह निष्कर्ष दिये कि प्रार्थना से विभिन्न प्रकार के महत्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तन घटित होते है।

हार्वर्ड मेडिकल स्कूल मे डॉ० हर्बट बेनसन ऐसे अनुसधान[illegible] थे, जिन्होने प्रार्थना एव ध्यान से स्वास्थ्य के सबध मे अध्ययन कि[illegible] विभिन्न धर्मो की प्रार्थना से शरीर मे एक समान स्वास्थ्यवर्धक [illegible] होते है। शरीर मे होने वाली 'व्याधि' का मुख्य कारण हमारी [illegible] सोच है। जो 'आधि' के नाम से जानी जाती है। [illegible] सोच–मनोविकारो/मनोरोगो का कारण बनती है। मनोरोग, शरीर [illegible] के साथ वैसा ही तादात्म्य रखता है, जैसा दूध-पानी के साथ।

प्रार्थना–मन की बीमारी का सही इलाज है। अत प्रार्थना से [illegible] की बीमारी को भी लाभ पहुँचता है। प्रार्थना मे मनोविकारो को [illegible] करने की बडी शक्ति निहित होती है। जब ५० वर्ष से ऊपर की आ[illegible] का व्यक्ति तनाव से गुजर रहा हो तो यह उसके शरीर के स्वास्[illegible] को प्रभावित करता है और प्राय डायबिटीज बढने, कमर दर्द हो[illegible] भूख कम लगने, ऑख की ज्योति प्रभावित होने आदि मे प्रगट हो[illegible] है। इन पक्तियो के लेखक का यह वैयक्तिक अनुभव है कि तना[illegible] का कारण दूर होते ही कमर दर्द ५० प्रतिशत ठीक हो गया। प्रा[illegible] से हम एक अदृश्य शक्ति से जुडते है। उस शक्ति को हम अपने [illegible] ओर होना महसूस करते है।

प्रार्थना मे यदि गहरे उतरने लगे तो वह सामायिक का स्वरूप ले[illegible] लगता है। 'सामायिक' का अर्थ है 'स्व' मे स्थित होना। प्रार्थना [illegible] मार्ग है–'स्व' की ओर जाने का।

प्रार्थना से हम उस लोकोत्तर व्यक्तित्व से जुडते है, जिसकी भाव रचना को हमने अपनी प्रार्थना का आधार बनाया है। क्या भक्तामर [illegible] का उच्चारण करते हुए हम वैसी ही ध्वनि तरगो का निष्पादन नही [illegible] लगते है जो आचार्य मानतुग ने सृजित की होगी। उस समय हम आचा[illegible] मानतुग से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेते है।

प्रार्थना का असर लेजर किरणो की भॉति, भीतर तक होता है बहुत तीव्र घनत्व से युक्त। जैसे इन्जेक्शन की दवा, धमनियो/नसो दौडकर हमे कुछ ही क्षणो मे अपना प्रभाव दिखाने लगती है, वही [illegible] भावात्मक परिवर्तन के लिये प्रार्थना करती है।

गहरे मे उतरती प्रार्थना सामायिक है। मौन प्रार्थना, [illegible] ज्ञानात्मक/प्रज्ञानिष्ठ बनती है तो वह सामायिक को उपलब्ध होती है हमारी नई पीढी सामायिक और ध्यान के महत्व को भूल कर [illegible] दूर होती जा रही है। अपने मे, अपने भीतर मे लौटने की सामायिक एक जीवन्त प्रक्रिया है। ध्यान मे जाने से पहले 'सामायिक' मे [illegible] जाता है। ध्यानस्थ होने की पूर्व तैयारी है सामायिक।

वस्तुत ध्यान किसी मत्र या पद पर अपने चित्त को केन्द्रित [illegible] बाहरी उपयोग को समेटकर उसे अन्त करण की ओर उन्मुख [illegible] है। बाहर की ओर बहती जीवन-ऊर्जा हमारे निय [illegible]

होती। सामायिक और ध्यान के माध्यम से इस ऊर्जा को सकेन्द्रित करके एक बिदु पर फोकस करते है। जैसे फोकस की हुई प्रकाश किरणे (उत्तम लेस के माध्यम से) आग उत्पन्न कर देती है ऐसी ध्यान की अवस्था मे हमारी शक्ति का केन्द्रीकरण होता है।

ध्यान है–हमारी प्रवृत्तियाँ का सकुचन।

ध्यान है–आत्मा के उपदेशो के फैलाव का एक अभिनव प्रयोग। जैसे-जैसे कायिक/वाचनिक/मानसिक (भावात्मक) वृत्तियो का सकुचन होने लगता है, आत्मा का विकास क्षेत्र, उसकी आभा मण्डल का परिक्षेत्र उतना ही विस्तारित होने लगता है। आत्मा का विकास ही जीवन का प्रकाश है।

अत ध्यान–जीवन का प्रकाश है।

ध्यान जैन दर्शन की आत्मा है।

हमे मदिर–ध्यानस्थ होने के लिये जाना चाहिये। प्रतिमाओ के दर्शन से एक ही सार्वत्रिक सदेश मिलता है वह है 'ध्यान का रसायन' जो जीवन को अमृत बना देता है।

मुनि श्री प्रज्ञासागरजी अपनी छोटी एव महत्वपूर्ण पुस्तक 'सुबह की किताब' मे ध्यान के सदर्भ मे लिखते हुए कहते है– ''ध्यान एक अन्तर्यात्रा है। अपनी बहिर्मुखी इन्द्रियो को अन्तर्मुखी बनाने का एक सरलतम एव सफलतम प्रयोग है। अपनी सोची हुई चेतना को जागृत करने की एक विधि है। अपनी आत्मशक्ति को प्राप्त करने का एक उपाय है। अस्तु!''

आइये हम प्रार्थना, सामायिक ध्यान के माध्यम से जीवन की हर सुबह को खुशबुओ से भरे और हर प्रभात को सुप्रभात बनाये।

बीना (म० प्र०)

बाहुबल

बाहुबल अर्थात् अपनी भुजा का बल। यह अर्थ यहाँ नही करना है, क्योकि बाहुबल नाम के महापुरुष का यह एक छोटा परतु अद्भुत चरित्र है।

ऋषभदेवजी भगवान सर्वसग का परित्याग करके भरत और बाहुबल नाम के अपने दो पुत्रो को राज्य सौंप कर विहार करते थे। तब भरतेश्वर चक्रवर्ती हुआ। आयुधशाला मे चक्र की उत्पत्ति होने के बाद उसने प्रत्येक राज्य पर अपना आम्नाय स्थापित किया और छ खड की प्रभुता प्राप्त की। मात्र बाहुबल ने ही यह प्रभुता अगीकार नही की। इससे परिणाम मे भरतेश्वर और बाहुबल के बीच युद्ध शुरू हुआ। बहुत समय तक भरतेश्वर या बाहुबल इन दोनो से एक भी पीछे नही हटा, तब क्रोधावेश मे आकर भरतेश्वर ने बाहुबल पर चक्र छोडा। एक वीर्य से उत्पन्न हुए भाई पर वह चक्र प्रभाव नही कर सकता, इस नियम से वह चक्र फिरकर वापस भरतेश्वर के हाथ मे आया। भरत के चक्र छोडने से बाहुबल को बहुत क्रोध आया। उसने महाबलवत्तर मुष्टि उठायी। तत्काल वहाँ उसकी भावना का स्वरूप बदला। उसने विचार किया, ''मै यह बहुत निदनीय कर्म करता हूँ। इसका परिणाम कैसा दु खदायक है! भले भरतेश्वर राज्य भोगे। व्यर्थ ही परस्पर का नाश किसलिए करना? यह मुष्टि मारने योग्य नही है, तथा उठायी है तो इसे अब पीछे हटाना भी योग्य नही है।'' यो कहकर उसने पचमुष्टि केशलुचन किया, और वहाँ से मुनित्वभाव से चल निकला। उसने, भगवान आदीश्वर जहाँ अठानवे दीक्षित पुत्रो और आर्यआर्या के साथ विहार करते थे, वहाँ जाने की इच्छा की, परतु मन मे मान आया। ''वहाँ मै जाऊँगा तो अपने से छोटे अठानवे भाइयो को वदन करना पडेगा। इसलिए वहाँ तो जाना योग्य नही।'' फिर वन मे वह एकाग्र ध्यान मे रहा। धीरे-धीरे बारह मास हो गये। महातप से काया हड्डियो का ढाँचा हो गयी। वह सूखे पेड जैसा दीखने लगा, परतु जब तक मान का अकुर उसके अत करण से हटा न था तब तक उसने सिद्धि नही पायी। ब्राह्मी और सुदरी ने आकर उसे उपदेश दिया, ''आर्य वीर! अब मदोन्मुख हाथी से उतरिये, इसके कारण तो बहुत सहन किया।'' उनके इन वचनो से बाहुबल विचार मे पडा। विचार करते-करते उसे भान हुआ, ''सत्य है। मै मानरूपी मदोन्मत्त हाथी से अभी कहाँ उतरा हूँ? अब इससे उतरना ही मगलकारक है।'' ऐसा कहकर उसने वदन करने के लिए कदम उठाया कि वह अनुपम दिव्य कैवल्यकमला को प्राप्त हुआ।

■

❑ *Nirupam Kedia*

Money leaving behind the shadows full of Darkness

The power of money is not a bad thing, instead one becomes liable to state his taste But one losing his spirituality in the thirst of money is a mess

A nation holds the ground hard when it has a sound financial position, a rich economic structure Still, those funds accumulated are utilized for the welfare of its dwellers

Nowadays when there is a wide replacement in the habits of these omnivorous creatures money with its drenching thirst is compelling them to act like a puppet A man never tries to look back at his deed In fact he is unable to turn his head back, when he starts comparing those shiny papers of notes with the gracious heaven The greed of money and snakebite are mostly similar, as both make the vision blind Medicine can protect the bite of the reptile but no drug can save a man covered under the curtain of greed According to the facts one can easily point out that the splashing and firing indifference in the human life style is being caused by money There are many families coming in the grip of money and are entangled amidst the never-ending thirst which resulted in cries of horror (Isolation of near and dear ones and moreover splitting up themselves into nuclear fonts)

Religions, Caste etc all hovering round the axis of money People having a sound economic set up, think themselves as a supreme authority, with an ideology to lead the team This new shinning millennium demands warm-blooded youths who can fight with the detonating situation Their own parents guide them but some of the guiders are in such an immense grip of money that they have, commenced to slide bars between, giving birth to a son and a daughter According to their perception, giving birth to a son means adding up of more numerical figures to their account books through his entrance in the business game play On the other hand, they think that giving birth to a daughter subtracts the numerical from their account books They worry about the incidental expenses for their own blood

Millions of people are paralyzed by the stroke of poverty lack of basic amenities Instead of wasting the valuable wealth and time, in different unwanted articles one should utilize it in the upliftment of mass poverty If this had happened, then what a nation we would have been dwelling in !

The thirst of money is acting as a scavenger, aiming at the innocent human prey We are becoming just puppet being scrolled by the eyes of wealth People feel no pride in their religion, in God, in religious texts or in any of those ancient scripts, instead they even jump to different religions in the greed of getting money You must have heard the tale of magic lamp which didn't last longer as it got tired and restless by filling in the well like belly of his master He didn't look up at the crippled faces of his native mates lying in the nauseating corners, instead used that precious lamp for his own betterment, pleasure comfort and lavishness Now it s enough, but this roar is still at the peak Until and unless man gathers a unique sense of humanity, and a strong feeling of oneness, this colourful environment would lose all the attracting colours of a spectrum Human heart should restore as much purity as it can it will certainly help our planet to celebrate and shine like an everblowing serenity of this landscape

■

❒ *Colonel (Retd) D S Baya 'Sreyas'*

Oswals and other Jains of Rajasthan

RAJASTHAN

1 Rajasthan is the western most state of India, with two clear-cut geographical regions on either side of the Aravali range that runs across it The western and the north-western part of the state lies in the Great Indian Desert - The Thar, while the rest of the state has more hospitable and habitable climate However, the rigours of its inhospitable geography and climate has not deterred the hardy Indo-Aryan stock of people, that inhabit this state, from achieving hitherto unscaled heights in almost every walk of life, including religion

Jainism in Rajasthan

2 According to a stone inscription dated 443 B C, found at Varli in Ajmer district and now housed in this Ajmer Museum, it is plain that Jainism was being practised in Rajasthan even during the life time of Lord Mahavira Also, as the fifth head of the order of the twentythird tirthankara, Lord Parsvanatha Sri Sayamprabh Suri, had visited the state as early as 52 Virabda (475 B C), there is reason enough to believe that Jainism had registered its presence even earlier than the Mahavira era Emperor Samprati, a descendent of Asoka the great, who had embraced Jainism, had constructed many Jaina temples in and around the state Inscriptions found in the Kankali-tila stupa (dome) at Mathura also bear testimony to the fact that Jainism, in both its denominations - Digambara and Svetambara - prevailed and prospered in Rajasthan from ancient times[1] Other parts of Rajasthan were also not untouched by the spread of Jainism Madhyamika Nagari in the Mewar region in the South Eastern part of the state had followers of Jainism almost at the same time[2]

Jains of Rajasthan

3 Most of the hitherto famous castes that are followers of the Jaina faith today such as Srimals, Oswals, Khandelwals, Bagherwals, Palliwals, Porwals, Nagdas, Narsimhapuras, etc originated in Rajasthan and spread not only all over India but over the entire world Of these, Oswals, Srimals and Porwals are predominantly of the Svetambara pursuit while the others follow the Digambara version

The Oswals

4 The Oswal Jains, who trace their roots to as far back as nearly two thousand and five hundred years ago, are a community that is an aggregate of people from various castes - mostly princely Rajputs - and creeds - as diverses as Vaisnavaites, Saivites, Saktas etc that embraced Jainism from time to time under the influence of the most illustrious Jaina monks of their times

5 The history of Oswals is studded with gems like dedication, faith and valour The Oswals were rulers - even emperors - ministers, generals, treasurers, farmers, traders and what have you, and they had it in them to excel at whatever they did The blue blood, that flowed in their veins, asserted itself to make them rise above mediocrity and become leaders of their times - in all times - from the ancient to the modern

6 Today, the Oswals are a glob-trotting community, that is found all over the world, but they originated in an ancient and affluent desert town of Rajasthan called Srimal', meaning the adobe of 'Sri', the goddess of wealth

The Origin of Oswals

7 It is a historical fact that the Oswals originated from the kshatriyas, who embraced Jainism in large numbers when enlightened by Jainacharyas who preached the faith to the rulers and their subjects and changed their hearts by impressing upon their minds, the futility of their false beliefs and the utility of the Jaina faith in their lives - the present and the after

8 Their origin is attributed to Sri Svayamprabh Suri, the fifth pattadhara (head of order) in the lineage of the twentythird tirthankara, Lord Parsvanatha, who came to the desert capital of 'Srimal' and preached the faith to the king and hundreds of thousands of his kinsmen, who all embraced it and became Jainas They are to this day, called 'Srimals', a kin-caste of Oswals Sri Svayamprabh Suri also ordained Sri Ratha Prabh Suri, who became the sixth pattadhara in the order of Lord Parsvanatha, an acharya in the year 52 Virabda

9 It was Sri Ratnaprabh Suri who came to Upkesapur (today - Osiya - 50Km, North-East of Jodhpur) with 500 monks of his order in the year 455 B C, and converted the Sakta king Utpaldeva and his kins to Jainism by his miraculous prowess Sri Ratnaprabh Suri is said to have

had a following of some 3,84,000 Jaina converts when he passed away in the year 441 B C [3] The kshatriyas thus embracing Jainism came to be known as 'Upkesiyas (Letter as Oswals'), and the order of Sri Ratnaprabh Suri's sramanas (monks) was called the 'Upkesa-gaccha' Prompted by Sri Ratnaprabh Suri, the Upkesiyas also constructed a temple dedicated to Lord Mahavira in Osiya, which has, with timely restorations, survived the ravages of time to date

The Other Jains

10 While the kshatriyas converted to Jainism from time to time were included into two branches of Mahajanas (great man), namely the Srimals and the Oswals, the people of other castes and creeds that embraced Jainism constituted the other branches of Mahajanas They are Porwarls, Khandelwals, Palliwals, Bagherwals etc

Digambara and Svetambara Jains in Rajasthan

11 The monks who, initially in the scrutable past, brought the faith to Rajasthan - both Sri Swayamprabh Suri and Sri Ratnaprabh Suri - were of the order of the twentythird tirthankara, Lord Parsvanatha History, as it obtains today, is inconclusive as to the status of their attire The Svetambara sect believes that the monks of the orders of only Lord Risabhdeva and Lord Mahavira were acelakas (unclothed) while those of the orders of the second to the twentythird tirthankaras were sacelakas (clothed), while the Digambara sect believes that the monks of the orders of all the twenty four tirthankaras were acelakas So, it is anybody's guess whether Sri Svayamprabh Suri and Sri Ratnaprabh Suri were acelakas or sacelakas However the Jaina monkhood divided themselves into two clearcut sects - the Digambars and the Svetambaras in the year 82 A D

12 The hospitable traditions of the land of Rajputs made it equally hospitable to both the sects of Jainism — The Digambaras and the Svetambaras While most of Oswals, Srimals and Porwals who were converted to Jainism by the monks of the Parsvapatya order, aligned themselves to the Svetambara sect the others, under the influence of Digambara monks, followed the latter path Some of each category, however, were mixed in a fair measure in each of these sects The Bardias of the Oswal community who were converted to Jainism by Acharya Nemichandra Suri of the Gommatasara fame, are Digmbara Jains to this day [4]

Changing Faith

13 As has been said earlier the Jains in Rajasthan belonged to both the denominations of Jainism - the Digambaras as well as the Svetambaras Their faiths kept on getting influenced by the developments, from time to time, that resulted in divisions and sub-divisions in both the sects into a large number of sub sects, samghas, gachhas etc as they obtain today

The Svetambara Sect

14 The Svetambaras were idol worshipers from the days of yore The monks, some of them very influential for their influence on the ruling class, slowly evolved a life style which was in sharp contrast to the *samacari* (the code of conduct) prescribed for the monks

15 **The Caityavasis** The Samacari for the Jaina monks does not permit their staying in one place beyond a specified period, except in the rainy season when they can stay at one place for four months But those monks who by laxity in their conduct, became pleasure loving and soft, started living in temples permanently These were called Caityavasi Yatis By 355 AD, this practice became well entrenched The extreme laxity in the conduct of the Caityavasis gave rise to a deep seated resentment amongst the knowledgeable householders as well as those monks who wanted to practise the laid down *samacari* but could not do so because of the stranglehold that the vested interests of the caityavasis had on the system This resulted into a movement amongst the more discerning, to break away from the clutches of the Caityavasis and , thereby to practise the faith as laid down by the Lord In the fifth century AD and Svetambara sect divided into two parts, the Caityavasis and the Suvihitamargis (the followers of the well laid down path) [5]

16 **The Vrhad Gaccha -** In 937 AD, Sri Udyotan Suri ordained Sri Sarvadeva Suri, an acarya, under a big banyan tree As a result, the Svetambara samgha that was known as the Nirgrantha gaccah till then, came to be called 'Vrhad gaccha' [6]

17 **Khartara Gaccha -** In 1017 AD Acharya Jineswara Suri, of Suvihita Marga, defeated the Caityavasi Suracarya in a dialogue based on the *scriptures* and earned the epithet of 'Khartara' (better or purer) His order, from then onwards came to be known as the Khartara Gaccha [7]

18 **The Ancala Gaccha -** In the year 1224 AD the Suvihita gaccha was renamed as 'Ancala gaccha because the Chalukya king Kumarapala's minister Kapardi, paid obeisance to Acarya Hemacandra (Kalikala Sarvajana) after *sweeping the ground with his ancala* (the end of his amga vastra or the body-wrap) [8] Another version has it that this gaccha was established by Acarya Aryarakshit Suri, and was known as such because the monks of this gaccha used their ancala (the end of their body wrap) *to cover their mouths instead of a* separate piece of cloth called the Mukhavastrika (the cloth for covering the mouth) [9]

19 **The Tapa Gaccha -** The year 1228 AD saw the birth of the Tapa gaccha Acarya Jagaccandra Suri of the Vrhad gaccha was bestowed the title of 'Tapa' by the Maharana (the king of kings) Jaitra Singh of the

for his lifelong penance of 'Aayambila (taking the food, devoid of all the six tastes, only once a day) His order, then became the 'Tapa gaccha' [10]

20 **The Sthanakavasis** - In the sixteenth century AD, Lonkasha, an Oswal house-holder, who came in the know of the contents of the agamas (the Jaina canonical literature) through copying them for a Caityavasi yati, became disillusioned by the flagrant laxity practise by the Caityavasis and revolted against them He also opposed idol worshiping In 1531 AD, he took the vows and became a monk with 44 others who approved of his line of thought They came to be known as Sthanakavasis because they used to stay in places other than temples, called sthanakas' The monks and nuns of this order wear white clothes and tie the Mukhavastrika', with a thread on their mouths

21 **The Tera Panthis** - In the nineteenth century AD, a Sthanakvasi monk Bhikhanji separated from his master, Acarya Raghunathji for his differences with the latter regarding the interpretations of dana (charity) and daya (compassion) and started the Tera-pantha

22 Today, the Svetambara Jains, in Rajasthan, are mostly followers of the Khartara-gaccha, the Tapa-gaccha, the Sthanakvasi and the Tera-panth sub-sects Other sub-sects are either extinct or do not have any worthwhile following

The Digambaras

23 Like Svetambara Caityavasi Yatis the Digambara monks too, who started living in the temples permanently, were called the Bhattarakas, They, too, became lax in the pursuit of their vows and gave rise to some divisions of the samgha as a reaction The main divisions that took place are as follows

24 **The Mula Samgha** - Started by Acarya Kunda-Kunda, the Mula samgha is the oldest order in the Digambara sect Some pattavalis (Rolls of Honour of successive acaryas of an order starting from the first acarya, Arya Sudharma) also mention Maghanadi as its founder

25 **The Kastha Samgha** - According to Darasanasara, the Kastha samgha was established by Kumarsena in 696 AD Darsanara also calls it as only a Jainabhasa (the Jaina look alike) because the rigorous of its conduct are nowhere near the ones prescribed by the Lord

26 **The Mathura Samgha** - This Samgha was started by Ramasena, in Mathura, two hundred years after the Kastha samgha The monks of Mathura samgha do not keep the Mayura-picchi (a sweep made of peacock feathers) and are, therefore called 'Nipiccha' [11]

27 **The Tera Panthis and The Bisa Panthis** - The Tera Panthis came into being as a sharp reaction against the laxity of the Caityavasi Bhattarakas The followers of this pantha worship the scriptures created by Sri Taranasvami, started in the seventeenth century AD the pantha was popularised by Pt Banarasidasa The Tera Pantha is so called because they believe in thirteen principles As a reaction to the creation of this pantha the Bhattarakas started calling themselves as Bisa panthis or followers of twenty principles [12]

Conclusion

28 The Jainas of Rajasthan have come a long way in the pursuit of a faith from the violent Saktas and Saivites to the followers of the non-violent Jainism in all its ideological splendours Not withstanding the different sects and factions that divide the Jainas of Digambara and Svetambara denominations, apart from some minor differences in some peripheral beliefs, they are one in following the cardinal principles of Ahimsa (Non-violence), Satya (the adherence to the truth), Ashteya (non-stealing), Brahmacarya (celebacy) and Aparigraha (non-possession), It is for this unity in the face of apparent diversity that the faith propounded by Lord Mahavira, more than two and a half millenia ago still survives more or less in its original form, as least as far as the precept goes As our agamas say, 'the faith shall never perish' It is anadi (without a beginning) and ananta (without an end) Only, there have been, there are and there will be highs and lows, as we traverse from era to era in this descedent cycle of time (The Avasarpini kala) and the next ascedent cycle of time (The Utsarpini Kala)

29 And so, 'Jainam Jayati Sasanam' (Glory be to the Jaina faith), it is, for now and for ever

E-26, Bhopalpura, Udaipur-313 001

References

1 Sastri Kailasacandra, Jaina Dharma, ed 6, Mathura, 1985, 52

2 Somani RV, Mewar Mein Jaina Dharma Ki Pracinata, Sri Amba Lalji Maharaj Abhinandana Grantha, Udaipur, 1976, 105

3 Bhutoria M L , Oswal Jatika Itihasa, ed 2, Varanasi, 1995, 63-64

4 Ibid, 33

5 Ibid, 54

6 Ibid, 54

7 Ibid, 55

8 Ibid, 55

9 Jaina Dharma ibid, 321

10 Oswal Jati Ka Itihasa ibid, 55

11 Jaina Dharma ibid, 312

12 Ibid 314, Oswal Jati Ka Itihasa ibid, 56

□ वनचन्द मालू

आज का लाड़ला बच्चा

पहले समय पर उठते थे।
वडो को प्रणाम करते थे।
मुख से राम राम कहते थे।
पढते भी थे और,
खेतो, खलिहानो, या घरो मे
खूब खट के काम करते थे।
समय पर खाते थे-खेलते थे,
और समय पर आराम करते थे।

अब सुबह उठते है देर से।
उठते ही शिकवे करते है ढेर से।
प्रणाम की जगह,
हॉय और गुडमोरनिग कहते है।
आखे मसलते, उवासी लेते,
जोर से चिल्लाकर,
बिना मुह धोये ही रामू को,
चाय का आर्डर देते है।

काम करना तो हीनता है।
अखबार के पन्ने पलटते-पलटते
कितने घटे बीत गये, गिनता है।
फिर दोस्तो से बात करने,
फोन की लाईन मिलाये।
स्कूल से ही-
कौन सी पिक्चर जाये,
फिर कौन से होटल मे खाये,
कहा कहा घूमने जाये,
मार्केट से क्या क्या खरीद कर लाये,
इन्ही सब कामो की लिष्ट बनाये।

इतना व्यस्त हो जाता है दिन-
एक रोज नही-
ऐसा होता है हर दिन।
तो फिर पढने और काम करने का,
समय ही कहा है।
साहबजादे तो वर्षो बाद भी,
जहा के तहा है।

कहते है तो कहते है – बताइये,
भगवान ने भी कितने जुल्म ढाये।
दिन रात मे केवल चौबीस घटे ही बनाये।
बारह घटे तो ऊपर के व्यस्त प्रोग्राम मे बीते,
फिर बाकी टाईम,
खाने और सोने मे जाये।
तो फिर पढाई और काम का समय ही
कहा बचा ?

जब इस तरह की दिनचर्या मे,
पलता है भारत का भावी कर्णधार,
भारत का होनहार, आज का लाडला बच्चा,
तो इस पीढी की जब निकलेगी जमात,
जिससे बनेगा भारत का भावी समाज,
तो देश कितनी करेगा तरक्की ?
सोच कर सिहर जाता हू–
हे भगवान, इनको कही पीसनी न पडे,
फिर किसी फिरगी की चक्की।

इसी दर्द मे कहता हू-
वतन को फिर कही गिरवी न रख देना नादानो।
शहीदो ने बडी मुश्किल से ये कर्ज चुकाये है।
अपनी जिन्दगी के चिराग बुझाकर,
हमारे घरो के दीप जलाये है।

❑ डॉ० डी० के० शर्मा

आयुर्वेद द्वारा जटिल रोगों की चिकित्सा

दीर्घ जीवन एव आरोग्य प्राप्ति का मुख्य साधन आयुर्वेद ही है। आयुर्वेद केवल चिकित्सा पद्धति ही नही बल्कि स्वस्थ एव शतायु जीवन जीने की भी पद्धति है। इसलिए आयुर्वेद को जीवन विज्ञान कहा गया है। यही कारण है कि हमारे पूर्वजो ने आयुर्वेद को वेदो का अग माना है। आज सारा विश्व आयुर्वेद की चिकित्सा एव औषधियो पर गर्व करता है। अमेरिका एव अन्य देशो ने भी आयुर्वेद के सामने घुटने टेक दिये है और भारत से नीम, ऑवला, त्रिफला, गुडमार, सूर्यमुखी एव अन्य बहुत सी अनमोल जडी बुटियो को पेटेन्ट कर व्यवसाय करने की सोच रहा है और हम भारतीय है कि अग्रेजी एलोपैथिक दवाओ की तरफ रूख किये जा रहे है। आयुर्वेद हमारे भारत की महान कृति है। इसकी औषधि सेवन करने से रोगी को लाभान्वित होने मे कुछ समय तो जरूर लगता है परन्तु कोई भी रोग समूल (जड) नष्ट हो जाता है। आयुर्वेद की औषधियॉ विलक्षण कार्य करती है। इसलिए आज सारे विश्व को आयुर्वेद की आवश्यकता है। आयुर्वेद-औषधियो मे यह विशेष गुण है कि वे धीरे-धीरे लाभ पहुँचाती है किन्तु यह प्रभाव स्थाई होता है। यह भगवान धन्वन्तरी की ही कृपा है कि आयुर्वेदिक औषधियॉ रोगी को लाभ भले ही न करे मगर किसी प्रकार का नुकसान कभी नही करती सिर्फ आयुर्वेद की औषधियॉ ही है जो असाध्य से असाध्य रोगो को समूल (जड) नष्ट करने की क्षमता रखती है। जबकि एलोपैथिक दवाईयॉ शीघ्र लाभ तो करती है किन्तु उनका प्रभाव स्थाई नही होता और वह रोग पुन कुछ समय मे उत्पन्न हो सकता है तथा ये नाना प्रकार के रोगो को भी उत्पन्न कर देती है।

हमारा आयुर्वेद परिपूर्ण होते हुए इसका चिकित्सा विज्ञान परिपूर्ण है। आयुर्वेद का मुख्य उद्देश्य ही रोगी को सुखी बनाना एव सुखी को सदा सुखी एव निरोग रखना है। इस ससार मे यह सत्य है कि मनुष्य की आयु की रक्षा दीर्घायु प्राप्त रोग निवारण से सम्भव है। ससार की जितनी चिकित्सा पद्धतियॉ है उनमे उपरोक्त लाभ नही मिलने के कारण उन चिकित्सा पद्धतियो मे किसी सिद्धान्त का आधार नही है। उनके सिद्धान्त समय-समय पर बदलते रहते है किन्तु आयुर्वेद के ध्रुव सिद्धान्तो मे परिवर्तन आज तक नही आया। कारण त्रिकालज्ञ ऋषियो ने ध्यान मे जिन सिद्धान्तो को अटल देखा, उन्ही का उल्लेख किया है। जैसे—अग्नि मे उष्णत्व, जल मे शीतलता, वायु मे रूक्षता आदि ध्रुव सिद्धात है। वैसे ही आयुर्वेद का त्रिदोष सिद्धात अनन्तकाल से अटल रूप से सफलतापूर्वक चल रहा है तथा भविष्य मे भी ऐसे ही चलता रहेगा।

आयुर्वेद के ग्रन्थो का जब हम स्वाध्याय करते है तो ऐसा लगता है कि यह शास्त्र केवल औषधि शास्त्र ही नही यह तो मनुष्य का जीवन शास्त्र है। मनुष्य के इहलोक एव परलोक दोनो जगह इस शास्त्र की उपयोगिता प्रतीत होती है। इस आयुर्वेद शास्त्र मे गरीब, अमीर एव मध्यमवर्ग सभी मनुष्यो की चिकित्सा होती है। आज ऐसा समय है कि विश्व के सभी बुद्धिजीवी वर्ग अग्रेजी चिकित्सा के भयकर दुष्प्रभाव को देखकर आयुर्वेदिक चिकित्सा कराना ज्यादा पसन्द करता है। केवल भारतवर्ष मे ही नही बल्कि विदेशो मे भी लोग आयुर्वेदिक चिकित्सा के लिए लालायित हो रहे है। आयुर्वेदिक औषधियो द्वारा चिकित्सा की जाय तो ऐसा कोई भी रोग नही जो साध्य होते हुए इससे शान्त न हो। अत आयुर्वेद ही है जो रोग को जड से नष्ट करने की ताकत रखता है। यहॉ कुछ आयुर्वेद से प्राप्त अनुभूत प्रयोग दिये जाते है जो जटिल रोगो को समूल नष्ट करने मे सहायक है—

१ पुरानी से पुरानी सग्रहणी (उदर रोग) मे– सिद्ध प्राणेश्वर रस आधा रत्ती, रामवाण रस आधा रत्ती, स्वर्ण प्रपटी आधा रत्ती, मकरध्वज आधा रत्ती, शखभस्म एक रत्ती इन सबको मिलाकर पुडिया बनाना एव सुबह शाम शहद और भुजा जीरा से लेवे।

२ ब्लड सुगर या यूरिन सुगर मे– बेल पत्र, मेथीदाना, बबूल छाल, गुडमार पत्र, त्रिफला चूर्ण इन सबको बराबर मात्रा मे लेकर कूट-पीसकर चूर्ण बना लेवे और एक चम्मच सुबह-शाम जल से सेवन करे।
यह अनुभूत प्रयोग है और इससे ब्लड सुगर एव यूरिन सुगर मे काफी लाभ होगा।

३ बवासीर, कब्ज, आमबात मे– रोजाना गुड के साथ सोठ, पीपल, हरड, अनारदाना का सेवन करना चाहिए।

४ रक्तपित्त मे– गिलोय, नीमपत्ते, कडवे परवल के पत्ते इनको एकत्र कर पीसकर चूर्ण बना कर, एक चम्मच जल या आधा चम्मच शहद के साथ लेवे।

५ अगर नित्य भोजन के साथ ऑवला के रस का सेवन किया जाय तो अम्लपित्त, वमन, अरुचि, खून के विकार एव वीर्य के विकार नष्ट होकर मनुष्य का शरीर हृष्ट-पुष्ट हो जाता है।

६ पीपल, दाख, मिश्री, हरड, धनिया, जवासा इनका चूर्ण कर लेवे। सुबह-शाम एक चम्मच जल या शहद के साथ सेवन करने से जटिल से जटिल कफ, पित्त, गले की जलन, जी मचलाना दूर हो जाता है।

७ शारीरिक कमजोरी एव वीर्य क्षीण होने पर– दालचीनी, छोटी एलायची, जायफल नागकेशर, वायवडग, चीतामूल, तेजपत्र, छोटी पीपल, वशलोचन, तगर, कालीमिर्च, कालातिल, तालीस पत्र, सफेद चन्दन, हरण, ऑवला, सोठ, भीमसेनी कपूर, लोग, कालाजीरा इन सबको बराबर मात्रा मे ले कूट-पीसकर चूर्ण बनाकर, मिश्री या चीनी पावडर मिलाकर, सुबह-शाम एक चम्मच, गर्म दूध या गाय का घृत और शहद मिलाकर लेवे।

अतएव आयुर्वेद मे ऐसे-ऐसे जटिल रोगो को जड से मिटा देने की क्षमता है। आयुर्वेद चिकित्सा ही है जो स्थाई लाभ प्रदान करती है।

रोगानुसार अनुपात

- ज्वर, कफ रोग मे–मदाग्नि
  शरीर पुष्टी के लिए – बडी पीपल का चूर्ण
- रक्त पित्त मे – दूर्वा (दूब) का रस लेवे
- बलवृद्धि के लिए – अश्वगन्ध का चूर्ण
- पाण्डुरोग मे – पुनर्नवा का रस
- प्रमेह मे – हल्दी चूर्ण, मधु से
- सन्निपात ज्वर मे – कालीमिर्च का चूर्ण
- पित्त ज्वर – लोग का चूर्ण, मधु से
- वायु रोगो मे – सोट का चूर्ण
- सन्धि रोगो मे – दाल चीनी, छोटी इलायची और तेजपत्र चूर्ण मधु से।

शिवा फार्मेसी
२, कालीकृष्ण टैगोर स्ट्रीट, कोलकाता-७०० ००७

□ केशरीचन्द सेठिया

शिक्षा और संस्कार

भवन चाहे कितने ही मजिल का हो, भव्य हो, विशाल हो अगर उस की नीव कमजोर है तो किसी भी समय ढह सकता है। वृक्ष चाहे कितना भी विशाल हो, सघन हो अगर उसकी जडे मजबूत न हो तो हवा एक झोका उसे गिरा देता है। बालक को भी अगर प्रारम्भिक शिक्षा - उच्च सस्कार न मिले तो उसका भावी जीवन लडखडा जायेगा।

बालक का मन कच्ची मिट्टी के सदृश्य कोमल होता है। जवतक मिट्टी गीली होती है, कुम्हार उसको जिस रूप, आकार मे ढालना चाहे ढाल सकता है। चाहे तो गोल, छोटा, बडा घडा बना सकता है, गमला बना सकता है। मूर्ति का आकार दे सकता है किन्तु मिट्टी के सूख जाने पर वह लाख प्रयत्न करने पर भी कुछ नहीं बना सकता।

नवजात शिशु की शिक्षा मा की गोद मे मीठी-मीठी थपकी से, पालने मे मधुर लोरी के साथ प्रारम्भ हो जाती है। पाच वर्ष का हो जाने पर उसे पाठशाला मे प्रवेश करवा दिया जाता है। वर्तमान मे तो ढाई तीन वर्ष की उम्र मे ही स्कूल मे भर्ती करा दिया जाता है। खेल-खेल मे खिलौनो और चित्रो के द्वारा अक्षर ज्ञान करा दिया जाता है। नेतिक, धार्मिक, व्यावहारिक के साथ-साथ सस्कार की नीव पडती है। उसका भावी जीवन बहुत कुछ इन्ही सस्कारो पर निर्भर है।

अकसर देखा गया है कि अभिभावक, गुरू के भेदभाव पूर्ण व्यवहार, आचरण का प्रभाव उसके हृदय पर विशेष रूप से पडता है। कभी-कभी तो वह विद्रोही हो जाता है। कथनी, करनी मे विरूपता की स्थिति भी उसकी भावना को ठेस पहुचाती है।

सहपाठियो के परस्पर सहयोग का असर भी कम नही पडता। बुरी लत वाले छात्रो की सगत उसके लिये अभिशाप बन जाती है। वह मादक द्रव्यो, बीडी, सिगरेट, तम्बाकू, गुटका, चोरी, असत्य भाषण आदि का अनुकरण शीघ्र कर लेता है। बालक मे देखा-देखी की भावना अधिक होती है। एक बार लगी हुई लत को बदलना, सुधारना कठिन हो जाता है। घर के वातावरण, आस-पास के लोगो की आदतो की नकल भी करने की इच्छा तत्काल उत्पन्न हो जाती है। देखा-देखी, चोरी-छिपे वह सब कुछ करने लगता है जो उसके लिए अहितकर है।

प्राचीनकाल मे उसे ऋषि मुनियो के आश्रम मे, गुरुकुल मे शिक्षा के लिए भेजा जाता था। स्वच्छ, शान्तिपूर्ण वातावरण मे उसका सर्वागीण विकास होता था। प्रतिदिन का कार्यक्रम नियमित रूप से पठन-पाठन आवश्यक होता था। सेवा, विनय, सदाचार, सादगी, श्रम पर विशेष ध्यान दिया जाता था। किन्तु इस का लाभ बहुत कम लोगो को प्राप्त होता था।

मध्य काल मे गाव, शहरो मे बडी-बडी स्कूले, उच्चशिक्षा के लिये कॉलेज खुल गये। आम लोगो को शिक्षा मिलने लगी। सरकार ने भी शिक्षा को अनिवार्य कर दिया। इसका लाभ सबसे अधिक क्रिश्चियन समाज ने लिया। हर स्थान पर सेवा और शिक्षा के लिये अस्पताल, स्कूल और कॉलेज प्रारम्भ कर दिये। स्वाभाविक ही पाश्चात्य शिक्षा अग्रेजी के माध्यम से पनपने लगी। प्राकृत, सस्कृत आदि मृतभाषा की श्रेणी मे आ गई। अपने ही देश मे राष्ट्र भाषा हिन्दी को सघर्ष करना पड रहा है, यही हाल अन्य प्रादेशिक भाषाओ का है।

बच्चो पर किताबो का इतना बोझ पडता है कि वे स्कूल बेग के भार से दब से जाते है। पहाडी कुली की तरह किसी प्रकार पीठ पर लादकर स्कूल जाते है। होमवर्क घर के लिए इतना दे देते है कि खेल कूद का उसे समय नही मिल पाता। शारीरिक विकास की ओर बहुत कम ध्यान जाता है। यही कारण है कि बच्चो का सर्वागीण विकास नही हो पाता। अत शिक्षा की पद्धति मे बदलाव/परिवर्तन आवश्यक है–

महावीर ने कहा – पढम नाण तओ दया।

उसी शिक्षा का महत्व है जिसके द्वारा आत्मनिर्भरता, सुसस्कार, विनय, सेवाभाव, परोपकार आदि गुणो की अभिवृद्धि हो। विवेक के द्वारा ही, विनय के द्वारा ही वह दया, अनुकम्पा, अहिंसा का पालन सही तरह से कर सकता है।

चेन्नई

❏ रत्ना ओस्तवाल

जीवन जीने की कला

जीवन एक अनमोल रत्न है, और इस जीवन का दर्पण मनुष्य जन्म है। मनुष्य जन्म मे इस जीवन को कोई सवारता है, कोई सजाता है, कोई उत्थान करता है तो कोई पतन करता है। यह बात सर्वविदित है, हर कोई इसे जानता है, देखता है, लेकिन जीवन की सपदा का मूल्याकन सही अर्थो मे यदि कही होता है तो वह है आचरण, जिसे कहा जाता है, जीवन जीने की कला Art of Living !

आज के इस भौतिक युग मे मनुष्य ने अपनी दृष्टि वाह्यमुखी वना ली है। सुवह विस्तर से उठना व विस्तर पर सोने तक का लम्बा समय इस तरह व्यतीत करता है कि उसे स्वय को जानने की भी जरुरत महसूस नही होती।

इस क्रियाकलाप का परिणाम तनाव की वृद्धि करता है। इस खींचातानी मे तनाव का उत्तरोत्तर वढना स्वास्थ्य की प्रतिकूलता, पैसो का अभाव, आवश्यकता की लम्वी कतार, इच्छाओ का पहाड, इस तरह स्वय के जीवन को विना खोजे विना पहचाने, विना जिज्ञासा किए जिये जाता है। और जीवन के यथार्थ से कोसो दूर हो जाता है। वास्तविकता की इस स्थिति मे मनुष्य को भौतिकता की चकाचौध ने अज्ञानी वना दिया है। सजा-सवरा, पढा-लिखा वाह्य ज्ञान की सारी डिग्रियो का भण्डार लिए हुए भी जीवन को सवारने मे असमर्थ सावित हो रहा है।

अन्तर जगत की दृष्टि मे महापुरुषो ने इस अवस्था [illegible] अज्ञान कहा है। और अज्ञान का फल अधकार और प[illegible] है, जीवन निर्माण नही है।

जीवन विकास के महत्वपूर्ण अनमोल सूत्र है–सही सम[illegible] और सच्चा विश्वास। इसके अभाव मे मनुष्य जन्म पाकर [illegible] पगु है। जीवन को झाकने की दो दृष्टिया है –

१) वाह्य दृष्टि २) भीतरी (अन्दर) दृष्टि। वाह्य जगत वाह्य दृष्टि से सजाया व सवारा जाता है। लेकिन जीवन [illegible] उद्देश्य ढूढा नही जा सकता। अतर दृष्टि (अपने आप [illegible] झाकना) जीवन निर्माण की सशक्त नीव है जो विना [illegible] आडवर के विना, सजे सवरे सही समझ और सच्चा विश्वा[illegible] दे सकती है।

यही सच्चा दर्शन और विश्वास सम्यक् दर्शन है। [illegible] आवश्यकता है यह समझने की कि इस सम्यक् दर्शन [illegible] क्या सार्थकता है? अतर जगत की साधना करने वाला अ[illegible] विषय समझे या न समझे किन्तु सम्यक दर्शन के महत्व [illegible] समझना अति आवश्यक है।

सम्यक दर्शन का अर्थ सहज शब्दो मे जीवन जीने [illegible] कला है। याने आत्मा की अनत शक्ति को मानव जो भू[illegible] गया है उसकी स्मृति करना है। जैसे जीवन तो मिला, लेकि[illegible] कैसे जिया जाय, भूल गया है। इस विस्मृति को पुन जीव[illegible] का मूल्य समझाकर उस सपदा को सवारना यही मायन[illegible] सम्यक दर्शन है।

१) देखने की क्षमता। (दर्शन)

२) दिखाने की क्षमता। (ज्ञान)

इस देखने और दिखाने मे जीवन का अमूल्य सम[illegible] सवारने मे वीता है या विगाडने मे, यही है चरित्र [illegible] व्याख्या। देखना, दिखाना और सहन करना इन तीनो [illegible] त्रिवेणी जीवन के निर्माण मे महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वा[illegible] करती है। आज के सदर्भ मे चिंतन किया जाए तो [illegible] सामने भगवान महावीर के सिद्धान्त सहज ही उपयोगी सि[illegible] होते है। चाहे अहिसा हो या अपरिग्रह का सिद्धान्त [illegible] सिद्धान्तो का आचरण अणु रूप मे हो या [illegible] आचरण होना अनिवार्य है

आज के परिवेश मे यह जाना जाता है कि [illegible] धन-सपदा से परिपूर्ण होना जरुरी है। [illegible] जीवन निर्माण मे सहायक हो सकते है लेकिन [illegible] सकते।

सच्ची श्रद्धा, आत्मविश्वास, स्वय को बदलने की प्रकृति एव जीवन के मूल्य आकने की क्षमता ही सम्यक् दर्शन का दर्पण है।

जीवन जीने की कला को सिद्ध करना है तो सर्वप्रथम स्वय को सुधारना होगा। स्वय को अपने जीवन के साथ जोडना होगा और स्वय का समीक्षण करना होगा। जैसे -

१) मेरे जीवन का हर क्षण जो मै जी रहा हूँ वह मेरे लिए बोझ तो नही है? (लोक व्यवहार के विपरीत कार्य)
२) सहभागिता की भावना मुझसे कितनी दूर है?
३) मै स्वार्थ के कितने निकट हूँ?
४) वाहवाही की झूठी शान ने मुझे अहकारी तो नही बनाया है?
५) ईर्ष्या का मीठा जहर मै कितनी बार निगल रहा हूँ?
६) मान अपमान के पीछे मैन कितने शत्रु तैयार किए है?
७) निदा और बुराई औरो की करके मैंने कितने परिवार तोडे है?
८) मैंने स्वय का मूल्याकन अन्य के निर्णय से तो नही किया है?
९) जीवन की अमूल्य सपदा को मैने इधर-उधर तो नही फेक दिया है?
१०) जीवन को सुखी बनाने के लिए औरो का सुखचैन तो नही छीना है?

चितन की इस सुघड शक्ति ने सम्यक दर्शन की सच्ची श्रद्धा, आत्म विश्वास, स्वय को बदलने के सकल्प ने मुझे पुन अपने अस्तित्व मे स्थिर करने की अनुपात कृपा की है। खोई सपदा को ढूढना, उसे एकत्रित करना, जीवन के उपयोग मे लगाना, सम्यक दर्शन है।

यह सम्यक दर्शन मनुष्य को मानव, मानव से मानवेतर और मानवेतर से महान बनाता है।
जिसने जीवन मे इस सिद्धात को अपनाया है वही सही मायने मे जीवन जीने की कला का हकदार है।

कामठी लाइन, राजनाद गाँव (म०प्र०)

रात्रिभोजन

अहिसादिक पच महाव्रत जैसा भगवान ने रात्रिभोजन त्याग व्रत कहा है। रात्रि मे जो चार प्रकार का आहार है वह अभक्ष्यरूप है। जिस प्रकार का आहार का रग होता है उस प्रकार के तमस्काय नाम के जीवन उस आहार मे उत्पन्न होते है। रात्रिभोजन मे इसके अतिरिक्त भी अनेक दोष है। रात्रि मे भोजन करनेवाले को रसोई के लिए अग्नि जलानी पडती है, तब समीप की भीत पर रहे हुए निरपराधी सूक्ष्म जन्तु नष्ट होते है। ईंधन के लिये लाये हुए काष्ठादिक मे रहे हुए जन्तु रात्रि मे दीखने से नष्ट होते है, तथा सर्प के विष का, मकडी की लार का और मच्छरादिक सूक्ष्म जन्तुओ का भी भय रहता है। कदाचित् यह कुटुब आदि को भयकर रोग का कारण भी हो जाता है।

■

इन्द्रभूति गौतम

खतिखम गुणकलिय सव्वलद्धिसम्पन्न ।
वीरस्स पढम सीस गोयमसामिं नमसामि ।।

अब्धिर्लब्धिकदम्बकस्य तिलको नि शेषसूर्यावले-
रापीड प्रतिबोधने गुणवतामग्रेसरो वाग्मिनाम् ।
इष्टान्तो गुरुभक्तिशालिमनसा मौलिस्तप श्रीजुषा,
सर्वाश्चर्यमयो महिष्ठसमय श्रीगौतमस्तान् मुदे ।।

अगुष्ठे चामृत यस्य यश्च सर्वगुणोदधि ।
भण्डार सर्वलब्ध्दीना वन्दे त गौतमप्रभुम् ।।

श्रीगौतमो गणधर प्रकटप्रभाव ,
सल्लब्धि-सिद्धिनिधिरञ्चितवाक्प्रबन्ध ।
विघ्नान्धकारहरणे तरणिप्रकाश ,
साहाय्यकृद् भवतु मे जिनवीरशिष्य ।।

सर्वारिष्टप्रणाशाय सर्वाभीष्टार्थदायिने ।
सर्वलब्धिनिधानाय गौतमस्वामिने नम ।।

भारतीय समाज मे विघ्नोच्छेदक एव कल्याण-मगल-कारक के रूप मे जो सर्वमान्य स्थान गणपति/गणेश का है उससे भी अधिक एव विशिष्टतम स्थान जैन समाज तथा जैन साहित्य मे गणधर गौतम स्वामी का है। जैन परम्परा मे तो इन्हे विघ्नहारी मगलकारी के अतिरिक्त क्षान्त्यादि सर्वगुण परिपूर्ण, समस्त लब्धियो, सिद्धियो, निधियो के धारक और प्रदाता, सत् विद्या/द्वादशागी के निर्माता, प्रतिबोधनपटु, चिन्तामणिरत्न एव कल्पवृक्ष के सदृश अभीष्ट फलदाता, गणाधीश और प्रात स्मरणीय माना गया है। गुरु-भक्ति मे तो इनका नाम उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है।

न केवल जैन साहित्य मे ही अपितु विश्व साहित्य मे भी इस प्रकार का कोई उदाहरण प्राप्त नही है कि किसी गुरु ने अपने समग्र जीवन-काल मे पद-पद/स्थान-स्थान पर अपने से अभिन्न शिष्य का सहस्राधिक बार नामोच्चारण कर, प्रश्नो के उत्तर या सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया हो। गणधर गौतम ही विश्व मे उन अनन्यतम शिष्यो मे से है कि जिनका चौबीसवे तीर्थकर श्रमण भगवान् महावीर अपने श्रीमुख से प्रतिक्षण-प्रतिपल ''गोयमा। गौतम।'' का उच्चारण/उल्लेख करते रहे। समग्र जैनागम साहित्य इसका साक्षी है।

विश्व चेतना के धनी गुरु गौतम चिन्तन से, व्यवहार से, सघ नेतृत्व से पूर्णरूपेण अनेकान्त की जीवन्त मूर्ति है। इनकी ऋतम्भरा प्रज्ञा से, असीम स्नेह से, आत्मीयता परिपूर्ण अनुशासन से, विश्वजनीन कारुण्यवृत्ति से महावीर के सघोद्यान की कोई भी कली ऐसी नही है, जो अधखिली रह गई हो।

सन्त प्रवर मुनि रूपचन्द्र के शब्दो मे कहा जाय तो–

''प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम। चौदह पूर्वो के अतल श्रुतसागर के पारगामी गौतम। भगवान महावीर के कैवल्य हिमालय मे नि सृत वाणी-गगा को धारण करने वाले भागीरथ गौतम। विनय और समर्पण के उज्ज्वल-समुन्नत शैल-शिखर गौतम। तीर्थकर पार्श्वनाथ और तीर्थकर महावीर की गगा-यमुना-धारा के प्रयागराज गौतम। अद्भुत लब्धि-चमत्कारो के क्षीर-सागर गौतम।

गौतम का व्यक्तित्व अनन्त है। जैन-शासन को गौतम का अनुदान अनन्त है। और, अनन्त है सम्पूर्ण मानव जाति को गौतम का सम्प्रदायातीत ज्योतिर्मय अवदान। गौतम के आलेख के बिना भगवान महावीर की धर्म-तीर्थ-प्रवर्तन की ज्योति-यात्रा का इतिहास अधूरा है। गौतम के उल्लेख के बिना अनन्त श्रुत-सम्पदा पर भगवान महावीर के हस्ताक्षर भी अधूरे है।''

गु + अज्ञानान्धकार के, रु + नाशक = गुरु गौतम श्रमण भगवान महावीर के प्रथम शिष्य/प्रथम गणधर है। गण के सस्थापक तीर्थकर होते है और उसके सवाहक गणधर कहलाते है। अथवा, आचार्य मलयगिरि के शब्दो मे कहा जाय तो अनुत्तर ज्ञान तथा अनुत्तर दर्शन आदि धर्म समूह/गण के धारक कहलाते है। इस यथार्थरूप मे गणधर पदधारक गौतम का नाम वस्तुत इन्द्रभूति है। इनका यह नाम भी सद्य नाम तथा गुण के अनुरूप [illegible]

ये इन्द्र के समान ज्ञानादि ऐश्वर्य से सम्पन्न है। गौतम तो इनका गोत्र है। किन्तु, जैन समाज की आबाल-वृद्ध जनता सहस्राब्दियो से इन्हे गौतम स्वामी के नाम से ही जानती-पहचानती/पुकारती आई है।

जीवन-चरित्र

गौतमस्वामी का व्यक्तित्व और कृतित्व अनुपमेय है। सर्वाग रूप से इनका जीवन-चरित्र प्राप्त नही है, किन्तु इनके जीवन की छुट-पुठ घटनाओ के उल्लेख आगम, निर्युक्ति, भाष्य, टीकाओ मे बहुलता से प्राप्त होते है। यत्र-तत्र प्राप्त उल्लेखो/बिखरी हुई कडियो के आधार पर इनका जो जीवन-चरित्र बनता है, वह इस प्रकार है।

जन्म मगध देश के अन्तर्गत नालन्दा के अनति-दूर "गुव्वर" नाम का ग्राम था, जो समृद्धि से पूर्ण था। वहाँ विप्रवशीय गौतम गोत्रीय वसुभूति नामक श्रेष्ठ विद्वान् निवास करते थे। उनकी अर्धांगिनी का नाम पृथ्वी था। पृथ्वी माता की रत्नकुक्षि से ही ईस्वी पूर्व ६०७ मे ज्येष्ठा नक्षत्र मे इनका जन्म हुआ था। इनका जन्म नाम इन्द्रभूति रखा गया था। इनके अनन्तर चार-चार वर्ष के अन्तराल मे विप्र वसुभूति के दो पुत्र और हुए, जिनके नाम क्रमश अग्निभूति और वायुभूति रखे गये थे।

अध्ययन यज्ञोपवीत सस्कार के पश्चात् इन्द्रभूति ने उद्भट शिक्षा-गुरु के सान्निध्य मे रहकर ऋक्, यजु, साम एव अथर्व–इन चारो वेदो, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एव ज्योतिष इन छहो वेदागो तथा मीमासा, न्याय, धर्म-शास्त्र एव पुराण– इन चार उपागो का अर्थात् चतुर्दश विद्याओ का सम्यक् प्रकार से तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया था।

आचार्य · चौदह विद्याओ के पारगत विद्वान् होने के पश्चात् इन्द्रभूति के तीन कार्य-क्षेत्र दृष्टि-पथ मे आते है–

१. अध्यापन– इन्होंने ५०० छात्रो/बटुको को समग्र विद्याओ का अध्ययन कराते हुए सुयोग्यतम वेदवित्, कर्मकाण्डी और वादी बनाये। ये ५०० छात्र शरीर-छाया के समान सर्वदा इनके साथ ही रहते थे।

२. शास्त्रार्थ– दुर्धर्ष विद्वान् होने के कारण इन्द्रभूति ने छात्र-समुदाय के साथ उत्तरी भारत मे घूम-घूम कर, स्थान-स्थान पर तत्कालीन विद्वानो के साथ शास्त्रार्थ किये और उन्हे पराजित कर अपनी दिग्विजय पताका फहराते रहे। किन-किन के साथ और किस-किस विषय पर शास्त्रार्थ किये? उल्लेख प्राप्त नही है।

३. यज्ञाचार्य– इन्द्रभूति प्रमुखत मीमासक होने के कारण कर्मकाण्डी थे। स्वय प्रतिदिन यज्ञ करते और विशालतम याग-यज्ञादि क्रियाओ के अनुष्ठान करवाते थे। यज्ञाचार्य के रूप मे दसो दिशाओ मे इनकी प्रसिद्धि थी। फलत अनेक वैभवशाली गृहस्थ बडे-बडे यज्ञो का अनुष्ठान कराने के लिए इन्हे अपने यहाँ आमन्त्रित कर स्वय को भाग्यशाली समझते थे। इन्द्रभूति की कीर्ति से आकृष्ट होकर अपार जन-समूह दूरस्थ प्रदेशो से इनकी यज्ञ-आहुति मे पहुँच कर अपने को धन्य समझता था।

स्पष्ट है कि इनका विशाल शिष्य समुदाय था। इनके अप्रतिम वैदुष्य के समक्ष बडे-बडे पण्डित व शास्त्र-धुरन्धर नतमस्तक हो जाते थे। अतिनिष्णात वेद-विद्या और उच्च यज्ञाचार्य के समकक्ष उस समय इन्द्रभूति की कोटि का कोई दूसरा विद्वान् मगध देश मे नही था।

छात्र सख्या– विशेषावश्यक भाष्य के अनुसार गौतम ५०० शिष्यो के साथ महावीर के शिष्य बने थे, निर्विवाद है। किन्तु अपने अध्यापन काल मे तो उन्होंने सहस्रो छात्रो को शिक्षित कर विशिष्ट विद्वान् अवश्य बनाये होंगे? इस सम्बन्ध मे आचार्य श्री हस्तिमलजी ने "इन्द्रभूति गौतम" लेख मे जो विचार व्यक्त किये है, वे उपयुक्त प्रतीत होते है–

"सम्भवत इस प्रकार ख्याति प्राप्त कर लेने के पश्चात् वे वेद-वेदाग के आचार्य बने हो। उनकी विद्वत्ता की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल जाने के कारण यह सहज ही विश्वास किया जा सकता है कि सैकडो की सख्या मे शिक्षार्थी उनके पास अध्ययनार्थ आये हो और यह सख्या उत्तरोत्तर बढते-बढते ५०० ही नही अपितु इससे कही अधिक बढ गई हो। इन्द्रभूति के अध्यापन काल का प्रारम्भ उनकी ३० वर्ष की वय से भी माना जाय तो २० वर्ष के अध्यापन काल की सुदीर्घ अवधि मे अध्येता बहुत बडी सख्या मे स्नातक बनकर निकल चुके होंगे और उनकी जगह नवीन छात्रो का प्रवेश भी अवश्यम्भावी रहा होगा। ऐसी स्थिति मे अध्येताओ की पूर्ण सख्या ५०० से अधिक होनी चाहिए। ५०० की सख्या केवल नियमित रूप से अध्ययन करने वाले छात्रो की दृष्टि से ही अधिक सगत प्रतीत होती है।"

विवाह– अध्ययनोपरान्त इन्द्रभूति का विवाह हुआ या नही? कहाँ हुआ? किसके साथ हुआ? इनकी वश-परम्परा चली या नही? इस प्रसग मे दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा के समस्त शास्त्रकार मौन है। इन्द्रभूति ५० वर्ष की अवस्था तक गृहवास मे रहे, यह सभी को मान्य है, परन्तु, उस अवस्था तक वे बाल ब्रह्मचारी ही रहे या गार्हस्थ्य जीवन मे रहे? कोई स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नही होता। अत यह मान सकते है कि इन्द्रभूति ने अपना ५० वर्ष का जीवन अध्ययन, अध्यापन, वाद-विवाद और कर्मकाण्ड मे रहते हुए बाल-ब्रह्मचारी के रूप मे ही व्यतीत किया था।

शरीर-सौष्ठव–भगवती सूत्र मे इन्द्रभूति की शारीरिक रचना के प्रसग मे कहा गया है–इन्द्रभूति का देहमान ७ हाथ का था, अर्थात् शरीर की ऊँचाई सात हाथ की थी। आकार समचतुरस्र सस्थान/लक्षण (सम चौरस शरीराकृति) युक्त था।

वज्रऋषभनाराच– वज्र के समान सुदृढ सहनन था। इनके शरीर का रग-रूप कसौटी पर रेखाकित स्वर्ण रेखा एव कमल की केशर के समान पद्मवर्णी/गौरवर्णी था। विशाल एव उन्नत ललाट था और कमल-पुष्प के समान मनोहारी नयन थे। उक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इनकी शरीर-कान्ति देदीप्यमान और नयनाभिराम थी।

अन्तिम यज्ञ–उस समय अपापा नगरी मे वैभव सम्पन्न एव राज्यमान्य सोमिल नामक द्विजराज रहते थे। उन्होने अपनी समृद्धि के अनुसार अपनी नगरी मे ही विशाल यज्ञ करवाने का आयोजन किया था। सोमिल ने यज्ञ के अनुष्ठान हेतु विहार प्रदेशस्थ राजगृह, मिथिला आदि स्थानो के अनेक दिग्गज कर्मकाण्डी विद्वानो को आमन्त्रित किया था। इनमे ग्यारह उद्भट याज्ञिक प्रमुखो– इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्म, मण्डित, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्राता, मेतार्य एव प्रभास– को तो वडे आग्रह के साथ आमन्त्रित किया था। उक्त ग्यारह आचार्य भी अपने विशाल छात्र/शिष्य समुदाय के साथ यज्ञ सम्पन्न कराने हेतु अपापा आ गये थे। विशेषावश्यक भाष्य के अनुसार इन यज्ञाचार्यो की शिष्य सख्या निम्न थी –

इन्द्रभृति ५००, अग्निभूति ५००, वायुभूति ५००, व्यक्त ५००, सुधर्म ५००, मडित ३५०, मौर्यपुत्र ३५०, अकम्पित ३००, अचलभ्राता ३००, मेतार्य ३००, प्रभास ३००। इस प्रकार इन ग्यारह आचार्यो की कुल शिष्य सख्या ४४०० थी।

इन्द्रभूति के अप्रतिम, वैदुष्य और प्रकृष्टतम यशोकीर्ति के कारण यज्ञानुष्ठान मे मुख्य आचार्य के पद पर इनको अभिषिक्त किया गया था तथा इनके तत्त्वावधान मे ही यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ था।

यज्ञ के विशालतम आयोजन तथा इन्द्रभूति आदि उक्त दुर्धर्ष आचार्यो की कीर्ति से आकर्षित होकर दूर-दूर प्रदेशो से अपार जनसमूह उस यज्ञ समारोह को देखने के लिए उमड पडा था।

उस समय अपापा नगरी का वह यज्ञ-स्थल एक साथ सहस्रो कण्ठो से उच्चरित वेद मन्त्रो की सुमधुर ध्वनि मे गगन मडल को गुजायमान करने वाला हो गया था। यज्ञ वेदियो मे हजारो स्रुवाओ से दी जाने वाली घृतादि की आहुतियो की सुगन्ध एव धूम्र के घटाटोप से धरा, नभ और समस्त वातावरण एक साथ ही गुजरित, सुगन्धित एव मेघाच्छन्न-सा हो उठा था। विशालतम यज्ञ-मण्डप मे उपस्थित जन-समूह आनन्द-विभोर होकर एक अनिर्वचनीय मस्ती/आह्लाद मे झूमने लगा था।

महावीर का समवसरण

क्षत्रिय कुण्ड के राजकुमार वर्धमान जिनका ईस्वी पूर्व ५९९ मे जन्म हुआ था और जिन्होने आत्म-साधना विचार से प्रेरित होकर राज्य-वैभव और कुटुम्ब का पूर्ण परित्याग कर ईस्वी पूर्व ५६९ मे प्रव्रज्या ग्रहण कर ली थी। दीक्षानन्तर अनेक [illegible] विचरण करते हुए, अकथनीय उपसर्गो/परीषहो का समभाव से करते हुए, उत्कट तपश्चर्या द्वारा शरीर को आतापना देते पूर्वकृत कर्म-परम्परा को निर्जर/क्षय करते हुए, साढे वारह दीर्घकालीन समय तक जो सयम-साधना मे रत रहे और [illegible] ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, वेदनीय इन चारो घाति का नाश कर, केवलज्ञान एव केवलदर्शन प्राप्त कर ई० [illegible] ५५७ मे वैशाख शुक्ला १० को सर्वज्ञ वन गये थे।

श्रमण वर्धमान/महावीर जृम्भिका नगर के वाहर, ऋजुवा[illegible] नदी के किनारे श्यामाक गाथापति के क्षेत्र मे शालवृक्ष के गोदोहिका आसन से उत्कट रूप मे वैठे हुए ध्याना[illegible] केवलज्ञानी वने थे।

सर्वज्ञ वनते ही चतुर्विधनिकाय के देवो ने ज्ञान का महोत्सव और तत्क्षण ही वहाँ समवसरण की रचना की। [illegible] विराजमान होकर प्रभु ने प्रथम देशना दी, किन्तु वह निष्फल इसीलिए यह "अच्छेरक" आश्चर्यकारक माना गया। तीर्थ-[illegible] का अभाव देखकर प्रभु ने वहाँ से रात्रि मे ही विहार कर, [illegible] शुक्ला एकादशी को प्रात समय मे अपापा नगरी के महसेन [illegible] उद्यान मे पधारे। देवो ने तत्क्षण ही वहाँ विशाल, सुन्दर, [illegible] रमणीय समवसरण की एव अष्ट प्रातिहार्यो की रचना की। [illegible] समवसरण के मध्य मे अशोक वृक्ष के नीचे देव-निर्मित [illegible] वैठकर अपनी अमोघ दिव्यवाणी मे स्वानुभूत धर्मदेशना देने [illegible]

केवलज्ञान से देदीप्यमान प्रभु के दर्शन करने और [illegible] अमृतोपम देशना को सुनने के लिये अपापा नगरी का जन लालायित हो उठा और हजारो नर-नारी समवसरण मे जाने के उमड पडे। गली-गली मे एक ही स्वर घोष/कलरव गूँज उठा ' के दर्शन के लिये त्वरा से चलो। जो पहले दर्शन करेगा भाग्यशाली होगा।' फलत प्रात काल से अपार जनता समवसरण मे पहुँच कर, धर्म-देशना सुनकर अपने जीवन सफल/कृतकृत्य समझने लगी।

देवगणो मे केवलज्ञान का महोत्सव करने, सर्वज्ञ के दर्शन [illegible] और उनकी दिव्यवाणी सुनने की होड़-होड मच गई। फलत [illegible] भी अपनी देवागनाओ के साथ स्वकीय-स्वकीय विमानो [illegible] समवसरण की ओर वेग के साथ भागने लगे। [illegible] देव-विमानो [illegible] आगमन से विशाल गगन-मण्डल भी आच्छादित हो गया।

याज्ञिको का भ्रम–यज्ञ मण्डप मे विराजमान आचार्य [illegible] और उनके [illegible] की दृष्टि [illegible] आकाश मे एक साथ [illegible] विमानो को देख [illegible]

ये इन्द्र के समान ज्ञानादि ऐश्वर्य से सम्पन्न है। गौतम तो इनका गोत्र है। किन्तु, जैन समाज की आबाल-वृद्ध जनता सहस्राब्दियो से इन्हे गौतम स्वामी के नाम से ही जानती-पहचानती/पुकारती आई है।

जीवन-चरित्र

गौतमस्वामी का व्यक्तित्व और कृतित्व अनुपमेय है। सर्वांग रूप से इनका जीवन-चरित्र प्राप्त नही है, किन्तु इनके जीवन की छुट-पुट घटनाओ के उल्लेख आगम, निर्युक्ति, भाष्य, टीकाओ मे बहुलता से प्राप्त होते है। यत्र-तत्र प्राप्त उल्लेखो/बिखरी हुई कडियो के आधार पर इनका जो जीवन-चरित्र बनता है, वह इस प्रकार है।

जन्म मगध देश के अन्तर्गत नालन्दा के अनति-दूर ''गुव्वर'' नाम का ग्राम था, जो समृद्धि से पूर्ण था। वहाँ विप्रवशीय गौतम गोत्रीय वसुभूति नामक श्रेष्ठ विद्वान् निवास करते थे। उनकी अर्धांगिनी का नाम पृथ्वी था। पृथ्वी माता की रत्नकुक्षि से ही ईस्वी पूर्व ६०७ मे ज्येष्ठा नक्षत्र मे इनका जन्म हुआ था। इनका जन्म नाम इन्द्रभूति रखा गया था। इनके अनन्तर चार-चार वर्ष के अन्तराल मे विप्र वसुभूति के दो पुत्र और हुए, जिनके नाम क्रमश अग्निभूति और वायुभूति रखे गये थे।

अध्ययन यज्ञोपवीत सस्कार के पश्चात् इन्द्रभूति ने उद्भट शिक्षा-गुरु के सान्निध्य मे रहकर ऋक्, यजु, साम एव अथर्व–इन चारो वेदो, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एव ज्योतिष इन छहो वेदागो तथा मीमासा, न्याय, धर्म-शास्त्र एव पुराण– इन चार उपागो का अर्थात् चतुर्दश विद्याओ का सम्यक् प्रकार से तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया था।

आचार्य चौदह विद्याओ के पारगत विद्वान् होने के पश्चात् इन्द्रभूति के तीन कार्य-क्षेत्र दृष्टि-पथ मे आते है–

१. अध्यापन– इन्होंने ५०० छात्रो/बटुको को समग्र विद्याओ का अध्ययन कराते हुए सुयोग्यतम वेदवित्, कर्मकाण्डी और वादी बनाये। ये ५०० छात्र शरीर-छाया के समान सर्वदा इनके साथ ही रहते थे।

२ शास्त्रार्थ– दुर्धर्ष विद्वान् होने के कारण इन्द्रभूति ने छात्र-समुदाय के साथ उत्तरी भारत मे घूम-घूम कर, स्थान-स्थान पर तत्कालीन विद्वानो के साथ शास्त्रार्थ किये और उन्हे पराजित कर अपनी दिग्विजय पताका फहराते रहे। किन-किन के साथ और किस-किस विषय पर शास्त्रार्थ किये ? उल्लेख प्राप्त नही है।

३. यज्ञाचार्य– इन्द्रभूति प्रमुखत मीमासक होने के कारण कर्मकाण्डी थे। स्वय प्रतिदिन यज्ञ करते और विशालतम याग-यज्ञादि क्रियाओ के अनुष्ठान करवाते थे। यज्ञाचार्य के रूप मे दसो दिशाओ मे इनकी प्रसिद्धि थी। फलत अनेक वैभवशाली गृहस्थ बडे-बडे यज्ञो का अनुष्ठान कराने के लिए इन्हे अपने यहाँ आमन्त्रित कर स्वय को भाग्यशाली समझते थे। इन्द्रभूति की कीर्ति से आकृष्ट होकर अपार जन-समूह दूरस्थ प्रदेशो से इनकी यज्ञ-आहुति मे पहुँच कर अपने को धन्य समझता था।

स्पष्ट है कि इनका विशाल शिष्य समुदाय था। इनके अप्रतिम वैदुष्य के समक्ष बडे-बडे पण्डित व शास्त्र-धुरन्धर नतमस्तक हो जाते थे। अतिनिष्णात वेद-विद्या और उच्च यज्ञाचार्य के समकक्ष उस समय इन्द्रभूति की कोटि का कोई दूसरा विद्वान् मगध देश मे नही था।

छात्र सख्या– विशेषावश्यक भाष्य के अनुसार गौतम ५०० शिष्यो के साथ महावीर के शिष्य बने थे, निर्विवाद है। किन्तु अपने अध्यापन काल मे तो उन्होंने सहस्रो छात्रो को शिक्षित कर विशिष्ट विद्वान् अवश्य बनाये होंगे ? इस सम्बन्ध मे आचार्य श्री हस्तिमलजी ने ''इन्द्रभूति गौतम'' लेख मे जो विचार व्यक्त किये है, वे उपयुक्त प्रतीत होते है–

''सम्भवत इस प्रकार ख्याति प्राप्त कर लेने के पश्चात् वे वेद-वेदाग के आचार्य बने हो। उनकी विद्वत्ता की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल जाने के कारण यह सहज ही विश्वास किया जा सकता है कि सैकडो की सख्या मे शिक्षार्थी उनके पास अध्ययनार्थ आये हो और यह सख्या उत्तरोत्तर बढते-बढते ५०० ही नही अपितु इससे कही अधिक बढ गई हो। इन्द्रभूति के अध्यापन काल का प्रारम्भ उनकी ३० वर्ष की वय से भी माना जाय तो २० वर्ष के अध्यापन काल की सुदीर्घ अवधि मे अध्येता बहुत बडी सख्या मे स्नातक बनकर निकल चुके होंगे और उनकी जगह नवीन छात्रो का प्रवेश भी अवश्यम्भावी रहा होगा। ऐसी स्थिति मे अध्येताओ की पूर्ण सख्या ५०० से अधिक होनी चाहिए। ५०० की सख्या केवल नियमित रूप से अध्ययन करने वाले छात्रो की दृष्टि से ही अधिक सगत प्रतीत होती है।''

विवाह– अध्ययनोपरान्त इन्द्रभूति का विवाह हुआ या नही ? कहाँ हुआ ? किसके साथ हुआ ? इनकी वश-परम्परा चली या नही ? इस प्रसग मे दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा के समस्त शास्त्रकार मौन है। इन्द्रभूति ५० वर्ष की अवस्था तक गृहवास मे रहे, यह सभी को मान्य है, परन्तु, उस अवस्था तक वे बाल ब्रह्मचारी ही रहे या गार्हस्थ्य जीवन मे रहे ? कोई स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नही होता। अत यह मान सकते है कि इन्द्रभूति ने अपना ५० वर्ष का जीवन अध्ययन, अध्यापन, वाद-विवाद और कर्मकाण्ड मे रहते हुए बाल-ब्रह्मचारी के रूप मे ही व्यतीत किया था।

शरीर-सौष्ठव–भगवती सूत्र मे इन्द्रभूति की शारीरिक रचना के प्रसग मे कहा गया है–इन्द्रभूति का देहमान ७ हाथ का था, अर्थात् शरीर की ऊँचाई सात हाथ की थी। आकार समचतुरस्र सस्थान/लक्षण (सम चौरस शरीराकृति) युक्त था।

वज्रऋषभनाराच– वज्र के समान सुदृढ सहनन था। इनके शरीर का रग-रूप कसौटी पर रेखाकित स्वर्ण रेखा एव कमल की केशर के समान पद्मवर्णी/गौरवर्णी था। विशाल एव उन्नत ललाट था और कमल-पुष्प के समान मनोहारी नयन थे। उक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इनकी शरीर-कान्ति देदीप्यमान और नयनाभिराम थी।

अन्तिम यज्ञ–उस समय अपापा नगरी मे वैभव सम्पन्न एव राज्यमान्य सोमिल नामक द्विजराज रहते थे। उन्होंने अपनी समृद्धि के अनुसार अपनी नगरी मे ही विशाल यज्ञ करवाने का आयोजन किया था। सोमिल ने यज्ञ के अनुष्ठान हेतु विहार प्रदेशस्थ राजगृह, मिथिला आदि स्थानो के अनेक दिग्गज कर्मकाण्डी विद्वानो को आमन्त्रित किया था। इनमे ग्यारह उद्भट याज्ञिक प्रमुखो– इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्म, मण्डित, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्राता, मेतार्य एव प्रभास– को तो बडे आग्रह के साथ आमन्त्रित किया था। उक्त ग्यारह आचार्य भी अपने विशाल छात्र/शिष्य समुदाय के साथ यज्ञ सम्पन्न कराने हेतु अपापा आ गये थे। विशेषावश्यक भाष्य के अनुसार इन यज्ञाचार्यो की शिष्य सख्या निम्न थी –

इन्द्रभूति ५००, अग्निभूति ५००, वायुभूति ५००, व्यक्त ५००, सुधर्म ५००, मडित ३५०, मौर्यपुत्र ३५०, अकम्पित ३००, अचलभ्राता ३००, मेतार्य ३००, प्रभास ३००। इस प्रकार इन ग्यारह आचार्यो की कुल शिष्य सख्या ४४०० थी।

इन्द्रभूति के अप्रतिम, वैदुष्य और प्रकृष्टतम यशोकीर्ति के कारण यज्ञानुष्ठान मे मुख्य आचार्य के पद पर इनको अभिषिक्त किया गया था तथा इनके तत्त्वावधान मे ही यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ था।

यज्ञ के विशालतम आयोजन तथा इन्द्रभूति आदि उक्त दुर्धर्ष आचार्यो की कीर्ति से आकर्षित होकर दूर-दूर प्रदेशो से अपार जनसमूह उस यज्ञ समारोह को देखने के लिए उमड पडा था।

उस समय अपापा नगरी का वह यज्ञ-स्थल एक साथ सहस्रो कण्ठो से उच्चरित वेद मन्त्रो की सुमधुर ध्वनि से गगन मडल को गुजायमान करने वाला हो गया था। यज्ञ वेदियो मे हजारो स्त्रुवाओ से दी जाने वाली घृतादि की आहुतियो की सुगन्ध एव धूम्र के घटाटोप से धरा, नभ और समस्त वातावरण एक साथ ही गुजरित, सुगन्धित एव मेघाच्छन्न-सा हो उठा था। विशालतम यज्ञ-मण्डप मे उपस्थित जन-समूह आनन्द-विभोर होकर एक अनिर्वचनीय मस्ती/आह्लाद मे झूमने लगा था।

महावीर का समवसरण

इधर क्षत्रिय कुण्ड के राजकुमार वर्धमान जिनका ईस्वी पूर्व ५९९ मे जन्म हुआ था और जिन्होंने आत्म-साधना विचार से प्रेरित होकर, राज्य-वैभव और गृहवास का पूर्णत परित्याग कर ईस्वी पूर्व ५६९ मे प्रव्रज्या ग्रहण कर ली थी। दीक्षानन्तर अनेक प्रदेशो मे विचरण करते हुए, अकथनीय उपसर्गो/परीषहो का समभाव से सहन करते हुए, उत्कट तपश्चर्या द्वारा शरीर को आतापना देते हुए, पूर्वकृत कर्म-परम्परा को निर्जर/क्षय करते हुए, साढे बारह वर्ष के दीर्घकालीन समय तक जो सयम-साधना मे रत रहे और अन्त मे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, वेदनीय इन चारो घाति कर्मो का नाश कर, केवलज्ञान एव केवलदर्शन प्राप्त कर ईस्वी पूर्व ५५७ मे वैशाख शुक्ला १० को सर्वज्ञ बन गये थे।

श्रमण वर्धमान/महावीर जृम्भिका नगर के बाहर, ऋजुवालिका नदी के किनारे श्यामाक गाथापति के क्षेत्र मे शालवृक्ष के नीचे, गोदाहिका आसन से उत्कट रूप मे बैठे हुए ध्यानावस्था मे केवलज्ञानी बने थे।

सर्वज्ञ बनते ही चतुर्विधनिकाय के देवो ने ज्ञान का महोत्सव किया और तत्क्षण ही वहाँ समवसरण की रचना की। समवसरण मे विराजमान होकर प्रभु ने प्रथम देशना दी, किन्तु वह निष्फल हुई। इसीलिए यह ''अच्छेरक'' आश्चर्यकारक माना गया। तीर्थ-स्थापना का अभाव देखकर प्रभु ने वहाँ से रात्रि मे ही विहार कर, वैशाख शुक्ला एकादशी को प्रात समय मे अपापा नगरी के महसेन नामक उद्यान मे पधारे। देवो ने तत्क्षण ही वहाँ विशाल, सुन्दर, मनोहारी एव रमणीय समवसरण की एव अष्ट प्रातिहार्यो की रचना की। महावीर समवसरण के मध्य मे अशोक वृक्ष के नीचे देव-निर्मित सिंहासन पर बैठकर अपनी अमोघ दिव्यवाणी से स्वानुभूत धर्मदेशना देने लगे।

केवलज्ञान से देदीप्यमान प्रभु के दर्शन करने और उनकी अमृतोपम देशना को सुनने के लिये अपापा नगरी का जन-समूह लालायित हो उठा और हजारो नर-नारी समवसरण मे जाने के लिये उमड पडे। गली-गली मे एक ही स्वर घोष/कलरव गूँज उठा 'सर्वज्ञ के दर्शन के लिये त्वरा से चलो। जो पहले दर्शन करेगा वह भाग्यशाली होगा।' फलत प्रात काल से अपार जनमेदिनी समवसरण मे पहुँच कर, धर्म-देशना सुनकर अपने जीवन को सफल/कृतकृत्य समझने लगी।

देवगणो मे केवलज्ञान का महोत्सव करने, सर्वज्ञ के दर्शन करने और उनकी दिव्यवाणी सुनने की होडा-होड मच गई। फलत देवता भी अपनी देवागनाओ के साथ स्वकीय-स्वकीय विमानो मे बैठकर समवसरण की ओर वेग के साथ भागने लगे। हजारो देव-विमानो के आगमन से विशाल गगन-मण्डल भी आच्छादित हो गया।

याज्ञिको का भ्रम–यज्ञ मण्डप मे विराजमान अध्वर्यु आचार्यो और सहस्रो यज्ञ-दर्शको की दृष्टि सहसा नभो-मण्डल की ओर उठी। आकाश मे एक साथ हजारो विमानो को देख कर यज्ञ मे उपस्थित

लोगो की ऑखे चौंधिया गई। ऑखो को मलते हुए स्पष्टत देखा कि सहस्त्रो सूर्यो की तरह देदीप्यमान सहस्त्रो विमानो से नीलगगन ज्योतिर्मय हो रहा है। देव विमानो को यज्ञ-मण्डप की ओर अग्रसर होते देख उपस्थित अपार जन-समूह यज्ञ का महात्म्य समझ कर आनन्द विभोर हो उठा।

प्रमुख यज्ञाचार्य इन्द्रभूति गौतम अत्यन्त प्रमुदित हुए और घनगम्भीर गर्वोन्नत स्वर मे यजमान सोमिल को सम्बोधित कर कहने लगे–''देखो विप्रवर! यज्ञ और वेद मन्त्रो का प्रभाव देखो! सतयुग का दृश्य साकार हो गया है! अपना-अपना हविर्भाग पुरोडाश ग्रहण करने इन्द्रादि देव सशरीर तुम्हारे यज्ञ मे उपस्थित हो रहे है। तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया है।'' और, स्वय शतगुणित उत्साह से प्रमुदित होकर और अधिक उच्च स्वरो से वेद मन्त्रोच्चारण करते हुये आहुतियाँ देने लगे। सहस्रो कण्ठो से एक साथ नि सृत मन्त्र-ध्वनि और स्वाहा के तुमुल घोष से आकाश गूज उठा।

परन्तु, 'यह क्या! ये सारे देव-विमान तो यहाँ उतरने चाहिये थे, वे तो इस यज्ञ-मण्डप को लाघ कर नगर के बाहर जा रहे है! क्या ये देवगण मन्त्रो के आकर्षण से यहाँ नही आ रहे है! क्या यज्ञ का प्रभाव इन्हे आकृष्ट नही कर रहा है।' सोचते-सोचते ही न केवल इन्द्रभूति का ही अपितु सभी याज्ञिको का गर्वस्मित मुख श्यामल हो गया। नजरे नीची हो गई। आहुति देते हाथ स्तम्भित से हो गए। मन्त्र-ध्वनि शिथिल पड गई। नीची गर्दन कर इन्द्रभूति मन ही मन सोचने लगे। 'पर, ये देवगण जा किसके पास रहे है?' सोच ही रहे थे कि देवो का तुमुल-घोष कर्णकुहरो मे पहुँचा कि–''चलो, शीघ्र चलो, सर्वज्ञ महावीर को वन्दन करने महसेन वन शीघ्र चलो।'' इन्द्रभूति को विश्वास नही हुआ। अपने बटुको/शिष्यो/छात्रो को भेजकर जानकारी करवाई तो ज्ञात हुआ–''भगवान महावीर केवलज्ञानी/सर्वज्ञ बनकर अपापा नगरी के बाहर महसेन वन मे आये है। देव-निर्मित अलौकिक समवसरण मे बैठकर धर्मदेशना दे रहे है। उन्ही को नमन करने एव उनकी देशना सुनने नगर निवासी झुण्ड के झुण्ड बनाकर वहाँ पहुँच रहे है। समस्त देवगण भी समवसरण मे सर्वज्ञ महावीर की अनुचरो की भॉति सेवा कर रहे है।'' सुनते ही आहत सर्प की तरह गर्वाहत होकर इन्द्रभूति हुकार करते हुए गरजने लगे। क्रोधावेश के कारण उनका मुख लाल-लाल हो गया। ऑखो से मानो ज्वालाएँ निकलने लगी। हाथ-पैर कॉपने लगे। वे बुदबुदा उठे–

कौन सर्वज्ञ है? कौन ज्ञानी है? विश्व मे मेरे अतिरिक्त न कोई सर्वज्ञ है और न कोई ज्ञानी। देश के सारे ज्ञानियो/विद्वानो को तो मैने शास्त्रार्थ मे पराजित कर दिया था, कोई शेष नही वचा था। फिर यह नया सर्वज्ञ कहाँ से पैदा हो गया। यह महावीर नाम भी मैंने पहले कभी नही सुना था। अरे! हाँ, याद आया, उस बटुक ने कहा था–''ज्ञातवशीय महावीर अलौकिक शक्ति के भी धारक है।'' हूँ! तो यह क्षत्रिय है! ब्राह्मणो से विद्या प्राप्त करने वाला और विप्रो के चरण-स्पर्श करने वाला क्षत्रिय सर्वज्ञ बन बैठा है। धोखा है। यह सर्वज्ञ नही, इन्द्रजाली प्रतीत होता है। इन्द्रजाल/सम्मोहिनी विद्या से इसने सब को बेवकूफ बना रखा है। शेर की खाल ओढकर यह सियार अपनी माया जाल से सब को मूर्ख बना रहा है। मानता हूँ, मानव तो माया जाल मे आकर मूर्ख बन सकता है, देवता नही। किन्तु, यहाँ तो सारे के सारे देवता भी इसके जाल मे फॅसकर भटक रहे है। चाहे कोई भी हो, मेरे अगाध वैदुष्य के समक्ष कोई टिक नही सकता। जैसे एक म्यान मे दो तलवारे नही रह सकती वैसे ही इस पृथ्वीतल पर मेरी विद्यमानता मे दूसरे सर्वज्ञ का अस्तित्व नही रह सकता। यह कैसा भी सर्वज्ञ हो, इन्द्रजाली हो, मायावी हो, मै जाकर उसके सर्वज्ञत्व को, मायावीपन को ध्वस्त कर दूँगा, छिन्न-भिन्न कर दूँगा। मेरे सन्मुख कोई भी कैसा भी क्यो न हो, टिक नही सकता। तो, मै चलू उस तथाकथित सर्वज्ञ का मान-मर्दन करने।

भ्रम-निवारण–अभिमानाभिभूत होकर इन्द्रभूति तत्क्षण ही यज्ञवेदी से उतरे, अपनी शिखा मे गाँठ बॉधी, अन्तरीय वस्त्र ठीक किया, खडाऊ पहने और मदमत्त हाथी की चाल से चल पडे महावीर के समवसरण की ओर। अन्य दसो याज्ञिकाचार्य देखते ही रह गये। इन्द्रभूति के पीछे-पीछे उनके ५०० छात्र शिष्य भी अपने गुरु का जय-जयारव करते हुए एव वादीगजकेसरी, वादीमानमर्दक, वादीघूकभास्कर, वादीभपचानन, सरस्वतीकण्ठाभरण आदि विरुदावली का पाठ करते हुए चल पडे। अहकार और ईर्ष्या मिश्रित मुख-मुद्रा धारक आचार्य को त्वरा के साथ गमन करते देखकर, नगरवासी स्तम्भित से रह गए। कुछ कुतूहल प्रिय नागरिक मजा देखने उनके पीछे-पीछे चल पडे।

सर्वज्ञ दर्शन–अपापा नगरी से बाहर निकल कर इन्द्रभूति ज्यो ही महसेन वन की ओर बढे, तो देवनिर्मित समवसरण की अपूर्व एव नयनाभिराम रचना देखकर वे दिड्मूढ से हो गये। जैसे-तैसे समवसरण के प्रथम सोपान पर कदम रखा। समवसरण मे स्फटिक रत्न के सिंहासन पर विराजित वीतराग महावीर के प्रशान्त मुख-मण्डल की अलौकिक एव अनिर्वचनीय देदीप्यमान प्रभा से वे इतने प्रभावित हुए कि कुछ भी न बोल सके। वे असमजस मे पड गये और सोचने लगे–'क्या ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, वरुण ही तो साक्षात् रूप मे नही बैठे है? नही, शास्त्रोक्त लक्षणानुसार इनमे से यह एक भी नही है। फिर यह कौन है? ऐसी अनुपमेय एव असाधारण शान्त मुख मुद्रा तो वीतराग की ही हो सकती है। तो,

क्या यही सर्वज्ञ है ? ऐसे ऐश्वर्य सम्पन्न सर्वज्ञ की तो मै स्वप्न मे भी कल्पना नही कर सकता था। वस्तुत यदि यही सर्वज्ञ है तो मैने यहाँ त्वरा मे आकर वहुत वडी गलती की है। मै तो इनके समक्ष तेजोहीन हो गया हूँ। मै इसके साथ शास्त्रार्थ कैसे कर पाऊँगा। मै वापस भी नही लौट सकता। लौट जाता हूँ तो आज तक की समुपार्जित अप्रतिम निर्मल यशोकीर्ति मिट्टी मे मिल जाएगी। तो मै क्या करूँ ?' इन्द्रभूति इस प्रकार की उधेडवुन मे सलग्न थे।

उसी समय अन्तर्यामी सर्वज्ञ महावीर ने अपनी योजनगामिनी वाणी से सम्वोधित करते हुए कहा–"भो इन्द्रभूति गौतम! तुम आ गये ?" अपना नाम सुनते ही इन्द्रभूति चौक पडे। अरे! इन्होंने मेरा नाम कैसे जान लिया ? मेरी तो इनके साथ कोई जान-पहचान भी नही है, कोई पूर्व परिचय भी नही है। अहँ प्रताडित होने से पुन सकल्प-विकल्प की दोला मे डोलने लगे। चाहे मै किसी को न जानू, पर मुझे कौन नही जानता ? सूर्य की पहचान किसे नही होती ? मेरे अगाध वैदुष्य की धाक सारे देश मे अमिट रूप से छाई हुई है, खैर।

सन्देह-निवारण–मेरे मन मे प्रारम्भ से ही यह सशय शल्य की तरह रहा है कि 'पॉच भूतो का समूह ही जीव है अथवा चेतना शक्ति सम्पन्न जीव तत्व कोई अन्य है।' मै अनेक शास्त्रो का अध्येता हूँ, फिर भी इस विषय मे प्रामाणिक निर्णय पर नही पहुँच पाया हूँ। यदि मेरे इस सशय का ये निवारण कर दे तो मै इन्हे सर्वज्ञ मान लूँगा और सर्वदा के लिए इनको अपना लूँगा।

अतिशय ज्ञानी महावीर ने इन्द्रभूति के मनोगत भावो को समझकर तत्काल ही कहा–

हे गौतम! तुम्हे यह सदेह है कि जीव है या नही ? यह तुम्हारा सशय वेद/बृहदारण्य उपनिषद् की श्रुति–"विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्य समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति, न च प्रेत्य सज्ञास्ति–" पर आधारित है। अर्थात् इन भूतो से विज्ञानघन समुत्थित होता है और भूतो के नष्ट हो जाने पर वह भी नष्ट हो जाता है। परलोक जैसी कोई चीज नही है।

महावीर ने पुन स्पष्ट करते हुए कहा–इस श्रुतिपद का वास्तविक अर्थ न समझने के कारण ही तुम्हे यह भ्रान्ति हुई है। इसका वस्तुत अर्थ यह है कि आत्मा मे प्रति समय नई-नई ज्ञान-पर्यायो की उत्पत्ति होती है और पूर्व की पर्यायें विलीन हो जाती है। जैसे घट का चिन्तन करने पर चेतना मे घट रूप पर्याय का आविर्भाव होता है और दूसरे क्षण पट का ध्यान करने पर घट रूप पर्याय नष्ट हो जाती है और पट रूप पर्याय उत्पन्न हो जाती है। आखिर ये ज्ञान रूप चेतन पर्याय किसी सत्ता की ही होगी ? यहाँ भूत शब्द का अर्थ पृथ्वी, अप, तेजस् आदि पॉच भूतो से न होकर जड-चेतन रूप समस्त ज्ञेय पदार्थो से है। जैसे प्राण के निकल जाने पर पॉच भूत तो ज्यो के त्यो बने रहते है। तुम ही विचार करो कि वह कौन सी सत्ता है जिसके निकल जाने से पच भूतात्मक काया निश्चेष्ट हो जाती है तथा इन्द्रियॉ सामर्थ्यहीन हो जाती है। इन्द्रभूति! चेतना शक्ति चित्त रूप है। वह मरणधर्मा नही है। शरीर के नष्ट होने से चेतना नष्ट नही होती है। पुन , विचारक के आधार पर ही विचार की सत्ता है। यदि विचार है तो विचारक होगा ही। अपने अस्तित्व के प्रति सन्देहशील होना यह भी एक विचार है और यह विचार कोई विचारशील सत्ता ही कर सकती है, अत आत्मा की सत्ता तो स्वय सिद्ध है। घट यह नही सोचता की मेरी सत्ता है या नही ? अत तुम्हारी शका ही आत्मा क अस्तित्व को सिद्ध करती है। फिर तुम्हारे वेद-श्रुतियो के प्रमाणो से भी यह स्पष्टत सिद्ध होता है कि जीव का स्वतन्त्र अस्तित्त्व है।

दीक्षा–सर्वज्ञ महावीर के मुख से इस तर्क प्रधान और प्रामाणिक विवेचना को सुनकर इन्द्रभूति के मन स्थित सशय शल्य पूर्णत नष्ट हो गया। अन्तर मानस स्फटिकवत् विशुद्ध हो गया और प्रभु को वास्तविक सर्वज्ञ मानकर, नतमस्तक एव करवद्ध होकर कहा,– 'स्वामिन्! मै इसी क्षण से आपका हो गया हूँ। अव आप मुझे पाच सौ शिष्यो के परिवार के साथ अपना शिष्य वनाकर हमारे जीवन को सफल वनावे।' प्रभु ने उसी समय ईस्वी पूर्व ५५७ मे वैशाख सुदि ११ के दिन पचास वर्षीय इन्द्रभूति को अपने छात्र-परिवार के साथ प्रव्रज्या प्रदान कर अपना प्रथम शिष्य घोषित किया।

अन्य १० यज्ञाचार्यो की दीक्षा–

"इन्द्रभूति छात्र-परिवार सहित सर्वज्ञ महावीर का शिष्यत्व अगीकार कर निर्ग्रन्थ/श्रमण वन गये है।" सवाद विजली की तरह यज्ञ मण्डप मे पहुँचे तो शेष दसो याज्ञिक आचार्य किंकर्त्तव्य-विमूढ से हो गये। सहसा उनको इस सवाद पर विश्वास ही नही हुआ। वे कल्पना भी नही कर पाते थे कि देश का इन्द्रभूति जैसा अप्रतिम दुर्धर्ष दिग्गज विद्वान जो सर्वदा अपराजेय रहा वह किसी निर्ग्रन्थ से पराजित होकर उसका शिष्य वन सकता है। सव हतप्रभ से हो गये। किन्तु, अग्निभूति चुप न रह सका और वह आग-ववूला होकर, अपने अग्रज को वन्धन से छुडाने के लिए अपने छात्र-समुदाय के साथ महावीर से शास्त्रार्थ करने के लिये गर्व के साथ समवसरण की ओर चल पडा। महावीर के समक्ष पहुँचते ही उसने भी अपनी शका का समाधान हृदयगम कर छात्र परिवार सहित उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। इस प्रकार क्रमश वायुभूति आदि नवो कर्मकाण्डी उद्‌भट विद्वान् महावीर के पास पहुँचे और उनसे अपनी-अपनी शकाओं का समाधान प्राप्त कर अपने छात्र-परिवार सहित प्रभु के शिष्य वन गये।

गणधर-पद–आवश्यक चूर्णि और महावीर चरित्र के अनुसार इन्द्रभूति आदि ग्यारह विद्वान् आचार्य प्रभु का शिष्यत्व अगीकार करने के पश्चात् क्रमश भगवान महावीर के समक्ष कुछ दूर पर अजलिबद्ध नत-मस्तक होकर खडे हो गए। उस समय कुछ क्षणो के लिये देवो ने वाद्य निनाद बन्द किये ओर जगद्वन्द्य महावीर ने अपने कर-कमलो से उनके शिरो पर सौगन्धिक रत्न चूर्ण डाला और इन्द्रभूति आदि सब को सम्बोन्धित करेत हुए कहा–''मै तुम सब को तीर्थ की अनुज्ञा देता हूँ, गणधर पद प्रदान करता हूँ।' इस प्रकार भगवान् ने अपने तीर्थ/सघ की स्थापना कर ग्यारह गणधर घोषित किये। इनमे प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम थे। ग्यारह आचार्यो का विशाल शिष्य समुदाय उन्ही का रहा, जिनकी कुल सख्या ४४०० थी।

द्वादशागी की रचना

शिष्यत्व अगीकार करने के पश्चात् गणधर इन्द्रभूति श्रमण भगवान महावीर के समीप आये और सविनय वन्दना नमस्कार के पश्चात् जिज्ञासा पूर्वक प्रश्न किया –

''भते कि तत्त्वम्। भगवन्। तत्त्व क्या है?''

महावीर ने कहा –

''उप्पन्नेइ वा'' उत्पाद/उत्पन्न होता है। इस उत्तर से इन्द्रभूति की जिज्ञासा शान्त नही हुई। वे सोचने लगे कि यदि उत्पन्न ही उत्पन्न होता रहा तो सीमित पृथ्वी मे उसका समावेश कैसे होगा? अत पुन प्रश्न किया –

''भते। किं तत्त्वम्'' भगवन्। तत्त्व क्या है?

महावीर ने कहा –

''बिगयेइ वा'' विगय नष्ट होता है।

इन्द्रभूति का मानस पुन सशयशील हो उठा। सोचने लगे – यदि विगय ही विगय होगा, तो एक दिन सब नष्ट हो जाएगा, ससार पूर्णत रिक्त हो जाएगा। अत सशय-निवारण हेतु पुन प्रश्न किया–

''भते। किं तत्त्वम्।'' भगवन्। तत्त्व क्या है?

पुन महावीर ने उत्तर दिया –

''धुएत्ति वा'' ध्रुव /शाश्वत रहता है।

यह उत्तर सुनते ही इन्द्रभूति को समाधान मिल गया, उनका सशय दूर हो गया।

इस त्रिपदी का निष्कर्ष यह है कि पयाय दृष्टि मे प्रत्येक वस्तु मे उत्पाद और व्यय/नाश होता है, किन्तु द्रव्य दृष्टि से जो कुछ है वह ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है।

यह त्रिपदी प्रत्येक पदार्थ/वस्तु पर घटित होती है। विश्व मे ऐसा कोई पदार्थ नही है कि जिस पर यह घटित न हो। प्रत्येक सत् वस्तु द्रव्य रूप से सदैव नित्य है, शाश्वत है। द्रव्य यदि द्रव्य रूपता का परित्याग कर दे, तो जीव जीव नही रह सकता और अजीव अजीव नही रह सकता। यदि सत् असत् रूप मे परिणत हो जाए तो सारी व्यवस्था गडबडा जाएगी। चेतन हो अथवा जड, किन्तु इस सीमा रेखा का कोई उल्लघन नही कर सकता। जैसे देखिये – एक घडा है, वह फूट गया। घट का रूप नष्ट हो गया, ठीकरियो के रूप मे उत्पत्ति हो गई, पर उसकी मिट्टी ध्रुव है। मिट्टी पहले भी थी और अब भी है। पुन देखिये – दूध का रूप विनष्ट होने पर दधि रूप की उत्पत्ति है, तदपि गोरस कायम रहता है, शाश्वत रहता है।

इस त्रिपदी को हृदयगम कर, चिन्तन-मनन पूर्वक अवगाहन कर, इन्द्रभूति ने इसी त्रिपदी को माध्यम बनाया और भगवान् ने जो-जो अर्थ प्रकट किये उन सब को सूत्र-बद्ध कर द्वादशागी गणिपिटक की रचना की। इसीलिए शास्त्रो मे गणधरो को द्वादशागी निर्माता कहा जाता है।

गणधर-पद – जिस प्रकार प्रत्येक प्राणी तीर्थकर नाम कर्म का बन्ध नही कर पाता, विरले व्यक्ति हो बीस स्थानक के पदो की विशिष्टतम एव उत्कट साधना कर तीर्थकर नाम-कर्म का उपार्जन करते है वैसे ही सामान्य प्राणी गणधर नाम-कर्म का बन्ध नही कर पाता, अपितु इने-गिने उत्कृष्टतम साधक ही बीस स्थानक पदो की उत्कट आराधना/अनुष्ठान कर गणधर नाम-कर्म का उपार्जन करते है। इस पद की प्राप्ति अनेक भवो से समुपार्जित महापुण्य के उदय मे आने पर ही होती है। जिस प्रकार तीर्थंकर पद विशिष्ट अतिशयो का बोधक है उसी प्रकार गणधर पद भी विशिष्ट अतिशयो/लब्धिसिद्धियो का द्योतक है। इन्द्रभूति की अनेक जन्मो की उत्कृष्ट साधना थी कि इस भव मे उस प्रकृष्ट पुण्यराशि के उदय मे आने के कारण दीक्षा ग्रहण करते ही तीर्थंकर महावीर के प्रथम गणधर और द्वादशागी निर्माता बनने का अविचल सौभाग्य प्राप्त कर सके।

इन्द्रभूति का व्यक्तित्व– दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् गौतम ने प्रतिज्ञा की कि यावज्जीवन मै षष्ठ भक्त तप करूगा, अर्थात् बिना चूक/अन्तराल के दो दिन का उपवास, एक दिन एकासन मे पारणा (एक समय भोजन) और पुन दो दिन का उपवास करता रहूगा। और, वे अप्रमत्त होकर उत्कट सयम पथ/साधना मार्ग पर चलने लगे। वे प्रतिदिन भगवान् महावीर की एक प्रहर धर्मदेशना के पश्चात् समवसरण मे सिंहासन के पाद-पीठ पर वैठ कर एक प्रहर तक देशना देते।

गौतम की विशिष्ट जीवनचर्या, दुष्कर साधना और वहुमुखी व्यक्तित्व का वर्णन भगवतीसूत्र और उपासकदशाग सूत्र मे इस प्रकार प्राप्त होता है –

श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतम गौत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगार उग्र तपस्वी थे। दीप्त तपस्वी कर्मो को भस्मसात करने मे अग्नि के समान प्रदीप्ततप करने वाले थे। तप्त तपस्वी थे अर्थात् जिनकी देह पर तपश्चर्या की तीव्र झलक व्याप्त थी। जो कठोर एव विपुल तप करने वाले थे। जो उराल-प्रवल साधना मे सशक्त थे। धारगुण-परम उत्तम जिनकी धारण करने मे अद्भुत शक्ति चाहिए – ऐसे गुणो के धारक थे। प्रवल तपस्वी थे। कठोर ब्रह्मचर्य के पालक थे। दैहिक सार-सम्भाल या सजावट से रहित थे। विशाल तेजोलेश्या को अपने शरीर के भीतर समेटे हुए थे। ज्ञान की अपेक्षा से चतुर्दश पूर्वधारी और चार ज्ञान – मति, श्रुत, अवधि और मनपर्यव ज्ञान के धारक थे। सर्वाक्षर सन्निपात जैसी विविध (२८) लब्धियो के धारक थे। महान् तेजस्वी थे। वे भगवान् महावीर से न अतिदूर और न अति समीप ऊर्ध्वजानु और अधो सिर होकर वैठते थे। ध्यान कोष्टक अर्थात सव और से मानसिक क्रियाओ का अवरोध कर अपने ध्यान को एक मात्र प्रभु के चरणारविन्द मे केन्द्रित कर वैठते थे। वेले-वेले निरन्तर तप का अनुष्ठान करते हुए सयमाराधना तथा तन्मूलक अन्यान्य तपश्चरणो द्वारा अपनी आत्मा को भावित/ सस्कारित करते हुए विचरण करते थे।

प्रथण प्रहर मे स्वाध्याय करते थे। दूसरे प्रहर मे देशना देते थे, ध्यान करते थे। तीसरे प्रहर मे पारणे के दिन अत्वरित, स्थिरता पूर्वक, अनाकुल भाव से मुखवस्त्रिका, वस्त्रपात्र का प्रतिलेखन/प्रमार्जन कर, प्रभु की अनुमति प्राप्त कर, नगर या ग्राम मे धनवान्, निर्धन और मध्यम कुलो मे क्रमागत – किसी भी घर को छोडे विना भिक्षाचर्या के लिए जाते थे। अपेक्षित भिक्षा लेकर, स्वस्थान पर आकर, प्रभु को प्राप्त भिक्षा दिखाकर और अनुमति प्राप्त कर गोचरी/भोजन करते थे।

इस प्रकार हम देखते है कि इन्द्रभूति अतिशय ज्ञानी होकर भी परम गुरु-भक्त और आदर्श शिष्य थे।

ज्ञाताधर्मकथा मे आर्य सुधर्म के नामोल्लेख के साथ जो गणधरो के विशिष्ट गुणो का वर्णन किया गया है उनमे गणधर इन्द्रभूति का भी समावेश हो जाता है। वर्णन इस प्रकार है –

''वे जाति सम्पन्न (उत्तम मातृपक्ष वाले) थे। कुल सम्पन्न (उत्तम पितृपक्ष वाले) थे। वलवान, रूपवान, विनयवान, ज्ञानवान, क्षायिक, सम्यक्त्व, सम्पन, साधन सम्पन्न थे। ओजस्वी थे। तेजस्वी थे। वर्चस्वी थे। यशस्वी थे। क्रोध, मान, माया, लोभ पर विजय प्राप्त कर चुके थे। इन्द्रियो का दमन कर चुके थे। निद्रा और परीषहो को जीतने वाले थे। जीवित रहने की कामना और मृत्यु के भय से रहित थे। उत्कट तप करने वाले थे। उत्कृष्ट सयम के धारक थे। करण सत्तरी और चरण सत्तरी का पालन करने मे और इन्द्रियो का निग्रह करने वालो मे प्रधान थे। आर्जव, मार्दव, लाघव/कौशल, क्षमा, गुप्ति और निर्लोभता के धारक थे। विद्या-प्रज्ञप्ति आदि विद्याओ एव मन्त्रो के धारक थे। प्रशस्त ब्रह्मचर्य के पालक थे। वेद और नय शास्त्र के निष्णात थे। भाति-भाति के अभिग्रह करने मे कुशल थे। उत्कृष्टतम सत्य, शौच, ज्ञान, दर्शन और चारित्र के धारक/पालक थे। घोर परीषहो को सहन करने वाले थे। घार तपस्वी/साधक थे। उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य के पालक थे। शरीर-सस्कार के त्यागी थे। विपुल तेजालेश्या को अपने शरीर मे समाविष्ट करके रखने वाले थे। चौदह पूर्वो के ज्ञाता थे और चार ज्ञान के धारक थे।''

प्रश्नोत्तर

गौतम जब ''ऊर्ध्वजानु अध शिर '' आसन से ध्यान कोष्टक/ ध्यान मे बैठ जाते थे अर्थात् बहिर्मुखी द्वारो/विचारो को बन्द कर अन्तर् मे चिन्तनशील हो जाते थे, उस समय धर्मध्यान और शुक्लध्यान की स्थिति मे उनके मानस मे जो भी प्रश्न उत्पन्न होते थे, जो कुछ भी जिज्ञासाए उभरती थी, कौतुहल जागृत होता था, तो वे अपने स्थान से उठकर भगवान् के निकट जाते, वन्दन-नमस्कार करते और विनयावनत होकर शान्त स्वर मे पूछते – भगवन्! इनका रहस्य क्या है? इस प्रसग का सुन्दरतम वर्णन भगवती सूत्र मे प्राप्त होता है। देखिये –

''तत्पश्चात् जातश्राद्ध (प्रवृत्त हुई श्रद्धा वाले), जात सशय, जात कौतूहल, समुत्पन्न श्रद्धा वाले, समुत्पन्न सशय वाले, समुत्पन्न कुतूहल वाले गौतम अपने स्थान से उठकर खडे होते है। उत्थित होकर जिस ओर श्रमण भगवान महावीर है उस ओर आते है। उनके निकट आकर प्रभु की उनकी दाहिनी ओर से प्रारम्भ करके तीन बार प्रदक्षिणा करते है। फिर वन्दन-नमस्कार करते है। नमन कर वे न तो वहुत पास और न वहुत दूर भगवान् के समक्ष विनय से ललाट पर हाथ जोडे हुए, भगवान् के वचन श्रमण करने की इच्छा से उनकी पर्युपासना करते हुए इस प्रकार वोले।''

और, महावीर ''हे गौतम!'' कह कर उनकी जिज्ञासाओ – सशयो, शकाओ का समाधान करते है। गौतम भी अपनी जिज्ञासा का समाधान प्राप्त कर, कृत-कत्य होकर भगवान् के चरणो मे पुन विनयपूर्वक कह उठते है – ''सेव भते! सेव भते! तहमेय भते!'' अर्थात् प्रभो! आपने जैसा कहा है वह ठीक है, वह सत्य है। मै उस पर श्रद्धा एव विश्वास करता हूँ। प्रभु के उत्तर पर श्रद्धा की यह अनुगूज वस्तुत प्रश्नोत्तर की एक आदर्श पद्धति है।

स्वयं चार ज्ञान के धारक और अनेक विद्याओ के पारगत होने पर भी गौतम अपनी जिज्ञासा को शान्त करने, नई-नई वाते जानने और अपनी शकाओ का निवारण करने के लिये स्वयं के पाण्डित्य/ज्ञान का उपयोग करने के स्थान पर प्रभु महावीर से ही प्रश्न पूछते थे।

प्रश्न छोटा हो या मोटा, सरल हो या कठिन, इस लोक सम्बन्धी हो या परलोक सम्बन्धी, वर्तमान-कालीन हो या भूत-भविष्यकाल से सम्बन्धित, दूसरे से सम्बन्धित हो या स्वय से सम्बन्धित, एक-एक के सम्बन्ध मे भगवान् के श्रीमुख से समाधान प्राप्त करने मे ही गौतम आनन्द का अनुभव करते थे।

वस्तुत इन प्रश्नो के पीछे एक रहस्य भी छिपा हुआ है। ज्ञानी गौतम को प्रश्न करने या समाधान प्राप्त करने की तनिक भी आवश्यकता नही थी। वे तो प्रश्न इसलिये करते थे कि इस प्रकार की जिज्ञासाएँ अनेको मानस मे होती है किन्तु प्रत्येक श्रोता प्रश्न पूछ भी नही पाता या प्रश्न करने का उसमे सामर्थ्य नही होता। इसीलिए गौतम अपने माध्यम से श्रोतागणो के मन स्थित शकाओ का समाधान करने के लिए ही प्रश्नोत्तरो की परिपाटी चलाते थे, ऐसी मेरी मान्यता है।

विद्यमान आगमो मे चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि की रचना तो गौतम के प्रश्नो पर ही आधारित है। विशालकाय पचम अग व्याख्या-प्रज्ञप्ति (प्रसिद्ध नाम भगवती सूत्र) जिसमे ३६००० प्रश्न सकलित है उनमें से कुछ प्रश्नो को छोडकर शेष सारे प्रश्न गौतम-कृत ही है।

गौतम के प्रश्न, चर्चा एव सवादो का विवरण इतना विस्तृत है कि उसका वर्गीकरण करना भी सरल नही है। भगवती, औपपातिक, विपाक, राज-प्रश्नीय, प्रज्ञापना आदि मे विविध विषयक इतने प्रश्न है कि इनके वर्गीकरण के साथ विस्तृत सूची बनाई जाय तो कई भागो मे कई शोध-प्रबन्ध तैयार हो सकते है।

सामान्यतया गौतम-कृत प्रश्नो को चार विभागो मे बाट सकते है –

१ अध्यात्म, २ कर्मफल, ३ लोक और ४ स्फुट।

प्रथम अध्यात्म-विभाग मे इन प्रश्नो को ले सकते है – आत्मा, स्थिति, शाश्वत-अशाश्वत, जीव, कर्म, कषाय, लेश्या, ज्ञान, ज्ञानफल, ससार, मोक्ष, सिद्ध आदि। इनमे केशी श्रमण और उदक-पेढाल के सवाद भी सम्मिलित कर सकते है।

दूसरे विभाग मे किसी को सुखी, किसी को दु खी, किसी को समृद्धि-सम्पन्न और किसी निपट निर्धन को देखकर उसके शुभाशुभ कर्मो को जानकारी आदि ग्रहण कर सकते है।

तीसरे विभाग मे लोकस्थिति, परमाणु, देव, नारक, षट्काय, जीव, अजीव, भाषा, शरीर आदि और सौरमण्डल के गति विषयक आदि ले सकते है।

चौथे विभाग मे स्फुट प्रश्नो का समावेश कर सकते है।

उदाहरण के तौर पर सामान्य से दो प्रश्नोत्तर प्रस्तुत है –

प्रश्न – भगवन्! क्या लाघव, अल्प इच्छा, अमूर्च्छा, अनासक्ति और अप्रतिबद्धता, ये श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिये प्रशस्त है?

उत्तर – हॉ, गौतम! लाघव यावत् अप्रतिबद्धता श्रमण निर्ग्रन्थो के लिये प्रशस्त/श्रेयस्कर है।

प्रश्न – क्या काक्षा प्रदोष क्षीण होने पर श्रमण- निर्ग्रन्थ अन्तकर अथवा चरम शरीरी होता है? अथवा पूर्वावस्था मे अधिक मोहग्रस्त होकर विहरण करे और फिर सवृत्त होकर मृत्यु प्राप्त करे तो तत्पश्चात् वह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होता है, यावत् सब दु खो का अन्त करता है?

उत्तर – हाँ, गौतम! काक्षा-प्रदोष नष्ट हो जाने पर श्रमण-निर्ग्रन्थ यावत् सब दु खो का अन्त करता है। (भगवती सूत्र १ शतक, ९ उद्देशक, सूत्र – १७, १९)

आगमो मे गौतम से सम्बन्धित अश

आगम-साहित्य मे गणधर गौतम से सम्बन्धित प्रसग भी बहुलता से प्राप्त होते है, उनमे से कतिपय सस्मरणीय प्रसग यहा प्रस्तुत है।

आनन्द श्रावक

प्रभु महावीर के तीर्थ के गणाधिपति एव सहस्राधिक शिष्यो के गुरू होते हुए भी गणधर गौतम गोचरी/भिक्षा के लिये स्वय जाते थे। एक समय का प्रसग है –

प्रभु वाणिज्य ग्राम पधारे। तीसरे प्रहर मे भगवान् की आज्ञा लेकर गौतम भिक्षा के लिये निकले और गवेषणा करते हुए गाथापति आनन्द श्रावक के घर पहुँचे। आनन्द श्रावक भगवान् महावीर का प्रथम श्रावक था। उपासक के बारह व्रतो का पालन करते हुए ग्यारह प्रतिमाएँ भी वहन की थीं। जीवन के अन्तिम समय मे उसने आजीवन अनशन ग्रहण कर रखा था। उस स्थिति मे गौतम उनसे मिलने गए। आनन्द ने श्रद्धा-भक्ति पूर्वक नमन किया और पूछा – प्रभो! क्या गृहवास मे रहते हुए गृहस्थ को अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है?

गौतम – हो सकता है।

आनन्द – भगवन्! मुझे भी अवधिज्ञान हुआ है। मै पूर्व, पश्चिम, दक्षिण दिशाओ मे पाच सौ-पाच सौ योजन तक लवण समुद्र का क्षेत्र, उत्तर मे हिमवान पर्वत, ऊर्ध्व दिशा मे सौधर्म कल्प और अधो दिशा मे प्रथम नरक भूमि तक का क्षेत्र देखता हूँ।

गौतम – गृहस्थ को अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है, किन्तु इतना विशाल नही। तुम्हारा कथन भ्रान्तियुक्त एव असत्य है। अत असत्भाषण प्रवृत्ति की आलोचना/प्रायश्चित्त करो।

आनन्द-भगवन्! क्या सत्य कथन करने पर प्रायश्चित्त ग्रहण करना पडता है?

गौतम – नही।

आनन्द – तो, भगवन! सत्य-भाषण पर आलोचना का निर्देश करने वाले आप ही प्रायश्चित करे।

आनन्द का उक्त कथन सुनकर गौतम असमजस मे पड गये। स्वय के ज्ञान का उपयोग किये विना ही त्वरा से प्रभु के पास आये और सारा घटनाक्रम उसके सन्मुख प्रस्तुत कर पूछा –

भगवन्! उक्त आचरण के लिये श्रमणोपासक आनन्द को आलोचना करनी चाहिए या मुझे?

महावीर ने कहा — गौतम! गाथापति आनन्द ने सत्य कहा है, अत तुम ही आलोचना करो और श्रमणोपासक आनन्द से क्षमा याचना भी।

गौतम 'तथास्तु' कह कर, लाई हुई गोचरी किये बिना ही उलटे पैरो से लौटे और आनन्द श्रावक से अपने कथन पर खेद प्रकट करते हुए क्षमा याचना की। – उपासकदशा अ० १सू ८० से ८७

इस घटना से एक तथ्य उभरता है कि गुरू गौतम कितने निश्छल, निर्मल, निर्मद, निरभिमानी थे। उन्हे तनिक भी सकोच का अनुभव नही हुआ कि मै प्रभु का प्रथम गणधर होकर एक उपासक के समक्ष अपनी भूल कैसे स्वीकार करूँ एव श्रावक से कैसे क्षमा मागू। यह उनके साधना की, निरभिमानता की कसौटी/अग्नि परीक्षा थी, जिसमे वे खरे उतरे।

अष्टापद तीर्थ यात्रा की पृष्ठ-भूमि

शाल, महाशाल, गागलि –

उत्तराध्ययन सूत्र के द्रुमपत्रक नामक दशवे अध्ययन की टीका करते हुए टीकाकारो ने लिखा है –

पृष्ठचम्पा नगरी के राजा थे शाल और युवराज थे महाशाल। दोनो भाई थे। इनकी बहन का यशस्वती, बहनोई का पिठर और भानजे का नाम गागलि था।

भगवान महावीर की देशना सुनकर दोनो भाइयो – शाल महाशाल ने दीक्षा ग्रहण करली थी और कापिल्यपुर से अपने भानजे गागलि को बुलवाकर राजपाट सौप दिया था। राजा गागली ने अपने माता-पिता को भी पृष्ठचम्पा बुलवा लिया था।

एकदा भगवान चम्पानगरी जा रहे थे। तभी शाल और महाशाल ने स्वजनो को प्रतिबोधित करने के लिये पृष्ठचम्पा जाने की इच्छा व्यक्त की। प्रभु की आज्ञा प्राप्त कर गौतम स्वामी के नेतृत्व मे श्रमण शाल और महाशाल पृष्ठचम्पा गये। वहाँ के राजा गागलि और उसके माता-पिता (यशस्वती, पिठर) को प्रतिबोधित कर दीक्षा प्रदान की। पश्चात वे सब प्रभु की सेवा मे चल पडे। मार्ग मे चलते-चलते शाल और महाशाल गौतम स्वामी के गुणो का चिन्तन और गागलि तथा उसके माता-पिता शाल एव महाशाल मुनियो की परोपकारिता का चिन्तन करने लगे। अध्यवसायो की पवित्रता बढने लगी और पाचो निर्ग्रन्थो ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। सभी भगवान के पास पहुँचे। ज्योहि शाल महाशाल और पाचो मुनिगण केवलिये की परिषद मे जाने लगे तो गौतम ने उन सबको रोकते/सम्बोधित करते हुए कहा – "पहले त्रिलोकीनाथ भगवान की वन्दना करे।"

उसी क्षण भगवान ने कहा – गौतम! ये सब केवली हो चुके है, अत इनकी आशातना मत करो।

शकाकुल मानस —

गौतम ने उनसे क्षमायाचना की, किन्तु उनका मन अधीरता वश आकुल-व्याकुल हो उठा और सन्देहो से भर गया वे सोचने लगे– "मेरे द्वारा दीक्षित अधिकाशत शिष्य केवलज्ञानी हो चुके है, परन्तु मुझे अभी तक केवलज्ञान नही हुआ। क्या मै सिद्ध पद प्राप्त नही कर पाऊँगा?" "मोक्षे भवे च सर्वत्र नि स्पृहो मुनिसत्तम" मोक्ष और ससार दोनो के प्रति पूर्ण रूपेण नि स्पृह/अनासक्त रहने वाले गौतम भी मै चरम शरीरी (इसी देह से मोक्ष जाने वाला) हूँ या नही", सन्देह-दोला मे झूलने लगे।

एकदिन गौतम स्वामी कही बाहर/अन्यत्र गये हुए थे, उस समय भगवान महावीर ने अपनी धर्मदेशना मे अष्टापद तीर्थ की महिमा का वर्णन करते हुए कहा– 'जो साधक स्वय की आत्मलब्धि के बल पर अष्टापद पर्वत पर जाकर चैत्यस्थ जिन-बिम्बो की वन्दना कर, एक रात्रि वही निवास करे, तो वह निश्चयत मोक्ष का अधिकारी बनता है और इसी भव मे मोक्ष को प्राप्त करता है।'

बाहर से लौटने पर देवो के मुख से जब उन्होने उक्त महावीर वाणी को सुना तो उनके चित्त को किंचित सन्तुष्टि का अनुभव हुआ। 'चरम शरीरी हूँ या नही" परीक्षण का मार्ग तो मिला, क्यो न परीक्षण करूँ? सर्वज्ञ की वाणी शत-प्रतिशत विशुद्ध स्वर्ण होती है, इसमे शका को स्थान ही कहाँ?"

अष्टापद तीर्थ की यात्रा —

तत्पश्चात् गौतम भगवान के पास आये और अष्टापद तीर्थ यात्रा करने की अनुमति चाही। भगवान ने भी गौतम के मन मे स्थित मोक्ष-कामना जानकर और विशेष लाभ का कारण जानकर यात्रा की अनुमति प्रदान की। गौतम हर्षोत्फुल्ल होकर अष्टापद की यात्रा के लिये चले।

शीलांकाचार्य (१०वी शताब्दी) ने चउपन्नमहापुरुष चरिय (पृष्ठ ३२३) के अनुसार भगवान महावीर ने १५०० तापसो को प्रतिबोध देने के लिये गौतम को अष्टापद तीर्थ की यात्रा करने का निर्देश दिया और गौतम जिन-बिम्बो के दर्शनो की उमग लेकर चल पडे।

गुरु गौतम आत्म-साधना से प्राप्त चारण लब्धि आदि अनेक लब्धियो के धारक थे, आकस्मिक बल एव चारणलब्धि ([illegible]

मे गमन करने की शक्ति) से वे वायुवेग की गति से कुछ ही क्षणो मे अष्टापद की उपत्यका मे पहुँच गये।

इधर कौडिन्य, दिन्न (दत्त) और शैवाल नाम के तीन तापस भी 'इसी भव मे मोक्ष-प्राप्ति होगी या नही' का निश्चय करने हेतु अपने-अपने पाच सौ-पाच सौ तापस शिष्यो के साथ अष्टापद पर्वत पर चढने के लिये क्लिष्ट तप कर रहे थे।

इनमे से कौडिन्य उपवास के अनन्तर पारणा कर फिर उपवास करता था। पारणा मे मूल, कन्द आदि का आहार करता था। वह अष्टापद पर्वत पर चढा अवश्य, किन्तु एक मेखला/सोपना से आगे न जा सका था।

दिन्न (दत्त) तापस दो-दो उपवास का तप करता था और पारणा मे नीचे पडे हुए पीले पत्ते खा कर रहता था। वह अष्टापद की दूसरी मेखला तक ही पहुँच पाया था।

शैवाल तापस तीन-तीन उपवास की तपस्या करता था। पारणा मे सूखी शैवाल (सेवार) खा कर रहता था। वह अष्टापद की तीसरी मेखला ही चढ पाया था।

तीन सोपान (पगोथियो) से ऊपर चढने की उनमे शक्ति नही थी। पर्वत की आठ मेखलाये थी। अन्तिम/अग्रिम मेखला तक कैसे पहुँचा जाए ? इसी उधेडबुन मे वे सभी तापस चिन्तित थे।

इतने में उन तपस्वी जनो ने गौतम स्वामी को उधर आते देखा। इनकी कान्ति सूर्य के समान तेजोदीप्त थी और शरीर सप्रमाण एव भरावदार था। मदमस्त हाथी की चाल से चलते हुए आ रहे थे। उन्हे देखकर तापसगण ऊहापोह करने लगे "हम महातपस्वी और दुबले-पतले शरीर वाले भी ऊपर न जा सके, तो यह स्थूल शरीर वाला श्रमण कैसे चढ पाएगा ?"

वे तपस्वी शका-कुशका के घेरे मे पडे हुए सोच ही रहे थे कि इतने मे ही गुरू गौतम करोलिया के जाल के समान चारो तरफ फैली हुई आत्मिक-बल रूपी सूर्य किरणो का आधार लेकर जघाचारण लब्धि से वेग के साथ क्षण मात्र मे अष्टापद पर्वत की अन्तिम मेखला पर पहुँच गए। तापसो के देखते-देखते ही अदृश्य हो गए।

यह दृश्य देखकर तापसगण आश्चर्य चकित होकर विचारने लगे — "हमारी इतनी विकट तपस्या और परिश्रम भी सफल नही हुआ, जबकि यह महापुरुष तो खेल-खेल मे ही ऊपर पहुच गया। निश्चय ही इस महर्षि महायोगी के पास कोई महाशक्ति अवश्य होनी चाहिए।" उन्होंने निश्चय किया "ज्योही ये महर्षि नीचे उतरेंगे हम उनके शिष्य वन जायेंगे। इनकी शरण अगीकार करने से हमारी मोक्ष की आकाक्षा अवश्य ही सफलीभूत होगी।"

इधर, गौतम स्वामी ने "मन के मनोरथ फले हो" ऐसे ... से अष्टापद पर्वत पर चक्रवर्ती भरत द्वारा निर्मापित एव तोरणो ... सुशोभित तथा इन्द्रादि देवताओ से पूजित-अर्चित नय... चतुर्मुखी प्रासाद/मन्दिर मे प्रवेश किया। निज-निज काय / देहमान के अनुसार चारो दिशाओ मे ४, ८, १०, २ की सख्या म... विराजमान चौबीस तीर्थकरो के रत्नमय बिम्बो को देखकर उन... रोम-राजि विकसित हो गई और हर्षोत्फुल्ल नयनो से दर्शन किये। श्रद्धा-भक्ति पूर्वक वन्दन-नमन, भावार्चन किया। मधुर एव गम्भीर स्वरो मे तीर्थंकरो की स्तवना की। दर्शन-वन्दन के पश्चात् सन्ध्या हो जाने के कारण तीर्थ-मन्दिर के निकट ही एक सघन वृक्ष के नीचे शिला पर ध्यानस्थ होकर धर्म जागरण करने लगे।

वज्रस्वामी के जीव को प्रतिबोध —

धर्म-जागरण करते समय अनेक देव, असुर और विद्याधर वहाँ आये, उनकी वन्दना की और गौतम के मुख से धर्मदेशना भी सुनकर कृतकृत्य हुए।

इसी समय शक्र का दिशापालक वैश्रमण देव, (शीलाकाचार्य के अनुसार गन्धर्वरति नामक विद्याधर) जिसका जीव भविष्य मे दशपूर्वधर वज्र स्वामी बनेगा, तीर्थ की वन्दना करने आया। पुलकित भाव से देव-दर्शन कर गौतम स्वामी के पास आया और भक्ति पूर्वक वन्दन किया। गुरु गौतम के सुगठित, सुदृढ, सबल एव हृष्टपुष्ट शरीर को देखकर विचार करने लगा — "कहाँ तो शास्त्र-वर्णित कठोर तपधारी श्रमणो के दुर्बल, कृशकाय ही नही, अपितु अस्थि-पजर का उल्लेख और कहाँ यह हृष्टपुष्ट एव तेजोधारी श्रमण। ऐसा सुकुमार शरीर तो देवो का भी नही होता। तो, क्या यह शास्त्रोक्त मुनिधर्म का पालन करता होगा ? या केवल परोपदेशक ही होगा ?"

गुरु गौतम उस देव के मन मे उत्पन्न भावो/विचारो को जान गए और उसकी शका को निर्मूल करने के लिये पुण्डरीक कण्डरीक का जीवन-चरित्र (ज्ञाता धर्म कथा १६ वा अध्ययन) सुनाया और उसके माध्यम से बतलाया – महानुभाव। न तो दुर्बल, अशक्त और निस्तेज शरीर ही मुनित्व का लक्षण बन सकता है और न स्वस्थ, सुदृढ, हृष्टपुष्ट एव तेजस्वी शरीर मुनित्व का विरोधी बन सकता है। वास्तविक मुनित्व तो शुभध्यान द्वारा साधना करते हुए सयम यात्रा मे ही समाहित/विद्यमान है।

वैश्रमण देव की शका-निर्मूल हो गई और वह बोध पाकर श्रद्धाशील बन गया।

तापसो की दीक्षा · केवलज्ञान –

प्रात काल जब गौतम स्वामी पर्वत से नीचे उतरे तो सभी तापसो ने उनका रास्ता रोक कर कहा – "पूज्यवर। आप हमारे गुरू है और हम सभी आपके शिष्य है।"

गौतम बोले – तुम्हारे और हमारे सब के गुरू तो तीर्थकर महावीर है।

यह सुनकर वे सभी आश्चर्य से बोले – क्या आप जैसे सामर्थ्यवान के भी गुरू है ?

गौतम ने कहा – हॉ, सुरासुरो एव मानवो के पूजनीय, राग-द्वेषरहित सर्वज्ञ महावीर स्वामी जगद्‌गुरू है, वे ही मेरे गुरू है।

तापसगण – भगवन्! हमे तो इसी स्थान पर और अभी ही सर्वज्ञ-शासन की प्रर्वज्या प्रदान करने की कृपा करावे।

गौतम स्वामी ने अनुग्रह पूर्वक कौडिन्य, दिन्न और शैवाल को पन्द्रह सौ तापसो के साथ दीक्षा दी और यूथाधिपति के समान सब को साथ लेकर भगवान की सेवा मे पहुॅचने के लिये चल पडे। मार्ग मे भोजन का समय देखकर गौतम स्वामी ने सभी तापसो से पूछा–तपस्वीजनो! आज आप सब लोग किस आहार से तप का पारणा करना चाहते है ? बतलाओ।

तापसगण —– भगवन्! आप जैसे गुरु को प्राप्त कर हम सभी का अन्त करण परमानन्द को प्राप्त हुआ है अत परमान्न/खीर से ही पारणा करावे।

उसी क्षण गौतम भिक्षा के लिये गये और भिक्षा पात्र मे खीर लेकर आये। सभी को पक्ति मे बिठाकर,पात्र मे दाहिना अगूठा रखकर अक्षीणमहानसी लब्धि के प्रभाव से सभी तपस्वीजनो को पेट भर कर खीर से पारणा करवाया।

शैवाल आदि ५०० मुनि जन तो गौतम स्वामी के अतिशय एव लब्धियो पर विचार करते हुए ऐसे शुभध्यानारूढ हुए कि खीर खाते-खाते ही केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

भिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् गौतम सभी श्रमणो के साथ पुन आगे बढे। प्रभु के समवसरण की शोभा और अष्ट महाप्रातिहार्य देखकर दिन्न आदि ५०० अनगारो को तथा दूर से ही प्रभु के दर्शन, प्रभु की वीतराग मुद्रा देखकर कौडिन्य आदि साधुओ को शुक्लध्यान के निमित्त से केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

समवसरण मे पहुॅच कर, तीर्थकर भगवान की प्रदक्षिणा कर सभी नवदीक्षित केवलियो की ओर बढने लगे। गौतम ने उन्हे रोकते हुए कहा – भगवान को वन्दन करो। उसी समय भगवान ने कहा– गौतम! केवलज्ञानियो की आशातना मत करो।

भगवान का वाक्य सुनते ही गौतम स्तब्ध से हो गये। भगवद् आज्ञा स्वीकार कर, गौतम ने मिथ्यादुष्कृत पूर्वक उन सब से क्षमा याचना की। तत्पश्चात् वे चिन्तन-दोला मे हिचकोले खाने लगे। "क्या मेरी अष्टापद यात्रा निष्फल जाएगी ? क्या मै गुरु-कर्मा हूँ ? क्या मै इस भव मे मुक्ति मे नही जा पाऊँगा ?" यही चिन्ता उन्हे पुन सताने लगी।

गौतम को आश्वासन—

भगवान अन्तर्यामी थे। वे गौतम के विषाद को एव अधैर्य युक्त मन को जान गए। उनकी खिन्नता को दूर करने के लिये भगवान ने उनको सम्बोन्धित करते हुए कहा —

हे गौतम! चिरकाल के परिचय के कारण तुम्हारा मेरे प्रति ऊर्णाकट (धान के छिल्के के समान) जैसा स्नेह है। इसीलिए तुम्हे केवलज्ञान नही होता। देव, गुरू, धर्म के प्रति प्रशस्त राग होने पर भी वह यथाख्यात चारित्र का प्रतिबन्धक है। जैसे सूर्य के अभाव मे दिन नही होता, वैसे ही यथाख्यात चारित्र के बिना केवलज्ञान नही होता। अत स्पष्ट है कि जब मेरे प्रति तुम्हारा उत्कट राग/स्नेह नष्ट होगा, तब तुम्हे अवश्यमेव केवलज्ञान प्राप्त होगा।

पुन भगवान ने कहा —– "गौतम! तुम खेद-खिन्न मत बनो, अवसाद मत करो। इस भव मे मृत्यु के पश्चात्, इस शरीर से छूट जाने पर, इस मनुष्य भव से चित्त होकर, हम दोनो तुल्य (एक समान) और एकार्थ (एक ही प्रयोजन वाले अथवा एक ही लक्ष्य – सिद्धि क्षेत्र मे रहने वाले) तथा विशेषता रहित एव किसी भी प्रकार के भेदभाव से रहित हो जायेगे।"

अत तुम अधीर मत बनो, चिन्ता मत करो। और, "जिस प्रकार शरत्कालीन कुमुद पानी से लिप्त नही होता, उसी प्रकार तू भी अपने स्नेह को विच्छिन्न (दूर) कर। तू सभी प्रकार के स्नेह का त्याग कर। हे गौतम! समय-मात्र का भी प्रमाद मत कर।"

प्रभु की उक्त अमृतरस से परिपूर्ण वाणी से गौतम पूर्णत आश्वस्त हो गए। "मै चरम शरीरी हूँ" इस परम सन्तुष्टि से गौतम का रोम-रोम आनन्द सरोवर मे निमग्न हो गया।

भगवान् का मोक्षगमन

ईस्वी पूर्व ५२७ का वर्ष था। श्रमण भगवान् महावीर का अन्तिम चातुर्मास पावापुरी मे था। चातुर्मास के साढे तीन माह पूर्ण होने वाले थे। भगवान् जीवन के अन्तिम समय के चिह्नो को पहचान गये। उन्हे गौतम के सिद्धि-मार्ग मे बाधक अवरोध को भी दूर करना था, अत उन्होंने गौतम को निर्देश दिया – गौतम! निकटस्थ ग्राम मे जाकर देवशर्मा को प्रतिबोधित करो।

गौतम निश्छल बालक के समान प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य कर देवशर्मा को प्रतिबोध देने के लिये चल पडे।

इधर, लोकहितकारी श्रमण भगवान् महावीर ने छट्ठ तप/दो दिन का उपवास तप कर, भाषा-वर्गणा के शेष पुद्गलो को पूर्ण करने के लिये अखण्ड धारा से देशना देनी प्रारम्भ की। इस देशना मे प्रभु ने पुण्य के फल, पाप के फल और अन्य अनेक उपकारी प्रश्नो का प्रतिपादन किया। बारह पर्षदा भगवान् की इस वाणी को

एकाग्रचित होकर हृदय के कटोरे मे भाव-भक्ति पूर्वक झेल/ग्रहण कर रही थी। भगवान् की अन्तिम धर्मपर्षदा मे अनेक विशिष्ट एव सम्मान्य व्यक्ति, काशी-कौशल देश के नौ लिच्छवी और नौ मल्लकी-अठारह राजा भी उपस्थित थे।

इस प्रकार सोलह प्रहर पर्यन्त अखण्ड देशना देते-देते कार्तिक वदी अमावस्या की मध्य रात्रि के बाद स्वाति नक्षत्र के समय वह विषम क्षण आ पहुँचा। समय का परिपाक पूर्ण हुआ और त्रिभुवन स्वामी श्रमण भगवान् महावीर बहत्तर वर्ष के आयुष्य का बन्धन पूर्ण कर, महानिर्वाण को प्राप्त कर, सिद्ध, बुद्ध, पारगत, निराकार, निरजन बन गये। भगवान् इस दिन सर्वदा के लिये मर्त्य न रहकर समस्त शुभ-शुद्ध भावना के पुज रूप मे अमर्त्य/अमर बन गए। ज्ञान सूर्य विलुप्त हो गया।

पर्षदा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त भगवान् को दीन/अनाथ भाव से अश्रुसिक्त अजलि अर्पण कर अन्तिम नमन करती रही। पावापुरी की भूमि पवित्र हो गई। अमावस्या की रात्रि धर्मपर्व बन गई। उस रात्रि मे जन समूह ने दीपक जलाकर निर्वाण कल्याणक का बहुमान किया। यही दीपक पक्ति दीपावली त्यौहार के रूप मे प्रसिद्ध हो गई।

गौतम का विलाप और केवलज्ञान-प्राप्ति

गणधर गौतम देवशर्मा को प्रतिबोध देने के बाद वापस पावापुरी की ओर आ रहे थे। प्रभु की आज्ञा पालन करने से इनका रोम-रोम उल्लास से विकसित हो रहा था। जब भी परमात्मा की आज्ञा पालन करने का एव अबूझ जीव को प्रतिबोध देकर उद्धार करने का अवसर मिलता तो वह दिन उनके लिये आनन्दोल्लास से परिपूर्ण बन जाता था।

प्रभु के चरणो मे वापस पहुँचने की प्रबल उत्कण्ठा के कारण गौतम तेजी से कदम बढा रहे थे।

इधर प्रभु का निर्वाण महोत्सव मनाने एव अन्तिम सस्कार के लिये विमानो मे बैठकर देवगण ताबडतोड पावापुरी की ओर भागे जा रहे थे। आकाश मे कोलाहल-सा मच गया था। भागते हुए देवताओ के सहस्रो मुखो से, अवरुद्ध कण्ठो से एक ही शब्द निकल रहा था– ''आज ज्ञान सूर्य अस्त हो गया है, प्रभु महावीर निर्वाण को प्राप्त हो गए है। अन्तिम दर्शन करने शीघ्र चलो।''

देव-मुखो से नि सृत उक्त प्रलयकारी शब्द गौतम के कानो मे पहुँचे। तुमुल कोलाहल के कारण अस्पष्ट ध्वनि को समझ नही पाये। कान लगाकर ध्यानपूर्वक सुनने पर समझ मे आया कि ''प्रभु का निर्वाण हो गया है।'' किन्तु, गौतम को इन शब्दो पर तनिक भी विश्वास नही हुआ। वे सोचने लगे–''असम्भव है, कल ही तो प्रभु ने मुझे आज्ञा देकर यहाँ भेजा था। अत ऐसा तो कभी हो ही नही सकता। यह तो पागलो का प्रलाप-सा प्रतीत होता है।''

परन्तु, परन्तु, लाखो देवता पावापुरी की ओर भागे जा रहे है, शब्द लहरी अवरुद्ध कण्ठो से निकल रही है, पर क्यो ? ?, प्रभु की वाणी थी–''देवगण असत्य नही बोलते'' ध्यान मे आते ही गौतम का रोम-रोम विचलित/कम्पित हो उठा। वे निस्तब्ध से हो गये। ''निर्वाण'' जैसे प्रलयकारी शब्द पर विश्वास होते ही असीम अन्तर्वेदना के कारण मुख कान्तिहीन/श्यामल हो गया, आँखो से अजस्र अश्रुधारा बहने लगी, आँखो के सामने अधेरा छा गया, शरीर और हाथ-पैर काँपने लगे, चेतना-शक्ति विलुप्त होने लगी और वे कटे वृक्ष की भाँति धडाम से पृथ्वी पर बैठ गये। बेसुध से, निश्चेष्ट से बैठे रहे। कुछ क्षणो के पश्चात् सोचने समझने की स्थिति मे आने पर समवसरण मे विराजमान प्रभु महावीर और उनके श्रीमुख से नि सृत हे गौतम! का दृश्य चलचित्र की भाँति उनकी आँखो के सामने घूमने लगा और वे सहसा निराधार, निरीह, असहाय बालक की भाँति सिसकियाँ भरते हुए विलाप करने लगे–

''मै कैसा भाग्यहीन हूँ, भगवान् के ग्यारह गणधरो मे से नव गणधर तो मोक्ष चले गये, अन्य भी अनेक आत्माएँ सिद्ध बन गई, स्वय भगवान् भी मुक्तिधाम मे पधार गये, और मै प्रभु का प्रथम शिष्य होकर भी अभी तक ससार मे ही रह रहा हूँ। प्रभु तो पधार गये, अब मेरा कौन है ?''

अन्तर् की गहरी वेदना उभरने लगी। दिशाएँ अन्धकारमय और बहरी बन गईं। चित्त मे पुन शून्यता व्याप्त होने लगी। तनिक से जागृत होते ही पुन उपालम्भ के स्वरो मे बोल उठे–

''हे महावीर! मुझ रक पर यह असहनीय वज्रपात आपने कैसे कर डाला ? मुझे मझधार मे छोडकर कैसे चल दिये ? अब मेरा हाथ कौन पकडेगा ? मेरा क्या होगा ? मेरी नौका को कौन पार लगायेगा ?''

हे प्रभो! हे प्रभो!! आपने यह क्या गजब ढा दिया ? मेरे साथ कैसा अन्याय कर डाला? विश्वास देकर विश्वास भग क्यो किया ? अब मेरे प्रश्नो का उत्तर कौन देगा ? मेरी शकाओ का समाधान कौन करेगा ? मै किसे महावीर, महावीर कहूँगा ? अब मुझे हे गौतम! कहकर प्रेम से कौन बुलाएगा ? करुणासिन्धु भगवन् मेरे किस अपराध के बदले आपने ऐसी नृशस कठोरता बरत कर अन्त समय मे मुझे दूर कर दिया ? अब मेरा कौन शरणदाता बनेगा ? वास्तव मे मै तो आज विश्व मे दीन-अनाथ बन गया ?

प्रभो! आप तो सर्वज्ञ थे न! लोक-व्यवहार के ज्ञाता भी थे न! ऐसे समय मे तो सामान्य लोग भी स्वजन सम्बन्धियो को दूर से अपने पास बुला लेते है, सीख देते है। प्रभो! आपने तो लोक-व्यवहार को भी तिलाजलि दे दी और मुझे दूर भगा दिया।

प्रभो! आपको जाना था तो चले जाते, पर इस वालक को पास मे तो रखते। मै अवोध वालक की तरह आपका अचल/चरण पकड कर आपके मार्ग मे बाधक नही बनता। मै आपसे केवलज्ञान की भिक्षा-याचना भी नही करता।

ओ महावीर! क्या आप भूल गये? मै तो आपके प्रति असीम अनुराग के कारण "केवल्य" को भी तुच्छ समझता था! फिर भी आपने स्नेह भग कर मेरे हृदय को टूक-टूक कर डाला। क्या यही आपकी प्रभुता थी?

इस प्रकार गौतम के अणु-अणु मे से प्रभु के विरह की वेदना का क्रन्दन उठ रहा था। वे स्वय को भूलकर, प्रभु के नाम पर ही नि श्वास भरते हुए अन्तर् वेदना को व्यक्त कर रहे थे।

ऐसी दयनीय एव करुणस्थिति मे भी उनके ऑसुओ को पोंछने वाला, भग्न हृदय को आश्वासन देनेवाला और गहन शोक के सन्ताप को दूर करनेवाला इस पृथ्वीतल पर आज कोई न था। अनेक आत्माओ का आशा स्तम्भ, अनेक जीवो का उद्धारक और निपुण खिवैया भी आज विषम हताशा के गहन वात्याचक्र मे फस गया था।

विचार-परिवर्तन और केवलज्ञान—

भगवान् महावीर के प्रति गौतम का अगाध/असीम अनुराग ही उनके केवलज्ञान की प्राप्ति मे बाधक बन रहा था। किन्तु, उनकी इस भूल को बतलाने वाला वहाँ न कोई तीर्थकर था और न कोई श्रमण या श्रमणी ही इस समय उनके पास उपस्थित थे। इस समय गौतम एकाकी, केवल एकाकी थे।

वेदनानुभूति जनित विलाप और उपालम्भात्मक आक्रोश उद्‌गारो के द्वारा प्रकट हो जाने पर गौतम का मन कुछ शान्त/हलका हुआ। अन्तर् कुछ स्थिर और स्वस्थ हुआ। सोचने-विचारने और वस्तुस्थिति समझने की शक्ति प्रकट हुई। सोचने की विचारधारा मे परिवर्तन आया। अन्तर्मुखी होकर गौतम विचार करने लगे—

"अरे! चार ज्ञान और चौदह पूर्वो का धारक तथा महावीर-तीर्थ का सचालक होकर मै क्या करने लगा! मै अनगार हूँ, क्या मुझे विलाप करना शोभा देता है? करुणासिन्धु, जगदुद्धारक प्रभु को उपालम्भ दू, क्या मेरे लिये उचित है? अरे! जगद्वन्द्य प्रभु की कैसी अनिर्वचनीय ममता थी! अरे! प्रभु तो असीम स्नेह के सागर थे, क्या वे कभी कठोर बनकर, विश्वास भग कर छोड दे सकते है? कदापि नही। अरे! भगवान् ने तो बारम्बार समझाया था—गौतम! प्रत्येक आत्मा स्वय की साधना के बल पर सिद्धि प्राप्त कर सकती है। दूसरे के बल पर कोई सिद्धि प्राप्त नही कर सकता और न कोई किसी जीव की साधना के फल को रोक सकता है। मुझे अभी तक कैवल्य प्राप्त नही हुआ तो इसमे भगवान् का क्या दोष है! इसमे भूल या कमी तो मेरी ही होनी चाहिए।"

गौतम का अन्तर्-चिन्तन बढने से प्रशस्त विचारो का प्रवाह बहने लगा। वे वीर! महावीर!! का स्मरण करते-करते प्रभु के वीतरागपन पर विचार-मन्थन करने लगे "ओ! भगवान् तो निर्मम, नीरागी और वीतराग थे। राग-द्वेष के दोष तो उनका स्पर्श भी नही कर पाते थे। ऐसे जगत् के हितकारी वीतराग प्रभु क्या मेरा अहित करने के लिये अन्त समय मे मुझे अपने से दूर कर सकते थे? नही, नही! प्रभु ने जो कुछ किया मेरे कल्याण के लिये ही किया होगा।"

गौतम को स्पष्ट आभास होने लगा—"मेरी यह धारणा ही भ्रमपूर्ण थी कि प्रभु की मेरे ऊपर अपार ममता है। प्रभु के ऊपर ममता, आसक्ति, अनुराग दृष्टि तो मै ही रखता था। मेरा यह प्रेम एकपक्षीय था। यह राग दृष्टि ही मेरे केवली बनने मे बाधक बन रही थी। द्वेष-बुद्धि या राग-दृष्टि के पूर्ण अभाव मे ही आत्म-सिद्धि का अमृततत्त्व प्रकट होता है, विद्यमानता मे कदापि नही। मै स्वय ही अपनी सिद्धि को रोक रहा था, इसमे भगवान् का क्या दोष है? मेरी इस राग दृष्टि को दूर करने के लिये ही प्रभु ने अन्त समय मे मुझे दूर कर, प्रकाश का मार्ग दिखाकर मुझ पर अनुग्रह किया हे। किन्तु, मै अबूझ इस रहस्य को नही समझ सका और प्रभु को ही दोष देने लगा। हे क्षमाश्रमण भगवन्! मेरे इस अपराध/दोष को क्षमा करे।"

पश्चाताप, आत्मनिरीक्षण तथा प्रशस्त शुभ अध्यवसायो की अग्नि मे गौतम के मोह, माया, ममता के शेष बन्धन क्षणमात्र मे भस्मीभूत हो गये। उनकी आत्मा पूर्ण निर्मल बन गई और उनके जीवन मे केवलज्ञान का दिव्य प्रकाश व्याप्त हो गया।

भगवान् महावीर का निर्वाण गौतम स्वामी के केवलज्ञान का निमित्त बन गया।

ईस्वी पूर्व ५२७ कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा का उषाकाल गौतम स्वामी के केवलज्ञान से प्रकाशमान हो गया। इसी दिन गौतम स्वामी सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बन गये थे।

प्रभु के निर्वाण मे जन-समाज अथाह दु ख सागर मे डूब गया था। गौतम के सर्वज्ञ बनने से उसमे अन्तर आया। चतुर्विध सघ अत्यन्त प्रसन्न हुआ और गौतम स्वामी की जय-जयकार करने लगा।

महावीर का निर्वाण और गौतम के ज्ञान का प्रसग एकरूप बनकर पवित्र स्मरण के रूप मे सर्वदा स्मरणीय बन गया।

गौतम का निर्वाण

श्रमण भगवान् महावीर देहमुक्त सिद्ध हुए और गौतम स्वामी देहधारी मुक्तात्मा केवली हुए। महावीर तीर्थ-सस्थापक तीर्थंकर थे और गौतम सामान्य जिन बने।

एकाग्रचित होकर हृदय के कटोरे मे भाव-भक्ति पूर्वक झेल/ग्रहण कर रही थी। भगवान् की अन्तिम धर्मपर्षदा मे अनेक विशिष्ट एव सम्मान्य व्यक्ति, काशी-कौशल देश के नौ लिच्छवी और नौ मल्लकी-अठारह राजा भी उपस्थित थे।

इस प्रकार सोलह प्रहर पर्यन्त अखण्ड देशना देते-देते कार्तिक वदी अमावस्या की मध्य रात्रि के बाद स्वाति नक्षत्र के समय वह विषम क्षण आ पहुँचा। समय का परिपाक पूर्ण हुआ और त्रिभुवन स्वामी श्रमण भगवान् महावीर बहत्तर वर्ष के आयुष्य का बन्धन पूर्ण कर, महानिर्वाण को प्राप्त कर, सिद्ध, बुद्ध, पारगत, निराकार, निरजन बन गये। भगवान् इस दिन सर्वदा के लिये मर्त्य न रहकर समस्त शुभ-शुद्ध भावना के पुज रूप मे अमर्त्य/अमर बन गए। ज्ञान सूर्य विलुप्त हो गया।

पर्षदा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त भगवान् को दीन/अनाथ भाव से अश्रुसिक्त अजलि अर्पण कर अन्तिम नमन करती रही। पावापुरी की भूमि पवित्र हो गई। अमावस्या की रात्रि धर्मपर्व बन गई। उस रात्रि मे जन समूह ने दीपक जलाकर निर्वाण कल्याणक का बहुमान किया। यही दीपक पक्ति दीपावली त्यौहार के रूप मे प्रसिद्ध हो गई।

गौतम का विलाप और केवलज्ञान-प्राप्ति

गणधर गौतम देवशर्मा को प्रतिबोध देने के बाद वापस पावापुरी की ओर आ रहे थे। प्रभु की आज्ञा पालन करने से इनका रोम-रोम उल्लास से विकसित हो रहा था। जब भी परमात्मा की आज्ञा पालन करने का एव अबूझ जीव को प्रतिबोध देकर उद्धार करने का अवसर मिलता तो वह दिन उनके लिये आनन्दोल्लास से परिपूर्ण बन जाता था।

प्रभु के चरणो मे वापस पहुँचने की प्रबल उत्कण्ठा के कारण गौतम तेजी से कदम बढा रहे थे।

इधर प्रभु का निर्वाण महोत्सव मनाने एव अन्तिम सस्कार के लिये विमानो मे बैठकर देवगण ताबडतोड पावापुरी की ओर भागे जा रहे थे। आकाश मे कोलाहल-सा मच गया था। भागते हुए देवताओ के सहस्रो मुखो से, अवरुद्ध कण्ठो से एक ही शब्द निकल रहा था– "आज ज्ञान सूर्य अस्त हो गया है, प्रभु महावीर निर्वाण को प्राप्त हो गए है। अन्तिम दर्शन करने शीघ्र चलो।"

देव-मुखो से नि सृत उक्त प्रलयकारी शब्द गौतम के कानो मे पहुँचे। तुमुल कोलाहल के कारण अस्पष्ट ध्वनि को समझ नही पाये। कान लगाकर ध्यानपूर्वक सुनने पर समझ मे आया कि "प्रभु का निर्वाण हो गया है।" किन्तु, गौतम को इन शब्दो पर तनिक भी विश्वास नही हुआ। वे सोचने लगे–"असम्भव है, कल ही तो प्रभु ने मुझे आज्ञा देकर यहाँ भेजा था। अत ऐसा तो कभी हो ही नही सकता। यह तो पागलो का प्रलाप-सा प्रतीत होता है।"

परन्तु, परन्तु, लाखो देवता पावापुरी की ओर भागे जा रहे है, शब्द लहरी अवरुद्ध कण्ठो से निकल रही है, पर क्यो ? ?, प्रभु की वाणी थी–"देवगण असत्य नही बोलते" ध्यान मे आते ही गौतम का रोम-रोम विचलित/कम्पित हो उठा। वे निस्तब्ध से हो गये। "निर्वाण" जैसे प्रलयकारी शब्द पर विश्वास होते ही असीम अन्तर्वेदना के कारण मुख कान्तिहीन/श्यामल हो गया, आँखो से अजस्र अश्रुधारा बहने लगी, आँखो के सामने अधेरा छा गया, शरीर और हाथ-पैर काँपने लगे, चेतना-शक्ति विलुप्त होने लगी और वे कटे वृक्ष की भाँति धडाम से पृथ्वी पर बैठ गये। बेसुध से, निश्चेष्ट से बैठे रहे। कुछ क्षणो के पश्चात् सोचने समझने की स्थिति मे आने पर समवसरण मे विराजमान प्रभु महावीर और उनके श्रीमुख से नि सृत हे गौतम! का दृश्य चलचित्र की भाँति उनकी आँखो के सामने घूमने लगा और वे सहसा निराधार, निरीह, असहाय बालक की भाँति सिसकियाँ भरते हुए विलाप करने लगे–

"मै कैसा भाग्यहीन हूँ, भगवान् के ग्यारह गणधरो मे से नव गणधर तो मोक्ष चले गये, अन्य भी अनेक आत्माएँ सिद्ध बन गईं, स्वय भगवान् भी मुक्तिधाम मे पधार गये, और मै प्रभु का प्रथम शिष्य होकर भी अभी तक ससार मे ही रह रहा हूँ। प्रभु तो पधार गये, अब मेरा कौन है ?"

अन्तर् की गहरी वेदना उभरने लगी। दिशाएँ अन्धकारमय और बहरी बन गई। चित्त मे पुन शून्यता व्याप्त होने लगी। तनिक से जागृत होते ही पुन उपालम्भ के स्वरो मे बोल उठे–

"हे महावीर! मुझ रक पर यह असहनीय वज्रपात आपने कैसे कर डाला ? मुझे मझधार मे छोडकर कैसे चल दिये ? अब मेरा हाथ कौन पकडेगा ? मेरा क्या होगा ? मेरी नौका को कौन पार लगायेगा ?"

हे प्रभो! हे प्रभो!! आपने यह क्या गजब ढा दिया ? मेरे साथ कैसा अन्याय कर डाला ? विश्वास देकर विश्वास भग क्यो किया ? अब मेरे प्रश्नो का उत्तर कौन देगा ? मेरी शकाओ का समाधान कौन करेगा ? मै किसे महावीर, महावीर कहूँगा ? अब मुझे हे गौतम! कहकर प्रेम से कौन बुलाएगा ? करुणासिन्धु भगवन् मेरे किस अपराध के बदले आपने ऐसी नृशस कठोरता वरत कर अन्त समय मे मुझे दूर कर दिया ? अब मेरा कौन शरणदाता बनेगा ? वास्तव मे मै तो आज विश्व मे दीन-अनाथ बन गया ?

प्रभो! आप तो सर्वज्ञ थे न! लोक-व्यवहार के ज्ञाता भी थे न! ऐसे समय मे तो सामान्य लोग भी स्वजन सम्बन्धियो को दूर से अपने पास बुला लेते है, सीख देते है। प्रभो! आपने तो लोक-व्यवहार को भी तिलाजलि दे दी और मुझे दूर भगा दिया।

प्रभो! आपको जाना था तो चले जाते, पर इस बालक को पास मे तो रखते। मै अबोध बालक की तरह आपका अचल/चरण पकड कर आपके मार्ग मे बाधक नही बनता! मै आपसे केवलज्ञान की भिक्षा-याचना भी नही करता।

ओ महावीर! क्या आप भूल गये? मै तो आपके प्रति असीम अनुराग के कारण "केवल्य" को भी तुच्छ समझता था! फिर भी आपने स्नेह भग कर मेरे हृदय को टूक-टूक कर डाला! क्या यही आपकी प्रभुता थी?

इस प्रकार गौतम के अणु-अणु मे से प्रभु के विरह की वेदना का क्रन्दन उठ रहा था। वे स्वय को भूलकर, प्रभु के नाम पर ही नि श्वास भरते हुए अन्तर् वेदना को व्यक्त कर रहे थे।

ऐसी दयनीय एव करुणस्थिति मे भी उनके आँसुओ को पोंछने वाला, भग्न हृदय को आश्वासन देनेवाला और गहन शोक के सन्ताप को दूर करनेवाला इस पृथ्वीतल पर आज कोई न था। अनेक आत्माओ का आशा स्तम्भ, अनेक जीवो का उद्धारक और निपुण खिवैया भी आज विषम हताशा के गहन वात्याचक्र मे फस गया था।

विचार-परिवर्तन और केवलज्ञान–

भगवान् महावीर के प्रति गौतम का अगाध/असीम अनुराग ही उनके केवलज्ञान की प्राप्ति मे बाधक बन रहा था। किन्तु, उनकी इस भूल को बतलाने वाला वहाँ न कोई तीर्थकर था और न कोई श्रमण या श्रमणी ही इस समय उनके पास उपस्थित थे। इस समय गौतम एकाकी, केवल एकाकी थे।

वेदनानुभूति जनित विलाप और उपालम्भात्मक आक्रोश उद्‌गारो के द्वारा प्रकट हो जाने पर गौतम का मन कुछ शान्त/हलका हुआ। अन्तर् कुछ स्थिर और स्वस्थ हुआ। सोचने-विचारने और वस्तुस्थिति समझने की शक्ति प्रकट हुई। सोचने की विचारधारा मे परिवर्तन आया। अन्तर्मुखी होकर गौतम विचार करने लगे–

"अरे! चार ज्ञान और चौदह पूर्वो का धारक तथा महावीर-तीर्थ का सवाहक होकर मै क्या करने लगा! मै अनगार हूँ, क्या मुझे विलाप करना शोभा देता है? करुणासिन्धु, जगदुद्धारक प्रभु को उपालम्भ दू, क्या मेरे लिये उचित है? अरे! जगद्वन्द्य प्रभु की कैसी अनिर्वचनीय ममता थी! अरे! प्रभु तो असीम स्नेह के सागर थे, क्या वे कभी कठोर बनकर, विश्वास भग कर छोह दे सकते है? कदापि नही। अरे! भगवान् ने तो बारम्बार समझाया था–गौतम! प्रत्येक आत्मा स्वय की साधना के बल पर सिद्धि प्राप्त कर सकती है। दूसरे के बल पर कोई सिद्धि प्राप्त नही कर सकता और न कोई किसी जीव की साधना के फल को रोक सकता है। मुझे अभी तक कैवल्य प्राप्त नही हुआ तो इसमे भगवान् का क्या दोष है! इसमे भूल या कमी तो मेरी ही होनी चाहिए।"

गौतम का अन्तर्-चिन्तन बढने से प्रशस्त विचारो का प्रवाह बहने लगा। वे वीर! महावीर!! का स्मरण करते-करते प्रभु के वीतरागपन पर विचार-मन्थन करने लगे "ओ! भगवान् तो निर्मम, नीरागी और वीतराग थे। राग-द्वेष के दोष तो उनका स्पर्श भी नही कर पाते थे। ऐसे जगत् के हितकारी वीतराग प्रभु क्या मेरा अहित करने के लिये अन्त समय मे मुझे अपने से दूर कर सकते थे? नही, नही! प्रभु ने जो कुछ किया मेरे कल्याण के लिये ही किया होगा।"

गौतम को स्पष्ट आभास होने लगा–"मेरी यह धारणा ही भ्रमपूर्ण थी कि प्रभु की मेरे ऊपर अपार ममता है। प्रभु के ऊपर ममता, आसक्ति, अनुराग दृष्टि तो मै ही रखता था। मेरा यह प्रेम एकपक्षीय था। यह राग दृष्टि ही मेरे केवली बनने मे बाधक बन रही थी। द्वेष-बुद्धि या राग-दृष्टि के पूर्ण अभाव मे ही आत्म-सिद्धि का अमृततत्त्व प्रकट होता है, विद्यमानता मे कदापि नही। मै स्वय ही अपनी सिद्धि को रोक रहा था, इसमे भगवान् का क्या दोष है? मेरी इस राग दृष्टि को दूर करने के लिये ही प्रभु ने अन्त समय मे मुझे दूर कर, प्रकाश का मार्ग दिखाकर मुझ पर अनुग्रह किया है। किन्तु, मै अबूझ इस रहस्य को नही समझ सका और प्रभु को ही दोष देने लगा। हे क्षमाश्रमण भगवन्! मेरे इस अपराध/दोष को क्षमा करे।"

पश्चाताप, आत्मनिरीक्षण तथा प्रशस्त शुभ अध्यवसायो की अग्नि मे गौतम के मोह, माया, ममता के शेष बन्धन क्षणमात्र मे भस्मीभूत हो गये। उनकी आत्मा पूर्ण निर्मल बन गई और उनके जीवन मे केवलज्ञान का दिव्य प्रकाश व्याप्त हो गया।

भगवान् महावीर का निर्वाण गौतम स्वामी के केवलज्ञान का निमित्त बन गया।

ईस्वी पूर्व ५२७ कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा का उषाकाल गौतम स्वामी के केवलज्ञान से प्रकाशमान हो गया। इसी दिन गौतम स्वामी सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बन गये थे।

प्रभु के निर्वाण से जन-समाज अथाह दु ख सागर मे डूब गया था। गौतम के सर्वज्ञ बनने से उसमे अन्तर आया। चतुर्विध सघ अत्यन्त प्रसन्न हुआ और गौतम स्वामी की जय-जयकार करने लगा।

महावीर का निर्वाण और गौतम के ज्ञान का प्रसग एकरूप बनकर पवित्र स्मरण के रूप मे सर्वदा स्मरणीय बन गया।

गौतम का निर्वाण

श्रमण भगवान् महावीर देहमुक्त सिद्ध हुए और गौतम स्वामी देहधारी मुक्तात्मा केवली हुए। महावीर तीर्थ-सस्थापक तीर्थंकर थे और गौतम सामान्य जिन बने।

केवलज्ञान की दिव्यप्रभा मे गौतम स्वामी ने सर्वत्र विचरण किया। अनुभूति पूर्ण धर्मदेशना के माध्यम से सहस्त्रो आत्माओ को प्रतिबोध देकर सिद्धि का मार्ग प्रशस्त करते रहे। महावीर-शासन को उद्योतित करते हुए तीर्थ को सुदृढ और सबल बनाया।

गौतम स्वामी भगवान् महावीर के १४००० साधुओ, ३६००० साध्वियो, १५९००० श्रावको और ३१८००० श्राविकाओ के एव स्वय तथा अन्य गणधरो की शिष्य-परम्पराओ के एकमात्र गणाधिपति, सवाहक और सफल सचालक होते हुए भी सर्वदा नि स्पृही, निरभिमानी एव लाधव सम्पन्न ही रहे। अन्त मे, भगवान् के शासन की एव स्वय के शिष्य-परिवार की बागडोर अपने ही लघुभ्राता आर्य सुधर्म को सौप दी। यही कारण है कि भगवान् के प्रथम पट्टधर शिष्य एव प्रथम गणधर होते हुए भी महावीर की परम्परा गौतम स्वामी से प्रारम्भ न होकर सुधर्म स्वामी के नाम से आज भी अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है।

केवली होने के पश्चात् वे १२ बारह वर्ष तक महावीर वाणी को जन-जन के हृदय की गहराइयो तक पहुँचाते रहे। महावीर की यशोगाथा को गाते रहे और शासन की ध्वजा को अबाधित रूप से फहराते रहे।

गौतम स्वामी अपनी देह का विश्व के समस्त जीवो के कल्याण के लिये निरन्तर उपयोग करते रहे। बाणवे वर्ष की परिपक्व अवस्था मे उन्होंने देखा कि देह-विलय का समय निकट आ गया है, तो वे राजगृह नगर के वैभारगिरि पर आये और एक मास का पादपोपगमन अनशन स्वीकार कर लिया।

अनशन के अन्त मे देह-त्याग कर गौतम स्वामी ने निर्वाण प्राप्त किया। गौतम की आत्म ज्योति, भगवान् महावीर और अनन्त मुक्तात्माओ की ज्योति मे सदा के लिये मिल गई। महावीर के तुल्य, एकार्थ और विशेषता रहित बनकर प्रभु की वाणी को चरितार्थ कर दिया।

इस प्रकार गौतम स्वामी ५० वर्ष गृहवास मे, ३० वर्ष सयम पर्याय मे और १२ वर्ष केवली पर्याय मे कुल ९२ वर्ष की आयु पूर्ण कर ईस्वी पूर्व ५१५ मे अक्षय सुख के भोक्ता बनकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

गौतम स्वामी के नाम की महिमा

गौतम गणधर जीवन-साधना, योग-साधना और मोक्ष-साधना कर विश्व के कल्याणकारी साधक वन गये। उनकी अनुपम साधना महावीर-शासन की परम्परा के लिये अनुकरणीय एव आदर्श वन गई। उनकी प्रशस्त साधना और गुणो को देखकर जहाँ श्रमण केशीकुमार जैसे आचार्य ''सशयातीत सर्वश्रुतमहोदधि'' कह कर अभिवन्दन करते है वही शास्त्रकार ''क्षमाश्रमण महामुनि गौतम'' एव ''सिद्ध, बुद्ध, अक्षीण महानस भगवान् गौतम'' कहकर नमन करते है। परवर्ती आचार्यगण तो इन्हे ''समग्र अरिष्ट/अनिष्टो के प्रनाशक, समस्त अभीष्ट अर्थ/मनोकामनाओ के पूरक, सकल लब्धि-सिद्धियो के भण्डार, योगीन्द्र, विघ्नहारी एव प्रात स्मरणीय मानकर गौतम नाम का जप करने का विधान करते हुए उल्लसित हृदय से गुणगान करते है।''

महिमा मडित गौतम शब्द का अर्थ करते हुए कहते है– ''गौ'' अर्थात् कामधेनु ''त'' अर्थात् तरु/कल्पवृक्ष और ''म'' अर्थात् चिन्तामणि रत्न। इसी अर्थ/भावना को प्रकट करते हुए विनयप्रभोपाध्याय गौतम रास मे स्पष्टत कहते है–

''चिन्तामणी कर चढ़ीयउ आज, सुरतरु सारइ वछिय काज,
कामकुम्भ सहु वशि हुअए ।
कामगवी पूरइ मन-कामी, अष्ट महासिद्धि आवइ धामि,
सामि गोयम अनुसरउ ए ।।४२।।''

विनयप्रभोपाध्याय यह भी विधान करते है–''ॐ ह्रीँ श्री अर्हं श्रीगौतमस्वामिने नम '' मन्त्र का अहर्निश जप करना चाहिए, इससे सभी मनोवाछित कार्य पूर्ण होते है।

गौतम के नाम की ही महिमा है कि आज भी प्रात काल मे अहर्निश नाम-स्मरण करने से सभी कार्य सफल होते दिखाई देते है।

जैन समाज आज भी लक्ष्मी पूजन के पश्चात् नवीन बही-खाता मे प्रथम पृष्ठ पर ही ''श्रीगौतमस्वामीजी महाराज तणी लब्धि हो जो'' लिखकर नाम-महिमा के साथ अपनी भावि-समृद्धि एव सफलता की कामना उजाकर करते है।

वास्तविकता यह है कि आज भी गौतम स्वामी का पवित्र एव मगल नाम जन-जन के हृदय को आह्लादित करता है। प्रतिदिन लाखो आत्माएँ आज भी प्रभात की मगल बेला मे भक्तिपूर्वक भाव-विभोर होकर नाम-स्मरण करते हुए बोलती है–

अगूठे अमृत बसे, लब्धितणा भण्डार ।
श्री गुरु गौतम सुमरिये, वाछित फल दातार ।

नाम स्मरण के साथ जैन परम्परा मे गौतम के नाम से कई तप भी प्रचलित है, जैसे–

१ वीर गणधर तप, २ गौतम पडधो तप
३ गौतम कमल तप ४ निर्वाण दीपक तप

इन तपो की आराधना कर भक्त जन गौतम के नाम का स्मरण-जप करते हुए साधना करते है।

ऐसे महिमा मण्डित महामानव ज्योतिपुज क्षमाश्रमण गणधर गौतम स्वामी को कोटिश नमन।

■

❑ गीतिका बोथरा

सम्यक् चारित्र

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के अनुसार यथार्थरूप से अहिंसा, सत्य आदि सदाचारो का पालन करना ही सम्यक्चारित्र है। इसके दो भेद है। (१) देशविरति और (२) सर्वविरति।

१ देशविरति—देश=अश, विरति=त्याग अर्थात् हिसादि पापो का आशिक त्याग करना तथा व्रतो का मर्यादित पालन करना देशविरति चारित्र धर्म कहलाता है।

सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के बाद जीव को ससार, आरभ, परिग्रह, विषय-विचार इत्यादि जहर जैसे लगते है। वह जीव प्रतिदिन विचार करता है कि "कब वह इस पाप भरे ससार का त्याग कर, मुनि बनकर दर्शन, ज्ञान, चारित्र की आराधना करेगा ? यद्यपि वह एकदम ससार का परित्याग करदे, यह सम्भव नही होता तथापि विचार ही चलता रहता है। और जबतक सर्वत पापो का त्यागकर साधु-जीवन न अपना ले तबतक वह जीव शक्य पाप त्याग रूप देशविरति-श्रावक धर्म का अवश्य पालन करता है। इसमे सम्यक्त्वव्रत पूर्वक स्थूलरूप से हिसादि का त्याग तथा सामायिकादि धर्म-साधना करने की प्रतिज्ञा की जाती है।"

मार्गानुसारी जीवन–जैसे 'देशविरति' इत्यादि आचारधर्मो की प्राप्ति के लिए सम्यग्दर्शन का होना आवश्यक है, वैसे सम्यग्दर्शन से पूर्व 'मार्गानुसारी जीवन' आवश्यक है। सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्र, मोक्ष मार्ग है। उसके प्रति अनुसरण कराने वाला उसके लिए योग्य बनाने वाला जीवन मार्गानुसारी जीवन है। जैसे महल के लिए मजबूत नीव की आवश्यकता है, वैसे धार्मिक विकास क्रम के लिए मार्गानुसारी जीवन पूर्व-भूमिका है। अत यहाँ देश विरति-धर्म की चर्चा करने से पहिले मार्गानुसारी जीवन के बारे मे बताया जाता है।

शास्त्र मे मार्गानुसारी जीवन के ३५ गुण बताये है। इन ३५ गुणो को चार भागो मे विभक्त किया जाता है।

(१) ११ कर्त्तव्य

(२) ८ दोष

(३) ८ गुण

(४) ८ साधना

११ कर्त्तव्य —

(१) न्याय-सम्पन्न-विभव—गृहस्थ जीवन का निर्वाह करने के लिये धन कमाना आवश्यक है। किन्तु न्याय-नीति से धन का उपार्जन करना यह मार्गानुसारी-जीवन का प्रथम कर्तव्य है।

(२) आयोचित-व्यय—आय के अनुसार ही खर्च करना। तथा धर्म को भूलकर अनुचित खर्च न करना यह 'उचित खर्च' नामक दूसरा कर्तव्य है।

(३) उचित-वेश—अपनी मान मर्यादा के अनुरूप उचित वेशभूषा रखना। अत्यधिक तडकीले-भडकीले, अगो का प्रदर्शन हो तथा देखनेवालो को मोह व क्षोभ पैदा हो ऐसे वस्त्रो को कभी भी नही पहिनना।

(४) उचित-मकान—जो मकान बहुत द्वारवाला न हो, ज्यादा ऊँचा न हो तथा एकदम खुला भी न हो ऐसे मकान उचित मकान है। चोर डाकुओ का भय न हो। पडोसी अच्छे हो, ऐसे मकान मे रहना चाहिए।

(५) उचित-विवाह—गृहस्थ जीवन के निर्वाह के लिये यदि शादी करना पडे तो भिन्न गोत्रीय किन्तु कुछ और शील मे समान तथा समान आचारवाले के साथ करे। इससे जीवन मे सुख-शान्ति रहती है। पति-पत्नी के बीच मतभेद नही होता।

(६) अजीर्ण-भोजन त्याग—जबतक पहिले खाया हुआ भोजन न पचे तबतक भोजन करे।

(७) उचित-भोजन—निश्चित समय पर भोजन करे। प्रकृति के अनुकूल ही खाये। निश्चित समय पर भोजन करने से भोजन अच्छी तरह पचता है, प्रकृति से विपरीत भोजन करने से तबियत बिगड जाती है। भोजन मे भक्ष्य-अभक्ष्य का भी विवेक करे। तामसी, विकारोत्पादक एव उत्तेजक पदार्थो का सर्वथा त्याग करे।

(८) माता-पिता की पूजा—माता-पिता की सेवा-भक्ति करे। उनके खाने के बाद खाये, सोने के बाद सोये। उनकी आज्ञा का प्रेमपूर्वक पालन करे।

(९) पोष्य-पालक—पोषण करने योग्य स्वजन-परिजन, दासी-दास इत्यादि का यथाशक्ति पालन करे।

(१०) अतिथि-पूजक—गुरुजन, स्वधर्मी, दीन एव दुखियो की यथायोग्य सेवा करना।

(११) ज्ञानी-चारित्री की सेवा—जो ज्ञानवान्, चारित्री, तपस्वी, शीलवान् एव सदाचारी हो, उसकी सेवा भक्ति करे।

८ दोषो का त्याग —

(१) निन्दा त्याग—किसी की भी निन्दा न करे। निन्दा महान् दोष् है। इससे हृदय मे द्वेष-ईर्ष्या बढती है। प्रेमभग होता है। नीच गोत्र कर्म बधता है।

(२) निन्द्य प्रवृत्ति का त्याग—मन, वचन या काया से ऐसी कोई प्रवृत्ति न करे जो धर्म-विरुद्ध हो। अन्यथा निन्दा होती है, पापबध होता है।

(३) इन्द्रिय-निग्रह—अयोग्य विषय की ओर दौडती हुई इन्द्रियो को काबू मे रखना। इन्द्रियो की गुलामी मे न पडना।

(४) आन्तर-शत्रु पर विजय—काम, क्रोध, मद, लोभ, मान एव उन्माद ये छ आन्तर शत्रु है। इन शत्रुओ पर विजय प्राप्त करना चाहिए। अन्यथा व्यावहारिक-जीवन मे नुकसान होता है और आध्यात्मिक जीवन मे पापबध होता है।

(५) अभिनिवेश त्याग—मन मे किसी भी बात का कदाग्रह नही रखना चाहिये, अन्यथा अपकीर्ति होती है। सत्य से वचित रहना पडता है।

(६) त्रिवर्ग मे बाधा का त्याग—धर्म, अर्थ, काम मे परस्पर बाधा पहुँचे, ऐसा कुछ भी नही करे। उचित रीति से तीनो पुरुषार्थो को अबाधित साधना करनेवाला ही सुख शान्ति प्राप्त कर सकता है।

(७) उपद्रवयुक्त स्थान का त्याग—जिस स्थान मे विद्रोह पैदा हुआ हो अथवा महामारी, प्लेग इत्यादि उपद्रव हो गया हो, ऐसे स्थान का त्याग कर देना।

(८) अयोग्य-देश-काल चर्या त्याग—जैसे धर्म विरुद्ध प्रवृत्ति का त्याग आवश्यक है, वैसे ही व्यवहार शुद्धि एव भविष्य मे पाप से बचने के लिये देश, काल तथा समाज से विरुद्ध प्रवृत्ति का त्याग भी आवश्यक है। जैसे एक सज्जन व्यक्ति का वेश्या या बदमाशो के मुहल्ले से बार-बार आना जाना। आधी रात तक घूमना-फिरना स्वय बदमाश न होते हुए भी बदमाशो की सगति करना इत्यादि देश काल एव समाज के विरुद्ध है, अत ऐसा नही करना चाहिये। अन्यथा कलक इत्यादि की सम्भावना है।

८ गुणो का आदर :—

(१) पाप भय—"मेरे से पाप न हो जाय" हमेशा यह भय वना रहे। पाप का प्रसग उपस्थित हो तो–"हाय, मेरा क्या होगा ?" यह विचार आये। ऐसी पापभीरूता आत्मोत्थान का प्रथम पाया है।

(२) लज्जा—अकार्य करते हुए लज्जा का अनुभव हो। इससे अकार्य करते हुए व्यक्ति रुक जाते है। भविष्य मे सर्वथा अकार्य का परित्याग हो जाता है।

(३) सौम्यता—आकृति सौम्य-शान्त हो, वाणी मधुर एव शीतल हो, हृदय पवित्र हो। जो व्यक्ति ऐसा होता है, वह सबका स्नेह, सद्‌भाव एव सहानुभूति पाता है।

(४) लोकप्रियता—अपने शील, सदाचार आदि गुणो के द्वारा लोको का प्रेम सपादन करना चाहिये। क्योंकि लोकप्रिय धर्मात्मा दूसरो को धर्म के प्रति निष्ठावान और आस्थावाला बना सकता है।

(५) दीर्घदर्शी—किसी भी कार्य को करने से पहिले, उसके परिणाम पर अच्छी तरह विचार करनेवाला हो, जिससे बाद मे दुखी न होना पडे।

(६) बलाबल की विचारणा—कार्य चाहे कितना भी अच्छा हो किन्तु उसके करने से पूर्व सोचे कि उस कार्य को पूर्ण करने की मेरे मे क्षमता है या नही। अपनी क्षमता का विचार किये बगैर कार्य प्रारम्भ कर देने मे नुकसान है। एक तो कार्य को बीच मे छोड देना पडता है, दूसरा लोको मे हँसी होती है।

(७) विशेषज्ञता—सार-असार, कार्य-अकार्य, वाच्य-अवाच्य, लाभ-हानि आदि का विवेक करना, तथा नये-नये आत्महितकारी ज्ञान प्राप्त करना। सब दृष्टियो से भली प्रकार जान लेना विशेषज्ञता है।

(८) गुणपक्षपात—हमेशा गुण का ही पक्षपाती होना। चाहे फिर वे गुण स्वय मे हो या दूसरो मे हो।

८ साधना –

(१) कृतज्ञता—किसी का जरा भी उपकार हो तो उसे कदापि नही भूलना चाहिये। उसके उपकारो का स्मरण करते हुए यथाशक्ति उसका बदला चुकाने को तत्पर रहना चाहिये।

(२) परोपकार—यथाशक्य दूसरो का उपकार करे।

(३) दया—हृदय को कोमल रखते हुए, जहाँ तक हो सके, तन-मन-धन से दूसरो पर दया करते रहना चाहिये।

(४) सत्सग—सगमात्र दुख को बढानेवाला है। कहा है "सयोगमूला जीवेण पत्ता दुक्ख परपरा"। किन्तु सज्जन पुरुषो का, सन्तो का सग भवदुख को दूर करने वाला एव सन्मार्ग प्रेरक होता है, अत हमेशा सत्पुरुषो का सत्सग करना चाहिये।

(५) धर्मश्रवण—नियमित रूप से धर्मश्रवण करना चाहिये। जिससे जीवन मे प्रकाश और प्रेरणा मिलती रहे। इससे जीवन सुधारने का अवसर मिलता है।

(६) बुद्धि के आठ गुण—धर्म श्रवण करने मे, व्यवहार मे तथा किसी के इगित, आकार एव चेष्टाओ को समझने मे बुद्धि के आठ गुण होना अति आवश्यक है।

शुश्रूषा श्रवण चैव, ग्रहण धारण तथा ।
ऊहाऽपोहोऽर्थविज्ञान, तत्त्वज्ञान च धीगुणा ।।

(क) शुश्रूषा—श्रवण करने की इच्छा होना शुश्रूषा है। इच्छा के बिना सुनने मे कोई रस नही आता।

(ख) श्रवण—शुश्रूषापूर्वक श्रवण करना। इससे सुनते समय मन इधर-उधर नही दौडता है। एकाग्रता आती है।

(ग) ग्रहण—सुनते हुए उसके अर्थ को बराबर समझते जाना।

(घ) धारण—समझे हुए को मन मे बराबर याद रखना।

(ड) ऊह—सुनी हुई बात पर अनुकूल तर्क दृष्टात द्वारा विचार करना।

(च) अपोह—सुनी हुई बात का प्रतिकूल-तर्को द्वारा परीक्षण करना कि यह बात कहाँ तक सत्य है?

(छ) अर्थविज्ञान—अनुकूल प्रतिकूल तर्को से जब यह निश्चय हो जाय कि बात सत्य है या असत्य है? यह अर्थ विज्ञान है।

(ज) तत्त्वज्ञान—जब पदार्थ का निर्णय हो जाय तब उसके आधार पर सिद्धान्त निर्णय, तात्पर्य निर्णय, तत्त्व निर्णय इत्यादि करना तत्त्व ज्ञान है।

(७) प्रसिद्ध-देशाचार का पालन—जिस देश मे रहते हो, वहाँ के (धर्म से अविरुद्ध) प्रसिद्ध आचारो का अवश्य पालन करे।

(८) शिष्टाचार-प्रशसा—हमेशा शिष्टपुरुषो के आचार का प्रशसक रहे। शिष्टपुरुषो का आचार १–लोक मे निन्दा हो, ऐसा कार्य कभी न करना। २–दीन दुखियो की सहायता करना। ३–जहाँ तक हो सके किसी की उचित प्रार्थना भग न करना। ४–निन्दात्याग। ५–गुण-प्रशसा। ६–आपत्ति मे धैर्य। ७–सपत्ति मे नम्रता। ८–अवसरोचित्त कार्य। ९–हित-मित-वचन। १०–सत्यप्रतिज्ञ। ११–आयोचित व्यय। १२–सत्कार्य का आग्रह। १३–अकार्य का त्याग। १४–बहुनिद्रा, विषय कषाय, विकथादि प्रमादो का त्याग। १५–औचित्य आदि शिष्टो के आचार है। हमेशा इनकी प्रशसा करना, ताकि हमारे जीवन मे भी ये आ जाये।

इस प्रकार धार्मिक जीवन के प्रारम्भ मे मार्गानुसारिता के ३५ गुणो से जीवन ओतप्रोत होना आवश्यक है। क्योंकि हमारा लक्ष्य श्रावकधर्म का पालन करते हुए ससार त्याग कर साधु जीवन जीने का है, वह इन गुणो के अभाव मे प्राप्त नही हो सकता। इन गुणो के अभाव मे यदि व्यक्ति किसी तरह उस ओर बढ भी जाय तो भी वहाँ से पुन उसके पतन की सभावना रहती है। मार्गानुसारी गुणो का इतना महत्व होते हुये भी कोई जरुरी नही है कि इन गुणो वाले व्यक्ति मे सम्यग्दर्शन हो ही। किन्तु इन गुणो की विद्यमानता मे व्यक्ति सम्यग्दर्शन को पाने योग्य भूमिका पर अवश्य आ जाता है। इन गुणो से धार्मिक जीवन शोभनीय हो उठता है।

१६, बोनफिल्ड लेन, कोलकाता-१

सोचने की बात

अब इन दो मेढको की भी सुन लीजिए जो किसी दुग्धशाला मे क्रीम की नाद मे जा पड़े।

बहुत देर तक बाहर निकलने के लिए व्यर्थ ही हाथ पैर मारने के बाद उनमे से एक टर्राया, ''अच्छा हो, हाथ पाँव मारना भी छोड दे। अब तो हम गए ही समझो।''

दूसरे ने कहा, ''पॉव चलाते रहो, हम किसी न किसी तरह इस झझट से निकल ही जाएँगे।''

''कोई फायदा नही,'' पहला बोला। ''यह इतना गाढा है कि हम तैर नही सकते। इतना पतला भी है कि हम इस पर से छलाग नही लगा सकते। इतना चिकना है कि रेग कर निकल नही सकते। हमे देर सबेर हर सूरत मे मरना ही है, तो क्यो न आज की ही रात सही।'' और वह नाद की पेदी मे डूब कर मर गया।

लेकिन उसका दोस्त पॉव चलाता रहा, चलाता रहा, चलाता रहा। और सुबह होते न होते वह मक्खन के एक लोदे पर बैठा हुआ था जिसे उसने अपने आप मथ कर निकाला था। अब वह शान से बैठा चारो तरफ से टूट कर पड रही मक्खियो को खा रहा था।

वास्तव मे उस नन्हे मेढक ने वह बात जान ली थी जिसे अधिकाश लोग नजरअदाज कर जाते है अगर आप किसी काम मे निरतर जुटे रहे, तो विजयश्री आपके हाथ अवश्य लगेगी। ■

पंचमकाल

कालचक्र के विचार अवश्य जानने योग्य है। जिनेश्वर ने इस कालचक्र के दो भेद कहे है– १ उत्सर्पिणी, २ अवसर्पिणी। एक-एक भेद के छ छ आरे है। आधुनिक प्रवर्तमान आरा पचमकाल कहलाता है और वह अवसर्पिणी काल का पाँचवाँ आरा है। अवसर्पिणी अर्थात् उतरता हुआ काल। इस उतरते हुए काल के पॉचवे आरे मे इस भरतक्षेत्र मे कैसा वर्तन होना चाहिये इसके बारे मे सत्पुरुषो ने कुछ विचार बताये है, वे अवश्य जानने योग्य है।

वे पचमकाल के स्वरूप को मुख्यत इस आशय मे कहते है। निर्ग्रथ प्रवचन मे मनुष्यो की श्रद्धा क्षीण होती जायेगी। धर्म के मूल तत्त्वो मे मतमतातर बढेंगे। पाखडी और प्रपची मतो का मडन होगा। जनसमूह की रुचि अधर्म की ओर जायेगी। सत्य, दया धीरे-धीरे पराभव को प्राप्त होगे। मोहादिक दोषो की वृद्धि होती जायेगी। दभी और पापिष्ठ गुरु पूज्य होंगे। दुष्टवृत्ति के मनुष्य अपने प्रपच मे सफल होंगे। मीठे परतु धूर्त वक्ता पवित्र माने जायेगे। शुद्ध ब्रह्मचर्य आदि शील से युक्त पुरुष मलिन कहलायेगे। आत्मिकज्ञान के भेद नष्ट होते जायेंगे। हेतुहीन क्रियाएँ बढती जायेगी। अज्ञान क्रिया का बहुधा सेवन किया जायेगा। व्याकुल करनेवाले विषयो के साधन बढते जायेंगे। एकातिक पक्ष सत्ताधीश होंगे। शृगार मे धर्म माना जायेगा।

सच्चे क्षत्रियो के विना भूमि शोकग्रस्त होगी। निस्सत्त्व राजवशी वेश्या के विलास मे मोहित होंगे। धर्म, कर्म और सच्ची राजनीति को भूल जायेंगे, अन्याय को जन्म देगे, जैसे लूट सकेगे वैसे प्रजा को लूटेंगे। स्वय पापिष्ठ आचरणो का सेवन करके प्रजा से उनका पालन करायेंगे। राजबीज के नाम पर शून्यता आती जायेगी। नीच मत्रियो की महत्ता बढती जायेगी। वे दीन प्रजा को चूसकर भडार भरने का राजा को उपदेश देंगे। शील भग करने का धर्म राजा को अगीकार करायेंगे। शौर्य आदि सद्गुणो का नाश करायेगे। मृगया आदि पापो मे अध बनायेगे। राज्याधिकारी अपने अधिकार से हजारगुना अहकार रखेंगे। विप्र लालची और लोभी हो जायेंगे। वे सद्विद्या को दबा देगे, ससारी साधनो को धर्म ठहरायेगे। वैश्य मायावी, केवल स्वार्थी और कठोर हृदय के होते जायेगे। समग्र मनुष्यवर्ग की सद्वृत्तियाँ घटती जायेगी। अकृत्य और भयकर कृत्य करते हुए उनकी वृत्ति नही रुकेगी। विवेक, विनय, सरलता इत्यादि सद्गुण घटते जायेंगे। अनुकपा के नाम पर हीनता होगी। माता की अपेक्षा पत्नी मे प्रेम बढेगा, पिता की अपेक्षा पुत्र मे प्रेम बढेगा, नियमपूर्वक पतिव्रत पालनेवाली सुन्दरियाँ घट जायेगी। स्नान से पवित्रता मानी जायेगी, धन से उत्तम कुल माना जायेगा। शिष्य गुरु से उलटे चलेंगे। भूमि का रस घट जायेगा। सक्षेप मे कहने का भावार्थ यह है कि उत्तम वस्तुओ की क्षीणता होगी और निकृष्ट वस्तुओ का उदय होगा। पचमकाल का स्वरूप इनका प्रत्यक्ष सूचन भी कितना अधिक करता है ?

मनुष्य सद्धर्मतत्त्व मे परिपूर्ण श्रद्धावान नही हो सकेगा, सपूर्ण तत्त्वज्ञान नही पा सकेगा, जम्बुस्वामी के निर्वाण के बाद दस निर्वाणी वस्तुओ का इस भरतक्षेत्र से व्यवच्छेद हो गया।

पचमकाल का ऐसा स्वरूप जानकर विवेकी पुरुष तत्त्व को ग्रहण करेगे, कालानुसार धर्मतत्त्वश्रद्धा को पाकर उच्चगति को साधकर परिणाम मे मोक्ष को साधेगे। निर्ग्रंथ प्रवचन, निर्ग्रंथ गुरु इत्यादि धर्मतत्त्व की प्राप्ति के साधन है। इनकी आराधना से कर्म की विराधना है।

■

सुखसंबंधी विचार

एक ब्राह्मण दरिद्रावस्था से बहुत पीडित था। उसने तग आकर आखिर देव की उपासना करके लक्ष्मी प्राप्त करने का निश्चय किया। स्वय विद्वान होने से उसने उपासना करने से पहले विचार किया कि कदाचित् कोई देव तो सतुष्ट होगा, परन्तु फिर उससे कौन-सा सुख मॉगना ? तप करने के बाद मॉगने मे कुछ सूझे नही, अथवा न्यूनाधिक सूझे तो किया हुआ तप भी निरर्थक हो जाये, इसलिए एक बार सारे देश मे प्रवास करूँ। ससार के महापुरुषो के धाम, वैभव और सुख देखूँ। ऐसा निश्चय करके वह प्रवास मे निकल पडा। भारत के जो जो रमणीय और ऋद्धिमान शहर थे, वे देखे। युक्ति-प्रयुक्ति से राजाधिराजो के अन्त पुर, सुख और वैभव देखे। श्रीमानो के आवास, कारोबार, बाग-बगीचे और कुटुम्ब परिवार देखे, परन्तु इससे उसका मन किसी तरह माना नही। किसी को स्त्री का दु ख, किसी को पति का दु ख, किसी को अज्ञान से दु ख, किसी को प्रियजनो के वियोग का दु ख, किसी को निर्धनता का दु ख, किसी को लक्ष्मी की उपाधि का दु ख, किसी को शरीरसबधी दु ख, किसी को पुत्र का दु ख, किसी को शत्रु का दु ख, किसी को जडता का दु ख, किसी को मॉ-बाप का दु ख, किसी को वैधव्यदु ख, किसी को कुटुम्ब का दु ख, किसी को अपने नीच कुल का दु ख, किसी को प्रीति का दु ख, किसी को ईर्ष्या का दु ख, किसी को हानि का दु ख, इस प्रकार एक, दो, अधिक अथवा सभी दु ख स्थान-स्थान पर उस ब्राह्मण के देखने मे आये। इससे उसका मन किसी स्थान मे नही माना, जहॉ देखे वहॉ दु ख तो था ही। किसी भी स्थान मे सपूर्ण सुख उसके देखने मे नही आया। अब फिर क्या मॉगूँ ? यो विचार करते-करते एक महाधनाढ्य की प्रशसा सुनकर वह द्वारिका मे आया। द्वारिका महाऋद्धिसपन्न, वैभवयुक्त, बागबगीचो से सुशोभित और बस्ती से भरपूर शहर उसे लगा। सुन्दर एव भव्य आवासो को देखता हुआ और पूछता-पूछता वह उस महाधनाढ्य के घर गया। श्रीमान दीवानखाने मे बैठा हुआ था। उसने अतिथि जान कर ब्राह्मण का सन्मान किया, कुशलता पूछी और उसके लिए भोजन की व्यवस्था करवाई। थोडी देर के बाद सेठ ने धीरज से ब्राह्मण से पूछा, ''आपके आगमन का कारण यदि मुझे कहने योग्य हो तो कहिये।'' ब्राह्मण ने कहा, ''अभी आप क्षमा कीजिये। पहले आपको अपने सभी प्रकार के वैभव, धाम, बाग-बगीचे इत्यादि मुझे दिखाने पडेगे, उन्हे देखने के बाद मै अपने आगमन का कारण कहूँगा।'' सेठ ने इसका कुछ मर्मरूप कारण जानकर कहा, ''भले, आनदपूर्वक अपनी इच्छा के अनुसार करिये।'' भोजन के बाद ब्राह्मण ने सेठ को स्वय साथ चलकर धामादिक बताने के लिए विनती की। धनाढ्य ने उसे मान्य रखा, और स्वय साथ जाकर बाग-बगीचा, धाम, वैभव यह सब दिखाया। सेठ की स्त्री, पुत्र भी वहॉ ब्राह्मण के देखने मे आये। उन्होंने योग्यतापूर्वक उस ब्राह्मण का सत्कार किया। उनके रूप, विनय, स्वच्छता तथा मधुरवाणी से ब्राह्मण प्रसन्न हुआ। फिर उसकी दुकान का कारोबार देखा। सौ एक कारिंदे वहॉ बैठे हुए देखे। वे भी मायालु, विनयी और नम्र उस ब्राह्मण के देखने मे आये। इससे वह बहुत सतुष्ट हुआ। उसके मन को यहॉ कुछ सतोष हुआ। सुखी तो जगत मे यही मालूम होता है ऐसा उसे लगा।

▢

सद्गुरुतत्त्व

पिता, पुत्र और गुरु तीन प्रकार के कहे जाते है–१ काष्ठस्वरूप, २ कागजस्वरूप, ३ पत्थरस्वरूप। १ काष्ठस्वरूप गुरु सर्वोत्तम है, क्योकि ससाररूपी समुद्र को काष्ठस्वरूप गुरु ही तरते है, और तार सकते है। २ कागजस्वरूप गुरु मध्यम है। ये ससारसमुद्र को स्वय तर नही सकते, परतु कुछ पुण्य उपार्जन कर सकते है। ये दूसरे को तार नही सकते। ३ पत्थरस्वरूप गुरु स्वय डूबते है और पर को भी डुबाते है। काष्ठस्वरूप गुरु मात्र जिनेश्वर भगवान के शासन मे है। बाकी दो प्रकार के जो गुरु है वे कर्मावरण की वृद्धि करनेवाले है। हम सब उत्तम वस्तु को चाहते है, और उत्तम से उत्तम वस्तु मिल सकती है। गुरु यदि उत्तम हो तो वे भवसमुद्र मे नाविकरूप होकर सद्धर्मनाव मे बैठाकर पार पहुँचा देते है। तत्त्वज्ञान के भेद, स्व-स्वरूपभेद, लोकालोक विचार, ससार स्वरूप यह सब उत्तम गुरु के बिना मिल नही सकते। अब तुझे प्रश्न करने की इच्छा होगी कि ऐसे गुरु के लक्षण कौन-कौन से है? उन्हे मै कहता हूँ। जो जिनेश्वर भगवान की कही हुई आज्ञा को जानते हो, उसे यथातथ्य पालते हो और दूसरे को उसका उपदेश करते हो, कचनकामिनी के सर्वभाव से त्यागी हो, विशुद्ध आहार-जल लेते हो, बाईस प्रकार के परिषह सहन करते हो, क्षात, दॉत, निरारभी और जितेन्द्रिय हो, सैद्धान्तिक ज्ञान मे निमग्न रहते हो, मात्र धर्म के लिए शरीर का निर्वाह करते हो, निर्ग्रथ पथ पालते हुए कायर न हो, सलाई मात्र भी अदत्त न लेते हो, सर्वप्रकार के रात्रिभोजन के त्यागी हो, समभावी हो और नीरागता से सत्योपदेशक हो। सक्षेप मे उन्हे काष्ठस्वरूप सद्गुरु जानना। पुत्र! गुरु के आचार एव ज्ञान के सबध मे आगम मे बहुत विवेकपूर्वक वर्णन किया है। ज्यो-ज्यो तू आगे विचार करना सीखता जायेगा, त्यो-त्यो फिर मै तुझे उन विशेष तत्त्वो का उपदेश करता जाऊँगा।

पुत्र–पिताजी! आपने मुझे सक्षेप मे भी बहुत उपयोगी और कल्याणमय पथ बताया है। मै निरन्तर इसका मनन करता रहूँगा।

उत्तम गृहस्थ

ससार मे रहते हुए भी उत्तम श्रावक गृहाश्रम से आत्मसाधन को साध्य करते है, उनका गृहाश्रम भी सराहा जाता है।

ये उत्तम पुरुष सामायिक, क्षमापना, चौविहार-प्रत्याख्यान इत्यादि यम-नियमो का सेवन करते है।

परपत्नी की ओर माँ-बहन की दृष्टि रखते है।

यथाशक्ति सत्पात्र दान देते है।

शात, मधुर और कोमल भाषा बोलते है।

सत्शास्त्र का मनन करते है।

यथासभव उपजीविका मे भी माया, कपट इत्यादि नही करते।

स्त्री, पुत्र, माता, पिता, मुनि और गुरु इन सबका यथायोग्य सन्मान करते है।

मॉ-बाप को धर्म का बोध देते है।

यत्ना से घर की स्वच्छता, राधना, शयन इत्यादि को कराते है।

स्वय विचक्षणता से आचरण करके स्त्री-पुत्र को विनयी और धर्मी बनाते है।

सारे कुटुब मे ऐक्य की वृद्धि करते है।

आये हुए अतिथि का यथायोग्य सन्मान करते है।

याचक को क्षुधातुर नही रखते।

सत्पुरुषो का समागम और उनका बोध धारण करते है।

निरतर मर्यादासहित और सतोषयुक्त रहते है।

यथाशक्ति घर मे शास्त्रसचय रखते है।

अल्प आरभ से व्यवहार चलाते है।

ऐसा गृहस्थाश्रम उत्तम गति का कारण होता है, ऐसा ज्ञानी कहते है।

■

❑ B B Das

Morning Walk

Professor William Fitzgibbon of Physiological Department of Norway University published a paper under the heading of condensed family health stating that striding the most natural exercise of all Our ancestors were firm believers in value of walking Yet they didn't know the precise physical effects of walking modern medicine does and today doctors make assertions about the benefits of basic walking that have a sound basis in medical fact Noted heart specialist Paul Dudley White said, 'It is the easiest exercise for most individuals, one that can be done without equipment except good shoes, in most terrains and weather and into very old age'

It is not merely walking that they are talking about - it is brisk walking, which brings the human stride into play Each of us has his own stride - and hitting it, for one long distance or several short distances in the course of a day, bring to us the boons of this time saving, untiring, pleasurable motion that is so natural to the human species

No other creature plants down a heel, rolls on a side to a spring big toe in a movement in which both are on the ground together only 25 percent of the time, keens articulating, muscles flexing easily, pelvic saddle, swiveling in marvel of simple engineering Now a days, for good reason man has applied the term 'hit your stride' to describe times when he has been in override and operating smoothly, doing more work with less effort and fewer mistakes

'I have two doctors' goes the old say 'my left leg and my right ' Dr White backed this up, saying 'A vigorous five-mile will do more good for an unhappy but otherwise healthy adult that all the medicine and psychology in the world' Here's why striding improves the blood circulation All of the benefits from daily striding are closely keyed to the increased oxygen intake, greater heart exercise and better blood circulation that this manual exercise provides The human muscular system acts as auxiliary blood pump, returning blood to the heart Since the leg muscles are the largest and most powerful muscles in the body, their work is enormously important But if they are not being used with any vigor, then they are not squeezing the blood back toward the heart with any force

Brisk walking is also important as it affects the human capillary system There are 60,000 miles of blood vessels in the body, mostly capillaries - those minute vessels responsible for irrigating the flesh Only a few capillaries will open when a muscle is at rest perhaps 50 times as many will open when the muscle is being exercised In 1965, physiologist K Large Anerson of the University of Bergen, Norway, reported that a sturdy daily activity such as striding will not only awaken dormant capillaries but apparently increase the number of these vessels that nourish the muscles

Striding clears the mind and improves the disposition Fifth-century Greek believed that walking made their minds lucid and helped them crack problems of logic and philosophy It is talkdore knowledge that knowledge also helps dispel a temper, and when we go off down the block to 'cool off' we strode– Dr White emphasized striding's tranquilizing effects 'A brisk long walk in the evening', he said 'may be more helpful as a hypnotic than any medicine, highball of TV show'

Striding cuts fatigue Once striding has been entrenched as a daily habit, you get bonuces from being shape, Few constant brisk walkers need laxatives Lower back muscles, which benefit from striding, are likely to resist ache, even in Old age and to permit angler bending movement Above at the in-shape body is not easily fatigued Even when pushed hard, it is able to call on special reserves and keep from being overwhelmed by weariness

A prime point in favour of brisk walking is that you don't have to schedule it you can just incorporate it in your daily life-style If you have a few blocks to go on an errand, walk them briskly The short distance between transportation point and office - the same hit your stride down corridors don't amble Since a short walk is worth two miles of ambling, you can easily get in minimal amount of good exercise everyday And, as striding becomes a habit, you will soon get more exercise, willingly

You will become aware that your mind is clearer, that your eyes are brighter and that you are adding to your body's resources Not bad benefits and they are all within walking distance

So far, the scientists have discovered that morning walk is the easiest exercise to deliver the maximum benefit Metabolically walking helps in controlling weight, blood sugar and cholesterol levels The common benefits available are as follows

1) Reduces cholesterol
2) Improves heart rate
3) Enables better blood circulation
4) Acts as a tranquilizer

It has also been established that brisk walk can burn upto 100 cal/mile or 300 cal/hr In otherwords, it is the perfect complement to a sensible diet to lose weight and keep it off The heart also works faster to transport oxygen rich blood from lungs to its muscles reducing pressure and resting heart rate Better circulation is also affected to the arms and legs and it increases the size and improves the efficiency of the tiny muscles that require blood for cellular respiration Psychologically too, walking generates an overall feeling of well being and brings relief from depression, anxiety and stress by producing endorphins, the body's natural tranquilizer

The research group consisting of eminent scientist of the department of Calcutta University carried out necessary experiments by selecting two groups of healthy and non-smoking persons between 25-35 and 33-34 age group while presenting the results of their studies in the third congress of the federation of Indian physiological societies held in Calcutta they revealed that the assigned exercises of various intensities are as follows -

The first group worked out to an extent, which increased their heart rate by about 50-60 percent In the second group the peak increase in the heart rate was 50-70 percent These two groups also performed exercises for 15, 30 and 45 days at the rate of three days per week Then the lipid profiles of the persons before and after the exercise were carefully analyzed The analysis revealed a really new insight into the change in the lipid profiles The beneficial change occurred when the intensity of exercise was medium or 60 percent of the peak heart rate that is after having an exercise of 30 minutes a day Curiously the low and medium intensity of exercise for a short duration, a good amount of reduction in small atherogenic lipids like low-density lipoprotein was observed At the same time, the level of blood cholesterol also increased in the blood In almost all the persons anti-atheroganic lipids were increased following the exercised Fat reduction was also noticed considerably

Further experiments also revealed that working in gymnasiums and clubs are not only procedure but specified walking condition can produce these benefits Further regular workouts may not be possible for everyone because of the constraints of time, nature of occupation, economic status and so on Further experiments revealed that walking 13km/week is enough to burn all fats

Summing up of the above facts it is now established that a human body can be divided in three major parts i e

1) The brain - from which the blood vessels of about 60,000 miles originates extending to other parts
2) The heart (life line) - which maintains the life line
3) Leg muscles - which produces requisite vibration to enable the blood flow to the heart by capillary action

Considering the details the following actions of the walkers is a must

a) Proper size boots should be used to enable the walker to maintain constant heel pressure
b) A walker while performing walk should do it without any conversation which anybody because the blood vessels of the heart might be distributed causing hindrance to the blood flow in the system

Scientists believe that walkers should be served with the following warnings

'Dear walker if you want to achieve benefits the above two methods are must for you Accept it and get benefits, because there is no compromising formula

■

❑ Jatanlal Rampuria

Honour the time

The bounties of nature are immense They are really immeasurable The life, the life-like earth, the life-like sky & the wonderful contrasts occupying all these - contrasts of the corpulent & the sublime of the moving & the static of the mystic & the manifest All so fascinating and so beautifully laid in perfect harmony with no chaos, confusion or conflict in between

There is however one thing the nature has been miser in blessing the man with and that is time The scarcest thing at man's disposal is time Yet he spends it most prodigally & most wastefully What is still more unfortunate is that most of us do not even realise how unwisely and unknowingly we allow it to slip out of our hands unutilised

Kay Lyons has said, "Yesterday is a cancelled cheque, tomorrow is a promissory note, today is the only cash you have" The only day of any importance in one's life is today Tomorrow is a tricky illusion The promises of tomorrow are seldom whole-hearted Let us therefore sit today Today itself to make ourselves available to learn from the experiences & expressions of the wise who thought of time as a priceless possession & who saw it passing fast & based on their this realisation who learned to command it

Time is something whole Management of time is, therefore, management of the whole Time management is, in fact, self-management, is career-management and, in one word, is life - management It simply means installing a regulator in life to strike a blance in all its manifestaiotns - emotional, behavioural and functional One cannot develop his faculties and make use of his potentialities without effectively managing time

Cure is possible only after diagnosing the disease "I am horribly busy" or "I did not get time" – such claims are often an unconscious admission of inability and lack of competence It is basic, therefore, to first realise where we lack and where we fitter away the time The problem starts when we become unconsious of the fact that a day consists of twenty four hours and not of eight-hours which he spend on our prime job What happens to the other sixteen hours daily? Assuming that one requires eight hours sleep and another 4 hours for eating, dressing moving to and form etc we have still four hours in hand left daily To this may be added another 8 hours each of Sunday and other holidays Just a little calculation and we will be surprised to know that hours of spare time in a week is just equal or sometimes more than the time we spend on our job proper

A very valid argument obstructs our way here One needs rest & relaxation Recreational pastimes, reading newspapers & magazines and accommodating social calls also demand their dues Remaining indifferent to the obligations of hospitality is also not easy When to do all this if there is no spare time? This is perfectly right But we have only to pause and think whether we are rightly using our time in these pursuits Relaxation should not be confused with idleness It means relieving tension We can make the work itself a source of relieving tension, if we develop a fondness for the job in hand and do it with full interest In recreational pastimes playing badmintion or tennis for an hour should be preferred to watching the day long cricket match Likewise, playing a musical instrument for an hour is better than viewing a 3 hour film and so also is walking half-an hour in the garden or the on the beach than just sitting one hour there

Light material magazines & newspapers are produced with rapidity and should be read with rapidity Newspapers can be glanced through in lunch interludes or while waiting for something or in other blank periods It is unfruitful to remain gluded to them for hours at a stretch At social functions we should try to meet with experienced and learned persons Discoursing and exchanging views with such persons is quite a gainful employment of time Hospitability also does not mean observing long formalities and allowing the visitor to steal our time as he wishes It is not just wise to always stand on ceremonies

Six, seven or eight spare hours a day is an enormous time But it is melted away commonly in excessive sleep, engaging in petty works which could well be delegated to others, waiting for the tea to arrive offered unnecesserily to a visitor dropping in jsut for nothing, gossiping on no-sense subjects, playing cards, flirting with a magazine or sometimes

simply idling At the work place too, time is wasted in rewriting letters first dictated without full facts, in waiting alongwith others for a file which should have been on the table before the conference started, in the staff interrupting too often for seeking clarification on issues which should have been elaborately explained at the start or in stretching 10 minutes coffee break to half an hour gossip or in just searching out files, papers, equipments and appliances not kept carefully

The most painful waste of time is however on a different count and that is indecisiveness Moving the thoughts just forth & back without settling down either on 'yes' or on 'no' is not playing a fair game with time The art of learning to quickly choose between the alternatives is the art of all arts To decide fast about what to do, when to do and to get into the appropriate frame of mind of productive work can only ensure proper use of time

The examples cited above are just illustrative A close observation of one's own habits and his own surroundings will reveal the spots responsible for waste of time affecting him

We shall now concentrate on factors fundamental in time-planning The basic points are counted under

1 Puncuality is the starting point It means moving in harmony with the steps of time Time does not remain in good company of those who cannot keep appointments or too often fail to maintain schedules

2 Budgeting the daily time and allocating it to the day's work with an intention to stick to it is the second step This done, it should be given the force of law which should not be disobeyed

3 Planning an over-crowded day causes tension and results in early fatigue There should be some breathing space in switching over from one job to other This also facilitates accommodating unexpected calls & emergencies

4 Regular daily work instils a sense of competence and confidence This eventually results in more output and saves time

5 'One thing at a time' is the golden rule Diversion to other matters, leaving the work in hand half-done, is the wrong way of handling the things

6 Priorities should be determined and urgent matters should be given the first attention To ensure better concentration on serious matters, it however becomes advisable at times to finish easy and low-time deamding things at the start

7 Keeping a broad general picture of the month's work and, if possible, of the year's agenda in view and long range objectives in memory eanbles unconscious mind to detect flaws & eliminate errors It ensures time performance too

8 Temptations towards too many outside interest is wrong It is vital to eliminate the unessentials & unimportant

9 Estangling in too much details or undue enquiries into trifles and involvement in wrong type of works or at wrong stage take heavy toll of time with little gains in return

10 The best way to spending spare time is to devote it to certain works of art or beauty or usefulness so that one satisfies not only one's creative urge but also produces something of value to the society Four - Five hours a week taken from frivolous pursuits and profitably employed would enable any man of ordinary capacity to master a complete science

11 Reading self-development-course books enhances knowledge and experience which can act as a true guide in all spheres through out life Acquiring diversified knowledge in spare moments and learning from the wisdom of others is like putting money in bank Some day it yields a rich harvest

12 Terminating overlong conversations, lengthy interviews and unnecessary interruptions without this being felt by the person involved is a skill to be perfected Not allowing others to steal our time is important and so also is to cut down self-inflicted interruptions

13 Effective time-management requires a certain amount of knowledge about the work one is engaged in Also knowing one's own limitations in terms of resources, time & energy helps not going stray and awry The work should be planned within these limitations It is no use making grandiose plans which can never be put into effect

14 Ensuring right infrastructure and proper arrangements that permit uninterrupted concentration during the period of actual work immensely saves time, labour and cost

Time honours those who honour the time

■
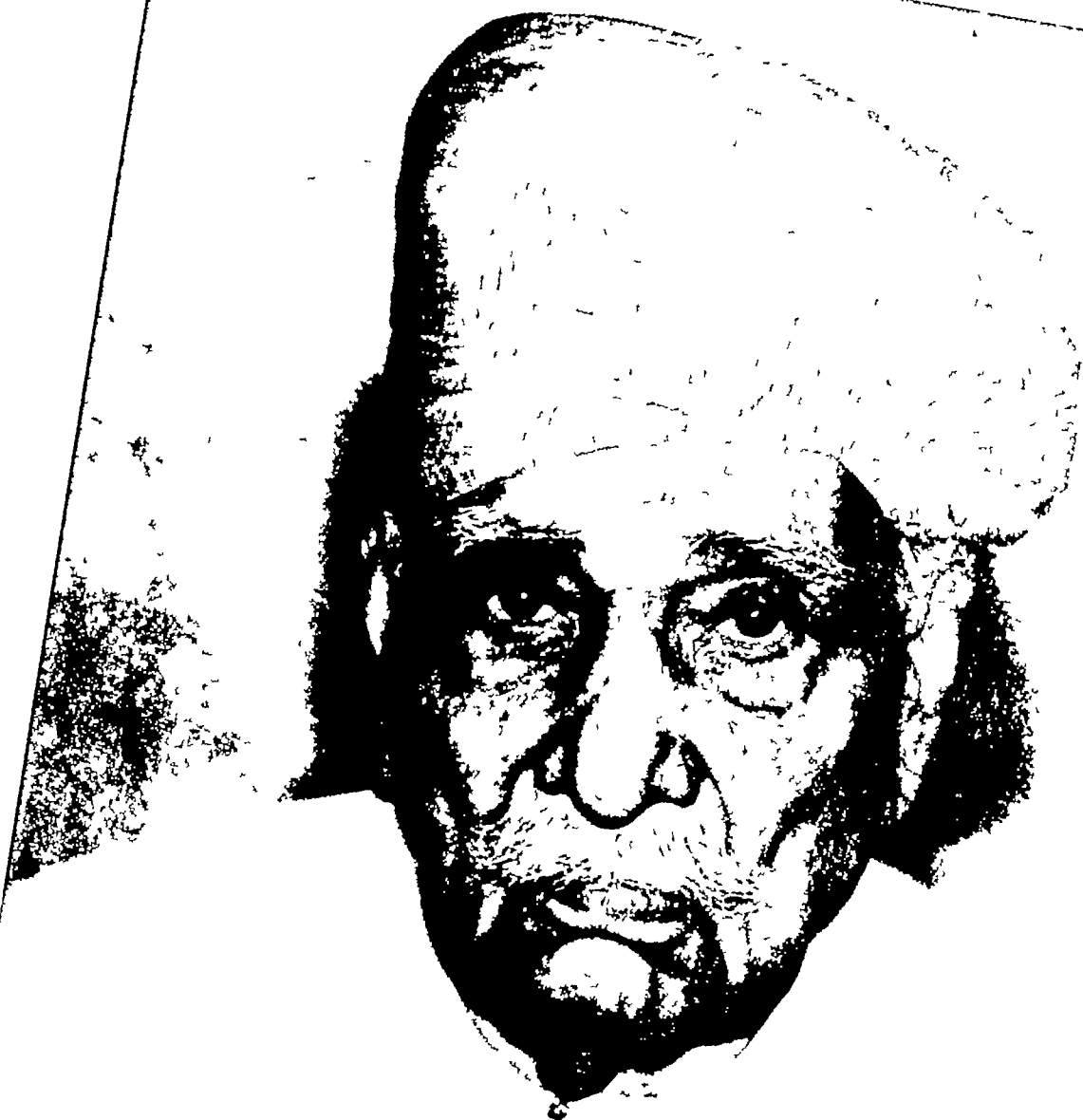
BHANWARLAL NAHATA

कालजयी श्री भँवरलाल नाहटा

जैन सघ के वयोवृद्ध अग्रणी, लब्धि प्रतिष्ठित इतिहासकार, जैन धर्म दर्शन एव साहित्य के मर्मज्ञ, साहित्य तपस्वी, साधक, निष्काम कर्मयोगी, पुरातत्ववेत्ता, बहुभाषाविद, आशुकवि, साहित्यवाचस्पति श्रावक श्रेष्ठ श्री भँवरलालजी नाहटा का दिव्य शान्तिपूर्ण देहावसान सोमवार, माघ कृष्णा चतुर्दशी स० २०५८ दिनाक ११ फरवरी २००२ को कोलकाता मे हो गया।

आपने अपने जीवनकाल मे हजारो शोधपूर्ण लेखो, सैकडो ग्रन्थो का लेखन, सम्पादन व प्रकाशन किया। आपने अनेक शोधार्थियो को मार्गदर्शन देकर विभिन्न विषयो पर शोध करवाकर पी-एच डी आदि उपाधियो से गौरवान्वित करवाया।

ब्राह्मी, खरोष्टी, देवनागरी आदि प्राचीन लिपियाँ, सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, अवहट्टी, राजस्थानी, गुजराती, बगाली आदि भाषाओ मे लेखन व उपरोक्त भाषाओ के साथ मराठी आदि भाषा का आपने अनुवाद किया। पूर्ण सतर्कता हेतु लेखन, सम्पादन आदि के कार्यो की प्रूफरीडिंग भी स्वय ही करते थे। आप द्वारा लिखित शोधपूर्ण लेख व ग्रन्थ अनेक न्यायालयो मे साक्षी के रूप मे स्वीकार किये गये। भारत के अलावा विश्व के कई विश्वविद्यालयो के पाठ्यक्रम मे आपके शोधपूर्ण लेखो को सम्मिलित किया व सदर्भ के रूप मे उल्लेखित किया। आपके चाचा श्री अभयराजजी नाहटा की स्मृति मे सस्थापित बीकानेर का विश्वप्रसिद्ध अभय जैन ग्रन्थालय आपके व श्री अगरचदजी नाहटा के जीवनभर के श्रम से ६०००० हस्तलिखित ग्रन्थो, लाखो मुद्रित पुस्तको व अद्वितीय प्राचीन कला-कृतियो आदि से सुसज्जित व सुशोभित है।

८५ वर्ष तक की उम्र तक आपने निरन्तर भ्रमण किया। भ्रमण का मुख्य उद्देश्य शोध ही रहा, चाहे वो पुरातत्व शिलालेखो का हो, साहित्य का हो, मूर्तियो का हो, खुदाई मे प्राप्त पुरावशेषो का हो, तीर्थों का हो या इतिहास का हो।

श्री नाहटा द्वारा लिखित, सपादित एव अनूदित कुछ महत्वपूर्ण रचनाओ का परिचय निम्नलिखित है। जो समय की शिला पर लिखे गये अमिट लेख है एव उनके कालजयी व्यक्तित्व का प्रामाणिक दस्तावेज भी।

१. द्रव्यपरीक्षा और धातूत्पति—इसके मूल लेखक ठक्कुर फेरु धाधिया है (रत्नपरीक्षादि ग्रन्थ सग्रह का दूसरा व तीसरा भाग)

श्री भॅवरलाल नाहटा ने लगभग ५५वर्ष पूर्व अपनी शोधपिपाषा की तृप्ति हेतु कलकत्ता के एक ज्ञानभण्डार को खगालते हुए छ सौ वर्ष पुरानी पाण्डुलिपि खोज निकाली और उसकी प्रेसकापियाँ कर पुरातत्वाचार्य मुनि जिनविजयजी के पास प्रकाशनार्थ भेजी। वे मूल ग्रथ सन् १९६१ मे रत्नपरीक्षादि सप्तग्रन्थ सग्रह नाम से राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, द्वारा प्रकाशित हुए।

२ मातृकापद श्रृगार रसकलित गाथा कोश—यशोभद्र के शिष्य वीरभद्र कृत यह कृति विशुद्ध रूप से एक श्रृगारपरक रचना है। इस गाथाकोश की विशेषता यह है कि इसमे मातृका पदो अर्थात् स्वर और व्यजनो मे से क्रमश एक-एक को गाथा का आद्यअक्षर बनाकर श्रृगारपरक गाथाओ की रचना की गयी है। इसमे कुल ४० गाथाएँ है। गाथाएँ श्रृगारिक है, फिर भी वे मर्यादाओ का अतिक्रमण नही करती। जहाँ मर्यादा से बाहर कोई सकेत करना होता है कवि उसे अपने मौन से ही इगित कर देता है जैसे इस गाथाकोश के अन्त मे कवि कहता है—

पच्छा ज त उ वित्त अकहकहा कहिज्जन्ति अर्थात् उसके पश्चात् जो कुछ घटित हुआ वह अकथनीय है कैसे कहा जाय ? इस प्रकार मूक भाव से भी कथ्य को अभिव्यक्ति दे देना, यह कवि की सम्प्रेषणशीलता का स्पष्ट प्रमाण है।

३ सिरी सहजाणदघन चरिय—कलकत्ता विश्व विद्यालय के भाषा विभाग के प्रोफेसर एस एन बनर्जी ने इस ग्रन्थ की भूमिका मे कहा है—

श्री भॅवरलाल नाहटा द्वारा रचित श्री सहजाणदघन चरिय वर्तमानकाल मे रचित एक अपभ्रश काव्य है। मूलत यह काव्य अपभ्रश की अतिम स्तर की भाषा अवहट्ट (अपभ्रश) मे रचित है।

विद्यापति की कीर्तिलता व पिगलाचार्य की प्राकृत पिगल इसी भाषा मे रचित है। श्री नाहटाजी इस काल के विद्यापति या पिगलाचार्य थे। यह महाकाव्य २४४ श्लोको मे हिन्दी अनुवाद सहित रचित है।

पूर्वकालीन कवियो की रचनाओ की तुलना मे श्री नाहटाजी का सहजाणदघन चरिय काव्य का मान किसी अश मे कम नही है। कवित्व की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ अतुलनीय है।

काव्य ग्रन्थ के शब्द अत्यन्त सहज व सरल है। जिससे भाषा का सामान्य ज्ञान रखने वाले भी इसका रसास्वादन कर सकेगे। उपमादि अलकारो का भी कोई अभाव नही है। छन्द सरल व त्रुटिहीन है।

४ **अलकार दप्पन**—यह प्राकृत भाषा मे रचित एक अलकार ग्रन्थ है। जिसका हिन्दी अनुवाद सस्कृतच्छाया सहित श्री नाहटाजी ने किया है।

इस ग्रन्थ मे अलकार सम्बन्धी जो विवरण दिया गया है इससे इसका निर्माणकाल ८वी, ११वी शताब्दी का माना जा सकता है। रचना से कर्ता का पता नही चलता। प्राकृत भाषा की अलकार सबधी यह एक ही रचना जैसलमेर के बडे ज्ञान भण्डार मे ताडपत्रीय प्रति मे प्राप्त हुई है।

५ **विविध तीर्थ कल्प**—प्राकृत व सस्कृत भाषा मे जिन-प्रभसूरि विरचित कल्प प्रदीप के इस ग्रन्थ का अनुवाद श्री नाहटाजी ने सन् १९७८ मे कर श्री जैन श्वेताम्बर नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ मेवानगर राजस्थान से प्रकाशित करवाया।

कल्पप्रदीप अथवा विशेषतया प्रसिद्ध विविध तीर्थ कल्प नामक यह ग्रन्थ जैन साहित्य की एक विशिष्ट वस्तु है। ऐतिहासिक और भौगोलिक दोनो प्रकार का कोई दूसरा ग्रन्थ अभी तक ज्ञात नही हुआ। यह ग्रन्थ विक्रम १४वी शताब्दी मे जैन धर्म के जितने पुरातन और विद्यमान प्रसिद्ध-२ तीर्थस्थान थे उनके सम्बन्ध की प्राय एक प्रकार की गाईड बुक है।

६ बानगी-नाहटाजी की बानगी—राजस्थानी भाषा मे रचित सस्मरणो, रेखाचित्रो एव लघुकथाओ का सरलतम सकलन है जिसमे इन्होंने अपनी मातृभाषा की विविध विधाओ मे कलात्मकता को उकेरा है। राजस्थान साहित्य के श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशन भण्डार मे यह एक महत्वपूर्ण अभिवृद्धि है।

यह सकलन वस्तुत लोक जीवन एव लोक साहित्य से सशक्त अनेक जीवन्त, सरस और सहज चित्रो की बानगी प्रस्तुत करती है और इस प्रकार मरुधरा की धरती के स्वर को अधिक प्राणवान बनाती है।

प्रस्तुत कृति शातिलाल भारद्वाज राकेश द्वारा (राजस्थान साहित्य अकादमी सगम) उदयपुर से १९६५ मे प्रकाशित करवाई गई।

७ **आनन्दघन चौबीसी**—परम अवधूत योगिराज आनन्दघनजी रचित चौबीस तीर्थंकरो के स्तवन एव पदो का न केवल जैन अपितु भारतीय समाज मे आज तक एक विशिष्ट स्थान रहा है। ये स्तवन मुमुक्षु एव साधको के हृदय को झकृत करनेवाले और आत्मानुभूति को और बढाने वाले होने से मानस को भक्ति रस से आप्लावित कर देते है।

आनन्दघनजी के स्तवनो और पदो की भाषा को देखते हुए यह स्पष्टत सिद्ध है कि ये राजस्थान प्रदेश के ही थे।

८ **युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि**—यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ श्री अभय जैन ग्रन्थालय के सप्तम पुष्प के रूप मे प्रस्फुटित हुआ है। इसका प्रकाशन वर्ष स० १९९२ है। यह ग्रन्थ श्री भँवरलालजी नाहटा ने अपने काका श्री अगरचन्दजी नाहटा के साथ लिखा है। लेखकद्वय ने अपने सारगर्भित वक्तव्य मे बहुमूल्य शोधसामग्री प्रस्तुत की है। उन्होने प्रश्न उठाये है और उनका विद्वतापूर्ण समाधान-उत्तर भी दिया है। इसकी प्रस्तावना श्री मोहनलाल दलीचद देसाई ने लिखी है, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह ग्रन्थ सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, बगला, अग्रेजी, प्राचीन भाषाओ और सैकडो हस्तलिखित प्राचीन पाण्डुलिपियो, प्रशस्तियो, पट्टावलियो, विकीर्ण पत्रो, रिपोर्टो आदि के गहन अध्ययन, चिन्तन और मनन के आधार पर लिखा गया है। अत इसकी प्रामाणिकता निस्सन्देह है।

९ **ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह**— श्री भँवरलालजी नाहटा एव श्री अगरचन्दजी नाहटा के सहसम्पादन मे स० १९९४ मे श्री अभय जैन ग्रन्थालय के अष्टमपुष्प के रूप मे इस ग्रन्थ रत्न का प्रगटन हुआ है। पुस्तक का समर्पण श्री दानमलजी नाहटा की स्वर्गस्थ आत्मा को उनके अनुज और उक्त ग्रन्थ के प्रकाशक श्री शकरदानजी नाहटा ने किया है।

यह ग्रन्थ तीन दृष्टियो से अत्यन्त उपयोगी है। पहला दृष्टिकोण ऐतिहासिकता का है, द्वितीय भाषिकता का और तृतीय साहित्यिकता का। इसके कतिपय साधारण कार्यो के अतिरिक्त प्राय सभी काव्य ऐतिहासिक दृष्टि से सग्रह किये गये है। अद्यावधि प्रकाशित सग्रहो से भाषा साहित्य की दृष्टि से यह सग्रह सर्वाधिक उपयोगी है। श्री हीरालाल जैन ने इसकी विद्वतापूर्ण प्रस्तावना लिखी है। ग्रन्थ मे उन पाण्डुलिपियो का परिचय दिया गया है जिनका उपयोग इस ग्रथ मे किया गया है। प्रकाशक, पाण्डुलिपि, ताडपत्र, हस्तलिपि आदि से सम्बद्ध एकादश चित्रो से यह ग्रन्थ सुसज्जित है।

१० **समय सुन्दर कृत कुसुमाजलि**—श्री भँवरलालजी नाहटा एव श्री अगरचन्दजी नाहटा के सग्रहत्व एव सम्पादकत्व मे श्री अभय जैन ग्रन्थालय के पचदशम पुष्प के रूप मे प्रस्फुटित यह

कृति अपना विशेष महत्व रखती है। इसमे कविवर समयसुन्दरजी की ५६३ लघु रचनाओ का सग्रह है। डॉ० हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने इसकी भूमिका लिखकर इस ग्रन्थ के महत्व का प्रतिपादन किया है। इसमे सन् १६८७ के अकाल का बडा ही जीवन्त वर्णन है। वह बडा हृदयद्रावक और प्रभावक है। वस्तुत नाहटाजी ने इस ग्रन्थ का सम्पादन-प्रकाशन करके हिन्दी साहित्य के अध्येताओ के सामने बहुत अच्छी सामग्री प्रस्तुत की है।

११ **युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि**—श्री भॅवरलालजी नाहटा एव श्री अगरचन्दजी नाहटा द्वय ने यह ग्रन्थ लिखा है। इसका प्रकाशन श्री अभय जैन ग्रन्थमाला के बारहवे पुष्प के रूप मे हुआ है। इसे लेखको ने अपने स्व० पिता एव पितामह श्री शकरदानजी नाहटा को समर्पित किया है। इसका प्रकाशन सवत् २००३ मे हुआ है।

इस ग्रन्थ को लिखने के लिए लेखकद्वय को पर्याप्त श्रम करना पडा, तदर्थ जैसलमेर की यात्रा कर प्राचीन ज्ञान भण्डारो से चरित्र नायक से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की। इस पुस्तक की सबसे बडी विशेषता यह है कि सूरिजी से सम्बन्धित पूर्ण प्रमाणित यह प्रथम शोधपूर्ण ग्रन्थ है।

१२ **क्यामखा रासो**—इस ग्रन्थ के मूल रचयिता मुस्लिम कवि जान है। इसका सम्पादन श्री भॅवरलालजी नाहटा ने श्री अगरचन्दजी नाहटा तथा श्री दशरथ शर्मा के साथ किया है। इसका प्रकाशन राजस्थान पुरातत्व मदिर जयपुर की राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला से सवत् २०१० मे हुआ। यह रासो अनेक दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। इसकी साहित्यिक महत्ता उच्चकोटि की है। इसकी शैली मे प्रवाह है। कवि ने यथाशक्ति मितभाषिता और सत्य का आश्रय लिया। इसकी एकमात्र प्रति झुझनू के जैन भण्डार से प्राप्त हुई।

१३ **बीकानेर जैन लेख सग्रह**—श्री नाहटाद्वय की कल कीर्ति को चतुर्दिक् प्रसारित करने वाले ग्रथरत्नो मे से उक्त ग्रन्थ भी एक है। ग्रन्थ के प्राक्कथन लेखक श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ने श्री नाहटाजी के प्रकाण्ड पाण्डित्य, श्रमनिष्ठा और शोधरुचि की भूरि-२ प्रशसा की है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन श्री अभय जैन ग्रन्थालय के पचदश पुष्प के रूप मे सन् १९५६ मे हुआ। इसमे बीकानेर राज्य के २६१७ तथा जैसलमेर के १७१ अप्रकाशित लेखो का सग्रह है। प्रारम्भ मे शोधपूर्ण-विद्वतापरिपूर्ण विस्तृत भूमिका दी गई है। परिशिष्ट मे वृहद् ज्ञान भण्डार की वसीयत, श्री जिनकृपाचन्द्रसूरि उपाश्रय का व्यवस्थापक और पर्युषणो मे कसाईवाडा बन्दी के मुचलके की नकल है। श्री नाहटाजी ने लेख सग्रह के क्षेत्र मे यह बहुत बडा काम किया है। ग्रन्थ के प्रत्येक चित्रफलक पर उनका कठिन श्रम झलकता है और उनकी अगाध विद्वता ग्रथ के आद्यान्त भाग मे । इस उत्कृष्ट कोटि के ग्रन्थ प्रणयन के लिए नाहटा द्वय की जितनी भी प्रशसा की जाय, वह थोडी है। उसमे करीब १०० चित्र भी दिये गये है।

१४ **सीताराम चौपाई**—इस ग्रन्थ का सम्पादन भॅवरलालजी नाहटा एव अगरचदजी नाहटा ने किया है। इसका प्रकाशन सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट से सवत् २०१९ मे हुआ है।

महोपाध्याय कविवर समयसुन्दरजी १७वी सदी के महान् विद्वान् सत थे। आपका साहित्य बहुत विशाल है। आपने गद्य और पद्य दोनो ही विधाओ मे साहित्य सर्जना की थी। आपकी पद्य रचनाओ मे सीताराम चौपाई सबसे बडी रचना है। इसका परिमाण ३७०० श्लोक परिमित है। जैन परम्परा की राम कथा को इस महाकाव्य मे गुफित किया गया है।

१५ **रत्न परीक्षा**—यह ग्रन्थ ठक्कुरफेरु विरचित लगभग आठ सौ वर्ष प्राचीन है। मूल प्राकृत भाषा मे रचित है। इसका हिन्दी अनुवाद श्री अगरचन्द भॅवरलाल नाहटा ने किया है।

रत्नपरीक्षा सम्बन्धी इने गिने ग्रन्थो मे इस ग्रन्थ का महत्वपूर्ण स्थान है। पुस्तक की भूमिका मे विद्वान् सम्पादको ने रत्न परीक्षा सम्बन्धी हिन्दी साहित्य के ग्रन्थो का सविवरण उल्लेख किया है। इसमे चोटी के विद्वानो के लेख भी सग्रहित है। परिशिष्ट मे नवरत्नपरीक्षा, मोहरारी परीक्षा इत्यादि देकर पुस्तक को और भी उपयोगी बनाया गया है। प्रसिद्ध जौहरी श्री राजरूपजी टॉक ने रत्नो आदि पर प्रकाश डालते हुए इस ग्रन्थ को विश्व साहित्य मे अजोड ग्रन्थ बतलाया है।

१६ **मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि**—द्वितीय दादा साहब पर शोधपूर्ण प्रस्तुत पुस्तक ६२ वर्ष पूर्व सम्वत् १९९६ मे प्रकाशित अगरचन्द भँवरलाल नाहटा की एक अनुपम कृति है। इसकी प्रस्तावना दशरथ शर्मा ने लिखी है। श्री अभय जैन ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित ७६ पृष्ठ की पुस्तक न्यू राजस्थान प्रेस ७३-ए, चासाधोबापाडा स्ट्रीट, कलकत्ता द्वारा मुद्रित है।

१७ **युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि चरितम्**—चतुर्थ दादासाहब पर प्रस्तुत पुस्तक उपाध्याय श्री लब्धिमुनि विरचित भॅवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित सवत् २०२७ मे अभयचद सेठ द्वारा प्रकाशित ६ सर्गो मे विभक्त कुल १२१२ पद्य और कुछ गद्य भी है। १३८ पृष्ठ।

१८ **दादा श्री जिनकुशलसूरि**—तृतीय दादासाहव पर प्रस्तुत पुस्तक अगरचन्द भॅवरलाल नाहटा द्वारा लिखित नाहटा ब्रदर्स द्वारा प्रकाशित श्री अभय जैन ग्रन्थमाला का २०वॉ ग्रथाक सेठ ब्रदर्स द्वारा मुद्रित १३२ पृष्ठ की कृति है। प्रस्तावना श्री जिनविजयजी ने

लिखी है जिसमे उक्त कृति का साराश सहित अन्य प्रकाशित/अप्रकाशित ज्ञान भण्डार की जानकारी दी है।

१९. **हम्मीरायण**–प्रस्तुत पुस्तक जयतिगदे चौहान के पुत्र रणथभोर के राजा हम्मीरदे की कथा भाण्डाजी व्यास द्वारा रचित, सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर द्वारा प्रकाशित (राजस्थान भारती प्रकाशन) रेफिल आर्ट प्रेस, कलकत्ता द्वारा मुद्रित सवत् २०१७ मे श्री भॅवरलालजी नाहटा द्वारा सम्पादित है। प्रकाशकीय श्री लालचन्द कोठारी, दो शब्द भॅवरलाल नाहटा व भूमिका डॉ० दशरथ शर्मा ने लिखी है।

२० **समयसुन्दर रास पचक**–युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि से दीक्षित, सकलचदगणि के शिष्य महोपाध्याय समयसुन्दरजी (महान कवि, सत, साहित्यकार) की जीवनी के साथ उनकी रचनाओ को श्री भॅवरलाल नाहटा ने सम्पादित किया है। सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीच्यूट बीकानेर द्वारा प्रकाशित रेफिल आर्ट प्रेस कलकत्ता द्वारा मुद्रित १५१ पृष्ठीय, २०१७ सवत् की २५वी कृति। इसकी महत्ता पर दो शब्द श्री कन्हैयालाल सहल प्रिंसिपल बिडला आर्ट्स कॉलेज, पिलानी (३०-४-६१) ने लिखे है।

२१ **पद्मिनी चरित्र चौपाई**–प्रस्तुत शोधपूर्ण ग्रन्थ सौन्दर्य, बुद्धियुक्त धैर्य, अदम्य साहसी, पातिव्रत्य व सतीत्व की प्रतीक रानी पद्मावती पर रचित, सग्रहित व शोधसिद्ध रचना है। श्री भॅवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित, सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर (राजस्थान भारती प्रकाशन) से प्रकाशित (२०१८ स०, २१५ पृष्ठीय) कृति दशरथ शर्मा के विवेचन सहित कवि लब्धोदय की प्रथम रचना है।

२२ **सती मृगावती**– कविवर समयसुन्दर कृत सार का सार श्री भॅवरलाल नाहटा की प्रथम कृति १७ वर्ष की आयु मे (सन् १९२८) लिखी पुस्तक के अप्राप्य होने से पुन श्री जिनदत्तसूरि सेवा सघ द्वारा प्रकाशित, सुराना प्रिंटीग वर्क्स द्वारा मुद्रित (वीर निर्वाण सवत् २५०४ आश्विन कृष्ण २) १७ पृष्ठो की पुस्तक है।

२३ **तरगवती**– आचार्य श्री पादालिप्तसूरि की प्राकृत कृति का सक्षिप्त रूप 'तरगवती' शतावधानी प० धीरजलाल शाह की गुजराती मे प्रकाशित (श्रेणी ५ भाग १-२) 'बाल ग्रन्थावली' का हिन्दी अनुवाद है। यह कृति श्री जिनदत्तसूरि सेवा सघ द्वारा प्रकाशित व सुराणा श्री नवरतनमल एवम् माता झणकार देवी की पुण्य स्मृति मे उनके पुत्रो (श्री प्रेमचद, भागचन्द, धनकुमार) द्वारा मुद्रित है।

२४ **कलकत्ते की जैन कार्तिक रथयात्रा महोत्सव**– विश्व की अतुलनीय जैन रथयात्रा का उद्देश्य, महत्ता, ऐतिहासिक-तथ्य सप्रमाण लिखकर श्री भॅवरलाल नाहटा ने नाहटा ब्रदर्स व जोगीराम वैजनाथ (सरावगी) से प्रकाशित व मिश्रा एण्ड कम्पनी कलकत्ता से मुद्रित करायी। पृष्ठ-६ इसका प्रकाशन १९५७ मे हुआ।

२५. **नगरकोट-कागडा महातीर्थ**– हिमाचल प्रदेश के जैन तीर्थ जिसे उत्तरी भारत का शत्रुजय तीर्थ कहा जाता है पर श्री भॅवरलाल नाहटा की शोध पुस्तक के १३८ पृष्ठ पूज्य बसीलालजी कोचर शतवार्षिकी अभिनन्दन समिति द्वारा प्रकाशित व राज प्रोसेस प्रिन्टर्स द्वारा मुद्रित है।

२६ **श्री स्वर्ण गिरि – जालोर**– राजस्थान के प्राचीन जैन तीर्थ श्री स्वर्ण गिरि जालोर, यह कृति १०८ पृष्ठो मे लिखकर श्री भॅवरलाल नाह्टा ने, प्राकृत भारती अकादमी जयपुर और बी जे नाहटा फाउण्डेशन, कलकत्ता से प्रकाशित व राज प्रोसेस प्रिन्टर्स/अन्टार्टिका ग्राफिक्स कलकत्ता से मुद्रित करायी ३० अगस्त १९९५ ई० को।

२७ **भगवान महावीर का जन्म स्थान "क्षत्रियकुण्ड"**– तीर्थ की प्रमाणिकता पर शोधपरक पुस्तक श्री अगरचन्द के साथ श्री भँवरलाल नाहटा ने लिखी व महेन्द्र सिंघी द्वारा प्रकाशित १८ पृष्ठ/सचित्र, वीर निर्वाण सम्वत् २५००।

२८. **श्री गौतम स्वामी का जन्म स्थान कुण्डलपुर (नालन्दा)**– जैन पुरातत्व/साहित्य व प्रमाण पुरस्सर तीर्थ भूमि नालन्दा सचित्र पुस्तक के १८ पृष्ठ का लेखन श्री भॅवरलाल नाहटा ने किया व प्रकाशन महेन्द्र सिंघी ने वीर निर्वाण सवत् २५०१ मे।

२९. **वाराणसी जैन तीर्थ**– उत्तर प्रदेश की धर्मभूमि वाराणसी पर प्रस्तुत पुस्तक श्री भॅवरलाल नाहटा द्वारा लिखित व महेन्द्र सिघी द्वारा प्रकाशित २५०२ वीर निर्वाण सवत् की १७ पृष्ठीय कृति है।

३० **काम्पिल्यपुर तीर्थ**– १३वे तीर्थकर विमल नाथ भगवान की कल्याणक भूमि कम्पिला पाचाल देश की राजधानी पर जैन शोधार्थी की एक नजर की प्रतिबिम्ब रूपी यह पुस्तक उस भारतवर्ष के प्राचीनतम नगर मे धर्म/पुरातत्व, जैन विभूतियो की तपोभूमि व विचरण भूमि पर विस्तृत प्रकाश लेखक भॅवरलाल नाहटा ने डाला है। १४ पृष्ठ की कृति श्री जैन श्वेताम्बर महासभा (हस्तिनापुर) उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकासित व सुराणा प्रिन्टिंग वर्क्स कलकत्ता द्वारा मुद्रित है।

३१. **महातीर्थ श्रावस्ती**– तीर्थकर भगवान सभवनाथ की चार कल्याणक भूमि और गौतम बुद्ध की तपस्या स्थली सावत्थी (वहराईच-वलरामपुर से १५ किलोमीटर दूर) जैन तीर्थ पर ४० पृष्ठो मे श्री भँवरलाल नाहटा द्वारा लिखित व पचाल शोध सस्थान द्वारा प्रकाशित है। सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स द्वारा मुद्रित है। १९८७ ई०, विक्रम सवत् २०४४ मे।

३२ **विचार-रत्न-सार–** प्रस्तुत ग्रन्थ उपाध्याय देवचन्द्र की लेखनी की देन है। गणिदेवर्धि आचार्य हरिभद्र अपने युग के मूर्धन्य जैन साहित्यकार हुए। उनके परवर्तीकाल मे हुए जैन साहित्यकारो की त्रिमूर्ति जैन/जैनेतर साहित्य एवम् समाज मे भी सुप्रतिष्ठित है– आनन्दघन, यशोविजय के साथ उपाध्याय देवचन्द्र। उनका साहित्य आध्यात्मिक, आस्थाप्लावित, व्यवस्थामूलक और नैतिक पृष्ठभूमि से प्रतिष्ठित है। गद्य एवम् पद्य– दोनो ही रूपो मे निबद्ध कृतियाँ गूढ़तम सत्यो को उद्घाटित करने का उद्देश्य लिए लक्षित होती है।

इसको राष्ट्र भाषा हिन्दी मे सर्वसाधारण के लिए लाभदायक बनाने के उद्देश्य से श्री भँवरलाल नाहटा ने अनुदित किया है।

३३ **श्री सहजानन्दघन पत्रावलि–** योगीन्द्र युगप्रधान गुरुदेव श्री सहजानन्दघनजी म०सा० द्वारा पूज्य साधु साध्वीजी तथा भक्तो को दिये गये हजारो पत्रो मे से कुल पृष्ठ ५०० मे ७०६ महत्वपूर्ण पत्र सकलित कर श्री भँवरलालजी नाहटा ने सम्पादित की है। श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, रत्नकुट, हम्पी (कर्नाटक) द्वारा प्रकाशित है। इसका प्रकाशन सन् १९८५ मे हुआ था।

३४ **क्षणिकाएँ–** १५० गद्य क्षणिकाओ की आकृति मे छोटी पुस्तक १९८४ ई० की हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कृति से पुरस्कृत, भारतवर्ष की सबसे बडी सख्या मे उपलब्ध गद्य गीत जिनमे मात्र कल्पना की उडान नही, शाश्वत सत्य और तथ्य का समायोजन है। श्री भँवरलाल नाहटा की एकमात्र क्षणिका कृति अनुज पुत्र अशोक नाहटा के अल्पायु मे स्वर्गस्थ होने पर उसे समर्पित श्री छगनलाल शास्त्री द्वारा समीक्षित, नाहटा ग्रुप ऑफ ट्रेडर्स लिमिटेड द्वारा प्रकाशित है।

३५ **बम्बई चिन्तामणि पार्श्वनाथादि स्तवन पद सग्रह–** खरतरगच्छीय वाचक श्री अमरसिन्धुरजी द्वारा रचित १२ पाठो मे सकलित भजनो की मजुषा श्री अगरचन्द भँवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित स० २०१४ मे श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ मदिर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित १६२ पृष्ठो मे समाहित है। प्रस्तावना मे जैन/जैनेतर दर्शनो मे मोक्षमार्ग के साधनो पर प्रकाश डाला गया है।

३६ **श्रीमद् देवचन्द्र स्तवनावली–** अध्यात्मतत्त्ववेता श्रीमद् देवचन्द्रजी रचित स्तवनो का सकलन श्री अगरचन्द भँवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित श्रीमद् देवचन्द्र ग्रन्थमाला, ४ जगमोहन मल्लिक लेन, कोलकाता द्वारा स० २०१२ मे प्रकाशित है।

३७ **श्री जैन श्वेताम्बर पचायती मदिर कलकत्ता सार्द्ध शताब्दी महोत्सव स्मृति ग्रन्थ (स० १८७१ से २०२१ वि०)** इस ग्रन्थ मे बडे जैन श्वेताम्बर मन्दिर व दादाबाडी के साथ कलकत्ते के अन्य मन्दिरो का भी सचित्र इतिहास है और १२ ऐतिहासिक लेख भी है। इसका सम्पादन श्री भँवरलाल नाहटा ने किया।

३८ **मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृति ग्रन्थ–** श्री अगरचद भँवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित, मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी समारोह समिति ५३, रामनगर, नई दिल्ली-५५ द्वारा प्रकाशित (सन् १९७१ वीर स० २४९७) ग्रन्थ की सारगर्भित प्रस्तावना ''नाहटा बन्धु'' ने ही लिखी है। दो खण्डो मे विभक्त ग्रन्थ के प्रथम खण्ड मे ४३ लेख है, द्वितीय खण्ड मे खरतर साहित्य सूची इन्ही की सकलित व महोपाध्याय विनयसागर द्वारा सम्पादित है।

३९ **महातीर्थ अहिच्छत्रा–** भगवान पार्श्वनाथ पर कमठ के जीव मेघमाली द्वारा किये गये उपसर्ग तथा धरणेन्द्र पद्मावती द्वारा सहस्रफण धारण कर भगवान की भक्ति कर उपसर्ग से बचाया वही स्थान अहि अर्थात् सर्प तथा च्छत्र अर्थात् फण फैलाकर छत्र करना अर्थात् अहिच्छत्रा। उस स्थान का इतिहास श्री भँवरलालजी नाहटा ने लिखा तथा प्रकाशन पाचाल शोध सस्थान ५२/१६, शक्कर पट्टी, कानपुर से हुआ।

४० **खरतरगच्छ के प्रतिबोधित गोत्र और जातियाँ–** खरतरगच्छाचार्यो द्वारा प्रतिबोध देकर समय-समय पर अनेक जातियो को सम्यक् मार्ग पर आरुढ किया इसी का सम्पादन श्री अगरचन्दजी नाहटा व श्री भँवरलालजी नाहटा ने किया। इसका प्रकाशन श्री जिनदत्तसूरि सेवा सघ, ४ मीर बोहार घाट स्ट्रीट, कोलकाता-७ से हुआ, स० २०३० की कृति है।

■

❒ राधेश्याम मिश्र

दो आदर्श

वाराणसी मे सत कबीर साधना मे लगे थे। वह बाहर से वस्त्रो का ताना-ताना बुन रहे थे। किन्तु, अन्दर मे साधना का ताना-बाना बुनने मे सलग्न थे। एक ब्राह्मण का पुत्र अनेक विद्याओ का अध्ययन करके पच्चीस वर्ष की अवस्था मे जब जीवन के नये मोड पर आया, तो उसने विचार किया कि वह कौन-से जीवन मे प्रवेश करे, साधु बने या गृहस्थाश्रम मे जाए ? अपनी इस उलझन को उसने कबीर के समक्ष रखा। कबीर उस समय ताना पूर रहे थे। प्रश्न सुनकर भी उन्होंने कोई उत्तर नही दिया। युवक ने कुछ देर तक चुप रहकर प्रतीक्षा की, किन्तु कोई उत्तर नही मिला। उसने फिर अपना प्रश्न दुहराया, लेकिन कबीर ने फिर भी जवाब नही दिया। तभी कबीर ने पत्नी को पुकारा—"जरा देखो तो ताना साफ करने का झब्बा कहाँ है ?" इतना कहना था कि कबीर की पत्नी उसे खोजने लगी। दिन के सफेद उजाले मे भी कबीर ने विगडते हुए कहा—"देखती नही हो, कितना अधकार है ? चिराग लाकर देखो", पत्नी दौडती हुई चिराग लेकर आई, और लगी खोजने। झब्बा तो कबीर के कन्धे पर रखा था। किन्तु, फिर भी कबीर की पत्नी पति की इतनी आज्ञाकारिणी थी कि जैसा उसने कहा वैसा ही करने लग गई। युवक को यह देखकर वडा आश्चर्य हुआ। वह सोच ही रहा था कि आखिर यह क्या माजरा है ? इतने मे कवीर ने अपने लडके और लडकी को आवाज दी। जव वे आए, तो उन्हे भी वही झब्बा खोजने का आदेश दिया। और, वे भी चुपचाप खोजने लग गए। कुछ देर तक खोजने के वाद कवीर ने कहा—"अरे। यह तो मेरे कधे पर रहा। अच्छा

जाओ, अपना-अपना काम करो।" सभी लौट गए। युवक बडा परेश
था कि "यह कैसा मूर्ख है ? कैसी विचित्र बाते करता है ? मेरे प्रश्न व
क्या खाक उत्तर देगा ?" तभी कबीर ने उसकी ओर देखा, युवक ने फि
अपना प्रश्न दुहराया। कबीर ने कहा, मै तो उत्तर दे चुका हूँ, तुम अ
समझे नही। अभी जो दृश्य तुमने देखा था, उससे सबक लेना चाहिए
यदि गृहस्थ बनना चाहते हो तो, ऐसे बनो कि तुम्हारे प्रभावशाल
व्यक्तित्व से प्रभावित घर वाले दिन को रात और रात को दिन मान
को भी तैयार हो जाएँ। तुम्हारे विवेकपूर्ण कोमल व्यवहार मे इत
आकर्षण हो कि परिवार का प्रत्येक सदस्य तुम्हारे प्रति अपने आ
खिचा रहे, तब तो गृहस्थ जीवन ठीक है। अन्यथा यदि घर कुरुक्षेत्र व
मैदान बना रहे, आये दिन टकराहट होती रहे, तो इस गृहस्थ जीवन
कोई लाभ नही। और, यदि साधु बनना हो, तो चलो एक साधु के पा
तुम्हारा मार्ग-दर्शन करा दूँ।

कबीर युवक को लेकर एक साधु के पास पहुँचे, जो गगा त
पर एक बहुत ऊँचे टीले पर रहता था। कबीर ने उन्हे पुकारा त
वह वृद्ध साधु लडखडाता हुआ धीरे-धीरे नीचे उतरा। कबीर
कहा—"बस, आपके दर्शनो के लिए आया था, दर्शन हो गए।"
साधु फिर धीरे-धीरे ऊपर चढा, तो कबीर ने फिर पुकारा और सा
फिर नीचे आया और पूछा—"क्या कहना है ?" कबीर
कहा—अभी समय नही है, फिर कभी आऊँगा, तब कहूँगा।" सा
फिर टीले पर चढ गया। कबीर ने तीसरी बार फिर पुकारा औ
साधु फिर नीचे आया। कबीर ने कहा—"ऐसे ही पुकार लिया, को
खास बात नही है।" साधु उसी भाव से, उसी प्रसन्न मुद्रा से फि
वापिस लौट गया। उसके चेहरे पर कोई शिकन तक न आई।

कबीर ने युवक की ओर प्रश्न भरी दृष्टि डाली और बोले-
"कुछ देखा ? साधु बनना हो, तो ऐसा बनो। इतना अशक्त वृ
शरीर, आँखो की रोशनी कमजोर, ठीक तरह चला भी नही जाता
इतना सब कुछ होने पर भी, तुमने देखा, मैंने तीन बार पुकारा औ
तीनो बार उसी शान्त मुद्रा से नीचे आए और वैसे ही लौट गए। मु
पर जरा भी क्रोध की झलक नही, घृणा नही, द्वेष नही। साधु बनन
चाहते हो, तो ऐसे बनो कि तुममे इतनी सहिष्णुता रहे, इतनी क्षम
रहे। जीवन मे प्रसन्नता के साथ कष्टो का सामना करने की क्षमत
हो, तो साधु की ऊँची भूमिका पर जा सकते हो।"

इसी घटना के प्रकाश मे हम भगवान् महावीर की वाणी का रहस्
समझ सकते है कि साधु जीवन हो या गृहस्थ जीवन, जब तक जीव
मे आन्तरिक तेज नही जग पाए, प्रामाणिकता और सच्ची निष्ठा का भाव
न हो, तो दोनो ही जीवन वदतर है। और, यदि इन सद्गुणो का समावेश
जीवन मे हो गया है, तो दोनो ही जीवन अच्छे है, श्रेष्ठ है, और उनसे
आत्म-कल्याण का मार्ग सुगमता से प्रशस्त हो सकता है।

श्री जैन विद्यालय, कोलकात

अक्षय पुण्यात्मा : श्रीमती तारादेवी कांकरिया

जैन दर्शन मे पुण्य के सम्बन्ध मे कहा गया है कि जो कर्म आत्मा को शुभ की ओर ले जाए, पवित्र करे और सुख प्राप्ति का सहायक हो, वही पुण्यात्मा कहलाता है। शुभ योग से पुण्य की प्राप्ति होती है। पुण्य बन्ध अत्यन्त कठिन है क्योकि आत्मा की अगणित वृतियाँ है अत पुण्य-पाप के कारण भी अनेक है।

पुण्य कर्म का बन्ध नौ प्रकार से होता है एव ४२ प्रकार से उसे भोगा जाता है। १-अन्न पुण्य, २-पान पुण्य, ३-लयन पुण्य, ४-शयन पुण्य, ५-वस्त्र पुण्य, ६-मन पुण्य, ७-वचन पुण्य, ८-काय पुण्य, ९-नमस्कार पुण्य।

पुण्य के इन नौ प्रकारो की कसौटी पर जब हम स्मृति शेष तारा देवी काकरिया का मूल्याकन करते है तो उनके समग्र जीवन को पुण्य कर्मों के एक ऐसे आलोकस्तम्भ के रूप मे पाते है जो आनेवाले वर्षो मे सतत प्रकाश विकीर्ण करता रहेगा एव उसके अनुकरण से पुण्य कर्म का बध कर कोई भी जीव पुण्यात्मा बनकर सिद्ध, बुद्ध, परमात्म-स्वरूप बन सकेगा।

श्रीमती तारादेवी काकरिया का जन्म बीकानेर के सुप्रसिद्ध धर्म परायण वैद परिवार मे हुआ एव गोगोलाव के काकरिया परिवार के श्री हरखचद काकरिया से इनका विवाह हुआ। बचपन से ही धार्मिक सस्कारो मे पले होने के कारण उनका सम्पूर्ण जीवन धर्ममय रहा।

गणधर गौतम ने महावीर से पूछा कि भगवन! आपकी पूजा अर्चना, उपासना करनेवाला व्यक्ति महान् है अथवा गरीबो, दीनो, अनाथो, असहायो, पीडितो एव रोगियो की सहायता तथा सेवा शुश्रुषा करनेवाला व्यक्ति महान् है। प्रभु महावीर ने कहा कि 'जे गिल्लाण पडिहरई से धन्ने' जो दीन दुखियो, अनाश्रितो, अपाहिजो, पीडितो की सहायता करता है। उसके अधकार से परिपूर्ण जीवन को प्रकाश की किरणो से आलोकित करता है, उसका जीवन धन्य है एव वह महान् है, पुण्यात्मा है।

भगवान महावीर के इस मार्ग का मृत्यु पर्यन्त अक्षरश अनुकरण किया श्रीमती तारादेवी ने। वे सेवामूर्ति मदर टेरेसा की पर्याय थी। महान् आचार्य रामचन्द्र सूरिश्वरजी म० इन्हे 'अनुपमा देवी' कहकर सम्बोधित करते थे।

श्रीमती तारादेवी ने अपने जीवनकाल मे अनेक तीर्थो मे जिनालयो का निर्माण करवाकर तीर्थकरो की प्रतिष्ठा करवाई जिनमे पालीताणा, मेहसाणा, हस्तगिरि, अहमदाबाद, कलिकुण्ड पार्श्वनाथ, लिलुआ, बाली आदि प्रमुख है। इन सभी स्थानो पर श्रीमती काकरिया ने स्वय भूमिपूजन किया एव प्रतिष्ठा करवाई।

पालीताणा मे उनकी ओर से स्थायी भोजनालय का सचालन होता है जहाँ से साधु-साध्वी, श्रावक, श्राविका, वैरागी, वैरागिन शुद्ध आहार ग्रहण करते है। विगत चालीस वर्ष से यह भोजनालय चल रहा है।

पालिताणा मे रोगी यात्रियो की सुविधा के लिए एक हॉस्पीटल का निर्माण भी आपने करवाया। स्वधर्मी भक्ति, सेवा एव गरीब छात्रो एव छात्राओ की शिक्षा का खर्च वहन करने मे भी वे सदैव अग्रणी रही है। हस पोकरिया मे भोजनालय मे भी आपने उल्लेखनीय सहयोग किया है। मूर्तिपूजक सम्प्रदाय मे छरी पालित सघ की यात्रा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। छरी पालित सघ यात्रा मे साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका सभी पैदल यात्रा करते है गन्तव्य स्थान तक। इनका बहुत बडा महात्म्य माना जाता है। ऐसे तीन छरी पालित सघ श्रीमती काकरियाजी ने आयोजित किये–

१ सन् १९६२ मे राणकपुर से पालीताणा

२ सन् १९६९ मे जामनगर से जूनागढ

३ सन् १९७१ मे पाटण से शखेश्वर पार्श्वनाथ

इनका सम्पूर्ण व्यय भार श्रीमती काकरियाजी ने वहन किया।

श्रीमती काकरिया अहिसा, अनेकान्त एवं अपरिग्रह की साक्षात् प्रतिमूर्ति थी। विगत चालीस वर्षो से वे किसी पद-त्राण (चप्पल, जूता) आदि का प्रयोग नही करती थी। वर्ष भर मे चार साडी से अधिक का वे व्यवहार नही करती थी। साडियाँ भी सूती एव

साधारण। ८ वर्ष की आयु से ही रात्रि भोजन का एव कच्चे पानी का त्याग किया था। कम से कम पानी का व्यवहार वे स्नान के लिए करती थी। जाति-पाति एव भेदभाव से रहित उनका जीवन समता से परिपूर्ण था। श्रीमती काकरिया का समग्र जीवन तप पूत था। तपस्या उनके जीवन का एक प्रधान अग थी। उन्होंने अनेक बार उपधान तप किया। वर्धमान तप बारह बार किया। नवपद ओली की तपस्या भी अनेक बार की। वर्षीतप भी कई बार किये। उपवास, आयबिल, बेला, तेला से लेकर ८ एव दस की उन्होंने तपस्याएँ की। उनका यह तप पूत जीवन प्रणम्य और नमनीय है।

अस्पतालो मे जाकर रोगियो मे फल वितरण, औषधि वितरण तो उनकी दैनिक जीवनचर्या थी। सडक पर किसी भी रोगी एव अपाहिज को देखकर अपना वाहन रुकवा देना उनका सहज स्वभाव था। उसे अपने वाहन मे लेकर अस्पताल पहुँचाना एव उसकी शुश्रुषा की सम्पूर्ण व्यवस्था कर ही वे वहॉ से हटती थी।

गो के प्रति उनकी श्रद्धा अपरिमित थी। उन्होने अपने जीवनकाल मे हजारो गायो को अभयदान दिलवाया। पालीताणा मे उन्होंने गोशाला का निर्माण करवाया। वहॉ अशक्त, वृद्ध गायो को रखकर उनकी परिचर्या की जाती है।

इनका एक सम्बन्धी बडा बाजार के एक मकान मे रहता था जहॉ शुद्ध वायु का प्रवेश नही था। सीढियॉ पानी से भीगी हुई, अधकार पूर्ण फिर भी वे पर्युषण एव दिवाली पर्व पर वहॉ पहुँचकर उनकी खबर लेती थी एव उनके सुख-दु ख मे सहभागी बनती थी जबकि उनका कोई सम्बन्धी वहॉ नही पहुँचता था। इसी सम्बन्धी के जब प्रोस्ट्रेट ग्रन्थि का ऑपरेशन एक नर्सिग होम मे हुआ तब ये लगातार डेढ माह तक जाकर उनकी सार सभाल करती थी। उनकी उदारता, करुणा एव सेवा भावना महनीय थी फलस्वरूप उनकी सपत्ति मे भी अपार वृद्धि हुई। उनका जीवन इतना सरल, सीधा-सादा एव सदाचार से युक्त था कि उन्होंने कभी कोई पुरस्कार स्वीकार नही किया। वे अभिनन्दनो एव सम्मानो से सदा निर्लिप्त रही।

अहिंसा, अनेकान्त एव अपरिग्रह की इस देवी ने दिनाक २० जुलाई, १९९९ मगलवार आषाढ वदी अष्टमी को ब्राह्म वेला ७ ४५ पर इस असार ससार को छोडकर महाप्रयाण किया। इस दिन भगवान नेमीनाथ का जन्म कल्याणक भी था। मृत्यु से पाँच दिन पूर्व उन्हे अपनी मृत्यु का आभास हो गया था। ६ माह पूर्व ही उन्होंने अपने सभी गहने भी उतार कर गरीबो मे वितरित कर दिये थे। चौविहार सथारा पूर्वक अपनी नश्वर देह को त्याग कर वे अमरत्व को प्राप्त कर गई। अपने पीछे वे अपनी पति, पुत्र-पुत्रियो, पोते-पोतियो आदि का भरापूरा परिवार छोडकर गई। उनके पति श्री हरखचद काकरिया उनके प्रत्येक धर्म कार्य मे दिल खोलकर सहयोग करते रहे है। उनके अप्रतिम सहयोग से ही वे सेवा का पर्याय बनी। उनकी स्मृति को हमारे अशेष प्रणाम। वस्तुत वे एक शलाका पुण्यात्मा थी। आचार्य अमितगति का निम्न श्लोक उनका आदर्श था–

सत्वेषु मैत्री गुणीषु प्रमोदम्
क्लेष्टेषु जीवेषु कृपा परत्व,
माध्यस्थ भाव विपरीत वृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देवा ।

■

TARA DEVI KANKARIA

साधारण। ८ वर्ष की आयु से ही रात्रि भोजन का एव कच्चे पानी का त्याग किया था। कम से कम पानी का व्यवहार वे स्नान के लिए करती थी। जाति-पाति एव भेदभाव से रहित उनका जीवन समता से परिपूर्ण था। श्रीमती काकरिया का समग्र जीवन तप पूत था। तपस्या उनके जीवन का एक प्रधान अग थी। उन्होंने अनेक बार उपधान तप किया। वर्धमान तप बारह बार किया। नवपद ओली की तपस्या भी अनेक बार की। वर्षीतप भी कई बार किये। उपवास, आयबिल, बेला, तेला से लेकर ८ एव दस की उन्होंने तपस्याएँ की। उनका यह तप पूत जीवन प्रणम्य और नमनीय है।

अस्पतालो मे जाकर रोगियो मे फल वितरण, औषधि वितरण तो उनकी दैनिक जीवनचर्या थी। सडक पर किसी भी रोगी एव अपाहिज को देखकर अपना वाहन रुकवा देना उनका सहज स्वभाव था। उसे अपने वाहन मे लेकर अस्पताल पहुँचाना एव उसकी शुश्रुषा की सम्पूर्ण व्यवस्था कर ही वे वहाँ से हटती थी।

गो के प्रति उनकी श्रद्धा अपरिमित थी। उन्होने अपने जीवनकाल मे हजारो गायो को अभयदान दिलवाया। पालीताणा मे उन्होंने गोशाला का निर्माण करवाया। वहाँ अशक्त, वृद्ध गायो को रखकर उनकी परिचर्या की जाती है।

इनका एक सम्बन्धी बडा बाजार के एक मकान मे रहता था जहाँ शुद्ध वायु का प्रवेश नही था। सीढियाँ पानी से भीगी हुई, अधकार पूर्ण फिर भी वे पर्युषण एव दिवाली पर्व पर वहाँ पहुँचकर उनकी खबर लेती थी एव उनके सुख-दु ख मे सहभागी बनती थी जबकि उनका कोई सम्बन्धी वहाँ नही पहुँचता था। इसी सम्बन्धी के जब प्रोस्ट्रेट ग्रन्थि का ऑपरेशन एक नर्सिग होम मे हुआ तब ये लगातार डेढ माह तक जाकर उनकी सार सभाल करती थी। उनकी उदारता, करुणा एव सेवा भावना महनीय थी फलस्वरूप उनकी सपत्ति मे भी अपार वृद्धि हुई। उनका जीवन इतना सरल, सीधा-सादा एव सदाचार से युक्त था कि उन्होंने कभी कोई पुरस्कार स्वीकार नही किया। वे अभिनन्दनो एवं सम्मानो से सदा निर्लिप्त रही।

अहिंसा, अनेकान्त एव अपरिग्रह की इस देवी ने दिनाक २० जुलाई, १९९९ मगलवार आषाढ वदी अष्टमी को ब्राह्म वेला ७ ४५ पर इस असार ससार को छोडकर महाप्रयाण किया। इस दिन भगवान नेमीनाथ का जन्म कल्याणक भी था। मृत्यु से पाँच दिन पूर्व उन्हे अपनी मृत्यु का आभास हो गया था। ६ माह पूर्व ही उन्होंने अपने सभी गहने भी उतार कर गरीबो मे वितरित कर दिये थे। चौविहार सथारा पूर्वक अपनी नश्वर देह को त्याग कर वे अमरत्व को प्राप्त कर गई। अपने पीछे वे अपनी पति, पुत्र-पुत्रियो, पोते-पोतियो आदि का भरापूरा परिवार छोडकर गईं। उनके पति श्री हरखचद काकरिया उनके प्रत्येक धर्म कार्य मे दिल खोलकर सहयोग करते रहे है। उनके अप्रतिम सहयोग से ही वे सेवा का पर्याय बनी। उनकी स्मृति को हमारे अशेष प्रणाम। वस्तुत वे एक शलाका पुण्यात्मा थी। आचार्य अमितगति का निम्न श्लोक उनका आदर्श था–

सत्वेषु मैत्री गुणीषु प्रमोदम्,
क्लेष्टेषु जीवेषु कृपा परत्व,
माध्यस्थ भाव विपरीत वृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देवा ।

■

TARA DEVI KANKARIA